# प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय

मारवाड़ का अतिशय प्राचीन नगर "पाली" चिरकाल से व्यापार का केन्द्र रहा है। वहां 'फतेहचन्द मूलचन्द' नामका फर्म सौ वर्षसे भी अधिक समयसे आज तक अपनी व्यवसाय प्रामाणिकता और नीति कुशलता तथा धर्म प्रमुखता के साथ चलता आ रहा है। फर्म के आदि संस्थापक फतेहचन्दजी के देवलोक वासी होने पर उनके सुपुत्र मूलचन्दजी साहब फर्म के अधिष्ठाता बने और जीवन पर्यन्त व्यवसाय में वृद्धि के साथ साथ धर्मवृद्धि में भी जी खोलकर हाथ बंटाए। सं० १९५१ में मूलचन्दजी ने पाली निवासी बस्तीमलजी को गोद लिया तथा व्यवसाय का सारा काम उनके जिम्मे कर दिया। आपने भी देव गुरु धर्म में निष्ठा रखते हुए व्यापार को आगे बढाया और पूर्वजों की परम्परा कायम रखने में रत्ती भर भी कसर नहीं की। सं०, १९७५ में बस्तीमलजी साहब ने श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहब को जिनका जन्म स्थान "आउआ" है गोद लिया। श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहब का स्वभाव बचपन से ही धार्मिक तथा बुद्धि व्यवसायात्मिका थी, फलतः उन्नति के साथ साथ ख्याति फैलने में कोई विशेष देर न लगी। कार्य दक्षता और व्यवहार कुशलता एवं अदम्य उत्साह तथा अटूट लगनसे सफलता आपकी दासी बनी और देखते २ आप एक बड़ी धनराशि के अध्यक्ष बन गए। कपड़ा, कमीशन, ऊन और आढ़त के कामों मेंआपकी गहरी दिलचस्पी है। योंतो आपके व्यवसाय मारवाड़के छोटेबड़े अधिकतर शहरों में किसी न किसी रूप में प्रसारित हैं ही लेकिन प्रमुख रूप में पाली और बम्बई दो जगहों में प्रचलित है जिसमें पाली फर्म का नाम 'फतेहचन्द मूलचन्द' तथा बम्बई का 'मूलचन्द बस्तीमल' ताम्बाकांटा हनुमान बिल्डिंग ३ फ्लोर बम्बई है।

अधिकतर देखा जाता है कि लोग लक्ष्मीपात्र बनकर धर्म के प्रति विमुख हो जाते हैं किन्तु आप बराबर इस नियम के अपवाद रहे। जैसे जैसे व्यापार चमका वैसे वैसे धार्मिक लगन भी बढ़ती गयी और यही कारण है कि आप आज पाली के एक प्रमुख व्यापारी ही नहीं किन्तु समाज के कुशल एवं अग्रगण्य कार्यकर्ता भी हैं। पाली में संभव ही ऐसा कोई पारमार्थिक काम होगा जिसमें आपने हाथ नहीं बंटाया हो। आत्म कल्याण के लिए व्रत, तप के साथ दान देने में भी आप कभी

卐 ॐ अर्हं वन्दे 卐

# श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रम्

## छाया–भाषाटीका–टिप्पण्यादिभिरलंकृतम्.

अनुवादक:

पूज्य श्रीहस्तिमल्लो मुनिः

प्रकाशक: पाली वास्तव्य: श्रेष्ठी

श्री हस्तिमल्लजी सुराणा

विर नि० २४७७ ] दिस० १९५० [ मूल्यं पंच रूप्यकम्

# प्रकाशक का वक्तव्य

वहुत दिनों से हमारी हार्दिक अभिलाषा थी कि पूज्य श्री गुरुदेव के त्रय ताप-हारी पावन चरणरेणु से अपने नगर को पवित्र करूं और गत वर्ष हमारी वह लालसा सफलीभूत भी हुई। गुरुदेव ने अपने शुभागमन तथा वर्षावास से हमारी मनोकामना पूरी करदी। चातुर्मासके वे सारे दिन जिस आनन्द, उल्लास एवं उत्साह केसाथ बीते और उससे मुझको जिस तरहकी खुशी प्राप्त हुई उसको मूर्त्त रूपमें स्मृति पट पर अंकित करने के लिए मैंने पं० श्री दुःखमोचनजी 'झा' से अपने भाव प्रकट किए कि पूज्य गुरुदेव की कोई कृति मिले तो मैं उसका प्रकाशन कर पाली चातुर्मास की सुखद स्मृति को अचल और अटल वनाऊं। पंडितजी की कृपा से प्रश्न व्याकरण की नूतन प्रति जो गुरुदेव की गंभीर गवेषणा और सतत सच्छास्त्र चिंतन के परिणाम हैं मुझको मिली, जिसको प्रकाशित करते हुए आज मुझे कितना आनन्द मिल रहा है वह वर्णन से वाहर है।

हमारी आन्तरिक अभिलाषा है कि इसी तरह भविष्य में भी पूज्य गुरुदेव की कोई भी कृति मुझे मिलती रहेगी तो मैं उसके प्रकाशन से अपने जीवन को सार्थक और सफल वनाऊंगा। भविष्य ही वताएगा कि हमारी यह कामना कहां तक और किस अंश तक सफल होती है?

इस पुस्तक को मैं अमूल्य उपहार के रूप में वितरण करना चाहता था किन्तु विना मूल्य की वस्तु का योग्य आदर नहीं होता है, अतः इसका अल्प मूल्य रखा गया है। इसके विक्रय से जो भी आय होगी वह साहित्य प्रकाशन में ही लगायी जायेगी।

अन्त में, मैं पंडित श्री दुःखमोचनजी 'झा' का महान आभारी हूँ जिनके सहयोग से मुझको गुरुदेव के निकटतम सेवा लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही उनके सुपुत्र पं० शशिकान्तजी 'झा' ने इस चातुर्मास में अजमेर रह कर इ

# प्रबन्धक के दो शब्द



पूज्य श्री हस्तिमल्लजी महाराज साहब कृत भाषाटीका तथा विशिष्ट परिशिष्ट सहित यह प्रश्न व्याकरण सूत्र, जो बन्ध और मोक्षके तत्व का पथ प्रदर्शक है, प्रकाशित हो गया। पुस्तक कैसी बनी तथा इसकी कैसी उपयोगिता और विशेषता है? आदि विविध प्रश्नों का समाधान तो इसको अच्छी तरह अवलोकन करने वाले विज्ञ पाठकको अनायास ही होजायगा, मगर जहांतक मेरी जानकारी है मैं भी इतना निस्संकोच कह सकता हूँ कि यह एक ऐसे उज्ज्वल व्यक्तित्वकी गवेषणापूर्णकृति है, जिनका अनवरत समय विविध शास्त्रावलोकन, गंभीर चिंतन और तत्वगवेषण तथा तदनुकूल आचरण में ही बीतता है। वर्ष महीने और दिन का ही नहीं जहां घंटे, मिन्ट और सैकेण्ड का भी ज्ञानपुरस्सर कभी दुरुपयोग नहीं होता। मात्र मेरे इतने निवेदन से भी विज्ञ पाठक प्रस्तुत पुस्तक की प्रबल प्रामाणिकता को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

इस पुस्तकके प्रकाशनमें आवश्यकतासे अधिक देर हुई। वि०सं० १९९३के अजमेर चातुर्मासमें ही समिति सम्पादित प्रति के आधारपर पूज्यश्री ने इसका कार्यारम्भ कर दिया किन्तु उसी बीच पूज्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय पूर्ववर्ती धर्माचार्यों की जीवनी कारण विशेष से तैयार हुई, जो इन दिनों जयपुर में छपी है। इसके साथ ही बृहत्कल्प सूत्र का अनुवाद तीर्थङ्करों के जीवनचरित्र तथा तत्वार्थाधिगम सूत्र का पद्यानुवाद हुआ। इसतरह पूज्य श्री का ध्यान भिन्न भिन्न आवश्यक कार्यों में बंट गया फिर भी पूर्वारब्ध प्रश्न व्याकरण की प्रेस कापी भी तैयार की गई। वि० सं० २००२ के जयपुर चातुर्मास में सातारा के दीवान बहादुर श्रीमान् शेठ मोतीलालजी मुथा की इच्छा इसको पूना के आर्य भूषण प्रेस में छपवाने को हुई किन्तु किसी कारण से ऐसा नहीं हो सका। इस तरह कई वर्ष तक इसका मुद्रण कार्य स्थागत रहा। इसी बीच बड़लू चातुर्मास में पं० रत्नकुमारजी ...का



श्रीमान शेठ हस्तिमल्लजी 'सुराणा" पाली ( मारवाड़ )

प्रमाद नहीं करते और जब जहां जैसा आवश्यक समझते हैं मुक्त हस्त होकर दिया करते हैं। विभिन्न संस्था और समाज को बड़ी बड़ी रकमें देकर आपने अनुप्राणित किया है। वि० २००३ में पूज्य श्री हस्तिमल्लजी व पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज के पाली सम्मिलन में भी आपने बहुत बड़ा हाथ बंटाया था।

आपका हृदय स्वच्छ, मुखाकृति प्रसन्न तथा मस्तिष्क सूझ बूझ से भरा हुआ है। स्पष्टवादिता, मिलनसारिता तथा निरभिमानता एवं सहृदयता आपमें कूट कूट कर भरी हुई है। जो बात हृदय में जंच जाय उसको पूरी करने में शायद ही कसर करते हों।

परिवारके प्रति भी आपका प्रेम सराहणीय है और इसीकारणसे आपके परिवार तथा व्यवसायिक कार्यकर्त्ता आपमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आप छोटे छोटे बच्चों के साथ भी अक्सर विनोद किया करते हैं जिसमें आपकी विनोद प्रियता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। आप अपने छोटे भाई श्री केशरीमलजी साहब को दिल से चाहते हैं और हर छोटे बड़े कामों में उनकी सम्मति का सम्मान करते हैं। आपका यह भ्रातृ-प्रेम देखकर राम और भरत का स्मरण हो आता है।

धर्म और गुरु के प्रति आपकी आस्था असीम है। गत वर्ष आपने पूज्य गुरुदेव श्री हस्तिमल्लजी महाराज साहब का चातुर्मास पाली में करवाया और उसको जिस सुन्दर ढंग से निभाया वह चिर स्मरणीय रहेगा। चातुर्मास की स्मृति को अमर बनानेके लिए प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन किया है तथा भविष्यके लिए भी आश्वासन दिया है कि ऐसी कृतियों को जिनसे समाज का कल्याण संभव है लोकोपयोगी बनाने में यावज्जीवन दत्त चित्त रहूँगा।

आपका भविष्य महान है। समाज को आपसे बड़ी बड़ी आशाएं हैं। आपकी उम्र अभी केवल ४७ वर्ष की है अतः उस पर कुछ अधिक कहना संभव नहीं लेकिन आपके वर्तमान व्यवहार को देखकर कोई भी आशा कर सकता है कि समाज के उन सभी विकलांगों का सुधार आपके कर-कमलों से होना निश्चित है जिस पर आपकी दिव्य दृष्टि एक बार पड़ जायगी। शासन देव आपकी धर्म निष्ठा, सद्विवेक और जीवन को दीर्घतम एवं सफल बनाए रहें।

इसी अमर कामना के संग--

शशिकान्त 'झा'

---

# "आगमज्ञ मुनिराजों से आवश्यक निवेदन"



तीर्थङ्करों व अतिशयज्ञानियों के अभाव में आज समस्त श्वेताम्बर जैन सङ्घ का आधार प्रमुख रूप से आगम ही है। हमारे मन्दपुण्य के कारण प्रथम तो आगमों का पूर्ण अंश ही प्राप्त नहीं। फिर यथा तथा करके पूर्वाचार्यों की कृपा से जो भी अंश हमें प्राप्त हैं, उसमें लेखन व संशोधनों के प्रमाद ने बहुत से स्थलों में बुद्धि भेद के कारण उत्पन्न कर दिए हैं। प्रश्न व्याकरण का काम करते समय हमें भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। इतने पाठ भेद अन्यत्र कम मिलेंगे। इस कार्य में संस्कृत टीका के अलावा आगम मन्दिर से प्रकाशित प्रति का भी पाठनिर्णय में हमने साहाय्य लिया जो आगम के विशिष्ट अभ्यासी स्वर्गीय सागरानन्द सूरि द्वारा संशोधित है। इसमें कई स्थल ऐसे हैं जिनकी संगति नहीं होती। विद्वानों के ज्ञानार्थ वैसे पाठों की तालिका प्रस्तुत करके आशा की जाती है कि आगमज्ञ विद्वान् इनका उचित समाधान करेंगे।

(१) प्रथम आस्रव सूत्र नं० २ में हिंसा के नामों में 'घिणासो, शब्द प्रयुक्त है, प्रसंगानुसार इसका अर्थ नाश होने से यह संगत है, किन्तु आ० मं० में यहाँ 'विसाणो, पद छपा है, इसकी संगति कैसे होगी ?

(२) सूत्र ३ 'सरीसृप के प्रकरण में 'वाउप्पिय, पाठ आता है जिसका संस्कृत नाम वायुप्रिय बन सकता है। आ० मं० ने 'वाउपइय' ऐसा पाठ माना है। यह किस तरह ?

(३) सूत्र ७ द्वितीय आस्रव के मृषावादी प्रकरण में--'भणंति अलियाहि संधि सन्निविट्ठा' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में--'भणति अलिया हिंसंति सन्निविट्ठा, पद प्रयुक्त है, पहिले के वाक्य में 'अलियाहि संधि सन्निविट्ठा, पद मृषावादीका विशेषण होने से सङ्गत है किंतु 'अलिया हिंसंति सन्निचिट्ठा, पद में 'हिंसंति' क्रिया के साथ इसकी संगति कैसे होगी ?

(४) इसी प्रकरण में 'गामघातियाओ, के स्थान पर 'गामघातवाओ, आ० म० में प्रयुक्त हैं. प्रसंग से इसकी संगति कैसे होगी ?

(५) सूत्र १५ चतुर्थ आस्त्रव द्वार के युगलिक वर्णन प्रकरण में 'रुइल निद्धनखा' ऐसा पाठ है। इसके लिये आ० मं० की प्रति में 'रुइल :निद्धनक्खा' प्रयुक्त है, जो अशुद्ध ज्ञात होता है, क्योंकि 'नक्खा' में द्वित्व विधान लाक्षणिक नहीं है।

(६) सूत्र १९ में पञ्चम आस्रव के परिग्रह संचय प्रकरण में 'अत्थ सत्थ इसत्थच्छरुप्पवायं,' के स्थान में आ० मं० ने 'अत्थ इसत्थच्छरुप्पवायं माना है, सो क्या 'सत्थ, पद छूटा है ? या इसी पाठ को संगत माना गया है ?

(७) सूत्र २३ प्रथम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'मणेण पावएणं' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'मणेण अपावएणं' प्रयुक्त है। इसी प्रकार तीसरी भावना में 'वतीते पावियाते' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'वतीते अपावियाते' पाठ …त है। सो किस तरह ?

(८) प्रथम संवर के भावना प्रकरण में 'निक्खियव्वं' पद आता है आगम मन्दिर में इसके स्थान पर 'निक्खिवियव्वं' प्रयुक्त है। पहला प्रयोग जहाँ स्वार्थ में है वहां दूसरा प्रेरणार्थ में प्रयुक्त है, प्रसंगवधान से पहला प्रयोग तो उचित मालूम होता है, किन्तु दूसरे प्रयोग की संगति कैसे हो सकती है ? इसका आशय स्पष्ट करें।

(९) द्वितीय संवर द्वार के सत्य निरूपण प्रकरण में 'चारणगण समण सिद्ध विज्जं' पद आया है, जिसके स्थान पर आ० मं० में 'चारण गमण समण सिद्ध विज्जं, प्रयुक्त है। अर्थ दृष्टि से पहला पाठ ही सङ्गत है। टीकाकार ने भी ऐसा ही माना है। फिर आ० मं० में 'चारण समण' के बीच में 'गमण' पद का प्रयोग किस आशय से किया गया है ?

(१०) तृतीय संवरद्वार के चतुर्थ भावना प्रकरण में-"अदिन्ना दाण वय नियम वेरमणं एवं के स्थान पर आ० मं० की प्रति में अदिन्ना दाण (विरमण वय नियमणं, वय नियम वेरमणं पा० ) एवं" प्रयुक्त है। दोनों पाठों में अर्थ अस्पष्टसा रहता है। इनमें संगत और शुद्ध कौन पाठ है ?

(११) सूत्र २५ में चतुर्थ संवरद्वार-ब्रह्मचर्य उपमा निरूपण प्रकरण में-"हिमवंतो चेव ओसहीणं, के स्थान पर आ० मं० की प्रति में-'हिमवंतो चेव नगाणं, बम्भी ओसहीणं ऐसा पाठ प्रयुक्त है। हस्त लिखित प्रतिमें हिमवान को औषधिओं के

स्थान में उत्तम मानकर आठवीं उपमा में इसको माना है और रथिकों में सांग्रामिक महारथी को ३२ वीं उपमा में प्रयुक्त किया है। आ० मं० की प्रति के अनुसार हिमवान पर्वतों में उत्तम और ब्राह्मी औषधिओं में उत्तम मानकर पृथक् दो उपमायें दी गई हैं। इस प्रकार महारथिक की अन्तिम उपमा अधिक होती है। इसलिये इसकी संगति किस प्रकार करनी चाहिए ?

(१२) सूत्र सं० २७ चतुर्थ संवरद्वार ब्रह्मचर्य निरूपण प्रकरणमें 'वेलंबक जाणिय' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'वेलंबकज्जाणिय, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति में 'वेलंबक, को स्वतन्त्र मानकर आगे 'यानिच, माना है, आ० मं० की प्रति में 'वेलंबक, को कार्य मानकर "वेलंबक ज्जाणिय" प्रयोग किया हो ऐसा संभव है।

(१३) सूत्र संख्या २६ के पञ्चम संवर द्वार 'अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण में 'गय गवेलगं च न जाण जुग्ग' आदि के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'गय गवेल । कंबल जाण जुग्ग, प्रयुक्त है। प्रथम पाठ प्रसंगानुसार उचित मालूम होता है, किन्तु आ० मं० की प्रति में -'गवेलग कंबल, पाठ माना है। गवेलग और कंबलको पृथक् मानना प्रसङ्ग से उचित नहीं दीखता, लेकिन 'गवेलगकं और बल इस प्रकार क को स्वार्थ में मानकर 'बल, पदका सैन्य अर्थ में प्रयोग माना जाय तो किसी तरह संगत हो सकता है।

(१४) सू० सं० २९ पञ्चम संवरद्वार के अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण में 'वेढिम वर सरक* चुन्न' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'वेढिम वसरक चुन्न, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति का प्रयोग जहां वेष्टिम वर सरक चूर्ण रूप खाद्य पदार्थ के अर्थ में प्रयुक्त है, वहां आ० मं० की प्रति में 'वसरक चूर्ण मानने पर अर्थ क्या माना जायगा।

(१५) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण में 'वल विउल कक्खड पगाढ दुक्खे, के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'बल विउल तिउल कक्खड पगाढ दुक्खे, प्रयुक्त है। यहां 'तिउल पदका प्रयोग किस अर्थ में किया गया है ? विपुल के साथ अर्थ संगति कैसे ?

(१६) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'एवमादिएसु फासेसु, के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'एवमादितेसु गिज्झियव्वं न फासेसु,

---

* ग-सारक,

प्रयुक्त है। यहां 'गिज्झियव्वं, का प्रयोग अस्थानीय है, इसका प्रयोग मुज्झियव्वं आदि क्रिया पदों के साथ होना चाहिए।

(१७) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'मणुन्न भद्दएसु' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'मणुन्न मद्दएसु' अनुपयुक्त है। ज्ञात होता है कि भ के स्थान पर भूल से म प्रयुक्त हो गया है।

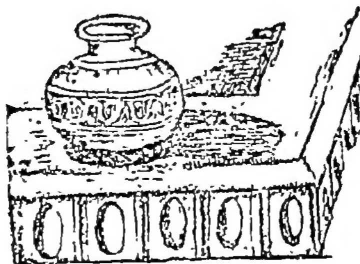
(१८) सू० सं० ७ द्वितीय आस्रव के इसी प्रकरण में 'गाम घातियाओं के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'गाम घातवाओ' ऐसा प्रयुक्त है। प्रसंग के अनुसार अर्थ में इसकी संगति कैसे होगी ?

(१६) सू० सं० ७ द्वितीय आस्रव के इसी प्रकरण में "दासी दास भयक भाइल्लका" के स्थान पर आ० मं० की प्रति में १ 'दासिदास भयक भाइल्लका' प्रयुक्त किया है 'इसमें दासि को ह्रस्व विधान किस नियम के अनुसार होगा।

विद्वान् मुनिराजों और आगमाभ्यासी श्रमणोपासकों से निवेदन है कि उपरोक्त पाठ भेदों में जहां असंगति है उनके लिये अपनी बुद्धि और धारणा का उपयोग करें इससे ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके साथ ही महती आगम सेवा भी होगी। तथा होनेवाले प्रकाशन भूल से बचेंगे और मुद्रित संस्करणों में संशोधनार्थ मार्ग दर्शन होगा। अतएव ऐसे आगम सेवा के कार्य को उपेक्षा की वस्तु नहीं समझें। आशा है श्वे० मू० और श्वे० स्था० दोनों समाज के आगम रसिक इस ओर लक्ष्य देंगे।

सुज्ञेषु पल्लवितेनालम्

अनुवादक



# प्रति परिचय

## संशोधन में प्रयुक्त प्रतियां

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के संशोधन में निम्न लिखित मुद्रित एवं हस्त लिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है।

१--श्री वर्द्धमान जैन आगम मन्दिर पालीताणा द्वारा प्रकाशित एवं आगम मन्दिर के शिलालेखों की प्रतीक स्वरूप जो कि तपोगच्छीय श्री सागरानन्द सूरिजी द्वारा संशोधित है। यह लम्बे साईज पत्राकार में मुद्रित पृष्ठ संख्या १९ है। 'त' श्रुति का विशेष प्रयोग है। अनवधानता एवं मुद्रण दोष से कई स्थलों पर पाठस्खलना दृष्टि गोचर होती है।

२--आगमोदय समिति, सूरत से प्रकाशित सटीक प्रति पत्राकार रूपमें मुद्रित। यह प्रति प्रायः शुद्ध है।

### हस्त लिखित प्रतियां—

३--प्रश्न व्याकरण हस्त लिखित 'अ' प्रति इसमें १०४ पत्र हैं। सार्थ होने से प्रत्येक पत्रके दोनों बाजू ६-६ पंक्तियां हैं। इसकी लम्बाई करीब १०ईंच और चौड़ाई प्रायः ४ ईंचकी है लिपि सुवाच्य होनेपर भी पूर्ण शुद्ध नहीं है। इसकी प्रशस्ति 'संवत् १८४६ ना भाद्रपद मासे कृष्ण पक्षे सप्तमी भृगुवासरे। लिपिकृत सा जोइतादास सेवासा ज्ञाती पोरवाड़ वृध सारत।

४--प्रश्न व्याकरण हस्तलिखित 'ब' प्रति का लेखन दो हिस्सों में समाप्त किया गया है। प्रथम हिस्से में पांच आस्रवद्वार का वर्णन है। सार्थ होने से प्रत्येक पत्र में दोनों वाजू ६-६ पंक्तियां हैं। पत्रों की लम्बाई लगभग १० ईंच और चौड़ाई प्रायः ४ ईंच है। लिपि सुवाच्य है एवं पाठ प्रायः शुद्ध है। प्रथम हिस्से की पत्र संख्या ३५ और द्वितीय हिस्से की २८ है। द्वितीय हिस्से में संवरद्वार का वर्णन है। इनका

लेखन कार्य मेड़ता नगर में पूर्ण किया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न प्रकार से है-- "संवत् १८५६ रा वर्षे मिति आसोज सुद द्वादसमी बुधवारे लिपि कृत्वा चतुर्मास रिष दुरग दासेण आत्मार्थे।" निम्न लिखित तीन प्राचीन हस्त लिखित प्रतियां श्री श्वे० स्था० जैन ग्रन्थ भण्डार, जयपुर से प्राप्त हुई। इन प्रतियों के संकेत क. ख. और ग प्रति रक्खे हैं। इन प्रतियों का उपयोग अन्य प्रतियों में विशेष पाठ भेद दृष्टिगत होने पर किया गया है।

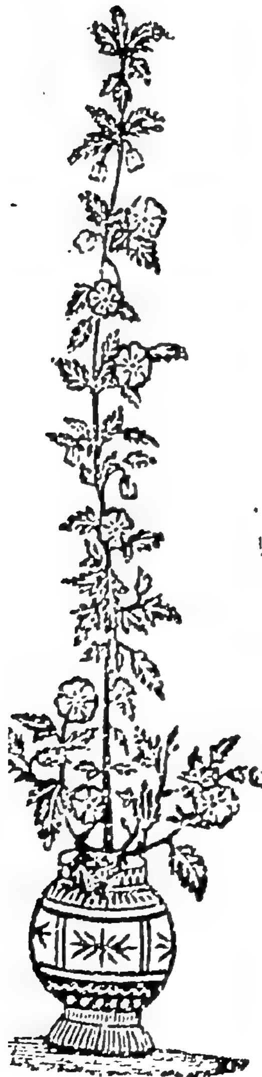
५--हस्त लिखित 'क' प्रति-इस प्रति में अणुत्तरोववाइ के उपसंहार-पाठ के बाद ,णमो अरिहंताणं' से सूत्रारम्भ किया गया है। यह मात्र मूल पाठ की प्रति है। पत्र सं० २१ है। प्रति पृष्ट में प्राय १६-१७ पक्तियां हैं। लिपि सुवाच्य और कई जगह पड़ि मात्रा के प्रयोग वाली है। स्थान स्थान पर पद विभाग के चिन्ह किए हुए हैं। लेखक के प्रमाद की स्खलना के अलावे प्रति वहुत कुछ प्रमाण में लेने योग्य है। इस प्रति का प्रशस्ति लेख निम्न प्रकार है 'संवत् १६०२ वर्षे कातिक सुदी पंचमी रविवासरे श्री प्यारु पुत्र तोतला दासेन लिखितं गौडान्ये।"

६--हस्त लिखित 'ख' प्रति-यह प्रति संवत् १६२० की लिखी हुई है। इसमें मात्र मूल पाठ है। लिपि सुन्दर सुवाच्य एवं पडि मात्रा की होते हुए भी प्रायः शुद्ध है। कहीं कहीं अर्थ सम्बन्धी टिप्पणियां अङ्कित की हुई हैं। पत्र संख्या ५६ हैं। प्रति पृष्ठ में ११ पंक्तियां हैं। लेखक की प्रशस्ति निम्न प्रकार है--"संवत १६२० वर्षे शाके १४८६ प्रवर्त्तमाने महा मांगल्य प्रद। वैशाख सुदी ११ शनि दिने। महा ऋषि ऋषिराय ऋषि श्री नानजी प्रसादात् थावर मुनि पठनार्थं। वीरजी मुनिना लिखितं। श्री शुभं भवतु लेखक पाठकयोः। कल्याण मस्तु श्री रस्तु॥

७--हस्त लिखित 'ग' प्रति--यह प्रति सटीक और सर्व श्रेष्ठ है। लिपि की सुन्दरता के साथ साथ पाठ प्रायः शुद्ध है। त्रिपाठी होने से प्रति .पृष्ठ में मूल पाठ और ऊपर नीचे टीका लिखी गई है। पत्र संख्या ६२ हैं। प्रति पृष्ट में ४-६ और कहीं न्यूनाधिक मूल पाठ की पंक्तियां हैं। पत्र की लम्बाई चौड़ाई प्रायः १०X४ इंच है। अन्तिम पृष्ठ नहीं होने से प्रशस्ति-लेख नहीं मालूम किया जा सकता फिर भी प्रति का पडि मात्रा में लेखन एवं कीट कवलित हाल देखते हुए लेखन-समय कम से कम ४००-५०० वर्ष पूर्व ज्ञात होता है।

मुद्रित प्रतियों में एक ज्ञान विमल सूरि कृत टीका की सटीक प्रति है जो मुक्ति विमल जैन ग्रन्थमाला के ग्रन्थाङ्क ७ में अहमदाबाद से प्रकाशित है। अभय

देव सूरि की टीका से इसमें विशेषता है कि प्रति शब्द देकर कुछ सहूलियत की गई है। मूल पाठ आगमोदय समिति के आधार पर है। केवल उसको छोटे छोटे विभाग कर के प्रकाशित किया है। इसके दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में पांच आस्रव और दूसरे भाग में संवर इस प्रकार दो भागों में छपा है। कहीं २ टिप्पणी में कठिन शब्द का गुजराती नामान्तर भी दिया है। इति।



श्रीगुरुचरणाः प्रसीदन्तु

# प्राक्कथन—

## श्रुतसेवा—

यह एक निर्विवाद सत्य है कि श्रुत सेवा बड़े पुण्य का कार्य है। भाग्योदय के बिना श्रुत सेवा का अवसर प्राप्त नहीं होता। मेरा अतिशय शुभोदय है कि गुरु कृपा से मुझे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ तथा रुचि एवं श्रद्धाके साथ विद्वानों का भी सहयोग मिलता रहा जिससे प्रस्तुत कार्य में बड़ा बल मिला है। मैं अनुभव करता हूँ कि श्रुत सेवा संसार के तापत्रय से सन्तप्त प्राणिओं को शान्ति प्रदान करनेवाली है। जो रोग, शोक एवं दुःख को भूलना चाहें उनको अवश्य विधि पूर्वक श्रुताराधन करना चाहिए। शास्त्र ने इसी को बन्धन मुक्ति का प्रधान कारण कहा है। जैसे कि --ज्ञान का १ प्रकाश होने पर अज्ञान एवं मोह सूर्य-किरण में अन्धकार की तरह विलीन हो जाते हैं और मोह के अभाव से जब राग, द्वेष का विच्छेद हो जाता तब एकान्त सुख रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह महिमाशाली ज्ञान प्रकाश श्रुत सेवा का ही परिणाम है। स्वर्गीय दिव्य वैभव का प्रत्यक्षसा दर्शन, भयङ्कर यमयातना का रोमाञ्चकारी वर्णन तथा निगूढ गुहानिहित सम आत्मतत्त्व, सिद्ध गति आदि का प्रदर्शन सिवाय श्रुत सेवा के दूसरा कौन कर सकता या करा सकता है ? बिना श्रुत सेवा के ऐसा ज्ञान प्रकाश सुलभ नहीं।

श्रुत-ग्रन्थ या शास्त्र किसी नाम से कहें, इसके दो प्रकार हैं। एक सम्यक्-श्रुत और दूसरा मिथ्या श्रुत। अल्पज्ञों के द्वारा जो स्वेच्छापूर्वक केवल बुद्धि और कल्पना के बल पर लिखे गये हैं। जिनको पढ़ने व सुनने से काम, क्रोध, मोह की वृद्धि हो वैसे कामशास्त्र, अर्थशास्त्र या कथा उपन्यास आदि सत्-शास्त्र नहीं है। इनको पढ़ने या सुनने से श्रुत सेवा का लाभ नहीं होता, क्योंकि ये राग द्वेष की वृद्धि के कारण होने से कुशास्त्र हैं। लौकिक कला और अपने विषय की जानकारी के अतिरिक्त इनसे कोई आत्मिक लाभ प्राप्त नहीं होता। करोड़ों ग्रन्थ पढ़ लेनेपर भी

---

१ णाणस्स सव्व स्स पगासणाए अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्सय संखएणं १ एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं। उ० ३२।२।

ये सुशास्त्र के एक श्लोक के बराबर भी नहीं होते। कहा भी है--'श्लोकोवरं परम-तत्त्व पथ प्रकाशी, न ग्रन्थ कोटि पठनं जनरंजनाय। संजीवनीति वरमौषधमेकमेव, व्यर्थश्रमस्य जननो न तु मूलभारः ॥१॥ अर्थात् परम तत्त्व को प्रकाशित करनेवाला एक श्लोक भी अच्छा किन्तु जनरञ्जन के हेतु करोड़ों ग्रन्थों का पठन अच्छा नहीं। संजीवनी जड़ी का एक टुकड़ा अच्छा परन्तु व्यर्थ श्रम देनेवाला मूला गाड़ी भर भी अच्छा नहीं। सुशास्त्र की कितनी महिमा है? मनोरंजक साहित्य करोड़ों भी सुशास्त्र के एक पद की तुलना में नहीं आ सकते। सुशास्त्र का वह एक श्लोक आत्म-जागरण करता है, जो अन्य साहित्यों से नहीं होता। ऐसे परम पदों का पठन मनन ही मंगलमय श्रुत सेवा है।

## जैन साहित्य में आगम—

यों तो अधिकांश जैन साहित्य ही 'परमतत्त्व पथ प्रकाशी, इस उक्ति के अनु-सार त्याग विराग की शिक्षा देनेवाला है, क्योंकि इनके प्रणेता प्रायः त्यागी साधु थे। अतः इनको सुशास्त्र कह सकते हैं, फिर भी इन सब साहित्यों में आगम का स्थान बहुत ऊंचा है। वैदिक साहित्य में वेद और इस्लाम साहित्य में कुरान शरीफ की तरह जैन साहित्य में आगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आगम का अर्थ है विधि-पूर्वक जीवादि तत्त्वों को समझानेवाला प्रामाणिक शास्त्र। अन्यत्र कहा गया है--'आप्तवचन मागमः, आगमश्चोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम्। अतीन्द्रियाणामर्थानां सद्भाव प्रतिपत्तये ॥१॥ आगमोह्याप्तवचन--माप्तं दोषक्षयाद्विदुः। वीतरागोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसंभवात् ॥२॥ दश०। अर्थात्--अतीन्द्रिय पदार्थों की सत्ता समझने के लिये आगम और उपपत्ति ही सम्पूर्ण दर्शन का लक्षण है।॥१॥ आप्त वचन को आगम कहते हैं और जिनके दोषों का क्षय हो चुका वे आप्त हैं। दोष नहीं रहने से वीतराग असत्य वचन नहीं बोलते, क्योंकि वहां असत्य का कोई कारण नहीं रहा॥२॥ उपरोक्त विचार से पाठक समझ गये होंगे कि वीतराग वाणी को आगम कहते हैं। अतीन्द्रिय विषयों का प्रामाणिक निर्णय आगम से ही हो सकता है। अतः धर्म मार्ग में* इसी को प्रामाणिक पद प्राप्त है। समस्त साहित्य में आगम की विशिष्टता इसलिये है कि--"आगम युक्ति विरुद्ध नहीं होता और सद्-

---

* जम्हा न धम्ममग्गे, मोत्तूणं आगमं इह पमाणं
विज्जइ छउमत्थेणं, तम्हा एत्थेव जइयव्वं ॥

युक्ति भी आगम से विमुख नहीं जाती। एक-दूसरे का अनुगमन करते हुए आगम और युक्ति ये दोनों सत्य के ज्ञान को स्थिर करने में समर्थ होते हैं। जैसे कि--
जुत्तीए अविरुद्धो सदागमो, सावि तय विरुद्धत्ति। इय अण्णोण्णाणुगयं, उभयं पडिवत्ति हेउत्ति। पंचाशक ॥४५॥

इस प्रकार का गुणसम्पन्न आगम वीतराग वचन ही हो सकते हैं अन्य नहीं।

## शास्त्र का नाम

प्रश्नव्याकरणानि--पण्हावागरणाइं या पण्हावागरण दसा है। नन्दी और समवायाङ्ग सूत्र में पण्हावागरणाइं नाम रक्खा गया है। प्रश्न का अर्थ पूछना और व्याकरण का अर्थ उत्तर है। बहुतसे प्रश्नोत्तर होने से इसका नाम प्रश्न व्याकरणानि ऐसा बहुवचनान्त पद रक्खा गया। जैसा कि टीकाकार अभयदेव सूरि ने लिखा है -प्रश्नः प्रतीतः, तन्निर्वचनं-व्याकरणम्। प्रश्नानाञ्च व्याकरणानाञ्च योगात् प्रश्न करणानि, (सम० १४५) नन्दी और प्रश्नव्याकरण के टीकाकार ने भी इसी को माना है।

दूसरा नाम है पण्हा वागरणदसा, इसका प्रयोग स्थानाङ्ग में मिलता है। स्थानाङ्ग के दशम स्थान में कहा है कि पण्हावागरण दसा के दश अध्ययन हैं, "टीकाकार भी इसी नाम से अर्थ करते हैं, जैसे-प्रश्न व्याकरण दशा इहोक्त रूपा न। दोनों नाम प्राचीन हैं फिर भी ज्ञात होता है कि प्रश्न व्याकरण दशा यह नाम प्रश्न व्याकरणानि से कम प्रसिद्ध था। कारण भगवती, समवायांग और नन्दी में प्रश्न व्याकरण नाम का ही उल्लेख मिलता है। इसके ५ आस्रव और ५ संवर रूप से दश अध्ययन मिलते हैं। अतः इसका नाम प्रश्न व्याकरण दशा अधिक ठीक लगता है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के आचार्यों ने प्रायः प्रश्न व्याकरण नाम ही प्रामाणिक माना है। अधिकांश शास्त्रीय प्रयोग और दिगम्बर साहित्य में भी 'पण्ह-वायरण' ऐसा उल्लेख है, अतः प्रश्न व्याकरण नाम ही उपयुक्त समझना चाहिए। आप कहेंगे कि इसमें प्रश्न विद्या का सम्बन्ध नहीं है, फिर प्रश्न व्याकरण यह नाम कैसा ? उत्तर यह है कि सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू के प्रश्न पर आस्रव, संवर का प्रतिपादन किया है, इसलिये इसको प्रश्न व्याकरण कहने में बाधा नहीं है। देखिए--गोम्मटसार की टीका में आचार्य ने लिखा है कि-शिष्यप्रश्नानुरूपतया कथाश्चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिन्--तत्-प्रश्न व्याकरणम्।

के दश अध्ययनों का उल्लेख मिलता है देखिए—'पण्हावागरण दसाणं दस अज्झयणा प तं० उवमा संखा, इसिभासियाइं, आयरिय भासियाइं, खोमग पसिणाइं, कोमल पसिणाइं, अद्दाग पसिणाइं, अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं।" उपरोक्त दश अध्ययनों में से प्रथम दो को छोड़कर शेष ८ विषय और नाम की दृष्टि से समवायाङ्ग के साथ मेल खाते हैं। फिर भी यह प्रश्न खड़ा रहता है कि नन्दी और समवायाङ्ग में इसके ४५ अध्ययन कहे हैं और स्थानाङ्ग में दश। विषय की समानता होने पर भी यह अन्तर कैसे? टीकाकार ने इसका कोई समाधान नहीं किया, केवल उक्त स्वरूप वाला प्रश्न व्याकरण दशा यहां नहीं है, इतना ही लिखा है। जैसे कि—'प्रश्न व्याकरण दशा इहोक्तरूपा न, स्था० १० ठा.।। उपलब्ध प्रश्नव्याकरण के अन्त में लिखा गया है कि—पण्हावागरणे णं एगो सुयक्खंधो दस अज्झयणा एक्कसरगा, दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति,—प्रश्नव्याकरण में एक श्रुत स्कंध और दश अध्ययन हैं। दश दिनों में ही इसका उद्देश होता है। आदि।

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रश्न व्याकरण दो हैं। इन दोनों में वर्तमान काल में दश अध्ययनवाला प्रश्न व्याकरण ही उपलब्ध है। आस्रव एवं संवर का इसमें प्रतिपादन किया गया है। ४५ अध्ययन पर व्याख्या करते हुए टीकाकार श्री अभयदेव सूरि लिखते हैं—"यद्यपीहाऽध्ययनानां दशत्वाद् दशैवोद्दशनकाला भवन्ति, तथापि वाचनान्तराऽपेक्षया पंचचत्वारिंशदिति संभाव्यते, इति पणयाली समित्याद्यविरुद्धम।

जो भी यहाँ वर्तमान में अध्ययन दश होने से उद्देशन काल भी दश होते हैं, फिर भी वाचनान्तर की अपेक्षा ४५ का कथन सम्भव होता है। उपरोक्त विवरण से समझा जाता है कि टीकाकार के समय में प्रश्न विद्यावाला सूत्र वाचनान्तर माना जा रहा था। यह प्रश्न व्याकरण का दूसरा रूप है।

**दिगम्बर सम्प्रदाय में प्रश्न व्याकरण—** श्वेताम्बर सम्प्रदाय की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय भी द्वादशाङ्गी को मानती है। दोनों के नाम और कुछ विशिष्टता के साथ विषय मिलते-जुलते हैं। अल्पमात्र ही अन्तर है। जैसे- नायाधम्म कहा' के स्थान पर 'णाह धम्म कहा' 'उवासग दसा' के स्थान में 'उवासयज्झयणं' और 'पण्हावागरणाइं के स्थान में पण्हवायरणं, नाम मिलता है। पद संख्या भी प्रायः मिलती है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग आदिकी पद संख्या में कुछ अन्तर है, किन्तु उसमें लेखन एवं अनुश्रुतिमें भ्रान्ति प्रधान कारण ज्ञात होता

है। अस्तु, हमें यहाँ प्रश्न व्याकरण के लिये ही विचार करना है। प्रश्न व्याकरण लिए श्री वीरसेनाचार्य अपनी धवला टीका में निम्न परिचय देते हैं—'पण्हवा रणं णाम अंगं तेणउदिलक्ख सोलह सहस्स पदेहि ६३१६००० अक्खेवण विक्खेवणी, संवेयणी, णिव्वेयणी चेदि चउव्विहाओ कथाओ वण्णेदि। त अक्खेवणीणाम छद्दव्व णवपयत्थाणं सरूवं-दिगन्तर-समया न्तर णिराकरणं सु करेंती परूवेदि।·····उक्तं च—'आक्षेपणीं तत्त्वविधान भूतां विक्षेपणीं त दिगन्तशुद्धिम। संवेगिनीं धर्मफल प्रपञ्चां, निर्वेगनीं च ह कथां विरागाम। पण्हादो हदणट्ठ-मुट्ठि-चिन्ता-लाह लाह-सुह दुक्ख-जीविय-मरण-जय-पराज ण म-दव्वायु-संखंच परूवेदि। अर्थात् प्रश्न व्याकरण नाम का अंग तेरानवे सोलह हजार पदों के द्वारा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी, निर्वेदनी इन कथाओं का तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल सम्बन्धी धन, धान्य, अलाभ, जीवित मरण, जय और पराजय सम्बन्धी प्रश्नों के पूछने पर उपाय का वर्णन करता है, जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टिओं का और समयों (सिद्धान्तों) का निराकरण पूर्वक शुद्धि कर के छः द्रव्य और नौ प्रकार पदार्थों का प्ररूपण करता है उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं। कहा भी है— निरूपण करनेवाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिशान्तर को प्राप्त हुई दृ का शोधन करनेवाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्व की स्थापना करनेवाली विक्षेपणी कथा है। विस्तार से धर्म के फल का वर्णन व ली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेगिनी कथा है।·· प्रश्न व्याकरण नाम का अंग प्रश्न के अनुसार हत-नष्ट-मुष्टि चिन्ता-लाभ-अल सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्या क प्ररूपण करता है। धवला पृ० १०४ से १०६।

उपरोक्त धवला के उल्लेख से प्रकट होता है कि प्रश्न व्याकरण में आक्षे आदि चार कथाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन था और प्रश्न के अनुसार हत, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित, मरण जय, पराजय, नाम- आयु और संख्या का भी प्ररूपण किया गया था। इसमें प्रधानता से चार क को कह कर उन्हीं के साथ प्रश्न-विद्या का भी होना कहा गया है। किन्तु सार में प्रश्न-विद्या को मुख्यार्थ मान कर पक्षान्तर में शिष्य प्रश्नानुरूप से कथाओं का वर्णन माना गया है। जैसे कि—[illegible]

रूपस्यार्थस्त्रिकाल गोचरो धनधान्यादि लाभालाभ सुखदुःख जीवित मरण जय पराजयादि रूपो व्याक्रियते–व्याख्यायते यस्मिन् तत्–प्रश्न व्याकरणम्। अथवा शिष्य-प्रश्नानुरूपतया अवक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी, निर्वेजनी चेति कथाश्चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिंस्तत् प्रश्न व्याकरणम् नाम। गोम० जीव काण्ड० जी० प्र० टी०

प्रथमतो नष्ट मुष्ट्यादि प्रश्न का लाभालाभ आदि रूप फल जिसमें कहा जाय वह प्रश्न व्याकरण है। अथवा शिष्य के प्रश्नानुरूप जिसमें अवक्षेपणी आदि चार कथायें कही जांय वह प्रश्न व्याकरण है। उपरोक्त विचार से फलित होता है कि दिगम्बर परम्परा में भी प्रश्न व्याकरण के दो रूप माने गये हैं।

**सूत्र का वर्तमान रूप कब से और क्यों ?**

प्रश्न व्याकरण का परिचय पढ़ कर पाठक विचारेंगे कि इसमें से प्रश्नविद्या क्यों और कब चली गई ? और यह इस रूप में कब से है ? यद्यपि इस प्रश्न का व्योरेवार समाधान करना हमारी शक्ति और उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से बाहर की बात है, तथापि यथाकथञ्चित् संचित साधनों से कुछ विचार किया जाता है। नन्दी और समवायाङ्ग के उल्लेख को देखते हुए प्रतीत होता है कि इनके लेखन काल में प्रश्न विद्यावाले प्रश्न व्याकरण की ही प्रसिद्धि हो। आस्रव संवर का प्रतिपादन करनेवाला यह सूत्र यदि शास्त्रलेखन के समय होता तो अवश्य उसका द्वादशाङ्ग के परिचय में उल्लेख होता किन्तु नन्दी से समवायाङ्ग के सूत्र परिचय में कुछ बातें विशेष बता कर भी आस्रव संवर का वर्णन कहीं नहीं दिखाया गया। दिगम्बर परम्परा के धवला सन्दर्भ में जैसे प्रश्न विद्या के साथ चतुर्विध कथाओं का प्रश्न व्याकरण में परिचय दिया गया, वैसा भी तो यहाँ निर्देश नहीं। इससे हमारे जैसे छद्मस्थ विचारक की तो यही धारणा होती है कि देवर्द्धिगणी के द्वारा वीर निर्वाण ९८० से जो शास्त्रों का पुस्तकाकार लेखन कराया गया उसमें समवायाङ्ग के लेखन तक तो प्रश्न विद्यावाला प्रश्न व्याकरण था, किन्तु उसका ज्ञान सबसाधारण को सुलभ नहीं था। केवल परम्परा से परिचय मात्र सब को था। जब शास्त्रों का सङ्कलन तथा उनको संक्षिप्त किया गया तब अनुयोगधारी आचार्यों ने आजकल के साधुओं को अतिशय ज्ञान के योग्य न जान कर अंगुष्ठ आदि प्रश्नों को निकाल दिया। जैसे कि टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं–"इदानीं त्वास्रव पंचक संवर पचक व्याकृतिरेवेहोपलभ्यते। अतिशयानां पूर्वाचार्यैरैदंयुगीनानामपुष्टालम्बन प्रतिषेवि पुरुषाऽपेक्षयोत्तारितत्वात्–इति।" अतएव अंगुष्ठ आदि प्रश्नों के

कर्त्ता हैं, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा का मत है कि भगवान् महावीर से त्रिपदी को सुनकर सभी गणधरों ने चतुर्दश पूर्व की रचना की। इन इग्यारह गणधरों के द्वारा नव वाचनाएँ हुई क्योंकि दो वचनायें समान हुई थीं। इस मान्यता में वर्तमान आगम सुधर्म वाचना के समझे जाते हैं। जब उपलब्ध अङ्ग-शास्त्रों के कर्ता सुधर्मा-चार्य हैं, तब प्रश्नव्याकरण के भी सूत्ररूप से सुधर्मा स्वामी ही कर्त्ता समझने चाहिए। जैसाकि अभय देव सूरि कहते हैं--"अस्य च श्री मन्महावीर वर्द्धमान स्वामि सम्बन्धी पञ्चम गण नायकः श्री सुधर्म स्वामी सूत्रतो जम्बुस्वामिनं प्रति प्रणयनं चिकिर्षुः. सम्बन्धाऽभिधेयप्रयोजन प्रतिपादनपरां जम्बू ! इत्यामन्त्रण पूर्वां गाथामाह"।

इसमें सुधर्मास्वामी सूत्र रूप से जम्बू को शास्त्र का कथन किया, यह बताया गया है।

**शास्त्र की भाषा** प्रस्तुत भाषा यद्यपि अर्धमागधी है, तथापि आचाराङ्ग आदि से इसकी भाषा शैली में अवश्य अन्तर है इसकी भाषा कादम्बरी की तरह अलङ्कारयुक्त और साहित्यिक है। वैदर्भी रीति का प्रयोग होने से इसमें समास की बहुलता है। विषय सर्वोपयोगी होकर भी भाषा की कठिनता से सर्व साधारण के लिये सुलभ नहीं है। सामान्य प्राकृत के ज्ञान मात्र से इसमें प्रवेश नहीं हो सकता है। कहा जा सकता है कि प्राकृत में शास्त्र निर्माण का यह ध्येय ही जब--"अणुग्रहाय तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः--अनुग्रह करना है। तब इससे ऐसा दुर्बोध क्यों बनाया गया ? उ० शास्त्रकार को सभी प्रकारके श्रोताओं का लक्ष्य होता है। अल्पज्ञोंकी तरह कुछ विद्वानोंको भी विद्वत्ता का रसास्वाद मिले, संभव है, इसके निर्माण में यही लक्ष्य रहा हो। मध्यकाल का साहित्यिक प्रभाव भी कारण हो सकता है।

**शास्त्रान्तर के साथ तुलना** यद्यपि प्रश्न व्याकरण आस्रव और संवर को करनेवाला अपनी शैली का एक ही है, अन्यत्र ऐसा स्वतन्त्र विचार नहीं मिलेगा, फिर भी कई शास्त्र इसकी आंशिक तुलना में आते हैं। प्रथम आस्रव में बताई गई जलचरादि जन्तुओं की नामावली और म्लेच्छ जातियां पन्नवणा के प्रथम पाद में अधिकांश मिलती हैं। म्लेच्छ जाति के नामों में कुछ हेरफेर हैं। जैसे गौड के लिये पन्नवणा में निन्नक और गोंड लिखा है। गोधा विशेष है। आन्ध्र द्राविड के स्थान में अम्बड़ द्रमिल और विल्लल के लिये

चिल्लल है। अरोस को पन्नवणा में हरोस और पोकण के लिये वोक्कण लिखा है। रोम मास के लिये रोम पास रोस ऐसा पाठ दिया है। वकुस को पहुस और चुंचुय के स्थान पर वंधुयाय ऐसा पाठ है। चूलिका के स्थान पर सूयलि और महुर के स्थान मग्गर है। मरहट्ठ मुट्ठीय और आरव के स्थान पर केवल मोंढ इतना ही है। डोंबिलग के स्थान पर डोंबिलग लओस और प ओस है। केकय के स्थान कक्कोस और अक्खाग तथा रुरु के स्थान में भरु पाठ भेद है। मृषावादी दार्शनिकों का वर्णन सूत्रकृताङ्ग के प्रथम अध्ययन से मिलता जुलता है। युगलिक नरनारिओं का वर्णन जो चतुर्थ आस्रव में है, जीवाभिगम के युगलिकाधिकार के समान है। अहिंसा के वर्णनमें जिन मुनिओंका परिचय है उस पाठकी उववाई से तुलना होती है। संवराध्ययन की पचीस भावनायें आचारांग के भावनाध्ययन में संक्षिप्त कही गई है। पञ्चम संवर में एकविध असंयम से लेकर तेंतीस आसातना तक जो उल्लेख मिलता है उनका स्पष्ट परिचय समवायांग में और कुछ दशाश्रुतस्कन्ध में मिलता है। ये शास्त्र प्रश्न व्याकरणगत विषय के पूर्तिरूप हैं।

देश और अनार्य जाति का महाभारत में भी विशद वर्णन है। नारक वर्णन सूत्रकृताङ्ग और उत्तराध्ययन के नरक वर्णन से भावतः साम्य रखता है।

## प्रस्तुत शास्त्र परिचय—

मुख्य विषय भेद के अनुसार इस शास्त्र को हमने दो खण्ड में विभक्त कर लिखा है। प्रथम खण्डमें ५ आस्रव अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का वर्णन है। प्रत्येक आस्रव को स्वरूप, नाम करने का प्रकार, कर्ता और फल के भेद से ५ द्वारों में बताया है। फिर उत्तर खंड में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच संवर का कथन है प्रत्येक व्रत को पांच भावनाओं से सुरक्षित बताया गया है। इसमें सर्व प्रथम मूल, फिर संस्कृत और पश्चात् अन्वयार्थ एवं भावार्थ लिखा गया है। पाठान्तर मूल में कोष्ठक से और अधिकांश, विशिष्ट स्थलों के टिप्पण से बताये गये हैं॥ पीछे परिशिष्ट में शब्द कोश, विशिष्ट स्थलों के टिप्पण ऐतिहासिक नाम, पाठान्तर और कथा भाग दिया गया है।

## अन्तरङ्ग परिचय—–

प्रथम आस्रव में पहले हिंसा का रूप बताकर उसके ३० नाम कहे गये हैं, फिर हिंसकों के वर्णन में कहा है कि वे असंयमी अविरती एवं चंचल परिणाम वाले तथा पर दुःख देने में तत्पर होते हैं। मारे जाने वाले जन्तुओं की गणना में १३ जलचर ३८ चतुष्पद ८ उरग १६ भुज परिसर्प और पक्षि

जातियां ४७ गिनाई गई हैं। इसके बाद त्रसजीवों को हिंसा के विविध कारणों को बताकर पांच स्थावरों की हिंसा के भी पृथक् पृथक् कारण बतलाये हैं। चैत्य, देव-कुल और मठ आदि धर्म साधन कहे जाने वाले भी प्रथम आस्रव में पृथ्वी की हिंसा के कारण बताये गये हैं। हिंसा चाहे स्ववश, परवश या अर्थ एवं अनर्थ से की जाय, हास्य, रति, वैर से हो अथवा क्रोध, लोभ, मोह से हो, सभी प्रकार की धर्म, अर्थ या काम निमित्त से होने वाली हिंसा अधर्म का द्वार है। उसे करने वाले हत-बुद्धि व निर्दय हैं।

हिंसकों में विविध प्रकार के शिकारी, पारधी, और मच्छीमार आदि अनेक गिनाये गये हैं। हिंसा प्रधान ५४ म्लेच्छ जातियां और पशु पक्षी मत्स्य आदि जीव इस हिंसा के खास कर्ता कहे गये हैं।

अन्त में हिंसा के फलस्वरूप मिलनेवाली नरक गति की रोमाञ्चकारी यम-यातनायें विस्तार से कही गई हैं। यमयातना भुगत कर नरक से निकलनेवाले नार-कीय जीव पशुगति में जाकर ३० से भी अधिक प्रकार की पराधीन वेदनायें भोगते हैं फिर पंचेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तेइन्द्रिय आदि क्रम से एकेन्द्रिय तक के भयप्रद दुःखों का वर्णन किया गया है। हिंसकों के लिये मनुष्य जन्म ऐसा दुर्लभ हो जाता है कि किसी किसी को तो अनन्त काल जैसे सुदीर्घ काल के पश्चात् मनुष्य भव का लाभ होता है। मनुष्य लोक में जो कुबडे, लंगडे, लूल्हे, वामन बहरे, काणे तथा गूंगे हैं, ये तमाम विरूप हिंसा के कारण से ही होते हैं। रोग, व्याधि, चिन्ता और अल्पायु तथा अकाल मरण हिंसा के ही दुष्परिणाम हैं। हिंसा से ही जीव निर्बल, कुरूप और सुख सौभाग्यहीन होता है। इस प्रकार हिंसा के कुफल वीर प्रभु ने बताये हैं।

दूसरे अधर्म द्वार में झूठ का वर्णन पांच प्रकार से है। प्रथम झूठ का स्वरूप और फिर उसके ३० नाम हैं। क्रोध, लोभ, भय और हास्य से झूठ बोलनेवाले चोर आदि २७ करीब व्यावहारिक पुरुष गिना कर फिर एकान्तवादियों का परिचय दिया गया है। नास्तिकवादी आदि उनमें प्रधान हैं। कुछ लोक काल स्वभाव या भवितव्यता को ही कर्ता मानते हैं तो कोई कर्म या ईश्वर को ही कर्ता धर्ता हर्ता मानते हैं। ये सभी एकान्त वचन शास्त्र में मिथ्या कहे गये हैं। व्यवहारवाद, निश्चय-वाद और ज्ञानवाद एवं क्रियावाद को भी ऐसा ही समझना चाहिए। निन्दा, पैशुन्य के अतिरिक्त कन्यालीक, अर्थालीक, भूम्यलीक तथा गवालीक को बड़ा झूठ और

दुर्गति का कारण कहा है। हिंसाकारी वचन सत्य होकर भी मृषा के समान है। पशुओं का दमन करो, अश्वादि खरीदो, और बेचो, खेत जोतो, आदि ३० प्रकार के सावद्य उपदेश सत्यव्रती मुनि के लिये बाधक कहे गये हैं। इसकी जीविका बन्द कर दो तथा कुछ भी दान मत दो यह भी झूठसा है।

झूठ बोलनेवाला दुर्गति में भटकता है। शरीर और वचन से विकल होता है। पराधीन नीच की सेवा करनेवाला धर्म-श्रवण से वञ्चित रहता है। संक्षेप में समझना चाहिए कि दुःख, दौर्भाग्य, अकीर्ति और तिरस्कार झूठ के मुख्य फल हैं।

तीसरे अध्ययन में चोरी का वर्णन है·

बिना दिये तथा स्वामी की अनिच्छा से किसी पदार्थ को ले लेना चोरी है। चोरी का स्वरूप और नाम कह के फिर चोर एवं चोरी के प्रकारों का कथन है। सामने आनेवाले को मारनेवाले १ ऋण लेकर नहीं देनेवाले २, सन्धि को तोडनेवाले ३, राजनिषिद्ध कार्य को करनेवाले ४, ग्राम घातक–पुर घातक पन्थ घातक ५, राजकीय हासिल लेनेवाले अधिकारी आदि अनेक प्रकार के चोरकहे गये हैं। चोरी के प्रकार–लोभी राजा लोग सैन्य बल से लड़ कर दूसरों का द्रव्य हठात् हरण करते हैं। वैसे कुछ चोर समूह बना कर अटवी में पथिकों को और दरिया चलनेवाले जहाज एवं सार्थ को लूटते हैं। ग्राम नगरादि में निर्दयता से लूट मचाते हैं। यहां युद्ध और समुद्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। काल विकाल में घूमते हुए चोर, पर्वत, नदी, श्मशान अथवा वन के शून्य स्थानों में क्लेश सहते रहते हैं। ये लोग स्वजन जनों से दूर और अशन वसन के अभाव से विकल निन्दित जीवन से जीते हैं। जब कभी पकड़े जाते हैं तब राज्य-पुरुषों द्वारा विभिन्न प्रकार के वध बन्धन शूलारोपण आदि नरकतुल्य दुःखों को एक ही साथ भोगते हैं। यहां पूर्वकाल में दिये जानेवाले अनेक प्रकार के दण्डविधान बताये गये हैं। परलोक में तथा नरक तिर्यञ्च योनि में और मनुष्य भव में चोरों के लिये दुर्गति दिखाई गई है। चोरी के फल में मनुष्य होकर भी जीव अनार्य क्रूर एवं धर्म रहित जीवन बिताता है। परिणाम स्वरूप संसार समुद्र में वह दीर्घ काल तक भटकता रहता है। संसार समुद्र का यहां सर्वाङ्ग पूर्ण वर्णन किया गया है।

चौथे अध्ययन में मैथुन का वर्णन है–

यह तप संयम का विघ्न और रोग, शोक, जरा, मरण का हेतु है। चिरपरिचित होकर इसका परिणाम महा दुःखदायी है। इसके ३० नाम गिनाकर फिर सेवन

करने वालों का परिचय दिया गया है। जैसे-४ जाति के देव, मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इसका सामान्य रूपसे आसेवन करने वाले हैं। अत्यन्त शुभ लक्षणों से विराजमान और छः खण्ड की विशाल राज्य लक्ष्मी के भोक्ता बनकर भी चक्रवर्ती भोगों से अतृप्त ही रह जाते हैं।

मैथुन संज्ञा में आसक्त मनुष्य परस्पर लड़ते हैं। वैभव नाश और स्वजन नाश को प्राप्त करते हैं। इस मैथुन के आचरण से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, और चरित्र का नाश होता है। इस दुराचार के द्वारा कीर्तिमान् भी अकीर्ति के अधिकारी होते, सर्वथा स्वस्थ भी दीर्घरोगी बन जाते। कुशील से उभय लोक बिगड़ते हैं। मैथुन के निमित्त से जनसंहारकारी बड़े २ संग्राम हुए हैं। यह लोकोक्ति ख्यात है कि--"वैरतरु की स्त्रियां ही जड हैं। इन हुए संग्रामों में सीता, द्रौपदी, पद्मावती आदि द-।• के नामों का उल्लेख किया गया है। चतुर्गतिक संसार में सुदीर्घ काल तक भटकना इस विकट कुशील सेवन का बुरा फल है। लोकशास्त्र दोनों से निन्दित है। धर्मशास्त्र तो निषेध करता ही है। साथ ही नीति भी इसे गर्हित कहती है। पंचम अध्ययन में परिग्रह का वर्णन है। ममता के साथ वस्तुओं के संग्रह करने को परिग्रह कहते हैं। इसका मूल है तृष्णा और काम भोग है फलफूल। वृक्ष के रूपक से बता कर प्रकृत सूत्र में इसके ३० नाम कहे हैं। चारों जाति के देव इसको अपनाते हैं और विशालतम धनराशि को पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होते। चक्रवर्ती से लेकर साधारण धनपति और मन्त्री ये सब परिग्रह का संचय करते हुए दुःखमय संसार गर्त में डूबते हैं। इसी परिग्रह के लिये विविध कलाकलाप की कल्पना और उसकी आराधना की जाती है। इसी के लिये सकाम कष्टकारी तपस्यायें, समुद्र लंघन, सुदूर प्र॰ा ण भयङ्कर युद्ध आदि किये जाते हैं। इस विषय को कह कर तदुत्तर अन्तरङ्ग परिग्रह के रूप से दण्ड, शल्य, कषाय और लेश्या आदि दुर्वासनायें प्रदर्शित की गई हैं। परिग्रह रूप ग्राह से ग्रसित प्राणी चतुर्गतिक संसार सागर में ऊगता, डूबता और भटकता है। यह परिग्रह रूप विष वृक्ष का विषमय कटु फल है।

उपसंहार में आस्रवों के फलों का दिग्दर्शन कराने के बाद कहा गया है कि हिंसा आदि पांच आस्रवों को छोड़कर जो अहिंसादि संवरों का पालन करते हैं। वे ही सब प्रकार के कर्मों को क्षयकर क्षीणकर्मा अक्षय सुखास्पद सिद्धपद के भागी बनते हैं।

छट्ठे अध्ययनमें अहिंसाका वर्णन है, जो मृदुमधुर मनोहर व हृदयङ्गमकरने योग्य है

यह सूत्र के उत्तर खण्ड का पहला अध्ययन है। स्पष्ट कहा गया है कि ये अहिंसादि पञ्च महाव्रत अविश्रान्त चिरसञ्चित कर्मरजों का प्रमार्जन कर भय-मय भव प्रपञ्च से जीवको पृथक् कर देते हैं और भव भ्रमण को समूल मिटा देते हैं। महा महिमशाली इन पञ्च महाव्रतों में अहिंसा का प्रथम स्थान है, यह भव सागर में द्वीप के समान है। अहिंसा के ६० नाम बताकर इसकी महिमा दर्शाई गई है, जैसे-यह त्रिलोकी पूजित तीर्थङ्करों से कथित है। वैसे ही बड़े ज्ञानी, विपुलध्यानी, तपशाली, लब्धिधारी और क्रियाधिकारी सन्तों से पाली गई है। इसकी रक्षा के लिये मुनिगण भिक्षा के विभिन्न दोषों को टालते हैं। सब जीवों की रक्षा रूप दयाके लिये भगवान् ने यह प्रवचन कहा है। इसको रक्षा के लिये पांच भावनायें कही गई हैं जो बहुत माननीय हैं।

दूसरा व्रत सत्य है-इसको जगत् का आधार-धर्म का मूल और भगवान् पदसे भाषित किया है। सिद्धियों का स्थान और इन्द्रों से भी पूजित है। इसके महत्त्व में शास्त्र का उल्लेख मनन पूर्वक पढ़ने योग्य है, सत्यव्रती के लिये अपनी थाप (आत्म-प्रशंसा) और पर निन्दा निषिद्ध है। सत्य वचन की पूर्णता के लिये व्याकरणज्ञान से शब्द शुद्धि की आवश्यकता दिखलाई गई है। असत्य वचन से आत्मरक्षाके लिये भगवान ने यह प्रवचन कहा है। इसकी पांच भावनायें, विस्तार पूर्वक कही गई हैं। जो ध्यान से पठनीय हैं।

तीसरे संवर में अदत्ता दान विरमण व्रत का कथन है। अल्प या बहुत, छोटा या बड़ा, सचित्त अथवा अचित्त कोई भी द्रव्य चाहे गांव में हो या अरण्य में, पड़ा हुआ, गिरा हुआ एवं खोया गया हो बिना दिये न लेना, यह अचौर्य व्रत रूप है। इसीलिये पञ्च महाव्रतिओं को प्रति दिन अनुज्ञा लेना कहा है। निन्दा करना दूसरे के नाम से लाभ उठाना और दान में अन्तराय एवं दान का लोप करना, एक प्रकार की चोरी है। अतः अचौर्य व्रत में वैसे अप्रीतिकारी व्यवहारों का निषेध है। जो पाई हुई चीजों का अपने परिवारों में संविभाग नहीं करता हो वैर विरोध और असमाधि करने वाला हो वह इस व्रत की आराधना नहीं कर सकता। अचौर्य व्रत साधक को यह आवश्यक है कि वह शक्ति पूर्वक बाल, वृद्ध एवं रोगी की सेवा करे। दूसरे के लिए जो अप्रीतिकारक हो वैसा कोई भी आचरण नहीं करे। आदि। इसकी पञ्चम भावना स्वधर्मिओं में विनय करना है। यहां के सभी विचार पूर्ण मननीय हैं।

चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। तप, नियम, एवं ज्ञान, दर्शन चारित्र का यह मूल है। इस एक आराधना में सब की आराधना है। शील विनयादि गुण और यशःकीर्ति आदि सभी इस पर प्रतिष्ठित हैं। इसकी ३२ उपमायें हैं। इसकी शुद्ध आराधना करनेवाला ही श्रमण-ब्राह्मण या सुसाधु है। ब्रह्मचर्य के साधक को राग द्वेष और मोह बढ़ानेवाले विभूषा आदि शोभावर्द्धक व्यवहार निषिद्ध हैं। उसकी जीवनचर्या और भावनाओं का विचार हृदयग्राही परम गंभीर है। पंचम संवर में अपरिग्रह का वर्णन है। योगशास्त्र के शब्दों में जिसे यम कहा है, जैन शास्त्र की भाषा में वह संवर है। कर्मों के अणु को भी अन्तःकरण में नहीं आने देना यही संवर का निष्कर्ष है।

अपरिग्रही साधु आरम्भ परिग्रह से दूर और क्रोध मान माया लोभ से विरत होते हैं। एक विध असंयम से लेकर ३३ आशातना तक के सब भावों पर शंका, कांक्षा छोड़ कर व्रती सम्यक् श्रद्धा करता है। फिर अपरिग्रह का वृक्ष के रूपक से निदर्शन किया है। सर्वथा परिग्रहत्यागी मुनि हिरण्य सुवर्णादि बहुमूल्य और दूसरे को ललचानेवाली वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते। फल फूल और विविध प्रकार के धान्य औषध के निमित्त भी सम्पूर्ण परिग्रह त्यागी मुनि ग्रहण नहीं करे। इसको समुचित समझाया है। कल्पनीय भोजन आदि का भी मुनि को संग्रह नहीं करना चाहिए। इसके बाद भिक्षा ग्रहण करने की विधि बताई गई है। रोगादि कारण की स्थिति में भी औषध और आहार पानी का रात्रि में संग्रह निषिद्ध कहा गया है। आवश्यकता से गृहीत भण्डोपकरण भी संयम रक्षा के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए। अपरिग्रहव्रती का स्वरूप और विविध उपमाओं से उसके गुण बताये गये हैं। फिर पांच भावनाओं के साथ अध्ययन की समाप्ति की गई है।

अन्त में शास्त्र का उपसंहार और वाचन विधि के साथ शास्त्र की समाप्ति की गई है।

विविध संस्करण और हमारा प्रयत्न—

यह सत्य है कि विविध शास्त्रों की तरह प्रश्न व्याकरण के भी कई संस्करण निकल चुके हैं. जिनमें सर्व प्रथम राय धनपति सिंह बहादुर मकसुदाबाद का सटीक। दूसरा आगमोदय समिति सूरत से प्रकाशित सटीक। तीसरा ज्ञान विमल टीका सहित मुक्ति विमलजी जैन ग्रन्थमाला अहमदाबाद। चौथा पूज्य अमोलख ऋषिजी महाराज कृत भावानुवाद सहित और पांचवां गुजराती भाषान्तरवाला इन पांच

के अलावे रतलाम से प्रकाशित केवल अनुवाद और आगम मन्दिर का मूल संस्करण भी विद्यमान है, किन्तु हिन्दी भाषा के पाठकों को शुद्ध पाठ के साथ भाव का पूर्ण बोध इनसे प्राप्त नहीं होता, क्योंकि इनमें तीन तो संस्कृत रहे और एक हिन्दी व एक गुजराती पदार्थ मात्र ही। अतएव पाठकों को सुलभता से बोध प्राप्त होने के साथ मूल पाठ भी शुद्ध मिले एतदर्थं हमारा यह प्रयत्न है। पाठ शुद्धि के लिये ४ हस्त लिखित १ सटीक और १ आगम मन्दिर पालीताणा से प्रकाशित मूल इस प्रकार ६ प्रतिओं का उपयोग किया गया है। अशुद्ध और भिन्न पाठों के संशोधन में टीका का आधार लिया है, और पाठान्तर सूची में प्रत्यन्तर के उपयुक्त पाठ भेद भी बतला दिये हैं।

हमारे ध्यान से प्रश्न व्याकरण जितनी संशोधन में जटिलता अन्यत्र क्वचित् ही हो। आगम मन्दिर जैसी प्रामाणिक प्रति जो शिलापट्ट और ताम्र पत्र पर अङ्कित हो चुकी है, वह भी अशुद्धि से दूषित देखी गई है। इसके लिये १७ पाठों की एक तालिका बनाई गई जिनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनकी अर्थतः संगति नहीं बैठती और कुछ हैं स्खलनास्थल। गीतार्थ एवं तज्ज्ञ विद्वान् इसमें कुछ मार्ग प्रदर्शन करें ऐसी आशा से पांच स्थान पर तालिका भेजी गई। १ व्यवस्थापक आगम मन्दिर पालीताणा। २ पुण्य विजयजी महाराज जैसलमेर। ३ भेरोंदानजी सेठिया बीकानेर। ४ जिनागम प्रकाशक समिति और उपा० श्री अमर मुनि ब्यावर। ५ सम्यग् दर्शन में प्रकाशनार्थ सैलाना। पांच में से ३ की ओर से पहुँच के अतिरिक्त कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पुण्य विजयजी म० ने पीछे उत्तर देने को लिखा किन्तु पत्र देने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। आगम मन्दिर से तो पत्र की पहुँच भी नहीं। अस्तु। पाठों की तालिका सम्यग् दर्शन ( सैलाना ) प्रथम वर्ष के ११ वें अंक में देख सकते हैं।

इस प्रकार साधन और सहाय हीन दशामें हमने जो यह महान् प्रयत्न किया, वह केवल आगम सेवा की भावना से ही।

## कृतज्ञता प्रदर्शन

सर्व प्रथम जैनाचार्य पूज्य जैन धर्म दिवाकर आत्मारामजी म० जिनका कि समय २ पर हमें सहयोग मिलता रहा उपकार मानना आवश्यक है। उपाध्याय कवि श्री० अमरचन्दजी म० ने दिल्ली विराजते समय प्रश्नव्याकरण के कुछ पत्र देखे और सुझाव प्रस्तुत किये।

इसके उपरान्त आगम सेवामें लिखनेका परिश्रम उठाने वाले विद्वान् और सहायक संत जिनकी सेवा के सहयोग से यह कार्य पूर्ण हो सका है तथा जिन २ ग्रन्थों से सहयोग लिया है उन सभी ग्रन्थ कर्ताओं के और सहायकों के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ। संशोधन और पदार्थ को सुलभ करने में यावत्-शक्य प्रयत्न किया गया है।

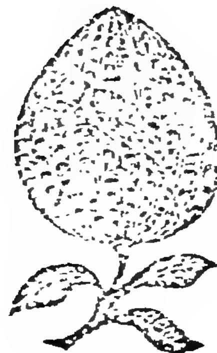
इस सूत्र के सपादन में जो कुछ पुण्य सञ्चय हुआ हो उसके फल स्वरूप भवभवान्तर में हमें आगम सेवा सुलभ हो तथा भव्य जन सम्यग् ज्ञान का लाभ प्राप्त करें यही सदिच्छा है।

समय की अल्पता और साधन की दुर्लभता से अनार्य देश आदि पर चाहते हुए भी कुछ आवश्यक विचार नहीं कर पाया। अस्तु, इसमें विवशतासे जो त्रुटि रह गई हो उनके लिये "मिच्छामि दुक्कडं" देता हूँ।

अन्तिम अभ्यर्थना है—

अशेषज्ञो नैको मतिरनिचला चंचलतरं
मनश्चात्तपज्ञाऽपरिचित समा प्राकृतगवी
नवीनो दीनोऽयं दुरधिगम जैनाऽऽगमनिधौ
त्रुटिः क्षन्तुं योग्या कृतकर पुटोवच्मिविनयात्

निवेदको मुनिव्रती
हस्तिमल्लः



# संशोधन सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों का परिचय।



१ प्रश्न व्याकरण सूत्र–अभयदेव सूरिकृत टीका–आगमोदय समिति प्रकाशित।
२ " " "–ज्ञानविमल सूरिकृत टीका–मुक्ति विमल जैन ग्रंथमाला, अहमदाबाद
३ " " "–मूल–शिलाङ्कित का–प्रतीक–आगम मन्दिर पालीताना।
४ " " "–हस्त लिखित टब्बा–प्राचीन मुनियों द्वारा लिखित।
५ अभिधान राजेन्द्र कोष–राजेन्द्र सूरि—रतलाम से प्रकाशित।
६ सृष्टिवाद और ईश्वर–भारतरत्न पं० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज
७ मनुस्मृति –भाषाटीका।
८ समवायांग –अभयदेव सूरिकृत टीका।
९ पन्नवणा –गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से प्रकाशित।
१० षट्-खंडागम –धवला टीका १।१।१–हीरालाल जैन–अमरावती प्रकाशित।
११ सूयगडांग –सटीक आगम० समिति प्रकाशित।
१२ कल्याण –महाभारत अङ्क गीता प्रेस गोरखपुर।
१३ जीवाभिगम सूत्र –सटीक–समिति से प्रकाशित।
१४ बोल संग्रह –भैरोंदानजी सेठिया–बीकानेर से प्रकाशित।



# श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र की विषयानुक्रमणिका

---

# आवश्यक निवेदन



प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन में समय की शीघ्रता तथा संशोधक की कार्यकालीन शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता के कारण त्रुटियां कुछ अधिक मात्रा में रह गयीं जिनके लिए शुद्धि पत्र ही प्रमाण है। इसके साथ ही पुरातनशीशकाक्षरानुट्टंकन दोष से भी कतिपय स्थानों में मात्रा, अनुस्वार और रेफ की त्रुटियां खटकनेवाली हैं, पाठक ऐसे प्रसंगों पर विवेक बुद्धि से काम लेंगे। उदाहरण के तौरपर मात्रा त्रुटि के आत्मरूप, छया, पक्षा, किंत, सरांश, अदि, भर्या, जल्दा, कठाण, प्ररणा, शरीरिक आदि को आत्मारूप, छाया, पक्षी, किंते, सारांश, आदि भार्या, जल्दी, कुठाण, प्रेरणा और शारीरिक समझना चाहिए, ऐसे ही अनुस्वार के सम्बन्ध में सश्रितान, मच, एव, वहुल, खडित, चचल, भाव, मूल, वश तथा चौर्य की जगह संश्रितान, मंच, एवं, वहुलं, खंडित, चंचल, भावं, मूलं, वंश तथा चौर्यं पढ़ना चाहिए। रेफ दोष से निमलैः, स्पश, गभ, प्राथनीय, पूव, सहस्रैः, धम, अथ, दृष्टि तथा आसव की जगह निर्मलैः स्पर्श, गर्भ, प्रार्थनीय, पूर्व, सहस्रैः, धर्म, अर्थ, दृष्टि तथा आस्रव समझना चाहिए। पाठक ऐसे स्थलों पर विषय स्थिति को समझ लेंगे। इसके अतिरिक्त खड्ग की जगह खड्ग तथा स्निध की जगह स्निग्ध और अकार की जगह प्रकार एवं ससान, ससाप्त की जगह समान और समाप्त तथा पराङ्ग की जगह पराङ एवं सहा की जगह महा समझेंगे।

प्रार्थी—

प्रबन्धक



# शुद्धि पत्रम्

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १ | ८ | केंर | करें |
| २ | से लेकर ४३ तक सूत्र और प्रकरण का नाम छूटा | | |
| ३ | १३ | संपडि | संपरि |
| ,, | १६ | जज्ज | अज्ज |
| ,, | २६ | संषत्तेण | संपत्तेण |
| ५ | १२ | परिणाम | परिमाण |
| ६ | १७ | प्राणि | प्राण |
| ८ | १४ | हुआ | है |
| ,, | २८ | एम | एव |
| ९ | १३ | (इमानि) | ये |
| १० | १ | मच्चू | मच्चू |
| १५ | १७ | लुधा | लुब्धा |
| १५ | २३ | शारिरिक | शारीरिक |
| १५ | २६ | ङेप | द्वेष |
| २१ | ५ | तालंयट | तालयंट |
| २२ | ५ | समूद | समूह |
| २४ | १७ | गन्धक | गन्ध |
| २४ | १८ | पाउनडर | पाउडर |
| २६ | १५ | हेसं | दुस्सहेसुय |
| २७ | २ | शौकारिका | शौकरिका |
| २९ | १ | के | से |
| ३३ | २८ | मा ञ्छकारी | रोमांचकारी |
| ३४ | २३ | लटको | लटका |
| ३५ | ८ | दोद | देहि |
| ३६ | १२ | केइत्थ | केहद्ध |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ३८ | ५ | यमाकयिका | यमकायिका |
| ३८ | २७ | सरद् | रसद्भीम |
| ३६ | १ | गग | चरुगण |
| ३६ | १५ | दना | वदना |
| ४२ | २१ | हूए | हुए |
| ४६ | २३ | फसि | फरिस |
| ५१ | ४ | अणतकलं | अनन्तकालं |
| ५५ | १५ | मप्रम्त्य | मप्रत्यय |
| ५५ | १६ | पर | परम |
| ६३ | २८ | युक्ता | युक्त |
| ६४ | ५ | भदेक | भेदक |
| ६४ | १३ | कतोपां | कपोतां |
| ६४ | १७ | हंश | हंस |
| ६५ | २३ | वदन्तिः | वदन्ति |
| ६६ | ७ | गासी | गामा |
| ६६ | ७ | लकडी | लडकी |
| ७१ | २७ | चन्त्र | मन्त्र |
| ७२ | २१ | परिज | परिजन |
| ७३ | २० | स्नवन | स्नपन |
| ७४ | ११ | जिविक | जीविक |
| ७७ | १४ | तसय | तस्सय |
| ७७ | २४ | घज्जि्या | घज्जिया |
| ७८ | ८ | भंय | भयं |
| ७८ | १३ | (त्तिवेमि) दारं | त्तिवेमि |
| ७६ | २ | विघ | वीर |
| ७६ | ३ | कथष्यि | कथयिष्यति |
| ७६ | ६ | कारक्ं | कारकं |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ७६ | ७ | दुन्रनं | दुरन्तं |
| ७६ | ७ | व्रविमी | प्रवीमि |
| ७६ | ६ | फप | फल |
| ७६ | १६ | रहीत | रहित |
| ८० | १२ | अमनो राम | अमनोरम |
| ८० | १४ | पर्यतन | पर्यन्त |
| ८० | २३ | संवन्वी | सम्बन्धी |
| ८१ | २४ | सूख | सुख |
| ८२ | १७ | दोप | दोस |
| ८२ | २१ | शंसित्तं | संश्रितम् |
| ८२ | २३ | यहुमत्तं | बहुमतम् |
| ८३ | १ | द्वितीय | तृतीय |
| ८३ | १६ | विपस | विषम |
| ८३ | २० | दाप | दोस |
| ८४ | ३ | अप्रिति | अप्रीति |
| ८४ | ३ | तस्य | तस्स |
| ८४ | ६ | लोकिक्कं | लोलिक्कं |
| ८५ | १६ | अक्खेवों | अक्खेवो |
| ८५ | २८ | अपरच्छतिविय | अपरच्छंतिविय |
| ८६ | १६ | गात्था | गत्था |
| ८६ | १६ | आवलिका | ओवीलका |
| ८६ | २१ | काए | एक |
| ८७ | ११ | स्वके | स्वके च |
| ८८ | २७ | संपता | संपउत्ता |
| ८८ | २० | अंथान् | अर्थात् |
| ८९ | ११ | विज्जुजल | विज्जुज्जल |
| ८९ | १६ | हय हामय | हय हेसिय |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ६० | २३ | निरवलं | निरवलंबं |
| ६१ | ५ | केहिं | तरकेहिं |
| ६२ | १८ | सीतकृष्ट | सीत्कृत |
| ९२ | २७ | चित ) | चिल्लत ) |
| ६३ | ३ | न्धाकार | न्धकार |
| ६३ | ७ | सागरमूर्मि | सागरमूर्मि |
| ६३ | १० | गुण्यदुच्छलत्प्रत्यावर्त | गुप्यदुच्छलत्प्रत्यावर्त |
| ६३ | २५ | ग्रह्णाति | गृह्णन्ति |
| ९४ | १० | ईव | इव |
| ६५ | ४ | मण्डलाग्र खर्ग | मण्डलाग्र -खड्ग |
| ६५ | ४ | फैं | फेंक |
| ६५ | ५ | एहु | हुए |
| ९५ | १६ | वग्गंतर तुग | वग्गंत तुरग |
| ६८ | २२ | समुद्रा | समुद्धाय |
| ६६ | ३ | निवतिन | निवतित |
| ६६ | ६ | धुग् | धुग् धुग् |
| ६६ | १७ | सायंत्रिक | सांयात्रिक |
| १०० | १ | मंडव | मडंब |
| १०० | ११ | णिक्किषा | णिक्किवा |
| १०१ | २६ | काले | वाले |
| १०२ | २ | सैनिक | सेना |
| १०३ | २४ | दंडालउर | दंडलउर |
| १०५ | ७ | सयणस्य | सयणस्स |
| १०५ | १२ | च्छलनाना | च्छलना |
| १०५ | १६ | वरंत्र | वरत्र |
| १०६ | २ | मोटितः | मोटिता |
| १०६ | १४ | धाव्यमानाः प्रेर्य | धाव्यमानाः-प्रेर्यया |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १०६ | १८ | मूर्ध्द्ध जाः | मूर्द्धजाः |
| १०७ | १८ | गलुच्छलुल्लच्छणा | गलुच्छल्लुच्छल्लणा |
| १०८ | २२ | ० | मोडना |
| १०६ | ११ | वेंतश्रो | वेंतकी |
| १०६ | २१ | ० | में |
| ११० | १३ | प्रणालि | प्रणाली |
| ११३ | १४ | वर्णण | वर्णन |
| ११५ | १ | अपत्ति | अपतिट्ठाण |
| ११६ | २३ | मुप्य | गुप्य |
| ११६ | २४ | समाहित | समाहृत |
| ११६ | २७ | वेध | वेद्य |
| ११७ | ४ | कराणा | कारणा |
| ११७ | २० | सुष्ठुपि | सुष्ठ्वपि |
| ११७ | २६ | राजः | रजः |
| ११८ | १८ | अनार्य | आर्य |
| ११६ | ७ | वंध वन्धन | वध बन्धन |
| ११६ | २० | पिवासा | पिपासा |
| ११९ | २१ | कलशे | कलश |
| १२० | ३ | ०द्य | मद्य |
| १२० | ११ | :ख | दुःख |
| १२१ | ११ | निवा | निवासं |
| १२५ | ४ | ० | एक खण्ड वाक्य छूटा है |
| १२६ | १ | तिल्लोक्क | तिलोक्क |
| १२८ | ६ | महारेग | महोरग |
| १२८ | २२ | नक्वत्त | नक्खत्त |
| १२६ | १६ | सागतं | सागरंतं |
| १२६ | २२ | च्चलण | च्चलन |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १३३ | २६ | उज्जवल | उज्ज्वल |
| १३४ | २० | ० | रस |
| १३५ | १६ | चंड | चन्द |
| १३७ | १ | ऽऽ० | ऽऽश्रम |
| १३७ | २५ | लजित | ललित |
| १३८ | १० | तृप्त | अतृप्त |
| १३८ | २४ | सास | सस्स |
| १३८ | २६ | कर्बड | कर्बट |
| १३९ | १३ | गम्भीरध्व | मधुरध्व |
| १४३ | १ | सुप | सुप्प |
| १४३ | २१ | ० | चक्रपाणिलेहा |
| १४६ | ८ | सरित्च्छ | सरिच्छ |
| १४६ | २२ | सहता | संहताऽङ्गुलीका |
| १४६ | २७ | व कनक | वर कनक |
| १४८ | १८ | पार्श्वा | पार्श्वा: |
| १५० | ६ | गति | गती |
| १५० | ११ | निरुवले | निरुवलेवा |
| १५० | २४ | झषोदरा | झषोदर |
| १६० | २६ | गधा | गवा |
| १६२ | २ | पथणिज्जं | पत्थणिज्जं |
| १७२ | २४ | भूमिनु | भूमिसु |
| १७७ | २१ | होतो हैं | होते हैं |
| १७९ | २६ | कहेगा | कहेंगे |
| १९० | २२ | कुष्ठ | कोष्ठ |
| १९० | २५ | उच्चिप्त | उत्क्षिप्त |
| १९१ | ११ | श्लेष्ममेलदी | श्लेष्म और मेलही |
| १९६ | २१ | मणुद्दिट्ठं | मणुद्दिट्ठं |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
| --- | --- | --- | --- |
| १९३ | ६ | कुह्म | कुहत्र |
| २०१ | ११ | समं | सम्मं |
| २०१ | २४ | गवेसियय्यच्चं | गवेसियव्वं |
| २०१ | टिप्पण | संत्रलिट्ठं | संकलिट्ठं |
| २०४ | २० | पापतेणं | पावतेणं |
| २०५ | १७ | र्मक | कर्म |
| २०५ | ६ | एषणाए | एसणाया |
| २०६ | २६ | वाहन | वहन |
| २ ६ | २४ | अक्खोव | अक्खो |
| २०६ | २१ | जणागु | वंजणागु |
| २०७ | १६ | अकलुप्सो | अकलुसो |
| २०८ | १७ | परिक्खणट्ठ | परिरक्खणट्ठ |
| २०९ | ७ | आमरणांतं | आमरणांतंच |
| २१२ | ९ | पद्देशकं | पथदेशकं |
| २१७ | ११ | गंधामादणाओ | गंधमादणाओ |
| २२१ | १५ | तत्थस्स | वत्थस्स |
| २२२ | ९ | कीर्तयेत् | कीर्तये व, |
| २२५ | १४ | होज | होज्ज (दो बार) |
| २२५ | २० | असंकलिट्ठो | असंकिलिट्ठ |
| २३५ | ११ | मणुष्य | मनुष्य |
| २३६ | २५ | चरेद्धर्म | चरेद्धर्मम् |
| २३६ | २० | पञ्चओ | पच्चओ |



# प्रश्नव्याकरणे प्रशस्तिश्लोकाः

आर्यावर्ते वर्तते धन्वभूमि-र्दृष्टे रम्या नैव सर्वं सहेयम् ।
धर्माऽऽधारा धार्मिकैराधृतापि सन्धत्ते तु प्रासुकी भावमुच्चैः ॥ १ ॥

अस्य क्षोणितलस्य निर्मलगुणान् संवीक्ष्य जैनो मुनि-
र्भ्राम्यन्नत्र समागतः समयतः शिष्यप्रशिष्यैर्युतः
वर्षावासमनेकमत्र शमतोऽनैषीत्स्वसङ्घौघत-
स्तस्माज्जैनजनानुगो जनपदो धन्वाभिधानोऽभ्यभूत् ॥ २ ॥

सद्धर्मोऽत्र समेधते समयते सद्धर्मशीलो जनः
स्थेमानं स्थितितोऽधितिष्ठति जने श्रामण्यभाजोऽनुगः
पार्थक्यं पृथुलं न चेज्जनपदे द्वात्रिंशता सङ्घके
स्वाधीनं जनतन्त्रशासनमियाज्जैनस्य हस्ते स्थितम् ॥३॥

श्रमणः स च योऽत्रजने सततं यतते निजसंयम शुद्धिविधौ,
तदनु प्रतिपूर्ण जिनागमतत्त्व सुबोध्यतयाऽधिगमैकनिधौ ।
व्रत पालन मात्र निमित्ततया तनुगोपनकृत्यमतिं निदधौ
मनसा वचसा वपुषा समितः श्रमणः खलुसत्यतरः श्रमणः ॥४॥

अधि धन्वधरं श्रुतकेवलिकल्पसमाः श्रमणाः कतिचित्सुबभुः
समितैरधिपालित सङ्घगणे मुनिरत्न समाह्वयमत्र दधुः ।
कति पूज्यवराः कुशलप्रमुखा व्यहरन्-जनतार्तिनिराकरणाः
अधुना खलु पूज्यवरः सुचकास्ति चरित्रचणोऽत्र गजेन्द्रमुनिः ॥५॥

पद वाक्यविधौ श्रमशीलनतोऽध्ययनं प्रतिपूर्णमवापदयं
प्रमितावयतिष्ट सदेष्ट विधावपठत्कठिनं गुरुशास्त्रचयम् ।
यतमान इहाध्ययने पदवी समियान्निज सङ्घजनावधृता
नयते नियतां श्रमणैः सहतां प्रगतौ यमसंयमतःसहिताम् ॥ ६ ॥

निजतन्त्र चयेऽपरतन्त्रतया सहजैकसुबोधविधेः सुप्रतिष्ठा,
पटुता वचने मनसो दमने प्रभुतादिगुणैर्विततऽऽगमनिष्ठा ॥
गुणतो मुनिमानस तोषणतोऽवहदेष विशेष जनेषु प्रतीतिं
श्रमणानुगतां श्रमणाभिमतां परिपालयते निजतन्त्रविभूतिम् ॥७॥

इह यत्र यदीय परिश्रमणं विहितं खलु तत्रतदीय विधानं
भवतीति जगन्ति विदन्तिततोऽधृतपूज्यवरो निजशास्त्रनिधानं
प्रथमं दशवै–पर–कालिकसूत्र मथोऽपर मङ्गल नन्द्यभिधानं
परमुन्नमदशा परिशीलनतोऽररचत् सुविशुद्धि सुबुद्धि निदानम् ॥८॥

द्वितयं तदिदं कृत चन्दनसूत्रचये खलुमुद्रणतोऽनुगृहीतं
तृतयं कठिनार्थकशब्दपुरस्सर व्याकरणं दशमाङ्गपरीतम् ।
प्रतिपूर्णपुरातन पद्धतितः प्रतिपाठमयोजयदात्मसुनिष्ठं
कथयिष्यतिजैनबुधो गुणमन्दिर सुन्दरमेतदतीवनिविष्टम् ॥९॥

अनितेन जनेन यदाचरितं जगदेतदवस्यति सर्वमपूर्वं
प्रकृतिः स्ववशैरलसाऽनलसैः प्रणिधापयते कृतिवर्गमखर्वम् ।
विरलेन नरेण निधीयत आत्मसमुन्नतितुङ्गपथेऽपि पदौघः
कुशलैरिह शुद्धमनीषिवरैर्न निधीयत आत्महितार्थमवौघः ॥ १० ॥

विरतिः समितिः शुचिगुप्तिरथोऽनुपमापरमा सुचकास्ति च यत्र,
न च दोषचये लवलेश इह प्रथते गुणशेवधिरात्मनि तत्र ।

सुसमीक्षित शास्त्र चयः स प्रतीच्यवरः स्वसमः सुशमः स्वयमेष
प्रतिपालयते निजसङ्घमतन्द्र गजेन्द्रमुनिः सुगुणैः सविशेषः ॥११॥

प्रशास्ति सङ्घमान्मधुर्य धैर्य शौर्य योगतः
प्रतीच्य हस्तिमल्ल साधुतल्लजो नियोगतः ।
प्रतीति–नीति शान्ति–कान्ति–रीति–कीर्ति–सद्धृति
व्रजैक सङ्गतिर्विराजतेऽत्र साधुता–नतिः ॥ १२ ॥

तत्पीपारपुरं सचापिजनकः श्रीकेवलेन्दुश्च सा,
धन्या मान्यगुणाऽजनिष्ट जननी रूपाऽनुरूपं सुतम् ।
ख्यातिं ख्यातगुणां सुसंयमधनां धत्ते स सत्तेजसा
निर्माना च पिपर्ति पूज्यपदवीं श्रामण्यपुण्यौजसा ।१३।

चिरञ्जीवतु जीवातुरूपः षट्काय जीवने ।
पञ्चाननायमानोऽयमार्हताऽऽगम कानने ॥ १४ ॥

पूज्यः श्रीहस्तिमल्लोऽयं महामुनि शिरोमणिः ।
समेधतां लसत्तेजा यथाराकानिशामणिः ॥१५॥

भवतोऽभ्युदयाऽऽसक्त हार्द मानसलोचनः ।
श्लोकैःपञ्चदशैर्वक्ति द्विजन्मा दुःखमोचन. ॥ १६ ॥

प्रार्थी-अभ्युदयाभिलाषी

दुःखमोचन झा, "मैथिल"

---

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

# पूर्व-खण्डम्

पंच आस्रव द्वाराणि

।गवान्! जब श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने नवमें अनुत्तरौप तक दशाङ्ग का पूर्वोक्त भाव वर्णन किया है। तब दशवें प्रश्न व्याकरण अङ्ग के, ।ण भगवान् यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर ने, क्या भाव फरमाये हैं?

---

दूसरी प्रति में निम्नलिखित पाठ अधिक मिलता है। (टीका)·

"तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नाम नगरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए, वणसंडे, ।सोगवरपायवे पुढविसिला पट्टए, तत्थणं चम्पाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था, ।ारिणी देवी, तेणं कालेणं, २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नाम ।रे जाइ-संपन्ने कुल-संपन्ने बलसंपन्ने रूवसंपन्ने विणयसंपन्ने नाणसंपन्ने दंसणसंपन्ने चरित्तसंपन्ने लज्जासंपन्ने लाघवसंपन्ने ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोभे जियनिद्दे जियइंदिए जियपरीसहे जीवियास मरणभय विप्पमुक्के तवप्प-हाणे गुणप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जाप्पहाणे मंतप्पहाणे बंभप्पहाणे वयप्पहाणे नयप्पहाणे नियमप्पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दंसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपा नगरी तेणेव उवागच्छइ, जाव अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मस्स अंतेवासी अज्जजंबू नामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहं जाव संखित्त-विपुलतेयलेस्से अज्ज सुहम्मस्स थेरस्स अदूर सामंते उड्ढं जाणू जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तएणं से अज्जजंबू जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे ३ संजायसड्ढे ३ समुप्पन्नसड्ढे ३ उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता जेणेव अज्ज सुहम्मे थेरे तेणेव उवागच्छइ २ अज्ज सुहम्मं थेरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ २ वंदइ नमंसइ, नच्चासन्ने नाइदूरे विणएणं पंजलिपुडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी-'जइणं भंते? समणेणं भग० महा० जाव संपत्तेणं णवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइय दसाणं अयमट्ठे पं० दसमस्स णं अंगस्स पण्हावागर णाणं समणेणं जावसंपत्तेणं के अट्ठे पं०? जंबू! दसमस्स अंगस्स समणेणं जाव संपत्तेणं दो सुयक्खंधा पण्णत्ता-आसवदारा य संवरदारा य, पढमस्स णं भंते? सुयक्खंधस्स समणेणं

कहूंगा, ( जो ) महेसीहिं तीर्थङ्कर गणधरों के द्वारा ( णिच्छ ) निश्चय के लिये ( सुहा-) कहे हुए अर्थ वाला है।

दूसरी प्रति में इससे पहले निम्नलिखित उपोद्घात ग्रन्थ मिलता है, उस काल में अर्थात् सुधर्मा स्वामी के समय में चम्पा नामक नगरी थी, उसमें पूर्णभद्र चैत्य, वनखंड, अशोकवरवृक्ष, और पृथ्वीशिलाका पट्ट था। उस चम्पानगरी में कौणिक नाम का राजा था, धारिणी नामकी उनकी महाराणी थी। उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी—शिष्य आर्य सुधर्म नामके स्थविर, जो जाति कुल अर्थात् मातृकुल व पितृकुल से निर्मल थे. बलवान्, सुरूप और विनयशील थे। तथा विनय, ज्ञान, दर्शन; चारित्र, लज्जा और लाघव धर्म से युक्त थे। फिर ओजस्वी तेजस्वी, वर्चस्वी एवं यशस्वी थे। क्रोध, मान, माया, लोभ और निद्रापर जिन्होंने विजय प्राप्त की थी, एवं जितेन्द्रिय, जित परीषह थे तथा जीवन की आशा और मरण के भय से भी रहित थे। तपस्या, गुण, मुक्ति, विद्या, मन्त्र, ब्रह्मचर्यव्रत, नय, नियम और सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रगुण की जिनमें प्रधानता थी, और जो चौदह पूर्वी व चार ज्ञान के धारक थे। ऐसे महा प्रभावी श्री सुधर्मा स्वामी पांचसौ साधुओं के साथ पूर्वानुपूर्वी चलते हुए एक गांव से दूसरे गांव में होते हुए, क्रमशः जहाँ चम्पा नगरी है, वहाँ पहुंचे। और साधु के योग्य अवग्रह[1] को ग्रहण कर संयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय आर्य सुधर्म स्वामी के शिष्य आर्य जम्बू नाम के मुनि, जो काश्यप गोत्री एवं सात हाथ जितने ऊँचे थे। यावत् विस्तीर्ण तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके रक्खे हुए थे। आर्य सुधर्म स्थविर के पास योग्य सीमा में ऊर्ध्व जानु आदि प्रकार से ध्यान मग्न थे। संयम व तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। किसी समय आर्य जम्बू को श्रद्धा के साथ तात्त्विक संशय एवं कुतूहल हुआ, फिर श्रद्धा, संशय और कुतूहल प्रकट तथा विकशित रूप में उत्पन्न हुए। श्रद्धा संशय व कुतूहल से युक्त वे उत्थान से उठे और उठकर जहाँ आर्य सुधर्म स्थविर थे, वहाँ आए। और आर्य सुधर्म स्थविर को तीनवार दक्षिण बाजू से प्रदक्षिणा करके वन्दन व नमस्कार किया, फिर न अतिशय समीप और न अधिक दूर इस प्रकार योग्य आसन से उचित स्थान में बैठकर विनय पूर्वक हाथ जोड़कर सेवा करते हुए इस प्रकार बोले-

1—स्थान आदि को।

( एवं ) यह राग द्वेष और संशय विपर्यय आदि दोषों से रहित होने से सुभाषितार्थ है। इस गाथा में सूत्रकारने सम्बन्ध; अभिधेय और प्रयोजन रूप तीन बातों का विचार किया है।

सम्बन्ध—'नवमें अङ्ग में ऊँचो साधुता की आराधना करने वालों के लिये अनुत्तर गति कही गई हैं और वह ऊंची साधुता, आस्रव के निरोध व संवर के पूर्ण आराधनसे प्राप्त होती है। इस लिये दशमें अङ्गमें आस्रव व संवर का वर्णन किया जाता है।

ऊपर की गाथा में कहा गया है कि आस्रव और संवर का निश्चय कराने वाले प्रवचन के सार को कहूंगा, इस प्रतिज्ञा वाक्य में पहले आस्रव का उद्देश-कथन किया है। एक सामान्य नियम है कि उद्देश के अनुसार ही निर्देश-वर्णन करना चाहिए। इस लिये यहां पहले आस्रवों पर विचार किया जाता है।

## आस्रव के परिणाम और नाम—

**गाथा—"पंच विहो पराणत्तो, जिणेहिं इह अराहओ अणादीओ**
**हिंसा मोस मदत्तं, अब्बंभ परिग्गहं चेव ॥२॥**

छाया—' पञ्चविधः प्रज्ञप्तो, जिनै-रिहास्र ( स्र ) वोऽनादिकः।
हिंसा मृषाऽदत्त-मब्रह्म परिग्रहश्चैव ॥२॥

अन्वयार्थ—" ( जणेहिं ) राग द्वेष आदि पर विजय पाने वाले श्री जिनेन्द्र देव-तीर्थङ्करोंने ( इह ) यहां-इस आगममें अथवा इस लोकमें ( अण्हो ) आस्रव ( पंच विहो ) पांच प्रकार का ( पन्नत्तो ) कहा है, जो ( अणाइओ ) अनादि याने प्रवाह रूप से सदा रहने वाला अर्थात् आदि रहित है। उसके पाँव भेद हैं जैसे-( हिंसा मोसमदत्तं ) हिंसा १ झूठ २ अदत्त का ग्रहण ३ ( चेव ) और इसी प्रकार ( अबंभ परिग्गह) अब्रह्म विषय-सेवन ४ परिग्रह ५ ये आस्रव के पांच भेद होते हैं।

विवेचन— वीत राग प्रभु ने आस्रव पाँच प्रकार का बताया है! प्रवाह रूप से इसका हर समय में सद्भाव रहता है। इसलिये सामान्य रूप से यह अनादि है। सब जीवों की अपेक्षा से इसका कभी अन्त नहीं होता है। इसलिये आस्रव को अनन्त भी समझना चाहिए। एक जीव की अपेक्षा यह अनादि सान्त और जीव राशि की अपेक्षा अनादि अनन्त है। टीका कारने अनादिक पद को ऋणातीत और

उत्तर—हे जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने दशमें अङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध कहे हैं। जैसे—आस्रव द्वार और संवर द्वार।

प्रश्न—हे पूज्य ! प्रथम श्रुतस्कन्ध के श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने कितने अध्ययन कहे हैं ?

उत्तर—हे जम्बू ! प्रथम श्रुतस्कन्ध के श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने पांच अध्ययन फरमाए हैं।

प्रश्न—हे पूज्य ! दूसरे श्रुतस्कन्ध के कितने अध्ययन हैं ?

उत्तर—इसके भी पांच अध्ययन हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव ! इन आस्रव और संवरों का श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने क्या स्वरूप कहा है ? इसके बाद जम्बू नाम के मुनि से पूछे गए स्थविर आर्य सुधर्म स्वामी जम्बू मुनि को उत्तर में इस प्रकार बोले—"जम्बू इणमो-इत्यादि।"

विवेचन--सुधर्मस्वामी कहते हैं—हे जंबू ? आस्रव और संवर का निर्णय कराने वाले इस शास्त्र को कहूंगा, जो द्वादशाङ्ग रूप जिन प्रवचन का सार है।

यहाँ आत्मरूप तालाव में जिन २ कारणों से प्राणातिपात आदि कर्म प्रवाह आता हो, उसे आस्रव समझना चाहिए।

तथा आत्मरूप तालाव में आता हुआ वही कर्म जल जिन अहिंसा आदि साधनों से रुकता हो अर्थात् जिनसे कर्म प्रवाह का प्रतिरोध हो उनको संवर कहते हैं।

कर्म बन्ध और कर्म-अवरोध के हेतुओं-कारणों को समझना ही जिन प्रवचन का सार है। क्यों कि इस शास्त्र में आस्रव और संवरों के त्याग व आसेवन का विधान किया गया है।

चरण रूप होने से वह प्रवचन का सार है। कहा गया है कि "—सामायिक से लेकर विन्दुसार, पर्यन्त श्रुत ज्ञान है। उस श्रुत ज्ञान का सार चरण-चरित्र है और चरित्र का सार मोक्ष है।

शास्त्र का अभिधेय कह कर अब प्रयोजन बताते हैं-प्रयोजन कथन,—प्र०'-प्रस्तुत शास्त्र क्यों कहते हैं?उ० "आस्रव आदि का निश्चय करने तथा कर्म बन्ध से मुक्त होने के लिये प्रस्तुत शास्त्र कहा जाता है। प्रामाणिकता दिखाते हैं—'सर्वज्ञ और तीर्थ प्रवर्तक महान् ऐसे ऋषियों से याने तीर्थङ्करों से कहा हुआ है, अतएव

( एवं ) यह राग द्वेष और संशय विपर्यय आदि दोषों से रहित होने से सुभाषितार्थ है। इस गाथा में सूत्रकारने सम्बन्ध; अभिधेय और प्रयोजन रूप तीन बातों का विचार किया है।

सम्बन्ध—'नवमें अङ्ग में ऊँचो साधुता की आराधना करने वालों के लिये अनुत्तर गति कही गई हैं और वह ऊंची साधुता, आस्रव के निरोध व संवर के पूर्ण आराधनसे प्राप्त होती है। इस लिये दशमें अङ्गमें आस्रव व संवर का वर्णन किया जाता है।

ऊपर की गाथा में कहा गया है कि आस्रव और संवर का निश्चय कराने वाले प्रवचन के सार को कहूंगा, इस प्रतिज्ञा वाक्य में पहले आस्रव का उद्देश-कथन किया है। एक सामान्य नियम है कि उद्देश के अनुसार हीं निर्देश-वर्णन करना चाहिए। इस लिये यहां पहले आस्रवों पर विचार किया जाता है।

## आस्रव के परिणाम और नाम—

**गाथा—"पंच विहो पराणत्तो, जिणेहिं इह अराहओ अणादीओ**
**हिंसा मोस मदत्तं, अब्बंभ परिग्गहं चेव ॥२॥**

छाया—' पञ्चविधः प्रज्ञप्तो, जिनै-रिहास्र ( स्र ) वोऽनादिकः।
हिंसा मृषाऽदत्त-मब्रह्म परिग्रहश्चैव ॥२॥

अन्वयार्थ—" ( जणेहिं ) राग द्वेष आदि पर विजय पाने वाले श्री जिनेन्द्र देव-तीर्थङ्करोंने ( इह ) यहां-इस आगममें अथवा इस लोकमें ( अण्हो ) आस्रव ( पंच विहो ) पांच प्रकार का ( पन्नत्तो ) कहा है, जो ( अणाइओ ) अनादि याने प्रवाह रूप से सदा रहने वाला अर्थात् आदि रहित है। उसके पाँच भेद हैं जैसे-( हिंसा मोसमदत्तं ) हिंसा १ झूठ २ अदत्त का ग्रहण ३ ( चेव ) और इसी प्रकार ( अबंभ परिग्गह) अब्रह्म विषय-सेवन ४ परिग्रह ५ ये आस्रव के पांच भेद होते हैं।

विवेचन— वीत राग प्रभु ने आस्रव पाँच प्रकार का बताया है ! प्रवाह रूप से इसका हर समय में सद्भाव रहता है। इसलिये सामान्य रूप से यह अनादि है। सब जीवों की अपेक्षा से इसका कभी अन्त नहीं होता है। इसलिये आस्रव को अनन्त भी समझना चाहिए। एक जीव की अपेक्षा यह अनादि सान्त और जीव राशि की अपेक्षा अनादि अनन्त है। टीका कारने अनादिक पद को ऋणातीत और

अणादि रूप से भी माना है। उन्होंने अण पद का अर्थ पाप किया हैं और मिथ्यात्व आदि पाप आस्रव का आदि कारण है इसलिये आस्रव को अणादि भी कहा है। हिंसा १ झूठ २ चोरो ३ मैथुन ४ और परिग्रह ५ ये पांच भेद आस्रव के हैं। दूसरी जगह आस्रव के ४२ भेद भी किये हैं जो पांच इन्द्रिय ४ कषाय ५ अविरति-हिंसा झूठ आदि, २५ क्रिया और तीन योग मिलकर ४२ होते हैं।

आस्रव का स्वरूप और उसके हिंसा आदि पांच प्रकारों का वर्णन किया गया, अब पांचों आस्रवोंको क्रमशः वर्णन करने की इच्छा से शास्त्रकार प्रथम प्राणातिपात आस्रव को कहते हैं।

हर एक आस्रव द्वार पर कैसा १ क्या नाम २ और किस प्रकार किया जाता तथा क्या फल देता है ३-४, और कौन उसको करते हैं ? ५, इस प्रकार पाँच बातों का विचार किया गया है। इन में से प्राणातिपात का पांच प्रकार से वर्णन करने के लिये सूत्रकार कहते हैं:—

मूल-'१ जारिसओ २जंनामा ३जह य कओ ४जारिसं फलं देंति।
५ जेविय करेंति पावा, पाणवहं तं निसामेह ॥३॥

छया—यादृशको यन्नामा, यथा च कृतो यादृशं फलं ददाति।
येऽपिच कुर्वन्ति पापाः, प्राणवधं तं निशामयत ॥३॥

अन्व—"प्राणिवध रूप पहला आस्रव (जारिस ओ) जैसा है (जंनामा) जिस नाम वाला है और प्राणिओं के द्वारा (जहय कओ) जिस प्रकार किया गया है (जारिसं फलं देंति) दुर्गति में गिराने रूप जैसे वह फल को देता है (य) और (जेविकरेंतिपावा) जो भी पापी जीव उसको करते हैं (तं पाणवहं) उस हिंसा रूप आस्रव को हे शिष्य ? तुम सब श्रवण करो ॥३॥

वि०—"सुधर्म स्वामी महाराज अपने शिष्य जंबू से कहते हैं कि हिंसा रूप प्रथम आस्रव द्वार कैसा है ? उसके क्या नाम हैं ? और किस प्रकार वह किया जाता है दुर्गतिरूप कैसा कटुफल देता है, तथा कैसे लोग उसको करते हैं, यह सब मैं कहूंगा हे शिष्य तुम उसको सुनो।

एक नियम है कि तत्त्वभेद व पर्यायों से व्याख्या होती है। इसके अनुसार यादृशक, इस पद से यहाँ हिंसा के स्वरूप याने तत्त्व को कहने की प्रतिज्ञा की गई और 'यन्नामा, इस पद से पर्यायों का व्याख्यान किया गया है, बांकी के तीन द्वारों से

आस्रव के भेद बताये गये हैं, इस प्रकार आस्रव प्रवृत्तिकर्ता, क्रिया और करण व फल आदि के भेद से पांच प्रकार की कही गई है।

उपरोक्त पांच विषयों में से प्रथम प्राणिवध-हिंसा का स्वरूप कहते हैं—

**मूल—"पाणवहो नाम एस निच्चं जिणेहिं भणिओ—"पावो चंडो रुद्दो खुद्दो साहसिओ अणारिओ णिग्घिणो णिस्संसो महब्भओ पइभओ १० अतिभओ बीहणओ तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो णिप्पिवासो णिक्कलुणो णिरयवासगमणनिधणो २० मोहमहब्भय पयट्टओ, मरणावेमणस्सो २२ ॥ पढमं अधम्म-दारं ॥ ( सू० १ )**

छाया—"प्राणवधोनाम एष नित्यं जिनैर्भणितः-पापः, चण्डः, रुद्रः, क्षुद्रः, साहसिकः, अनार्यः, निर्घृणः; नृशंसः; महाभयः, प्रतिभयः, १० अतिभयः, भापनकः, त्रासनकः, अन्याय्यः, उद्वेजनकश्च, निरपेक्षः; निर्द्धर्मः; निष्पिपासः, निष्करुणः निरयवासगमननिधनः, २०मोहमहाभय प्रवर्तकः; मरणवैमनस्यः ॥ प्रथममधर्म-द्वारम् ॥ ॥ सू० १ ॥

अन्वयार्थ—( पाणवहोनाम ) प्राण बध याने हिंसा नामका ( एस ) यह प्रत्यक्ष कहा जाने वाला आस्रव ( जिणेहिं ) तीर्थङ्करों ने ( निच्चं ) सदा नीचे के विशेषणों से युक्त ( भणिओ ) कहा है,—( पावो ) पाप कर्म के बन्ध का कारण होने से यह पाप है ( चंडो ) कषाय से उद्धत बने हुए प्राणियों से किया जाता है, इसलिये चण्ड है, ( रुद्दो ) हिंसा करते समय मनुष्य रौद्ररस में लीन होता है अतः रौद्र है, ( खुद्दो ) आत्मिक भाव की अपेक्षा नीच होने से और नीच, ज्ञान से तथा दुष्ट प्राणियों से सेवित होने के कारण यह क्षुद्र है, ( साहसिओ ) हिंसा करते समय प्राणी अच्छे बुरे का भाव छोडकर दुस्साहसी होता है, इसलिए हिंसा साहसिक है, ( अणारिओ ) पाप रहित कर्म को आर्य कहते हैं, उससे विपरीत होने से अथवा अनार्य लोकों से की गई होने से हिंसा अनार्य, है ( णिग्घिणो ) हिंसा करते समय पाप से घृणा-दुर्भावना नहीं होती इसलिये यह 'निर्घृण; है, ( णिस्संसो ) निर्दयता का कार्य होने से अथवा प्रशंसा करने योग्य नहीं होने से हिंसा 'नृशंस' है, ( महब्भओ ) बडे भय का कारण होने से यह ( भयङ्कर ) 'महाभय' है, ( पइभओ ) प्रत्येक प्राणी से हिंसक को भय रहता है, अतएव हिंसा को 'प्रतिभय' कहते हैं, ( अइभओ )

हिंसा के समय हिंसक इस लोक व परलोक के भय को भूल जाता है इसलिये हिंसा 'अतिभय' भयको भुलाने वाली है ( वीहणओ ) प्राणों को हिंसा भयभीत करने वाली है ( तासणओ ) दूसरे को कम्प व मन में क्षोभ पैदा करने से यह हिंसा 'त्रासनक, है, ( अणज्जो ) हिंसा न्याय युक्त नहीं होने से 'अन्याय्य कहाती है. ( उव्वेयणओ ) चित्तमें उद्वेग को करने वाली है ( य ) और ( निरवयक्खो ) हिंसा में दूसरे के प्राणों की व परलोक की अपेक्षा नहीं रहने पाती वास्ते हिंसा 'निरपेक्ष है। ( निधम्मो ) श्रुत व चारित्र धर्म से हिंसा बहिर्भूत है, अर्थात् धर्म शून्य है, ( निप्पिवासो ) दूसरों के जीवन की प्यास इच्छा नहीं होने से 'निष्पिपास, है,( निक्कलुणो ) करुणाभाव के चले जाने से हिंसा 'निष्करुण, है, ( निरयवास गमण-निघणो ) नरक वास में जाने के आखिर परिणाम वाली हिंसा है, ( मोहमहब्भयपयट्टओ ) मोह-मूर्खता ओर वडे भय को प्रवृत्त करने वाली तथा अज्ञान व भय को वढाने वाली भी हिंसा है, ( मरणावेमणस्सो ) मरण के द्वारा यह जीवों की दीनता का कारण होती है॥

( पढमं अहम्मदारं ) यह प्राण वध रूप पहला आस्रव अधर्म द्वार हुआ।

भाव—यहाँ प्राणातिपात को पाप चंड रौद्र आदि २२ विशेषणों से वताया गया है; यह नरक गति का कारण और भय व अज्ञान को बढाने वाला है।

मृत्यु के द्वारा यह प्राणिओं को दीन बना देता है दूसरे द्वार में प्राण वध के नाम कहते हैं—इस प्रकार प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण हुआ।

**मूल–"तस्सय नामाणि इमाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा–पाणवहो १ उम्मूलणा सरीराओ २ अवीसंभो ३ हिंस विहिंसा ४ तहा अकिच्चं च ५ घायणा ६ मारणा य ७ वहणा ८ उद्दवणा ६ तिवायणा य १० आरंभ–समारंभो ११ आउय कम्मस्सुवद्दवो, भेयणिट्ठवण गालणा य संवट्टग संखेवो १२ मच्चू १३ असंजमो १४ कडगमद्दणं १५ वोरमणं १६ परभव संकाम कारओ १७ दुग्गतिप्पवाओ १८ पावकोवो य १६ पावलोभो २० छविच्छेओ २१ जीवियंतकरणो २२ भयंकरो २३ अणकरो य २४ वज्जो २५ परितावण अण्हओ २६ विणासो २७ निज्जवणा २८ लुंपणा २६ गुणाणं विराहणात्ति ३० विय, तस्स एवमादीणि**

णामधेज्जाणि होंति तीसं पाणवहस्स कलुसस्स कडुय फल-देसगाइं ॥ सू० २ ॥

छाया-'तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत् । तद्यथा-"प्राणवधः १ उन्मूलना शरीरात् २ अविश्रम्भः ३ हिंस्य-विहिंसा ४ तथा अकृत्यंच ५ घातना ६ मारणा च ७ हननम् ८ उपद्रवणम् ९ त्रिपातनाच १० आरम्भ समारम्भः ११ आयुः कर्मणउपद्रवो, भेद-निष्ठापन-गालना च संवर्तकसंक्षेपः १२ मृत्युः १३ असंयमः १४ कटक मर्दनम् १५ व्युपरमणम् १६ पर भव-संक्रमकारकः १७ दुर्गति प्रपातः १८ पाप--कोपश्च १९ पाप लोभः २० छवि च्छेदः २१ जीवितान्त करणः २२ भयङ्करः २३ ऋण करश्च २४ वर्ज्यः २५ परितापनास्रवः २६ विनाशः २७ निर्यापना २८ लोपना २९ गुणानां विराधना ३० इत्यपिच, तस्यैवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् प्राणवधस्य कलुषस्य कटु-फल देशकानि ( सू०२ )

अन्व-"( तस्सय ) और पूर्वोक्त स्वरूप वाले उस प्राण वध के ( नामाणि ) नाम ( इमाणि ) ( गोण्णाणि ) गुणों से होने वाले ( तीसं ) तीस ( होंति )हो ते हैं, ( तंजहा ) जैसे कि वे-( पाणवहं ) प्राणों का हनन होने से इसको प्राण वध कहते हैं ( उम्मूलणा सरीराओ ) जीव को शरीर से अलग कर देने से इसको उन्मूलन कहते हैं ( अवीसंभो ) अविश्वास का कारण होने से इसे अविश्रम्भ कहते हैं, ( य आरंभ समारंभो ) और जोवों का उप मर्द होने से अथवा पीडा पहुंचाने के साथ जीवों को मारने से इस को 'आरंभ समारंभ कहते हैं' । ( हिंस विहिंसा ) जीवों की हिंसा अथवा प्रमादी जीवों से विशेष रूप में होने के कारण इसे हिंसविहिंसा कहते हैं, ( तहा अकिच्चं ) इसी प्रकार नहीं करने योग्य होने से यह अकृत्य है ( च घायणा ) और प्राणों की घात करने से इसे घातना, व ( मारणा ) मरण उत्पन्न करने से 'मारणा' कहते हैं ( य वहणा ) और हनन करने से इसको 'वधन' भी कहते हैं ( उद्दवणा ) दूसरे को दुख. पहुँचाने के कारण इसको 'उपद्रवणा' कहते हैं, ( तिवायणा ) मन वाणी और कायका अथवा देह आयु और इन्द्रिय रूप प्राणों से जोव का पतन कराने से इसको 'त्रिपातना' कहते हैं ( आउय कम्मस्सुवद्दवोभेयणिट्ठवण. गालणाय संवट्टग संखेवो ) आयु कर्म का उपद्रव, या उसी का भेद या उस आयु का अन्त करना और आयु को गालना; खुटाना व आयु को संक्षेप करना इन में एक कोई या सब मिलकर प्राणि वध का

एक नाम होता है । क्योंकि आयु का छेदन करना सब में समान है । ( मच्चू ) मृत्यु ( असंजसो ) संयम भाव से हिंसा नहीं होती वास्ते इस को 'असंयम' कहा है ( कटगमद्दणं ) सैन्य की तरह आक्रमण करके प्राण वध किया जाता है, इसलिये इसको कटक मर्दन भी कहते हैं. ( वोरमणं ) प्राणों से जीव को अलग करने के कारण यह व्युपरमण कहाता है, ( परभव संकामकारओ ) प्राण से छूट जाने पर ही जीव का पर भव में सक्रमण होता है, इसलिये इस को परभव में संक्रमण कराने वाला कहा गया है ( दुग्गति प्पवाओ ) प्राणवध के कारण जीव दुर्गति में पडता है इसलिये 'दुर्गति प्रपात; कहते हैं ( पावकोवो य ) और पाप कर्म को बढाने वाला व उत्तेजित करने के कारण यह 'पाप कोप' कहाता है । ( पावलोभो ) प्राणिओं को पाप में लुभाता है इसलिये इसको 'पाप लोभ; कहते हैं, ( छविच्छेओ) हिंसा में वर्तमान शरीर का छेदन होता है इसलिये इसको 'छविच्छेद' भी कहते हैं, ( जीवियंतकरणो ) जीवन का अन्त करने से वह 'जीवितान्त करण' कहाता है ( भयंकरो ) भय उत्पन्न करने वाला है (अणकरोय) ऋणकर याने पाप रूप ऋण-कर्ज को करने वाला है ( वज्जो ) जीव को भारी बनाकर अधोगति-नीच गति में ले जाने के कारण प्राणिवध को 'वज्र कहते हैं' विवेकिओं से वर्जित होने के कारण 'वर्ज्य' भी कहते हैं, पाठान्तर की अपेक्षा सावद्य नाम भी होता है ( परितावण अण्हओ ) इसको परितापनास्रव भी कहते हैं ( विणासो ) प्राणों को नष्ट कर देने से इसको 'विनाश कहते हैं ( निज्जवणा ) प्राणों के जाने में प्रेरक होने से इसको 'निर्यापना' भी कहते हैं ( लुंपणा ) प्राणों के लोप करने से इसे 'लुम्पना' कहते हैं ( गुणाणं विराहणत्ति ) मरने व मारने वालों के गुणों का विघातक होने से हिंसा को गुणों का विराधक भी कहते हैं ( विय, तस्स कलुसस्स पाणवहस्स ) इस प्रकार उस मलिन कर्म रूप प्राण वध के ( एवमादिणि णामधेज्जाणि ) इत्यादिक नाम ( तीसं ) तीस ( होंति ) होते हैं, जो ( कडुयफलदेसगाइं ) कटु फल को देने वाले हैं ॥ सू० २ ॥

भाव—'प्राणवध के गुण सम्पन्न तीस नाम होते हैं, जैसे-प्राणवध, १, उन्मूलना २; अविश्रम्भ ३, हिंस ( स्य ) विहिंसा ४, अकृत्य ५, घातना ६, मारणा ७, वध ८, उपद्रवण ९; त्रिपातना १०, आरम्भ समारम्भ ११, आयुः कर्म-उपद्रव, भेद अन्त या गालन, संवर्तन अथवा संक्षेप करण १२, मृत्यु १३; असंयम १४; कटक

मर्दन १५, व्युपरमण १६ परभव संक्रम कारक १७ दुर्गति प्रपात १८ पापकोप १९ पाप लोभ २० छविच्छेद २१ जीवितान्तकरण २२ भयङ्कर २३ ऋणकर २४ वज्र वा वर्ज्य २५ परितापनास्रव २६ विनाश २७ निर्यापना २८ लुम्पना २९ और गुणों की विराधना ३० इस प्रकार इस पाप रूप प्राण वध के कटुफल बताने वाले तीस[1] नाम कहे गए हैं ॥ सू० २ ॥

## प्राण वध के कारण व प्रयोजन—

सूत्र ३ रा

**मूल—तंच पुण करेंति केई पावा असंजया अविरया अणिहुय परिणाम दुप्पयोगी पाणवहं भयंकरं बहुविहं बहुप्पगारं परदुक्खुप्पायणप्पसत्ता, इमेहिं तसथावरेहिं जीवेहिं पडिनिविट्ठा; किंते ? पाठीण, तिमि, तिमिंगिल-अणेगझस-विविह जाति मंडुक्क-दुविहकच्छभ-णक्क-मगर-दुविह गाहा-दिलि वेढय मंडुय-सीमागार पुलुय सुंसुमार बहुप्पगार जलयर विहाणाकते य एवमादी। कुरंग-रुरु-सरभ-चमर-संबर-उरब्भ-ससय-पसय-गोण रोहिय-हय-गय-खर-करभ-खग्ग-वानर-गवय-विग— सियाल कोल-मज्जार कोल सुणक-सिरियंदल गावत्त-कोकंतिय-गोकण्ण मिय-महिस-विग्घ-छगल—दीविया—साण-तरच्छ-अच्छभल्ल सद्दूल-सीह-चिल्लल-चउप्पय-विहाणाकए य एवमादी। अयगर गोणस-वराहि—मउलिका-उदरदब्भ—पुप्फयासालिय-महोरगोरग-विहाणक कए य एवमादी। छीरल-सरंव-सेह—सेलग गोधुंदर णउल-सरड-जाहग-मुगुंस-खाडहिल—वाउप्पइय-घीरोलिय सिरीसिवगणे य एवमादी। कादंबक-बक-बलाका सारस आडासेतीय-कुलल-वंजुलपारिप्पव—कीव- सउण—पिपीलिय दीविय हंस-धत्तरिट्ठग-भास-कुली कोस कुंच-दगतुंड-ढेणियालग**

---

१—उपरोक्त तीस नाम के अलावे भी प्राणातिपात, हिंसा आदि प्राणवध के नाम हो सकते हैं, किन्तु यहां सामान्य रूप से उदाहरण के तौरीके कुछ नाम गिनाए गये हैं, मूल का एवमादि शब्द भी अन्य नामों की सूचना देता है।

सूईमुह-कविल-पिङ्गलक्खग-कारंडग-चक्कवाग-उक्कोस-गरुल पिंगुल-सुय-बरहिण-मयणसाल-नंदीमुह-नंदमाणग-कोरंग भिंगारग-कोणालग-जीवजीवक-तित्तिर-वट्टक-लावक-कपिंजलक कवोतककाग-पारेवयग-चिडिग-ढिंक-कुक्कुड-वेसर-मयूरग चउरग-हय-पोंडरीय-सालग-करक-वीरल्ल-सेणावायसा य विहंग भिणासि-चास-वग्गुलि-चम्मट्ठिल-विततपक्खि-खहयर विहाणाकते य एवमादी। जल थल खग चारिणो उ पंचिंदिए पसुगणे विय तिय चउरिंदिए य विविहे जीवे, पियजीविए, मरणदुक्ख पडिकूले वराए हणंति बहुसंकिलिट्ठकम्मा। इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं किंते? चम्म वसा-मंस-मेय-सोणिय-जग-फिप्फिस मत्थुलिंग हितयंत पित्त-फोफस दंतट्ठा, अट्ठि मिंज-नह-नयण कण्णण्हारुणि-नक्क-धमणि-सिंग-दाढि-पिच्छ-विस-विसाण वालहेउं, हिंसंति य भमर मधुकरिगणे रसेसु गिद्धा, तहेव तेंदिए सरीरोवकरणट्ठयाए, किवणे बेंदिए बहवे वत्थोहरपरिमंडणट्ठा, अण्णेहि य एवमाइएहिं बहूहिं कारणसतेहिं अबुहा इह हिंसंति तसे पाणे, इमे य एगिंदिए बहवे वराए तसे य अण्णे तदस्सिए चेव तणुसरीरे समारंभंति अत्ताणे असरणे अणाहे अबंधवे कम्मनिगलबद्धे अकुसल परिणाम मंदबुद्धिजण दुव्विजाणए, पुढविमये पुढविसंसिए, जलमए जलगए, अणलाणिल तणवणस्सति गण निस्सिए य तम्मय तज्जिते चेव तदाहारे तप्परिणत-वण्ण-गंध-रस-फास बोंदिरूवे-अचक्खुसे चक्खुसे य तसकाइए असंखे, थावरकाए य सुहुम-बायर-पत्तेय-सरीर नाम साधारणे अणंते हणंति अविजाणओ य परिजाणओ य जीवे इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं, किंते? करिसण-पोक्खरणी वावि वप्पिणि कूव-सर-तलाग-चिति-वेतिय-खातिय-आराम-विहार थूभ-पागार-दार-गोउर-अट्टालग-चरिया-सेतु-संकम-पासाय विकप्प-भवण-घर-सरण-लेण-आवण-चेतिय-देवकुल-चित्त-सभा पवा-आयतणावसह-भूमिघर-मंडवाण य कए, भायण भंडो

वगरणस्स विविहस्स य अट्ठाए, पुढविं हिंसंति मंदबुद्धिया, जलं च मज्जणय पाण भोयण वत्थ धोवण सोयमादिएहिं, पयण पयावण जलावण विदंसणेहिं अगणिं, सुप्प वियण तालयंट पेहुण मुह करयल सागपत्त वत्थमादिएहिं अणिलं, अगार परिवा (या) र—भक्खभोयण—सयणासण—फलग—मुसल-उक्खल-तत-वितता तोज्ज-वहण-वाहण-मंडव-विविह भवण-तोरणा-विडंग-देवकुल जालयद्ध चंद-निज्जूग-चंद सालिय-वेतिय—णिस्सेणि—दोणि-चंगेरि-खील -मेढक-सभा-पवा—वसह-गंध-मल्ल णुलेवणंवर-जुय-नंगल-मइय-कुलिय- संदण-सीया—रह—सगड—जाण—जोग्ग- अट्टालग—चरिअ—दार गोपुर-फलिहा—जंत-सूलिय—लउड— मुसंढि- सतग्घि- बहु पहरणावरणुवक्खराण कते, अण्णेहि य एवमादिएहिं बहुहिं कारणसतेहिं हिंसंति ते तरुगणे, भणिता एवमादी सत्ते सत्त-परिवज्जिया उवहणंति, दढमूढा दारुणमती कोहा, माणा, माया, लोभा, हस्सरती, अरती, सोयवेदत्थी, जीयकाम्मत्थधम्महेउं, सवसा, अवसा, अट्ठा अणट्ठाए य तसपाणे थावरे य हिंसंति मंदबुद्धी, सवसा हणंति, अवसा हणंति, सवसा अवसा दुहओ हणंति, अट्ठाहणंति, अणट्ठाहणंति, अट्ठा अणट्ठा दुहओ हणंति, हस्सा हणंति, वेरा हणंति, रती य हणंति, हस्सवेरारती य हणंति, कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति, कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणंति, अत्था हणंति, धम्मा हणंति, कामा हणंति, अत्था धम्मा कामा हणंति ॥ सू० ३ ॥

छाया—'तं च पुनः कुर्वन्ति के चित्पापा असंयता अविरता अनिभृत परिणाम-दुष्प्रयोगाः प्राणवधं भयङ्करं बहुविधं बहुप्रकारं परदुःखोत्पादनप्रसक्ताः, एतेषु त्रसस्थावरेषु जीवेषु प्रतिनिविष्टाः; के ते त्रसस्थावराः ? पाठीन तिमि तिमिङ्गिलाऽनेक-झष विविधजाति मण्डूक—द्विविध कच्छप नक्र मकर द्विविध ग्राह दिलिवेष्टक मन्दुक सीमाकार पुलक सुंसुमार बहु प्रकारान् जलचर विधान कृतांश्च एवमादीन् कुरङ्ग रुरु सरभ-चमर-सम्बरोरभ्र-शशक—प्रशय-गोणस-रोहित हय-गज

खर-करभ-खङ्ग-वानर--गवय-वृक-शृगाल-कोल-मार्जार क्रोडशुनक श्रीकन्दल-कावर्त-कोकन्तिक-गोकर्ण-मृग-महिष-व्याघ्र-छगल-द्वीपिक-श्वान-तरक्षाऽच्छभल्ल-शार्दूल-सिंह चित्तल-चतुष्पद-विधान कृतांश्चैवमादीन्, अजगर-गोणस वराहि-मुकलि-काकोदर दर्भपुष्पाऽऽसालिक-महोरगोरग-विधानकृतांश्चैवमादीन् क्षीरल-शरम्ब-सेह-शल्यक गोधोन्दुर-नकुल-शरट-जाहक-मुगुंस-खाडहिला-वातोत्पत्तिका-गृहकोकिलिका-सरीसृपगणांश्चैवमादीन्; कादम्बक-बक--बलाका- सारस-आडासेतीका-कुलल-वंजुल पारिप्लव-कीव-शकुन-दीपिक पिपीलिका हंस-धार्तराष्ट्रक-भास-कुटीक्रोश क्रौञ्च दकतुण्ड ढेणिकालक सूचीमुख कपिल पिङ्गलाक्षक कारण्डक चक्रवाक उत्क्रोश गरुड पिङ्गुल शुक बर्हि मदनशाल नन्दीमुख नन्दमानक कोरङ्ग भृङ्गारक कोणालक जीवजीवक तित्तिर वर्तक लावक कपिञ्जलक कपोतक पारापतक चिटिका ढिङ्क कुकुंट वेसर मयूरक चकोरक हृदपुण्डरीक करक चीरल्ल श्येन वायस विहङ्ग भेनाशित चाष वल्गुली चर्मास्थिल विततपक्षिणः खचरविधानककृतांश्चैवमादीन्, जलस्थलखचारिणश्च पञ्चेन्द्रियान् पशुगणान् द्वित्रिचतुरिन्द्रियान् विविधान् जीवान् प्रियजीवितान् मरण दुःख प्रतिकूलान् वराकान् घ्नन्ति बहुसंक्लिष्टकर्माण एभिर्विविधैः कारणैः किन्तत् ? चर्म वसा-मांस-मेद-शोणित-यकृत्-फिप्फिस-मस्तुलिङ्ग-हृदयान्त्र-पित्त-फोफस दन्ताऽर्थम्, अस्थि मज्ज नख नयन कर्ण स्नायु नासिका-धमनी शृङ्ग-दंष्ट्रा-पिच्छ-विष-विषाण-वाल-हेतु । हिंसन्ति च भ्रमर मधुकरी गणान् रसेषु गृद्धाः । तथैव त्रीन्द्रियान् शरीरोपकरणार्थम् ! कृपणान् द्वीन्द्रियान् बहून् वस्त्रोपगृहपरिमण्डनार्थम् । अन्यैश्चैवमादिभिर्बहुभिः कारण शतैरबुधा इह हिंसन्ति त्रसान् प्राणान्, इमांश्चैकेन्द्रियान् बहून् वराकानत्रसांश्चान्यान् तदाश्रितांश्च तनुशरीरान् समारभन्तेऽत्राणान् अशरणान् अनाथानबान्धवान् कर्मनिगडबद्धान् अकुशलपरिणाममन्दबुद्धिजनदुर्विज्ञेयान् पृथ्वीमयान् पृथ्वीसंश्रितान्-जलमयान् जलगतान् अनलाऽनिलतृणवनस्पतिगणनिसृतांश्च, तन्मयतज्जीवान्-चैव तदाधारान् तत्परिणत-वर्ण-गन्ध रस स्पर्श बोन्दिरूपान्, अचाक्षुपान् चाक्षुषांश्च त्रसकायिकान् असंख्यान्, स्थावरकायान् सूक्ष्मबादर प्रत्येकशरीरनामसाधारणान् अनन्तान् घ्नन्ति, अविजानतश्च परिजानतश्च जीवान्, एतैर्विविधैः कारणैः, किन्तत् ? कर्षण पुष्करिणी वापी वप्रिणी ( केदार ) कूप सरस्तडाग-चिति-वेदिका-खातिकाऽऽराम-विहार स्तूप प्राकार द्वार गोपुराऽट्टालिका चरिका-सेतु-संक्रम-प्रासाद-विकल्प-भवन-गृह-शरण-लयनाऽऽपण चैत्य देवकुल चित्र

सभा प्रपाऽऽयतनाऽऽवसथ-भूमिगृह—मण्डपानाञ्च कृते, भाजन भाण्डोपकरणस्य विविधस्य चाऽर्थाय पृथिवीं हिंसन्ति मन्दबुद्धयः ! जलं च सञ्जन पान भोजन वस्त्र धावन शौचादिभिः, पचन-पाचन-ज्वालन-विदर्शनैश्चाग्निम्, शूर्प व्यजन तालवृन्त पेहुनं ( मयूरपिच्छ ) मुख करतल सर्ग शाकपत्र वस्त्रादिभिरनिलम्, आगार परिचार भक्ष्य-भोजन शयनाऽऽसन-फलक-मुसलोदूखल तत वितताताेद्य वहन वाहन मण्डप विविध-भवन-तोरण विटङ्क-देवकुल-जालकाऽर्द्धचन्द्र-निर्यूहक-चन्द्रशालिका-वेदिका निःश्रेणि-द्रोणी-चङ्गेरी-कोल-मेठक ( मुण्डक ) सभा-प्रपाऽऽवसथ-गन्धमाल्यानुलेपनाऽम्बर यूपलाङ्गल-मतिक-कुलिक-स्यन्दन-शिविका-रथ-शकट-यान—युग्याट्टालक चरिका-द्वार—गोपुर-परिघा-यन्त्र—शूलिका-लकुट ( लगुड ) मुशुण्डी ( भुशुण्डी ) शतघ्नी बहुप्रहरणाऽऽवरणोपकरणानां ( स्करणानां ) कृते, अन्यैश्च वमादिकैर्बहुभिः कारणशतैर्हिंसन्ति ते तरुगणान् भणितान् एवमादीन् सत्त्वान् सत्त्वपरिवर्जितान् उपघ्नन्ति, दृढा मूढा दारुणमतयः क्रोधान्मानान्मायया लोभाद्-हास्य रत्यरति शोक वेदार्थाः, जीव ( जीत ) कामार्थ धर्महेतोः स्ववशा, अवशा, अर्थाय अनर्थायच त्रसप्राणान् स्थावरांश्च हिंसन्ति मन्दबुद्धयः, स्ववशा घ्नन्ति, अवशा घ्नन्ति, स्ववशा अवशाश्च द्विधा घ्नन्ति अर्थाय घ्नन्ति, अनर्थाय घ्नन्ति अर्थाय अनर्थाय द्विधा घ्नन्ति, हास्याय घ्नन्ति, वैराय घ्नन्ति, रतये घ्नन्ति, हास्यवैररतिभ्यो घ्नन्ति, क्रुद्धा घ्नन्ति, लुब्धा घ्नन्ति मुग्धा घ्नन्ति, क्रुद्धा लुब्धा मुग्धा, घ्नति अर्थाय घ्नन्ति, धर्माय घ्नन्ति कामाय घ्नन्ति, अर्थ धर्म कामेभ्यो घ्नन्ति ॥ सू० ३ ॥

अन्वयार्थ—“ ( तंचपुणो ) और फिर उस प्राणवधको (करेंति) करते हैं ,केई) कितनेही जीव जो ( पावा ) पापी ( असंजया ) व असंयम शील हैं ( अविरया ) पापसे अलग नहीं हुए या सत् क्रिया में नहीं लगे हैं ( अणिहुय परिणाम दुप्पओगो ) अशान्त परिणाम वाले और मन वाणी व शरीर के अशुभ व्यापार वाले हैं (भयंकर) भयङ्कर और ( वहुविहं , शारिरिक मानसिक आदि बहुत प्रकार वाले ( पाणवहं ) प्राणवध को ( वहुप्पगारं ) बहुत-कई तरह से 'करते हैं' ( परदुक्खुप्पायणप्पसत्ता ) वे दूसरे को दुःख उत्पन्न करने में तत्पर तथा ( इमेहिं तसथावरेहिं जीवेहिं पडिणिविट्ठा ) इन आगे कहे जानेवाले त्रसस्थावर जीवों में अप्री ति द्वेष रखनेवाले हैं ( किंते ) कौन जीव मारे जाते हैं या प्राणवध किसप्रकार किया जाताहै ? मारे जाने योग्य जीवों के प्रकार— ( पाठीन तिमि तिमिंगिल ) पाठीन मत्स्यविशेष, तिमि व तिमिङ्गिल ये दो महामत्स्य हैं ( अणेग झस विविह जाति मंडुक्क ) विविध मत्स्य

छोटे मत्स्य खलमत्स्य युगमत्स्य आदि, विविध जाति के मेंढक ( दुविहकच्छभ ) दो प्रकार के कच्छप-मांसकच्छप और अस्थिकच्छप ( णक्क मगर दुविह गाहा ) नक्र, मकर-मगर-सुंडामगर वमत्स्य मगर के भेद से दो तरह के होते हैं; । ग्राह जलजन्तु विशेष ( दिलि वेढय मंदुय सीमागार पुलुय ) दिलिवेष्ट मन्दुक, सीमाकार, और पुलक ये सब ग्राहके भेद हैं ( सुंसुमार बहुप्पगारा जलयर विहाणा कते ) सुंसुमार, और अनेक प्रकार के जलचर के भेदों को करने वाले ( एवमादी ) इसप्रकार के पाठीन आदि जीवों को, तथा ( कुरंग-रुरु-सरभ-चमर-संवर दुरब्भ-ससय-पसय-गोणस रोहिय-, मृग रुरु-मृगविशेष सरभ-बड़ी देह वाले जंगली पशुविशेष जो परासर नाम से भी कहे जाते हैं और वे हाथी को भी पीठपर उठा लेते हैं, चमर चमरी गाय, संवर-सांभर, उरभ्र-मेष-ऊनवाले भेड मेढरू, शशा, प्रशय-दो खुर वाले जंगली पशुओं का भेद, गोण-गायें, रोहित-चौपाए जन्तु विशेष ( हय गय खर करभ खग्ग बानर गवय विग सियाल-) घोडा, हाथो, गधा, ऊंट, खड्ग-इसके दोनों बाजू पांख की तरह चमड़े लटकते हैं और शिर पर एक सींग होता है; बानर, गवय-नीलीगाय या रोज, वृक-हिंसक जीव, शृगाल-सियाल, और ( कोलमज्जार कोल सुणग सिरियं दलगावत्त कोकंतिय गोकण्ण मिय महिस विग्ध छगल दीविया साण तरच्छ अच्छ भल्ल सद्ल सीह चिल्लल चउप्पय विहाणाकए) कोल उंदिर जैसा जन्तु, मार्जार, कोल सुणग बडा सूअर, अथवा कोड सूअर और शुनक-कुत्ता श्रीकन्दलक आवर्तक ये दोनों एक खुर वाले जन्तु हैं, कोकंतिक लोमडी अथवा कौ कौ करके रात में बोलने वाला जीव विशेष, गोकर्ण दो खुर वाला चतुष्पद विशेष, मृग-सामान्यहरिण, पहले कहे हुए कुरंग आदि सींग व वर्ण के भेदविशेषण से समझने चाहिए, महिष-भैंस, व्याघ्र, छगल- बकरे की जाति, द्वीपिक-चीता, श्वान-जंगली कुत्ते, तरक्ष, अक्षभल्ल औरशार्दूल, सिंह-केसरी-सिंह, चित्तल-नख वाली पशु विशेष अथवा चित्रल-हरिण की आकृति-वाला द्विखुर पशुविशेष-कुरंग आदि जिन विशेषणों से चतुष्पदों के भेद किये गए हैं उनको (य) और (एव मादी) इस प्रकार के अन्य चतुष्पद जीवों को फिर (अयगर) अजगर -बड़ा सांप, ( गोणस ) विना फण के सांप, ( वराहि ) दृष्टि विष सर्प ये फण करने में दक्ष होते हैं, ( मउलि ) मुकुली-फण वाले सर्प विशेष, ( काउदर ) काकोदर-एक जाति के सर्प; ( दब्भपुप्फ ) दर्भ पुष्प-एक जाति का दर्वीकर सर्प ( आसालिय ) आसालिक-आसालिया,[1] ( महोरग[2] ) बहुत बडा सर्प, ( उरग विहाणक कए ) उरग जाति के भेद को करने वाले इन जीवों को ( य ) और ( एवमादी )

इस प्रकार के दूसरे उरपरिसर्प–छाती के बल चलने वाले जीवों को तथा (छीरल-सरंब-सेह-सेल्लग–) क्षीरल और शरम्ब वाहु के बल पर चलने वाले जीव विशेष, सेह -तीखेकांटों से भरे हुए शरीर वाला जीव जो शेला नाम से प्रसिद्ध है, शल्यक- जीव विशेष, ( गोधुंदर णउल-सरड –) गोधा गोह, उंदिर चूहा, नोला और शरट–कृकलास नामका जीव, ( जाहग मुगुंस खाडहिल-वाउप्पिय घी रोलिय सिरोसिवगणे ) जाहक–कांटे से ढके हुए शरीर वाला जीव, मुगुंस-मुंगूस, खाड-हिला-टिलोडी-गिल्लोरी, वातोत्पत्तिका-लोकरूढि से समझे" घोरोलिय–गृहकोकि-लिका–घर में रहने वाली गोह, हाथ से सरक कर चलने वाले जीवों के भेद करने व ले इन जीवों को ( य ) और ( एवमादी ) इस प्रकार के अन्य भी भुज-परि सर्प जीवों को, तथा ( कादंबक ) हंस विशेष ( वक ) वगुला ( बलाका ) विसकण्ठिका; ( सारस ) सारस नाम के प्रसिद्ध पक्षी, ( आडासेतीय ) आडा सेतीक जिसको आड कहते हैं ( कुलल ) कुलल, ( वंजुल ) वंजुल ( परिप्पव कीव सउण-दीविय ( पोवीलिय ) हंस–) पारिप्लव–खदिर चञ्चु, कीव शकुन-और दीपिक ये पक्षि-विशेष हैं, पी पी बोलने वाले पक्षी को पीपोलिक कहते हैं. हंस-श्वेतहंस ( धत्तरिट्ठग भास कुलीकोस कुंच दगतुंड ढेणियालग ) धार्तराष्ट्र-कृष्ण मुख व चरण वाले हंस, भास और कुटीक्रोश–पक्षि विशेष, क्रौंच, उदकतुंड, ढेणिकालक ( सूईमुह कविल पिंगलक्खग कारंडग ) सूचीमुख, कपिल, पिंगलाक्षक और कारंडक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष ( चक्कवाग उक्कोस गरुल पिंगुळ सुय वरहिण मयणसाल ) चक्रवाक, उत्क्रोश, कुरर, गरुड पिंगल-अप्रसिद्ध, शुक पोपट; बर्ही–पांखवाले मयूर-मोर, मदनशाला–मेना, ( नंदीमुह--नंदमाणग–कोरंग भिंगारग कोणालग ) नंदीमुख, नन्दमानक कोरंक और भृङ्गारक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष, भृंगारिका रात में झंझं बोलने वाला छोटा पक्षिविशेष; कोणालक-पक्षिविशेष; ( जीव जीवक तित्तिर वट्टक लावक कपिंजलक कवोयक पारेवयग चिडिग ढिंक कुक्कुड वेसर ) जीवं जीवक–चकोर, तित्तिर, वत्तक वर्तक–जिसको वतक कहते हैं

---

१ आसालिया इसका शरीर उत्कृष्ट १२ योजन तक लम्बा होता है और यह खंडप्रलय के समय बड़े शहर आदि की भूमि के नीचे उत्पन्न होता है।

२ महोरग-यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, तथा इसका शरीर आखिर में हजार योजन तक लम्बा होता है।

लावक-लवा नाम का पक्षि विशेष, कपिंजलक, कपोत-कबूतर पारावत-कबूतर का ही एक भेद, चिटिका-कलंबिका-चोडी विशेष, ढिंक-पक्षिविशेष, कुर्कुट-मुर्गा, वेसर-अप्रसिद्धपक्षी ( मयूरग-चउरग-हय—पोंडरीय—करक—वीरल्ल-सेण-वायसय विहग-भिणासि-चास-वग्गुलि—चम्मट्ठिल—विततपक्खि—खहयर—विहाणाकए ) मयूरक-कलाप रहित मोर, चकोर. हर पुंडरीक और शालक या करक तथा वीरल्ल. ये कोई अप्रसिद्ध पक्षिविशेष हैं, श्येन-बाज, वायसविहङ्ग-काकपक्षी, भेनाशित-पक्षीविशेष, अथवा कहीं वायस और विहंग भेद नाशित ऐसे नाम मिलते हैं। चाषपक्षी, वल्गुली-वागलपक्षी चर्मास्थिल-चमगीदड या चर्म चिडी वितत पक्षी-यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, खचर के भेद करने वाले इन पक्षिओं को ( य ) और ( एवमादी ) ऐसे कादंबक आदि पक्षिओंको, पूर्वोक्तजीवों को संग्रह वचन से कहते हैं-( जल थल-खगचारिणो उ पंचिदिए. ) जल स्थल-भूमि और आकाश मार्ग से चलने वाले पञ्चेन्द्रिय ( पसु गणे ) पशु जाति के प्राणियों को तथा ( बिय तिय चउरिंदिए ) दो तीन और चार इन्द्रिय वाले ( विविहे जीवे ) अनेक प्रकार के जीव ( पिय जीविए ) प्रिय जीवन वाले व ( मरण दुक्ख पडिकूले ) मृत्यु के दुःख को नहीं चाहने वाले ( वराए ) बेचारे क्षुद्र जीवों को ( बहुसंकिलिट्ठकम्मा ) बहुत क्लेशयुक्त कर्मों को करने वाले हिंसक ( हणंति ) मारते हैं। अब हिंसा के कारण कहते हैं ( एमेहिं ) इन ( विविहेहिं ) आगे कहे जाने वाले अनेक ( कारणेहिं ) कारणों से ( किन्ते ? ) वे कौनसे प्रयोजन हैं ? चम्म-वसा-मंस-मेय-सोणिय-जग-फिफिस-) चमडा, वसा-चरबी, मांस, मेद-देह का धातु विशेष शोणित-रक्त; यकृत् पेट के दाहिने बाजू में रहने वाली मांसग्रन्थि, फिप्फिस-फेफडा, ( मत्थुलुंग-हिययंत-पित्त-फोफस-दंतट्ठा ) मस्तुलिङ्ग-कपाल का भेजा, हृदय-हिये का मांस, अन्त्र-आंत. पित्त-शरीर का एक दोष, फोफस और दांत के लिये, तथा-( अट्ठि-मिंज-नह-नयण-कण्ण-ण्हारुणि-नक्क-धमणि सिंग—दाढि -पिच्छ-विस-विसाण—वाल हेउ ) अस्थि-हड्डी. मज्जा, नख नेत्र, कान, स्नायु-नसें, नाक, धमनी-नाडी, सींग, दाढ, पिच्छ-पूंछ-पंख, विष-सर्प आदिका. विषाण-हाथी का दांत और वाल—केश, इन सब के निमित्त मारते हैं ( य ) और ( हिंसंति ) मारते हैं ( भमर मधुकरी गणे ) भमर और भमरिओं के समूह का ( रसेसुगिद्धा ) मधु आदि रस में गृद्ध-लालची जीव, ( तहेव ) इसी तरह ( तेंदिए ) तीन इन्द्रिय वाले-जूं आदि जीवों को ( सरीरोवकरणट्ठयाए )

( मज्जणय-पाण-भोयण-वत्थ-धोवण—सोयमादिएहिं ) स्नान मज्जन जलपान भोजन और वस्त्रों को धोने हाथ पैर धोने, शुचि करने आदि कारणों से हिंसा करते हैं ( पयण पयावण जलावण विदंसणेहिं अगणिं ) पचन पाचन रसोइ बनाने—सिझाने, चावल सिझवाने जलावन खुद या दूसरे से आग को सुलगाने विदर्शन दीपक जलाना आदि कारणों से अग्नि को ( सुप्प-वियण-तालयंट—पेहुण मुह-करयल-सागपत्ते-वत्थमादिएहिं ) सूप सूपडा, व्यजन—वीजन, तालवृन्त-पंखा - पेहुण—मोर पीछी; मुख, करतल—हाथ, शाकपत्र —सागके पत्ते और वस्त्र आदि से ( अणिलं ) वायुकायिक जीवों को हिंसा करते हैं, ( अगार परियार भक्ख भोयणा-सयणासण-फलक-मुसल-उखल-तत विततातोज्ज—वहण—वाहण—मंडव-विविहभवण—तोरण—विडंग-देवकुल— ) घर, परिचार वृत्ति या तलवार आदि की म्यान, भक्ष्य मोदक आदि, भोजन-रोटी आदि, शयन-शय्या, आसन—बिस्तर; फलक-पीठ व कुर्सी आदि, मूसल; ऊखल, तत-वीणा आदि वितत पटह-ढोल आदि, आतोद्य—बाजे, वहन-नौका आदि, वाहन—शकट गाडी आदि, मडप, विविध भवन—अनेक प्रकार के चौशाले आदिभवन, तोरण, विटङ्क-कबूतरों के लिये बनाये हुए घर-कपोत पाली; देवकुल-देवल ( जालयद्ध चद निज्जूग-चंद सालिय वेतिय णिस्सेणि दोणि-चंगेरि-खील-मेढक-सभा—पवा—वसह—गंध मल्लाणुलेवणं-बरजुय-नंगल-मइय-कुलिय-संदण-सीया-रह—सगड-जाण-जोग्ग अट्टालग-चरिअ दार—गोपुर-फलिहा-जंत-सूलिय-लउड-मुसंढि—सतग्घि बहुपहरणावरणुवक्खराण कए ) जालक-जालियाँ, अर्द्धचन्द्र-सोपान या सौध विशेष, निर्यूहक—दरवाजे पर घोडे के मुह-की आकृतिवाली निकली हुई लकडियाँ, चन्द्रशालिका-प्रासाद के ऊपर की शाला, वेदिका, निस्सरणी—चढने व उतरने की माळ, द्रोणी—छोटी नौका, चगेरी-फूल डाली या वाद्य विशेष, कील-खीलें, मेढक-मुंडे, सभा, पवा-प्याऊ, आवसथ-परिव्रजकों का आश्रय, गंध-पावडर आदि, माल्य—फूल माळा, अनुलेपन—विलेपन, अम्बर—कपडे, यूप-युग, जांगल—हल, मतिक—जमीन जोतने के बाद ढेला फोडने के लिये लम्बा काष्ठ, जिससे भूमि बराबर की जाय कुलिक—एक प्रकार का हल, स्यन्दन-युद्ध और देव यात्रा में जाने के लिये दो प्रकार के रथ, शिविका—बडी पालकी, रथ, शकट—गाडी, यान-यानविशेष, युग्य-वेदिकायुक्त दो हाथ का जंपान विशेष, अट्टालक-अट्टालिका, चरिका-शहर और कोट के-बीच में आठ हाथ का चौडा मार्ग, द्वार; गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, परिघा-आगल, यंत्र-अरहट,

साधारणे अणंते ) सूक्ष्म, बादर-स्थूल, प्रत्येक शरीरी[1] और साधारण[2] अनन्त जीवों को ( हणंति ) मारते हैं ( अविजाणओ ) अपने वध को नहीं जानने वाले ( य ) और ( परिजाणओ ) सुख दुःख आदि से मरण का अनुभव करने वाले ( जीवे ) जीवों को ( इमेहिं ) इन नीचे कहे जाने वाले ( विविहेहिं ) अनेक प्रकार के ( कारणेहिं ) कारणों से ( किंते ? ) वह प्रयोजन कौनसा है ? ( करिसण पोक्खरणी वावि वप्पिणि कूव सर तलाग चिति वेतिय खातिय आराम विहार थूभ पागार दार गोउर अट्टालग चरिया सेतु संकम पासोय विकप्प भवण घर सरण लेण आवण चेतिय देव कुल चित्त सभा पवा आयतणावसह भूमिघर मंडवाणयकए ) खेती के लिये पुष्करिणी-कमल वाली या चौकोण बावडी, वापी-गोल या विना कमल के बावडी; वप्रिणी-केदार, कूआ, सरोवर, तालाब, चिति—भीत आदिका चयन-बनाना या मृतक को जलाने के लिये बनाई गई चिता, वेदिका-चबूतरा, खातिका-खाई, आराम-बगीचा; विहार—बौद्ध आदिका मठ, स्तूप-स्मृति चिन्ह विशेष, प्राकार—कोट, द्वार-दरवाजा, गोपुर-नगर का मुख्य द्वार; अट्टालक-कोट के ऊपर की अटारी, चरिका—नगर और उसके कोट के बीच का ८ हाथ लम्बा मार्ग, सेतु-पाल या पुलिया, संक्रम—विषम स्थान से उतरने का मार्ग, प्रासाद—महल—राजाओं के भवन, विकल्प—प्रासाद के भेद, भवन चोशाल आदि, गृह—सामान्य घर; शरण—तृण—घास के घर, लयन-पर्वत में खोध कर बनाए घर; आपण-दुकान, चैत्य-मूर्तियाँ अथवा चितास्थान पर बना हुआ स्मारक, देवकुल-शिखर युक्त देवमन्दिर; चित्रसभा-सचित्र मण्डप, प्रपा-पानी की प्याऊ, आयतन-देवस्थान, आवसथ-परिव्राजकोंका आश्रम, भूमिगृह-तलघर और मण्डप-छाया वगैरह के लिये बनाया गया कपडे का मण्डप, इन सबके लिये ( य ) और ( भायण भंडोवगरणस्स विविहस्स अट्ठाए ) सोने आदि के भाजन और मिट्टी के भाण्ड अथवा किराणें—लवणादि व उपकरण ऊखल आदि के और विविध-वस्तुओं के लिये ( पुढविं ) पृथ्वी कायिक जीव की ( हिंसति ) हिंसा करते हैं, ( मंदबुद्धिया ) कम बुद्धि वाले लोग ( जलंच ) और जल काय के जीवों की

---

१ एक शरीर में एक जीव हो उसको प्रत्येक शरीरी कहते हैं।

२ एक औदारिक शरीर में साधारण रूपसे रहने वाले अनेकों जीव वाली वनस्पति को साधारण कहते हैं।

( मज्जणय-पाण-भोयण-वत्थ-धोवण—सोयमादिएहिं ) स्नान मज्जन, जलपान, भोजन और वस्त्रों को धोने हाथ पैर धोने, शुचि करने आदि कारणों से हिंसा करते हैं ( पयण पयावण जलावण विदंसणेहिं अगणिं ) पचन पाचन रसोइ बनाने—सिझाने, चावल सिझवाने जलावन खुद या दूसरे से आग को सुलगाने विदर्शन दीपक जलाना आदि कारणों से अग्नि को ( सुप्प-वियण-तालंयट—पेहुण मुह-करयल-सागपत्ते-वत्थमादिएहिं ) सूप सूपडा, व्यजन—वीजन, तालवृन्त-पंखा-पेहुण—मोर पीछी; मुख, करतल—हाथ, शाकपत्र—सागके पत्ते और वस्त्र आदि से ( अणिलं ) वायुकायिक जीवों को हिंसा करते हैं, ( अगार परियार भक्ख भोयण-सयणासण-फलक-मुसल-उखल-तत विततातोज्ज—वहण—वाहण—मंडव-विविहभवण—तोरण—विडंग-देवकुल— ) घर, परिचार वृत्ति या तलवार आदि की म्यान, भक्ष्य मोदक आदि, भोजन-रोटी आदि, शयन-शय्या, आसन—बिस्तर; फलक-पीठ व कुर्सी आदि, मूसल; ऊखल, तत-वीणा आदि वितत पटह-ढोल आदि, आतोद्य—बाजे, वहन-नौका आदि, वाहन—शकट गाडी आदि, मंडप, विविध भवन—अनेक प्रकार के चौशाले आदिभवन, तोरण, विटङ्क-कबूतरों के लिये बनाये हुए घर-कपोत पाली; देवकुल-देवल ( जालयद्ध चंद निज्जूग-चंद सालिय वेतिय णिस्सेणि दोणि-चंगेरि-खील-मेढक-सभा—पवा—वसह—गंध मल्लाणुलेवणं-वरजुय-नंगल-मइय-कुलिय-संदण-सीया-रह—सगड-जाण-जोग्ग अट्टालग-चरिअ दार—गोपुर-फलिहा-जंत-सूलिय-लउड-मुसंढि—सतग्घि बहुपहरणावरणुवक्खराण कए ) जालक-जालियाँ, अर्द्धचन्द्र-सोपान या सौध विशेष, निर्यूहक—दरवाजे पर घोडे के मुह-की आकृतिवाली निकली हुई लकडियाँ, चन्द्रशालिका-प्रासाद के ऊपर की शाला, वेदिका, निस्सरणी-चढने व उतरने की नाळ, द्रोणी—छोटी नौका, चगेरी-फूल डाली या वाद्य विशेष, कील-खीलें, मेढक-मुंडे, सभा, पवा-प्याऊ, आवसथ-परिव्रजकों का आश्रय, गंध-पावडर आदि, माल्य—फूल माळा, अनुलेपन—विलेपन, अम्बर—कपडे, यूप-युग, जांगल—हल, मतिक—जमीन जोतने के बाद ढेला फोडने के लिये लम्बा काष्ठ, जिससे भूमि बराबर की जाय कुलिक—एक प्रकार का हल, स्यन्दन-युद्ध और देव यात्रा में जाने के लिये दो प्रकार के रथ, शिविका—बडी पालकी, रथ, शकट—गाडी, यान-यानविशेष, युग्य-वेदिकायुक्त दो हाथ का जंपान विशेष, अट्टालक-अट्टालिका, चरिका-शहर और कोट के-बीच में आठ हाथ का चौडा मार्ग, द्वार; गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, परिघा-आगल, यंत्र-अरहट,

मूल जीव तथा उनके आश्रय में रहकर उन्हीं का आहार करने वाले जो त्रस जीव हैं, पृथ्वी आदि आश्रय के अनुरुप ही जिनके रंगरूप होते हैं। जैसे हरे घास पर हरे कोडे और सूखे पर पोले होते हैं, कुछ जोव दिखने वाले और कुछ नहीं दिखने वाले हैं। ऐसे असंख्य त्रस और सूक्ष्म बादर, प्रत्येक व साधारण भेदवाले अनन्त स्थावर जीव को मारते हैं। वे ज्ञान विशेष से हीन होकर भी सुख दुःख का अनुभव करने वाले हैं। स्थावर जीवों की हिंसा के कारण निम्नोक्त हैं-"खेती, कूंआ, वावडी, तालाव, तथा सरोवर, चिता-वेदिका खाई, वाग, मठ, स्तूप; कोट, द्वार; नगर का मुख्य द्वार, अट्टालिका, सडक, पुल, संक्रम, अनेक प्रकार के भवन, साधारण घर, चैत्य—मन्दिर,—स्मारक सभा और तलघर व मण्डप आदि के लिये धातु व मिट्टी के पात्र और अन्य विविध उपकरणों के लिये, मन्द वुद्धि लोग पृथ्वी की हिंसा करते हैं। नहाने, धोने, और पीने तथा भोजन व शरीर आदि की शुद्धि के लिये जल—अप् कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। पकाने जलाने और रोशनी आदि कारण से अग्नि कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। सूप, वाजने, पंखे और हाथ, मुख व वस्त्र आदि से वायु कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। घर परिचार भोजन, शयन, आसन, पीठ ऊखल, मूसल, अनेक प्रकार के वाद्य नौका, गाडी आदि वाहन, मंडप, विविध भवन, तोरण, कवूतर खाना, देवल, जाली, सीढो, दरवाजे के आगे घोढले, वेदिका, निसरणी, छोटी नौका, चंगेरी, कील, सभा, प्याऊ, मठ, गंधक-पाउडर, फूलमाला, विलेपन, वस्त्र, यूप, हल, खेत फोडने की लकडी, सामान्य हल, स्यन्दन—सांग्रामिकरथ, पालकी, गाडी—साधारण रथ, यान, युग्म, अट्टालिका, चरिका-नगर व कोट के वीच का मार्ग, द्वार, गोपुर, परिघा, जल यंत्र—रेंट, शूली, लाठी भुशुण्डी—वन्दूक, तोप की तरह का शस्त्र विशेष, अन्य प्रहरण, तथा घर के उपकरण—आदि के लिये ऐसे वहुतेरे अन्य कारणों से वृक्षों को काटते हैं। कहे हुए से अन्य भी वलहीन प्राणिओं को मूढ मति व दारुण विचार वाले लोग मारते हैं! अन्तरङ्ग कारण भी कुछ हैं—जैसे कि क्रोध मान—माया लोभ, हास्य और रति अरति, तथा शोक व वेद विहित अनुष्ठान के लिये। संक्षेप में कहा जाय तो जीवन मर्यादा तथा धर्म व धन और काम के लिये हिंसा होती है। स्ववश या पर वश, प्रयोजन से या निष्प्रयोजन भी—मन्द वुद्धि लोग त्रस जीव तथा स्थावर जोवों को मारते हैं। व्यक्ति गत विचार से कई स्ववश मारते। कई परवश होकर मारते हैं। और कई दोनों तरह से। कोई अर्थ—प्रयोजन से मारते हैं, दूसरा निष्प्रयोजन

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं। कोई हास्यवश, कई वैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तीनों के चलते मारते। कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने ही क्रोध, लोभ व मोह तीनों के वश हिंसा करते हैं। धन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते। दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र ३ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमें से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मंदबुद्धि पन कहा गया है। प्राण वध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए। चौथे द्वार में प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए। किन्तु कर्ता के अधीन में क्रिया होती है और दूसरे इस का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानतासे पहले प्राण वध को करने वाले 'कर्तृ द्वार' का विचार करते हैं—"

मूल—"कयरे ते? जे ते सोयरिया, मच्छबंधा, साउणिया, वाहा, कूरकम्मा, वाडरिया, दीवितबंधणप्पओगतप्पगल जाल वीरल्लगायसीदब्भ वग्गुरा कूड छेल्लिहत्था, हरिएसा, साउणिया य, वीदंसग पासहत्था, वणचरगा, लुद्धय-महुघात पोतघाया, एणीयारा, सर-दह-दीहिअ-तलाग-पल्लल-परिगालण-मलण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विसगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-दवग्गि—णिद्दय पलीवका कूरकम्मकारी, इमे य बहवे मिलक्खु-जाती, केते? सक-जवण-सबर-बब्बर-गाय-मुरुंडो-दभडग-तित्तिय-पक्कणिय-कुलक्ख- गोंड-सीहल-पारस कोंचंध-दविल-बिल्लल-पुलिंद—अरोसडोब- पोक्कण- गंधहारग बहलीय—जल्ल—रोम—मासव उस मलया-चुंचुया य-चूलिया कोंकणगा-मेत—पण्हव-मालव- महुर—आभासिया—अणक्क चीणल्हासिय—खस—खासिया—नेहुर-मरहट्ठ-मुट्ठिय—आरब डोबिलग-कुहण-केकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावमतिणो। जलयर थलयर सणप्फतोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोवघायजीवी, सण्णी य असण्णिणो य पज्जत्ता असुभलेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करेंति पाणाति-

वाय करणं. पावा-पावाभिगमा-पावरुई पाणवहकयरती पाण-वहरूवाणुट्ठाणा पाणवहकहासु अभिरमंता, तुट्ठा पावं करेत्तु होंति य बहुप्पगारं। तस्स य पावस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेंति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालबहुदुक्खसंकडं नरय तिरिक्ख जोणिं, इओ आउक्खए चुया असुभकम्मबहुला उववज्जंति नरएसु, हुलितं महालएसु वयरामयकुड्डरुद्द निस्संधिदार विरहिय निम्मद्दव भूमितल खरामरिस विसम णिरय घर चारएसु, महोसिण सयावतत्त दुग्गंधविस्सउव्वेयजणगेसु बीभच्छ दरिसणिज्जेसु निच्चं हिमपडलसीयलेसु कालोभासेसु य भीम गंभीर लोमहरिसणेसु णिरभिरामेसु निप्पडियारवाहि रोग जरापीलिएसु अतीवनिच्चंधकारातिमिस्सेसु पतिभएसु ववगय गह चंद सूरणक्खत्त जोइसेसु मेयवसामंस पडल पोच्चड पूयरुहिरुक्किण्ण विलीणचिक्कणरसियावावण्ण कुहियचिक्खल्ल कद्दमेसु कुकूलानलपलित्तजालमुम्मुर—असिक्खुर करवत्त धारासु निसित-विच्छुयडंकनिवातोवम्म—फरिस अतिदुस्सहेसि य अत्ताणासरण-कडुय—दुक्ख परितावणेसु अणुबद्ध निरंतर वेयणेसु जमपुरिससंकुलेसु, तत्थ य अंतो मुहुत्तलद्धि भव-पच्चएणं निव्वत्तेंति उ ते सरीरं, हुंडं बीभच्छदरिसणिज्ज बीहणगं अट्ठिण्हारुणहरोमवज्जियं असुभ दुक्खविसहं, ततो य पज्जत्ति-मुवगया इंदिएहिं पंचहिं वेदेंति असुभाए वेयणाए उज्जल बल विउल उक्कड क्खर फरुस पयंड घोर बीहणग दारुणाए, किंत ? कंदु महाकुंभिय पयण पउलण तवग तलण भट्ठ भज्जणाणि य, लोहकडाहुक्कड्ढणाणि य, कोट्टबलिकरण कोट्टणाणि य, सामलि तिक्खग्ग लोह कंटक अभिसरण पसारणाणि, फालण विदालणाणि य, अवकोडक बंधणाणि, लट्ठिसय तालणाणि य, गलग बलुल्लंबणाणि सूलग्गभेयणाणि य. आएसपवंचणाणि, खिंसण-विमाणणाणि, विघुट्ठपणिज्जणाणि, वज्झसयमातिकाति य एवं ते ॥ सू० ॥ ४ ॥

छाया—"कतरेते ? ( कृष्णादिकारणैः प्राणिनो घ्नन्तीति ) प्रश्न उत्तर माह,— येते शौकारिका, मत्स्यबन्धाः, शाकुनिका, व्याधाः, क्रूरकर्माणो, वागुरिकाः द्वीपिक बन्धन प्रयोग-तप्र गल जाल वीरल्लकाऽऽयसी दर्भवागुरा-कूटच्छेलिका हस्ताः, हरिकेशाः, शाकुनिकाश्च विदंशक पाश हस्ताः, वन चरकाः, लुब्धक-मधुघात पोतघाताः, एणीचाराः, प्रैणीचाराः सरोह्रद-दीर्घिका तडाग—पल्वळ-परिगा लन-मलन-स्रोतोबन्धन सलिलाऽऽशयशोषकाः, विषगरलस्य च दायकाः, उत्तृण-वल्लर-दावाग्नि निर्दय प्रदीपकाः, क्रूरकर्मकारिण इमे ये बहवो म्लेच्छजातीयाः, केते ? शक-यवन—शबर—वर्बर-काय—मुरुण्ड-उद—भडक-तित्तिक-पक्कणिक-कुलाक्ष-गौड-सिंहल-पारस-क्रौञ्च-अन्ध- ( आन्ध्र ) द्राविड-विल्वल-पुलिन्द—अरोष-डोंब-पोक्कण—गन्धहारक—बहलीक-जल्ल-रोम-माष—बकुश मलयाः चुञ्चुकाश्च, चूलिकाः, कोंकणकाः मेद-पह्लव-मालव-महुर—आभाषिक अणक्क-चीन—ल्हासिक-खस—खासिकाः, नेहर-महाराष्ट्र-मौष्टिक-आरब, डोबिलक कुहण-केकय-हूण-रोमक-रुरु-मरुकाः, चिलात विषयवासिनश्च पापमतयः, जलचर स्थलचर सनख पदोरग खेचर सन्दंश तुण्ड जीवोपघातजीविनः, संज्ञिनश्च असं—ज्ञिनश्च पर्याप्ता अशुभ लेश्या परिणामा, एतेऽन्येचैवमादयः कुर्वन्ति प्राणाति पात करणं पापाः पापाभिगमाः पापरुचयः प्राणवधकृतरतिकाः प्राणवधरूपाऽनुष्ठानाः प्राणवधक कथासु अभिरममाणाः तुष्टाः पापं कृत्वा भवन्ति। बहुप्रकारम्।

तस्य च पापस्य फल विपाकमजानन्तो वर्द्धयन्ति महाभयामविश्रामवेदनाम्, दीर्घकाल बहु दुःखसंकटां नरकतिर्यग्योनिम्, इत आयुःक्षये च्युता अशुभ कर्म बहुला उपपद्यन्ते नरकेषु लघुकं शीघ्रं महालयेषु वज्रमय कुड्य रुद्र निस्सन्धि द्वार विरहित निर्मार्दव भूमितल खरामर्श विषम निरयगृह चारकेषु महोष्ण सदा प्रतप्त दुर्गन्ध विस्रोद्वेगजनकेषु बीभत्सदर्शनीयेषु नित्यं हिमपटलशीतलेषु कालाऽवभासेषु च भीमगम्भीरलोमहर्षणेषु निरभिरामेषु निष्प्रतीकारव्याधिरोगजरा पीडितेषु अतीव नित्यान्धकारतमिस्रेषु प्रतिभयेषु व्यपगत ग्रहचन्द्र सूर्य नक्षत्र ज्योतिष्केषु, मेदोवसा मांस-पटलातिनिविड पोच्चर पूय रुधिरोत्कीर्ण विलीन चिक्कण रसिका व्यापन्न कुथित चिक्खल्ल कर्दमेषु, कुकूलाऽनल प्रदीप्त ज्वालमुर्मुराऽसि क्षुर कर पत्रधारासु निशित वृश्चिक डङ्क निपातौपम्य स्पर्शातिदुस्सहेषु च; अत्राणाऽशरण कटुक दुःख परितापनेषु अनुबद्ध निरन्तरवेदनेषु यमपुरुषसङ्कुलेषु तत्रचाऽन्तर्मुहूर्तलब्धि-भवप्रत्ययेन निर्वर्तयन्ति तु ते शरीरं हुण्डं, बीभत्सदर्शनीयं

र्भाजनकम् अस्थिस्नायुनख रोम विर्जितम्, अशुभ दुःख विषहम्। ततश्च पर्याप्तिमुपगता इन्द्रियैः पञ्चभिर्वेदयन्ति–अशुभया वेदनया–उज्ज्वल बल विपुलोत्कट खर परुष प्रचण्ड घोर भीजनक दारुणया। किन्तत्? कन्दु महा कुम्भी पचन प्रलोलन तवक तलन भ्राष्ट्रभजनानि च, लोह कटाहोत्क्राथनानिच, क्रीडा कोट्ट बलिकरण कोडनकानिच शाल्मलि तीक्ष्णाग्र लोह कण्ट काऽभिसरणाऽपसरणानि, स्फाटन विदारणानि; अवकोटकबन्धनानि, यष्टिशत ताडनानिच, गलकबलोल्लम्बनानि, शूलाग्र भेदनानिच, आदेश प्रवञ्चनानि, खिसन विमाननानि विघुष्टप्रणयनानि वध्यशत मातृकाणि चैवंते॥ सू॰ ४। ३॥

*अन्वयार्थ*—"( कयरे ते ) वे हिंसा करने वाले कौन हैं ?

उत्तर–( जे ) जो ( ते ) वे ( सोयरिया ) सूअरों के द्वारा शिकार करने वाले–शौकरिक ( मंच्छ वंध ) मत्स्य वन्ध—मच्छो पकडने वाले ( साउणिया ) पक्षिओं की शिकार करने वाले—शाकुनिक–पारधी, ( वाहा ) व्याध, ( कूर कम्मा ) क्रूर कर्म करने वाले ( वाउरिया ) जाल लेकर घूमने वाले, वागुरिक, तथा (दीवित बंधण प्पओग तप्प गल जाल वीरल्लगायसीदब्भ वग्गुरा कूड छेलिहत्था ) जो मृग मारने के लिये चीता, बन्धन प्रयोग–पकडने का उपाय, तप्र–मछली पकडने के लिये छोटी नौका, गल–मच्छीपकडने के लिये कांटे पर आटा या मांस, जाल—मच्छो फसाने की जाल, वीरल्लक–श्येन, वाज, आयसो लोहमयजाल, दर्भवागुरा-दर्भ की या डोरी की जाल, कूट–पाश और वकरी अथवा चीता आदि छल से पकडने के लिये पाशमें रक्खी हुई वकरी, इन सब साधनों को हाथ में लिये हुए हैं। फिर–( हरिएसा ) चाण्डाल ( साउणिया य ) और पारधी ( दूसरे पाठ से सेवक ) ( वीदंसग पास हत्था ) श्येन आदि और पाशको हाथ में रखने वाले; ( वण चरगा) जंगल में घूमने वाले-शवरभिल्ल, ( लुद्धय महु घाय पोत घाया ) लुब्धक–व्याध, मधु लेने वाले कुरेरी, व पक्षिओं के बच्चे मारने वाले ( एणीयारा ) मृग पकडने के लिये हरिणी को लेकर घूमने वाले ( पएणीयारा ) विशेप रूप से हरिणिओं को लेकर फिरने वाले ( सर–दह–दीहिय–तलाग–पल्लल–परिगालण–मलण–सोत्तवंधण–सलिलासय—सोसगा ) सरोवर, हृद वावडी, तालाव, पल्वल—छोटा जलाशय इन सब को मत्स्य शंख आदि लेने के लिये वाहर जल निकालने से, मसलने से, और पानी के मार्ग को रोकने से जलाशय को सुखाने वाले ( विसगरस्स य दायगा ) और जो विष और गरल—अन्य वस्तु में मिले हुए विष को देने वाले हैं। ( उत्तण–वल्लर–दवग्गि–णिद्द

यपलीवका ) ऊगे हुए तृण और खेतों को दवाग्नि के निर्दयता पूर्वक जलाने वाले (कूर-कम्मकारी इमे य बहवे मिलक्खु जाती ) और क्रूर कर्म को करने वाली ये बहुतसी म्लेच्छ जातियाँ हैं; ( के ते ? ) वे कौनसी जातीयाँ हैं ?

उत्तर—( सक-जवण-सबर-वब्बर-गाय-मुरुंडोद—भडग--तित्तिय—पक्कणि-य—कुलक्ख-गोड—सीहल—पारस-कौंचंध-दविल-बिल्लल-पुलिंद—अरोस डोब ) शक १ यवन २ शबर-भिल्ल ३ वर्बर ४ गाय-काय ५ मुरुंड ६ उद ७ भडक ८ तित्तिक ९ पक्कणिक १० कुलाक्ष ११ गौड १२ सिंहल १३ पारस १४, क्रौंच १५ अंध १६ द्राविड १७ विल्वल १८ पुलिंद १९ अरोष २०, डोंब २१ ( पोक्कण-गंधहारग-बहली-य-जल्ल-रोम-मास-वउस-मलया ) पोक्कण २२ गन्ध हारक २३ बहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माष २७ बकुश २८ और मलय २९ ( चुंचुया य चूलिया ) चुंचुक ३० और चूलिक ३१ ( कोंकणगा ) कोंकणक ३२ ( मेय—पण्हव-मालव-महुर—आभासिया ) मेद ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६ आभाषिक ३७ ( अणक्क--चीण—ल्हासि-य-खस—खासिया ) अणक्क ३८ चीन ३९ ल्हासिक ४० खस ४१ खासिक ४२ ( नेहुर-मरहट्ठ—मुट्ठिअ---आरव—डोविलग-कुहण ) नेहर ४३ मरहट्ठ-मराठा ४४ मूढ या मौष्टिक ४५ आरब ४६ डोविलक ४७ कुहण ४८ ( केकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुगा) केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ रुरु ५२ मरुक ५३ और ( चिलाय विसयवासी ) चिलात देश के रहने वाले ५४ ( पाव मतिणो ) जो पाप बुद्धि वाले हैं ( जलयर-थलय-र-सणप्फतोरगखहचर-संडास—तोंड-जीवोवग्घाय जीवी ) जलचर स्थलचर तथा नख युक्त चरण वाले सिंह आदि व उरग और खचर, संडास की आकृति के मुख वाले पक्षी और जीवों की हिंसा करके जीने वाले। ये कैसे हैं ? तो—( सन्नी ) समनस्क-संज्ञी ( य ) और ( असण्णिणो ) असंज्ञी-विना मन के जीव ( य और ( पज्जत्ता ) पर्याप्त-जीवनोपयोगी शक्तिओं को पूर्ण रूप से पाये हुए, ( असुभलेस्सपरिणामा ) अशुभ लेश्या के परिणाम वाले, ( एते ) पहले—ऊपर कहे हुए ये सब ( अण्णे य ) और दूसरे ( एवमादी ) इस प्रकार के जीव ( करेंति ) करते हैं ( पाणाति वाय करणं ) प्राण वध रूप कार्य को ( पावा ) पापी ( पावाभि-गमा ) पाप कोही उपादेयमानने वाले ( पावरुई ) पाप में रुचि रखने वाले और ( पाणवहकयरती ) प्राण वध करके खुश होने वाले ( पाणवहरूवाणुट्ठाणा ) प्राणवधही जिनका अनुष्ठान-नियत कर्म है ऐसे ( पाणवह कहासु अभिरमंता )

हिंसा की कथाओं में रमने वाले ( पावं करेत्तु ) वे हिंसारूप पाप को करके ( बहुप्पगारं तुट्ठा होंति य ) बहुत प्रकार से सन्तुष्ट होते हैं।

जो प्राण वध करने वाले हैं, वे कहे गए, अब प्राण वध से जो फल मिलता है उसे कहते हैं—( तस्स य पावस्स ) और उस प्राण वध रूप पाप के ( फल विवागं ) फल के समान विपाक—परिणाम को ( अयाणमाणा ) नहीं जानते हुए घातक जीव ( महब्भयं ) महाभय वाली ( अविस्सामवेयणं ) विश्रान्तिरहित-निरन्तर वेदनावाली ( दीह काल बहुदुक्ख संकडं ) चिरकालतक शारीरिक मानसिक आदि अनेक प्रकार के दुःखों से व्याप्त ऐसी ( नरय तिरिक्खजोणिं ) नरक और तिर्यञ्चयोनि को ( वड्ढंति ) बढाते हैं[1] फिर ( इओ ) यहाँ मनुष्य भवसे ( आउ क्खए ) आयु के क्षय होने पर ( चुया ) मरे हुए ( असुभकम्मबहुला ) अशुभ कर्म की अधिकतावाले ( उववज्जंति नरएसु ) नरक स्थानों में उत्पन्न होते हैं, ( हुलितं ) शीघ्र। कैसे नरकों में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—( महालएसु ) क्षेत्र परिमाण से व स्थिति काल के प्रमाण से बडे तथा ( वयरामय कुड्ड रुद्द निस्संधि दार विरहिय निम्मद्दव-भूमितल खरामरिस विसम-णिरय—घर-चारएसुं ) वज्रमयभीतवाले, विस्तीर्ण-विस्तार वाले, सन्धि और द्वार रहित अर्थात् जो विना सुराख और द्वार वाले हैं, कोमलतारहित-कठोर-भूमितल वाले तथा कर्कश स्पर्शवाले विषम—ऊँचे नीचे ऐसे नरक घर के जो चारक-उत्पत्तिस्थान हैं उनमें, फिर ( महोसिण-सयापतत्त-दुग्गंध-विस्स उव्वेय-जणगेसु ) अत्यन्त ऊष्ण सदा जलते हुए दुर्गन्ध और सडी हुई गन्ध के कारण जो उद्वेग पैदा करने वाले हैं ( वीभच्छदरिसणिज्जेसु ) वीभत्स-भयङ्कर—दृश्यवाले तथा ( निच्चं हिमपडल सीयलेसु ) सदा हिमबर्फ के पटल की तरह शीतल ( कालो भासेसु य ) और काले रंग की कान्तिवाले ( भीम गंभीर लोमं हरिसणेसु ) भयङ्कर—अतिशय गम्भीर होने से रोमाञ्चकारी ( निरभिरामेसु ) सुन्दरता रहित होने से मन को पसंद नहीं आने वाले ( निप्पडियार-वाहि-रोग-जरा-पीलिएसु ) चिकित्सा के अयोग्य भयंकर व्याधि रोग और जरा से पीडित ( अतीव निच्चंधकार तिमिस्सेसु ) सघन अन्धकार से जो सदा तिमिस्रगुहा की तरह अन्धकार पूर्ण हैं ( पतिभएसु ) प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने वाले, ( ववगय-चंद-सूर—णक्खत्त जोइसेसु ) चन्द्र सूर्य और नक्षत्र व तारक रूप ज्योतिष्कों की प्रभा से हीन हैं

---

१—( तस्स य से वड्ढंति ) पर्यन्त का पाठ किसी किसी प्रति में ही देखा जाता है। टीका-

अर्थात् जहां चन्द्र आदि की प्रभा भी नहीं पडती ( मेय वसा मंस पडल पोच्चड पूय रुहिरुक्किण्ण-विलीण-चिक्कण रसिया वावण्ण कुहिय चिक्खल कद्दमेसु ) मेद, चर्बी और मांस के पटल—समूह तथा अत्यन्त गाढ पीप व रुधिर से मिश्रित घृणाजनक और चिकना रस्सी से विनष्ट स्वरूपवाला इसीलिये सडा हुआ या फूला हुआ. कीचड और गाढ कीचड हैं जिनमें ऐसे ( कुकूलानल-पलित्त-जाल-मुम्मुर-असिक्खुर-करवत्त—धारा-सुनिसित-विच्छुयडंक-निवातोवम्म—फरिस—अतिदुस्स-हेसु य ) और कोयले की अग्नि, प्रदीप्त ज्वाला, मुमुर—अग्निके कण, तलवार तथा अस्तूरा व करवत की अतिशय तीखी धारा एव विच्छू के डंक का देह पर गिरना, इन सबके समान जो अत्यन्त दुस्सह स्पर्श वाले हैं ( अत्ताणासरण कडुय दुक्ख परितावणेसु ) अनर्थ की निवृत्ति और इष्ट की प्राप्ति कराने वाले सहायक से हीन वे जीव जहाँ दारुण दुःखों से सताये जाते हैं ( अणुबद्ध निरंतर वेयणेसु ) अत्यन्त निरन्तर वेदना वाले ( जमपुरिससंकुलेसु ) अम्ब आदि असुर जाति के यमों से जो स्थान संकुल-व्याप्त हैं ( तत्थय ) और वहाँ—नरकावासों में उत्पन्न होकर ( अंतोमुहुत्तलद्धिभवपच्चएणं ) अन्तर्मुहूर्त काल वैक्रियलब्धि और नरक गति में जन्मरूप कारण से ( निव्वत्तेंति उ ते सरीरं ) वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो शरीर ( हुंडं ) सब प्रकार से योग्य संस्थान रहित और ( बीभच्छ दरिसणि-ज्जं ) भयङ्कर व देखने में बुरा ( बीहणगं ) भय पैदा करने वाला तथा (अट्ठिण्हारु णह रोम वज्जियं ) हड्डी, स्नायु, नख और रोम से रहित ( असुभ दुक्ख विसहं ) अशुभ गन्धयुक्त और दुःख को सहने वाला होता है ( ततोय पज्जत्तिमुवगया ) शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा मन रूप पर्याप्तिओं से पूर्ण बने हुए वे जीव ( इंदिएहिं पंचहिं वेदेंति ) पांच इन्द्रियों से दुःख को वेदन करते-भोगते हैं ( असुभाए वेयणाए ) अशुभ वेदना के द्वारा जो ( उज्जल ) सुखरूप विपक्ष के लेश से भी अकलङ्कित होने से उज्ज्वल-उजली ( बल विउल )- हटाना शक्य नहीं होने से बलवती और शरीर मात्र व्यापी होने से वह विपुल है ( उक्कड ) उत्कट—आखिरी सीमा तक पहुंची हुई ( खर फरुस ) खर-शिला आदि के समान कठोर पदार्थ के गिरने से होने वाली, परुष—कुष्माण्डी के पत्ते के समान कर्कश स्पर्शवाले पदार्थ से होने वाली-अति कठोर ( पयंड घोर बीह-णगदारुणाए ) प्रचण्ड—जल्दी से शरीर में फैलने वाली और-शीघ्रही औदारिक शरीर युक्त जीवन का क्षय करने वाली या दूसरे के जीवन की अपेक्षा नहीं करने

वाली तथा भयानक ऐसी दारुणवेदना से दुःख का अनुभव करते हैं; ( किंते ? ) वह कौनसा दुःख है ? ( कंदु महाकुंभिपयण ) कन्दु—लोही और महाकुंभी—बड़ी कुम्भी इन में भात की तरह पकाना ( पउलण-तवगतलण-भट्ठभज्जणाणि ) चूहा आदि की तरह पकाना, तवे पर पूडी की तरह तलना, तथा भाड में चणे की तरह भूंजना ( य ) और ( लोहकडाहुक्कड्डणाणि ) लोह के कडाहों में इक्षुरस के समान उकालना फिर ( कोट्टवलि करण कोट्टणाणि ) क्रीडा से चण्डिका आदि के सामने वस्त्र वगैरह की तरह पशु आदि की तरह भेंट धरना अथवा कोट्ट—। प्रकार के लिये बलिदेना व कुटिल बनाना ( य ) और ( सामलि तिक्खग्ग लोह कंटग अभिसरण पसारणाणि ) शाल्मली वृक्ष के जो लोह के कांटे की तरह तीखे अग्रभाग उन पर अपेक्षा से जाना और पीछे फिरना उससे ( फालण विदालणाणि ) फाडना और अनेक प्रकार से देह का विदारण करना ( य ) और ( अव कोडक बंधणाणि ) बाहु और शिरको पीछे से समेट कर बांधना ( लट्ठिसयतालणाणि ) सैकडों लाठी के प्रहार करना ( य ) और ( गलग बलुल्लंबणाणि ) गलकबलोल्लंबन—गले में बांध कर बल पूर्वक शाखा पर लटका देना ( सूलग्ग भेयणाणि ) शूलके अग्रभाग से भेदन करना, और ( आएसपवंचणाणि ) झूठी आज्ञा से ठगना ( खिंसण विमाणणाणि ) खिसलाना निंदा करना अपमान करना ( विघुट्ठपणिज्जणाणि ) ये पापी अपने किये हुए फलों को पाते हैं इस प्रकार बोलते हुए वध योग्य जीव को वध्य भूमि में लेजाना ( वज्झसय मातिकाविय ) और सैकडों वध्य जीव जिन दुःखों के मातृस्थान--उत्पत्तिस्थान हैं ( एवंते) इस प्रकार वे जीव प्राणवध के कटु फल को भोगते हैं ।

स्पष्टीकरण—"हिंसा कौन करते हैं ?, इसका उत्तर यह है कि जो लोग सूअरों से शिकार करने वाले, मच्छी पकडने वाले, पारधी और व्याध के समान क्रूर कर्म करने वाले हैं। तथा जाल लेकर घूमने वाले व मृग आदि को पकडने के लिये चीता, जाल, फांस, छोटी नौका, कांटा आटा, जाल, बाज, लोह और मूंज की जाल, कूटपाश व बकरी इन सब को साथ में लेकर जो फिरते रहते हैं वे पारधी, शिकारी तथा चाण्डाल व शवर लोग और इन्हीं के समान हिंसारसिक व हिंसोपजीवी जीव हिंसा में कूट कपट को जानने वाले तथा जलाशयों को सुखा देने वाले दूसरों को विष खिलाने वाले एवं खेत आदि को निर्दयता पूर्वक जलाने वाले, ऐसे ऐसे क्रूर कर्मों को करने वालों की प्रधान जातियाँ निम्नलिखित हैं-"शक १ यवन २

शवर ३ बर्बर ४ गाय ५, मुरुंड ६, उद ७ भटक ८ तित्तिक ९ ( भित्तिक ) पक्कणि १० कुलाक्ष ११ गौड[1] १२ सिंहल १३ पारस १४ क्रौंच १५ अंध ( आन्ध्र )-१६ द्राविड १७ बिल्लव १८ पुलिन्द्र १९ अरोष २० डोंब २१ पोक्कग २२ गन्ध हारक २३ बहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माष २७ बकुश २८ और मलय २९ चुंचुक ३०, चूलिक ३१ कोंकणक ३२ मेद ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६, आभषिक ३७ अणक्क ३८ चीन ३९ ल्हासिक ४०, खस ४१ खासिक ४२ नेहर ४३ मर हट्ठ ४४ मूढ-मौष्टिक ४५ आरब ४६ डोबिलक ४७ कुहण ४८ केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ रूरु ५२ मरुक ५३ और चिलात देश वासी ये ५४ जाति के लोग हिंसा करते हैं। दूसरे जलचर, थलचर तथा नख वाले सिंह आदि जानवर, उरग-सर्प और खचर, संडास के जैसे मुख वाले पक्षी इत्यादि जीव भी हिंसा करने वाले हैं, हिंसा करने वालों में कई मन वाले-संज्ञी और कई असंज्ञी तथा अपने योग्य पर्याप्तियों से पूर्ण और अशुभ लेश्या के परिणाम वाले होते हैं। इस प्रकार ऊपर कहे हुए और इसी तरह के अन्य क्रूर जीव भी प्राण वध करते हैं। ये सब पाप की प्रधानता वाले, पाप को ही उपादेय मानने वाले तथा पाप क्रिया में श्रद्धा रखने वाले हैं। ऐसे जीव प्राण वध करके खुशी मनाते और प्राण वध को ही मुख्य कर्तव्य मानते हैं तथा ये हिंसाकी कथाओं कोही कहते सुनते और हिंसा के कार्यों को करके सन्तुष्ट होते हैं। इस प्रकार घातक जीवों का स्वरूप बताया गया,

अब प्राण वध के फलों को दिखाते हैं—"वृक्ष की तरह उस हिंसा के फल को नहीं जानते हुए हिंसक जीव अपने लिये नरक व तिर्यञ्च योनिको बढाते हैं, वे योनियाँ महाभय देने वाली तथा निरन्तर वेदनाओं से युक्त और चिर काल तक शरीरिक मानसिक आदि विविध दुःखों से भरी होती हैं। यहाँ से आयुक्षय होने पर मरे हुए जीव अशुभ कर्म की अधिकता से शीघ्र नरक में उत्पन्न होते हैं। वे नरक स्थान इस प्रकार के हैं—'क्षेत्र और स्थिति से जो विशाल हैं, वज्रमय दिवाल युक्त बडे और बिना सन्धि व द्वार के हैं, जहाँ कठोर भूमितल वाले कर्कश स्पर्शयुक्त और विषम-ऊंचे नीचे अनेक चारक-नरक घर हैं, बहुत ऊष्ण सदा तपते हुए तथा दुर्गन्ध और सडान के कारण जो उद्वेग जनक हैं, दिखने में भयङ्कर हैं, सदा बर्फ के ढेर की तरह ठंडे और काली कान्ति वाले हैं; भयङ्कर गहरे होने से माञ्चकारी मनके प्रतिकूल और प्रतीकार नहीं करने लायक व्याधि

१—बंगाल से दक्षिण की ओर समुद्र के पास है।

रोग तथा जरासे पीडा पहुंचाने वाले हैं। जहाँ सघन अन्धकार होने से प्रत्येक वस्तु में भय का प्रदर्शन होता है। चन्द्र सूर्य नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की वहाँ प्रभा नहीं पहुंचती और मेद चर्वी और[1] रुधिर मांस पीप आदि की अधिकतासे जहाँ कीचड सा मचा रहता है। वहाँ का स्पर्श कोयले की अग्नि मुर्मुर, धधकती ज्वाला और तलवार, अस्तूरे आदि की तीखी धार व बिच्छू के डंक लगने जैसा अत्यन्त दुस्सह है। वहाँ कोई इष्ट की प्राप्ति कराने वाले और अनर्थ की निवृत्ति कराने वाले सहायक नहीं हैं। वहां सिर्फ भयङ्कर दुःखों से जीव पीडित किये जाते हैं। निरन्तर अत्यन्त वेदना और यमलोकोंसे वे स्थान पूर्ण रहते हैं। नरकावास में उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त जैसे स्वल्पकाल में वैक्रियलब्धि व नारक जन्म के कारण से वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो योग्य आकृतिसे हीन और दिखने में भयङ्कर होता है, हाड मांस स्नायु नख व रोम के विना वह नारक शरीर भयानक तथा अशुभ और दुःख सहने वाला होता है। शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय श्वास आदि सभी पर्याप्तियाँ पूर्ण कर वे जीव पांचों इन्द्रियों से दुःख का अनुभव करते हैं। असातारूप अशुभ वेदना से दुःख भोगते हैं। वह वेदना साता के लेश से भी शून्य है। तथा नहीं हटाने लायक है और शरीर भर में फैलने वाली होती है। जो बहुत उत्कट, कठोर, परुष और प्रचण्ड स्वरूप वाली व दूसरे के प्राणों की अपेक्षा नहीं करने से घोर और भय उत्पन्न करने वाली दारुण है। वहां के दुःख कौन से हैं? कुम्भी आदि में पकाना चूडा आदि की तरह सेकना और तलना भूंजना तथा लोह के कडाह में उकालना एवं देवी आदि के सामने मांस की तरह बलि चढाना, देहको पीस देना या शाल्मलीके तीखे अग्रभाग पर ले जाना व फिराना, देह का चीर फाड करना हाथों को व शिरको पीठ की ओर खींच कर बांध देना, सैकडों लाठों के प्रहार मारना, गले में बांधकर वृक्ष की शाखाओं में लटका देना, शूल में बींधना, झूठी आज्ञा देकर ठगना, निन्दा और अपमान करना उनको वध्य भूमि पर लेजाना इन सब दुःखों के वे नारकी जीव माता के समान उत्पादक हैं। इस प्रकार वे नारक जीव जैसे दुःखों को भोगते हैं उन्ही दुःखों को आगे कहते हैं।

---

१—औदारिक शरीर की तरह उनका शरीर लोहू मांस का नहीं होता, इसलिये यहां रक्त मांस आदि का उल्लेख उस प्रकार से परिणत वैक्रिय पुद्गलों के लिये समझना चाहिए।

मूल—"पुव्वकम्मकय संचयोवतत्ता निरयग्गि-महग्गि-संपलित्ता, गाढदुक्खं महब्भयं कक्कसं असायं सारीरं मानसंच तिव्वं दुविहं वेदेंति वेयणं, पावकम्मकारी बहूणि पलिओवम-सागरोवमाणि कलुणं पालेंति ते अहाउयं जमकातियतासिता य सद्दं करेंति भीया। किंते ?, अविभाय, सामिभाय, वप्पताय जितवं, मुय मे मरामि दुब्बलो वाहिपीलिओऽहं, किं दाणिऽसि ?, एवं दारुणोणिद्दय मादेहि मे पहारे, उस्सासेतं (एयं) मुहुत्तयं मे देह, पसायं करेहि, मारुस वीसमामि गेविज्जं मुयह मे मरामि, गाढं तण्हातिओ अहं देह पाणीयं, हंता पिय इमं जलं विमलं सीयलंति घेत्तूण य नरयपाला तवियं तउयं से देंति कलसेण अंजलीसु, दट्ठूण य तं पवेपि (वि) यंगोवंगा अंसुप-गलंतपप्पुयच्छाच्छिएणा तण्हाइयम्ह कलुणाणि जंपमाणा, विप्पेक्खंता दिसोदिसिं अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधुविप्पहूणा विपलायंति य मिगा इव वेगेण भयुव्विग्गा, घेत्तूण बला पलायमाणाणं निरणुकंपा मुहं विहाडेत्तुं लोहडंडेहिं कलकलएहं वयणंसि छुभंति, केइ जमकाइया हसंता, तेण दड्ढा संतो रसंति य भीमाइं विस्सराइं, रुवंतिय कलुणगाइं पारेवतगाय, एवं पलवितविलाय कलुणाकंदिय बहुरुन्न रुदियसद्दो परिवे(दे) वित रुद्ध बद्ध य नारकारव संकुलो णीसट्ठो रसिय भणियकुवि-उक्कूइय निरयपालतज्जिय गेण्हक्कम, पहर, छिंद, भिंद, उप्पा-डेहुक्खणाहि, कत्ताहि, विकत्ताहि य भुज्जोहण, विहण, वि-च्छुभोच्छुब्भ, आकड्ढ, विकड्ढ, किंण जंपसि ? सराहि पाव कम्माइं दुक्कयाइं एवं [illegible] महप्पगब्भो पडिसुया सद्दसंकुलो तासओ सया [illegible] महाणगर डज्झमाण-सरिसो नि-

ग्घोसो सुव्वए अणिट्ठो तहियं नेरइयाणं जाइज्जंताणं जायणाहिं। किंते ? असिवण–दब्भवण–जंत–पत्थर–सूइ–तलक्खार वावि कलकलंत वेयरणि कलंब वालुयाजलिय गुह निरुंभण उसिणोसिण कंटइल्ल दुग्गम रहजोयण तत्तलोह मग्ग गमण वाहणाणि इमेहिं विविहेहिं आयुहेहिं, किंते ? मोग्गर-मुसुंढि-करकय-सत्ति-हल-गय-मुसल चक्क-कोंत-तोमर-सूल-लउल-भिंडि माल-सद्द (द्ध) ल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुहण मुट्ठिय-असि, खेडग खग्ग-चाव नाराय-कणक-कप्पणि-वासि-परसु-टंकतिक्ख निम्मल अण्णेहिय एवमादिएहिं असुभेहिं वेउव्विएहिं पहरणसतेहिं अणुबद्ध तिव्ववेरा परोप्पर वेयणं उदीरेंति अभिहणंता, तत्थ य मोग्गर पहार चुण्णिय मुसुंढि संभग्ग महित देहा जंतोवपीलण फुरंत कप्पिया केइत्थ सचम्मका विगत्ता णिम्मू (लु) ल्लूण कण्णोट्ठणासिका छिण्णहत्थपादा असिकरकयातिक्ख कोंत परसुप्पहार फालियवासी संतच्छितंगमंगा कलकलमाण खार परिसित्तगाढ डज्झंतगत्त कुंतग्ग भिण्ण जज्जरिय सव्वदेहा विलोलंति महीतले विसूणियंगमंगा, तत्थ य विग–सुणग–सियाल काक–मज्जार–सरभ–दीविय–वियग्घ सदुद्दल-सीहि-दप्पिय खुहाभिभूतेहिंणिच्चकालमणसिएहिं घोरा रसमाण भीमरूवेहिं अक्कमित्ता दढ दाढा–गाढ डक्ककड्ढिय सुतिक्ख नह फालिय उद्धदेहा विच्छिप्पंते समंतओ विमुक्क संधि बंधणा वियंगमंगा कंक–कुरर–गिद्ध–घोर–कट्ठवायसगणेहि य पुणो खरथिर दढ णक्खलोह तुंडेहिं ओवतित्ता पक्खाहय तिक्खणक्ख विकिन्न जिब्भंछिय नयण निह (द्ध) ओलुग्ग विगत वयणा, उक्को-

भंता य उप्पयंता निपतंता भमंता पुव्वकम्मोदयोवगता पच्छाणुसयेण डज्झमाणा, णिंदंता पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं तहिं २ तारिसाणि ओसन्नचिक्कणाइं दुक्खाति अणुभवित्ता, ततो य आउक्खएणं उव्वाट्टिया समाणा बहवे गच्छंति तिरियवसहिं दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्मण मरण जरा वाहि परियट्टणारहट्टं जल थल खहचर परोप्पर विहिंसणपवंचं इमं च जगपागडं वराका दुक्खं पावेंति दीहकालं। किंते?, सीउण्हतण्हाखुहवेयण अप्पईकार अडवि जम्मण णिच्च भउव्विग्ग वास जग्गण वह बंधण ताडणंकण निवायण अट्ठिभंजण नासाभेयप्पहार दूमण छविच्छेयण अभिओग पावणक संकुसार निवायदमणाणि वाहणाणि य मायापिति विप्पयोग सोय परिपीलणाणि य सत्थग्गि विसाविघाय गल गवल आवलण मारणाणि य गलजालुच्छिप्पणाणि पउलण विकप्पणाणिय जावज्जीविक बंधणाणि पंजरनिरोहणाणि य सयूह निद्धाडणाणि धमणाणि य, दोहणाणि य कुदंड गलबंधणाणि वाडगपरिवारणाणि य, पंक जल निमज्जणाणि, वारिप्पवेसणाणिय ओवायणि भंग विसमाणि वडणदवग्गिजालदहणाई य, एवंते दुक्खसय संपालित्ता नरगाउ आगया इह सावसेसकम्मा तिरिक्ख पंचेंदिएसु पाविंति पावकारी कम्माणि पमाय-राग-दोस-बहुसंचियाइं अतीव अस्साय-कक्कसाइं॥ सू० ५।४॥

छाया—"पूर्वकर्मकृत सञ्चयोपतप्ता निरयाग्नि महाग्नि सम्प्रदीप्ताः गाढदुखां महाभयां कर्कशाम् असातां शारीरीं मानसीं च तीव्रां द्विविधां वेदयन्ति वेदनाम्, पापकर्मकारिणो बहूनि पल्योपम सागरोपमानि करुणं पालयन्ति ते यथाऽऽयुष्कं यमकायिकत्रासिताश्च शब्दं कुर्वन्ति भीताः, किन्तत्? (तद्यथा) हे अविभाव्य! हे स्वामिन्! हे भ्रातः! हे पितः! हे तात! हे जितवन्! मुञ्च माम्, म्रिये दुर्बलो व्याधि पीडितोऽहम्. किमिदानीमसि एवं दारुणो निर्दयो, मा देहि मह्यं प्रहारान् उच्छ्वा सनमेकं मुहूर्त्तकं मे देहि, प्रसाद कुरु, मा रुषस्व, विश्राम्यामि, ग्रैवेयकं मोचय मम, म्रिये, गाढं तृषाऽऽर्दितोऽहं देहि पानीयम्, हन्त पिबेदं जलं विमलं शीतलमेतदिति

गृहीत्वा च नरक पालास्तप्तं त्रपुक तस्मै ददते कलसेनाऽऽञ्जलौ। दृष्ट्वा च तत्प्रवेपिताङ्गोपाङ्गा अश्रुगलत्प्लुताऽऽक्षाश्छिन्ना तृष्णाऽऽस्माकमिति करुणानि जल्पन्तो विप्रेक्षमाणा दिशो दिशम् अत्राणा अशरणा अनाथा अबान्धवा बन्धुविप्रहीणा विपलायन्ते च मृगा इव वेगेन भयोद्विग्नाः। गृहीत्वा बलात्पलायमानान् निरनुकम्पा मुखं विदार्य लोह दण्डैः कलकलं ( द्रवत्त्रपुकं ) नु वदने क्षिपन्ति केचिद् यमाकयिका हसन्तः। तेन दग्धाः सन्तो रसन्ति च भीमानि विस्वराणि, रुदन्ति च करुणकानि पारावतका इव, एवं प्रलपित विलाप करुणाऽऽक्रन्दित बहुरुद्र ( रुदन ) रुदित शब्दः परिवेपित रुद्ध बद्धक नारकाऽऽरवसङ्कुलो निसृष्टो रसित भणित कुपितोत्कूजित निरय पाल तर्जितः—तं गृह्णाण, क्राम, प्रहर छिन्धि, भिन्धि, उत्प टय, उत्क्षिप, (उत्खन) कृन्त, विकृन्त, च भूयो जहि, हन; विजहि, (विहन) विक्षिप, उत्छिप, आकृष विकृष; किंन जल्पसि स्मर पापकर्माणि दुष्कृतानि, एवं वदन महाप्रगल्भः, प्रति श्रुताऽशब्द संकुलः, त्रासकः सदा निरय गोचराणां दह्यमान महानगर सदृशो निर्घोषः श्रुयतेऽनिष्टस्तत्र नैरयिकाणां यात्यमानानां यातनाभिः। कास्ताः? ( यातनाः ) असिवन, दर्भवन, यन्त्र, प्रस्तर, सूचीतल, क्षारवापी कलकलत् ( द्रवत् त्रपुषादि संभृत ) वैतरणी कदम्ब वालुका ज्वलित गुहा निरोधनम् उष्णोष्ण कण्टकित दुर्गम रथ योजन तप्त लोह मार्ग गमन वाहनानि, एभिर्विविधैरायुधैः। कानि तानि? मुद्गर भुसुण्डि क्रकच-शक्ति-हल-गदा मुसल चक्र कुन्त तोमर शूल लकुट भिण्डिपाल-सद्धल ( भल्ल ) पट्टिस चर्मेष्ट-द्रुघण मौष्टिकाऽसि खेटक खड्ग चाप नाराच कणक कल्पनी वासी परशु-टङ्क तीक्ष्ण निर्मलैः, अन्यैश्चैवमादिभि रशुभै र्वैक्रियैः प्रहरणशतै रनुबद्ध तीव्र वैराः परस्परवेदनामुदीरयन्त्यभिघ्नन्तः। तत्र च मुद्गर प्रहार चूर्णित भुसुण्ढि संभग्न मथित देहा यन्त्रोपपीडनस्फुरत्कल्पिताः केचिदत्र सचर्मका विकृत्ता निर्मूल ( लूनलोलून ) कर्णौष्ठनासिकाश्छिन्नहस्तपदाः, असिक्रकच तीक्ष्ण कुन्त परशु प्रहार स्फाटित वासी सन्तक्षिताऽङ्गोपाङ्गाः कलकलायमान क्षार परिषिक्त गाढ दह्यमान गात्र कुन्ताऽ ग्रभिन्नजर्जरितसर्वदेहाः; विलुठन्ति महीतले जातश्वयथुकाङ्गोपाङ्गाः। तत्रच वृक शुनक शृगाल काक मार्जार सरभ द्वीपिक वैयाघ्र शार्दूल सिंह दर्पित क्षुधाभिभूतैर्नित्यकालमनशितैर्घोरा सरद्भीम रूपैराक्रम्य दृढदंष्ट्रा गाढ दष्ट कृष्ट सुतीक्ष्ण नख स्फाटितोर्द्ध्वदेहा विक्षिप्यन्ते समन्ततो विमुक्तसन्धिबन्धना व्यङ्गिताङ्गा कङ्क कुरर गृद्ध घोर कष्ट वायसगणैश्च पुनः खरस्थिरदृढनखलोहतुण्डैरवपत्य पक्षाऽऽहत तीक्ष्ण नख विकीर्ण

जिह्वाच्छिन्ननयननिर्दयावरुण विकृत्तवदना, उत्क्रोशन्तश्चोत्पतन्तश्च निपतन्तो भ्रमन्तः पूर्वकर्मोदयोपगताः पश्चादनुशयेन दह्यमाना निन्दन्तः पुराकृतानि कर्माणि पापकानि तत्र तत्र तादृशानि—उत्सन्न चिक्कनानि दुःखानि—अनुभूय ततश्चायुः क्षये—उद्वृत्ताः सन्तो बहवो गच्छन्ति तिर्यग्वसतिम्, दुःखोत्तारां सुदारुणां जन्म मरण जरा व्याधि परिवर्तनाऽऽरघट्टां जल स्थल खचर परस्पर विहिंसन प्रपञ्चाम् इदञ्चजगत्प्रकटं वराका दुःखं प्रप्नुवन्ति दीर्घकालम्। किन्ते? तद्यथा—शीतोष्ण तृष्णा क्षुधा वेदनाऽप्रतीकाराऽटवी जन्म नित्य भयोद्विग्नवास जागरण वध बन्धन ताडनाऽङ्कन निपातनाऽस्थिभञ्जन नासा भेद प्रहार दवन-च्छविच्छेदनाऽभियोग प्रावणकशाऽङ्कुशाऽऽरा निपात दमनानि, वाहनानिच माता पितृ वियोग स्रोतः परिपीडनानि च शस्त्राऽग्निविषाभिघात गलावलाऽवलन मारणानिच, गल-जालो त्क्षेपणानि, पचनविकल्पनानिच, यावज्जीवकबन्धननि, पञ्जरनिरोधनानिच, स्वयूथ्य निर्घाटनानि धमनानिच दोहनानिच, कुदण्डगलबन्धनानि, वाटक परि-वारणानिच, पङ्कजलनिमज्जनानि, वारिप्रवेशनानिच, अवपातनिभङ्ग विषम निपतन दवाग्नि ज्वालादहनादीनिच। एवंते दुःखशतसम्प्रदीप्ता नरकादागता इह सावशेषकर्माणस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु प्राप्नुवन्ति पापकारिणः कर्माणि प्रमादरागदोष बहुसञ्चितानि—अतीवाऽऽसातकर्कशानि।

अन्वयार्थ—"(पुव्व कम्म कय संचोयोवतत्ता) पूर्व कृतकर्म के संचय से सन्ताप पाये हुए (निरयग्गि महग्गि संपलित्ता) भयङ्कर अग्नि को तरह निरयस्थान को अग्नि से जले हुए वे जीव (गाढदुक्खं) अत्यन्त दुःख युक्त (महब्भयं) महा भयङ्कर (कक्कस) कठोर इसीलिये (असाय) असात वेदनीय के उदय से होने वाली (सारीरं) शरीर सम्बन्धी (मानसंच) और मानसिक ऐसे (दुविहं) दो प्रकार की (तिव्व) तीव्र (वेयण) वेदना को (वेदेंति) अनुभव करते हैं। (पावकम्मकारो) पाप कर्म करने वाले वे जीव (बहूणि) बहुत से (पलिओवम-सागरोवमाणि) पल्योपम और सागरोपमतक (करुणं) दया जनक दशा को (पालेंति) पूर्ण करते हैं, फिर (ते) वे (अहाउयं) बांधी हुई आयु के अनुसार (जमकातियतासिया य) अंब आदि नाम वाले वहां के यमों से त्रास पाये हुए (सद्दं करेंतिभीया) भय भीत होकर शब्द—आर्तनाद करते हैं। (किंते?) वह आर्तस्वर कैसा है? (अविभाय, सामि, भाय, वप्प, ताय जितवं! मुय मे) हे अविभाव्य—समझ में नहीं आने लायक बन्धु! हे स्वामिन्? हे भाई! अरे

वाप ! हे तात ! हे विजय शील ! मुझे छोडो, ( मरामि ) मैं मर रहा हूं ( दुब्बलो वाहिपोलिओहं ) मैं दुर्बल-कमजोर और व्याधि से पोडित हूं. ( एवं दारुणो णिद्दय ) इस प्रकार दारूण तथा निर्दय ( किं दाणिऽसि ) इस समय क्यों होते हो ? ( मादेहि मे पहारे ) मुझे प्रहार मत मारो ( उस्सासेतं मुहुत्तयं मे देहि ) घडो भर मुझे श्वास लेने दो ( पसायं करेहि ) प्रसाद—दया करो, ( मारुस ) मेरे ऊपर क्रोध मत करो ( वोसमामि ) थोडा विश्राम लेता हूं ( गेविज्जंमुयह मे ) मेरे गले के बन्धनों को खोलो, ( मरामि ) मैं मर रहा हूं ( गाढंतण्हातिओ अहं ) मैं प्यास से खूब पोडित हूं ( देह पाणीयं ) पानो दो ( हंता ) अच्छा ! ( पिय ) पो-( इमं जलं विमलं सोयलं ) यह जल निर्मल और शीतल ठंढा है ( त्ति ) ऐसा कहकर ( नरय पाला ) वे नरक पाल देव ( तवियं तउयं ) तपे हुए सीसे को ( घेत्तूण ) लेकर ( से ) उस प्यासे नारक जीव को ( देंति ) देते हैं ( कलसेण ) कलस में से ( अंजलीसु ) अंजलिओं में ( दट्ठूणयतं ) और उस सीसे के पानी को देखकर ( पवेपियंगोवंगा ) अङ्गो पाङ्गों से धूजते हुए और ( असुपगलंत पप्पुयच्छा ) गलते हुए आंसुओं से आंखें भरके ( छिण्णा तण्हाइयम्ह ) हमारो प्यास मिट गई, इस प्रकार ( कलुणाणिजंपमाणा ) करुणा जनक वचनों को बोलते हुए भागते हैं ( विपेक्खंता दिसो दिसिं ) एक ओर से दूसरी दिशा की तरफ देखते हुए ( अत्ताणा ) त्राण रहित ( असरणा ) रक्षकों से रहित ( अणाहा अबंधवा ) योग क्षेम करने वाले नाथ तथा स्वजनों से रहित अर्थात् जिनके न कोई नाथ हैं न बांधव ( बंधुविप्पहूणा ) बन्धु के विना रहने वाले वे जीव ( मिगा इव भयुव्विग्गा ) हरिणों के समान भय से उद्विग्न बने हुए ( वेगेण ) बहुत जोर से ( विपलायंति ) भगते हैं ( य ) फिर ( बला ) बल प्रयोग से ( घेत्तूण ) पकड कर ( हसंता ) हंसते हुए ( केइ ) कई एक ( जम काइया ) यम जाति के असुर ( निरणुकंपा ) निदय बने हुए ( पलायमाणाणं ) भगते हुए के ( मुहं ) मुख को ( विहाडेन्तु लोहडंडेहिं ) लोहमय दण्डों से उनके मुख को, फाड खोल कर ( कल कलं ) कल कल करते हुए उस सोसे को ( वयणंसि ) मुह में ( छुभंति ) डालते हैं, ( तेण दड्ढासंतो ) उस गरम सीसे के डालने से जलतेहुए ( रसंति ) प्रलाप करते हैं ( य ) और ( भोमाइं विस्सराइं ) भयङ्कर विरस शब्द करते ( रुवतिय कलुणगाइं पारेवतगाव ) और कबूतर की तरह करुणा जनक रुदन करते हैं ( एवं ) इस प्रकार वहां और सुना जाता है ( पलविय विलाव कलुणा कंदिय बहुरुन्नरुदियसद्दो ) वेमतलव के प्रलाप और विलाप—आर्तनाद

करने से जो करुणा जनक है, तथा आक्रन्दन अतिशय अश्रुमोचन और रोने के शब्द वाला है, ( परि वेवित रुद्ध बद्धय नारकारवसंकुलो ) धूजते हुए रोके गए और नरक पालों के द्वारा बंधे हुए नारकों से व उनके आरवोंसे संकुल है ( णी-सट्टो )जो निर्घोष नारक जीवों से छोडा गया (रसिय भणिय कुविउक्कूइय निरय-पाल वज्जिय-) शब्द युक्त भणित-- अव्यक्त वचन वाले और क्रोध युक्त तथा अव्यक्त महाध्वनि को करने वाले निरयपालों के तर्जित-रे पापी ! अब समझेगा ! इस प्रकार को तर्जना युक्त, ( गेण्ह ) धरो पकडो ( कम्म ) आक्रमण करो ( पहर ) मारो ( छिंद ) काटो ( भिंद ) भेदन करो ( उप्पाडे हु क्खणाहि ) जमीन से उठाओ याने ऊपर फेंको आंख की पुतली या बाहु आदि उखाड फेंको ( कत्ताहि ) नाक आदि कतरो-काटो ( विकत्ताहि ) टुकडी २ करो ( य भुज्जो ) और फिर किसी समय मर्दन करो ( हण ) मारो ( विहण ) विशेष ताडन करो, ( विच्छुभोच्छुभ ) मुख में सीसा ढालो व अधिकता से डालो, ( आकड्ढ ) सामने खीचो ( विकड्ढ ) पीछे हटाओ ( किंण जंपसि ) क्यों नहीं बोलता है ? या नहीं जानता है ?, ( सराहि ) याद करो हे पापात्मन् ! ( पाव कम्माइं दुक्कयाइं ) अशुभ योग आदि से किये हुए दुष्कर्मों को ( एवं ) इस प्रकार ( वयण महप्पगब्भो ) नरक पालों के बोलने से जो अति कर्कश है ( पडिसुया सद्द संकुलो ) प्रति शब्द को आवाज से व्याप्त ( सया तासओ ) सदा त्रास उत्पन्न करने वाला ( निरयगोयराण ) नरक स्थान वर्ती जीवों के लिये जो ( महाणगर डज्झमाण सरिसो ) जलते हुए बडे नगर के समान ( तहियं ) वहां ( जाइज्जंताणं जायणाहिं ) अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित होते हुए ( नेरइयाणं ) नारकीय जीवों का ( अणिट्ठो निग्घोसो ) अनिष्ट-बुरा निर्घोष शब्द ( सुव्वए ) सुना जाता है ( किंते ? ) वे यातनायें कौनसी हैं ? उन्हें कहते हैं -( असिवण दब्भवण जंत पत्थर सूइतल ) असिवन खड्ग की आकृति वाले जिन में पत्र हैं, दर्भवन-जहां डाभ को तरह तीखे अग्र भाग वाले घास हैं, वह दर्भवन, पाषाण का यन्त्र अथवा यन्त्र से फेके गये पत्थर, या यन्त्र व बडे पत्थर, सुई के अग्र भाग वाला भूमितल ( क्खार वावि ) खारे द्रव्य से भरी हुई वापी-बावडी ( कल कलंत वेयरणि ) उकलते हुए सीसे आदि से भरी हुई वैतरणी नदी ( कलंब वालुया ) कदम्ब फूल के आकार वाली वालु-रेत और ( जलिय गुह निरुंभण ) जलती हुई गुहा इन सब स्थानों में रोक कर रखना (उसिणोसिण कंटइल्ल दुग्गम रह जोयण ) अत्यन्त उष्ण कण्टक वाले और मुश्किल से चलने वाले ऐसे भारी

रथों में जोतना (तत्तलोह मग्ग गमण वाहणाणि) और तपे हुए लोह मय मार्ग में जाना या बैलों को तरह हांक कर-जवर्दस्ती ले जाना, इस प्रकार की अनेक यातनायें दी जाती हैं, (इमेहिं विविहेहिं) इन नोचे कहे जाने वाले विविधि (आयुहेहिं) आयुधों से, परस्पर वेदनाओंका उदोरण करते हैं। (किंते ?) वे कौन से आयुध हैं ?-(मोग्गर मुसुढि) मुद्‌गर-लोहका घन, मुसुंढि-भुशुंडि (करकय) क्रकच-करवत (सत्ति) शक्ति-त्रिशूल, (हल) हल (गय) गदा-एक प्रकार की लाठी (मुसल) धान्य कूटने का मूशल, (चक्क) चक्र (कुंत) भाला (तोमर) बाण विशेष (सूल) शूल (लउड) लकुट—डंडा, (भिंडिमाल) भिंडिपाल-प्रहरण विशेष, (सद्धल) एक प्रकार का भाला (पट्टिस) पट्टिश-प्रहरण विशेष (चम्मेट्ठ) चमडे से मढा हुआ पत्थर विशेष, (दुहण) द्रुघण-वृक्षों को गिराने वाला मुद्‌गर (मुट्ठिय) मौष्टिक—मुष्टि प्रमाण का एक पत्थर, (असि खेडग) तलवार के साथ फलक, (खग्ग) तलवार (चाव) धनुष (नारायं) लोह का वाण (कणक) वाण का एक भेद (कप्पणि) कर्तिका एक प्रकार की कैंची (वासि) काष्ठ छिलनेका अस्त्र-वसूला, (परसु) परशु-(टंक तिक्ख निम्मल) पूर्वोक्त सब अस्त्र शस्त्र अग्र भाग पर तीखे और निर्मल हैं (अण्णेहिय) और दूसरे (एवमादिएहिं) इत्यादि अनेक (असुभेहिं) अशुभ कारक (वेउव्विएहिं) वैक्रिय (पहरणसतेहिं) सैकडों प्रकार के शस्त्रों से (अणुबद्धतिव्ववेरा) सदा उत्कट वैरभाव रखने वाले नारकोजीव (अभिहणंता) एक दूसरे को मारते हुए (परोप्परवेयणं) परस्पर[1] में दुःख रूप वेदना को (उदीरेंति) उत्पन्न करते हैं। (तत्थय) और वहाँ नरक स्थानों में परस्पर के प्रहार से (मोग्गर पहार चुण्णिय—मुसुढि संभग्ग महित देहा) मुद्‌गर के प्रहार से चूर्ण विचूर्ण बने हुए तथा भुशुण्डी की मारसे टूटे हूए और मथे हुए जैसे देह वाले (जंतोव पीलण फुरंत कप्पिया) घानो आदि यन्त्रों में पीलने से चमकते हुए और कटे हुए (के इत्थ) यहाँ नरक में कई नारक जोव (सचम्मका) चमडे वाले (विगत्ता) चमडे से अलग किये गए (निम्मूलुल्लूण कण्णोट्ठ णासिका) मूल से कटे हुए कान ओठ व नासिका वाले (छिण्णहत्थपादा) और कटे हाथ पांव वाले (असि) तलवार (करकय) क्रकच (तिक्खकोंत) तोखा भाला और (परसुप्पहार फालिय वासी संतच्छितंगमंगा) परशु—फरसों से फाडे गए और वसूलों से छीले गए अङ्गोपङ्ग वाले, (कलकलमाणखारपरिसित्ता) कल कल करते हुए

1—तीसरी पृथ्वी से आगे की नरक भूमिओ में ऐसा होता है। टीका०

उष्ण क्षार से सिक्त होने के कारण (गाढ डज्झंत गत्त कुंतग्ग भिण्ण जज्जरिय सव्वदेहा) अत्यन्त जलते हुए शरीर वाले और भाले के अग्रभाग से विदीर्ण होने के कारण जर्जर हैं सब देह जिनके ऐसे (विसूणियंगमंगा) सूजे हुए फूले हुए तथा क्षत शरीर वाले नारक जीव (महीतले) जमीन पर (विलोलंति) लोटते हैं, (तत्थ य) और वहाँ (विग सुणग सियाल) विग—छाली नाहर, कुत्ते, शियाल (काक) कौए (मज्जार) बिल्ली (सरभ) सरभ (दीविय) चीता (वियग्घ) व्याघ्र के बच्चे (सद्दूल) शार्दूल-सिंह-व्याघ्र (सीह) सिंह (दप्पिय खुहाभिभूतेहिं) दृप्त-मस्त और भूख से पीडित (णिच्चकालमणसिएहिं) सदा से भूखे हों उस तरह (घोरारसमाणभीमरूवेहिं) घोर शब्द व दारुण कर्म करने वाले और भयङ्कर रूप वाले ऐसे ये क्रूर हिंसक जीव नारक जीवों पर (अक्कमित्ता) आक्रमण करके (दढ दाढा गाढ डक्क कड्ढिय सुतिक्ख नह फालिय उद्धदेहा) मजबूत दाढों से गाढ डशे हुए और खींचे गये तथा अत्यन्त तीखे नखों से फाड दिया—विदारण कर दिया है ऊर्द्ध्व देह जिनका ऐसे नारकों को (विच्छिप्पंते स तओ) चारों ओर फेंक देते—बिखेर देते हैं (विमुक्क संधिबंधणावियंगमंगा) ढीली करदी गई है अङ्गों की सन्धियाँ जिनकी ऐसे तथा विकल अङ्गोपाङ्गवाले (पुणो) फिर (कंक) कंक पक्षी (कुरर) कुरर-पक्षिविशेष (गिद्ध) गीध (घोरकट्ठवायसगणेहिय) घोर कष्ट देने वाले वायस-कौए इन सबके समूह (खर थिर दढ नक्ख लोह तुंडेहिं) जो कठोर निश्चल और दृढ नख व लोहमय चोंच वाले हैं उनके द्वारा (ओव-तित्ता) पास में आकर (पक्खाहय तिक्खणक्ख विकिण्णा) पांखों को मारसे आ-हत किये गये, तीखे नखों से नोचे-बिखेरे गये (जिब्भंछिय नयण निद्दओलुग्ग विगत वयणा) जीभ खींची गई, आंखे निकाली गई, निर्दयता से मुंह बिगाड़ा गया और जिन्हें घायल किया गया है ऐसे वे नारक जीव (उक्कोसंता) चिल्लाते हुए या रोते हुए (च) और (उप्पयंता) उछलते (निपतंता) गिरते (भमंता) फिरते हुए (पुव्वकम्मोदयोवगता) पूर्व कृत कर्म के उदय वाले (पच्छाणुसएण) पश्चात्ताप से (डज्झमाणा) जलते हुए (पुरे कडाइं कम्माइं) पूर्व-पहले किये हुए अशुभ कर्मों को (निंदंता) निन्दा करते हुए (तहिं २) उस २ रत्नप्रभा आदि पृथ्वी में तथा उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास में (तारिसाणि) वैसे—जन्मान्तर में मिलाये हुए परमाधार्मिक के चलते या परस्पर की उदीरणा से तथा क्षेत्र स्वभाव से होने वाले, (ओसन्न चिक्कणाइं) अधिकता से चिकने-दुःख से छूटने योग्य (दुक्खाणि) दुःखों

को ( अणुभवित्ता ) अनुभव करके ( ततो य ) बाद फिर ( ओउक्खएणं ) आयु के क्षय-पूर्ण हो जाने से ( उव्वट्टिया समाणा ) ऊपर आए-निकले हुए ( बहवे ) बहुत से जीव ( तिरिय वसहिं ) तिर्यञ्च योनि रूप निवास में ( गच्छंति ) चले जाते हैं ( दुक्खुत्तरं ) जो तिर्यग् योनि बहुत दुःख से छूटती है और ( सुदारुणं ) बहुत भयङ्कर है ( जम्मण मरण जरा वाहि परियट्टणारहट्ट ) जन्म मरण वृद्धावस्था और व्याधि के वारंवार परिवर्तन से जो रेंट अर्थात् अरहट की तरह चलती है ( जल थल खहचर परोप्पर विहंसणपवंच ) जलचर स्थलचर और खेचर जोवों के परस्पर हिंसा प्रति हिंसा का जिसमें विस्तार है, वैसी ( इमंच ) और उस योनि में आगे कहे जाने वाले ( जग पागडं ) जग प्रसिद्ध ( दुक्खं ) दुःख को ( वराग ) बेचारे हिंसक जीव ( दीहकालं ) लम्बे कालतक ( पावेंति ) पाते हैं, ( किंते ? ) वे दुःख कौन से हैं ?

उत्तर—( सीउण्ह ) शीत उष्ण—ठंढो गर्मी ( तण्हा खुह ) व तृषा और भूख से होने वाली ( वेयणअप्पईकार ) उपचार विना को वेदना प्रसूति कर्म आदि ( अडविजम्मण ) अटवी में जन्म लेना, ( निच्चं भउव्विग्गवास- ) सदा भय से उद्विग्न रहकर वसना-रहना ( जग्गण वह बंधन ताडणंकण ) जागता, वध बंधन लाठी आदि का ताडन और लोहमय शलाका आदि से चिन्ह करना ( निवायण अट्ठि भंजण नासाभेय-प्पहार दूमण ) खड्डे में गिराना, हड्डी तोडना नाक में बींधना, लाठी के प्रहार करना, जलाना ( छविच्छेयण अभिओगपावण ) चमडे को छेदना, कान आदि अवयवों को वींधना, जबर्दस्ती काम में लगाना ( कसंकुसार निवाय दमणाणि ) चाबुक, अंकुश, और आर लकडी के अग्र भाग में लगी हुई कील इन सबों से शरीर पर आघात करना व दमन करना, ( वाहणाणि य ) व भार उठवाना ( मायापिति विप्पओग ) माता पिता से वियुक्त-जुदाई होना ( सोय परिपीलणाणि ) नाक मुंह आदि इन्द्रियों को पीडा पहुंचाना अथवा शोक से पीड़ित करना ( य ) और ( सत्थग्गि विसाभिघाय गल गवल आवल मारणाणि ) शस्त्र अग्नि और विष से हनन करना, गले व सींग को मोडना, अथवा गले को दवाकर और सींग को मोड कर मारना ( य ) और ( गल जालुच्छिप्पणाणि ) मत्स्य वींधने के कांटे और जाल से मछलियों को पानी से वाहर खींचना ( पओउलण विकप्पणाणि ) अङ्ग आदि को काटना और पकाना ( य ) और ( जावज्जीवग बंधणाणि ) जीवन भर के लिये बांधना, ( पंजर निरोहणाणि ) पींजरे में रोक रखना, ( य ) और ( सयूहनिद्धाडणाणि ) अपने यूथ-समूह से अलग कर देना ( धमणाणि ) महिष

वगैरह में वायु भर देना-यह 'फूका नाम का नृशंस कर्म आज भी सुना जाता है' (य) और (दोहणाणि) दूध दूहना (य) और (कुदंडगल बंधणाणि) कुदण्ड-बुरी लकडी से पीटना और वही गले में बांधना (वाडग परिवारणाणि) वाडे से हटाना (य) और (पंकजल निमज्जणाणि) अधिक कीचडमय पानी में डुबोना, (वारिप्पवेसणाणि) पानी में डालना—गिराना, (य) और (ओवायणि भंग विसमणिवडण दवग्गि जालदहणाई य) खड्डे आदि में गिराने से अङ्ग आदि का टूटना, पर्वत के शिखर वगैरह से गिरना-ऊंचे नीचे विषम प्रदेश में पडना और दावाग्नि से जलना इत्यादि (एवंते) इस प्रकार वे हिंसक जीव (दुक्खसय संपलित्ता) सैकडों दुःखों से जले हुए (नरगाउ आगया) नरक से आये हुए (इहं) यहाँ (सावसेसकम्मा) अवशेष बचे हुए बाकी कर्म वाले (तिरिक्ख पंचेंदिएसु) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों में (पाव कारी) पाप कारी जीव (अतीवअसायकक्कसाइं) अत्यन्त कठोर दुःखों को (पावंति) पाते हैं, । जो दुःख-(कम्माणि) कर्म जन्य तथा (पमाय—राग—दोस—बहु संचियाइं) प्रमाद और रागद्वेषों से बहुत सञ्चित किए गए हैं। ५।४।

भाव—"इस प्रकारण का अर्थ सहज है, इसलिये अन्वयार्थ से ही समझ लेवें। केवल इसका सारांश यहाँ दिया जाता है। पूर्व कृतकर्म के सञ्चय से तपे हुए जीव शारीरिक और मानसिक वेदना रूप भयङ्कर दुःख को भोगते हैं। आयु के अनुसार कई पल्योपम सागरोपम तक वे यमसे त्रास पाये हुए चिल्लाते रहते हैं। अरे बाप ! मैं मरता हू, छोडो मैं दुर्बल हूं, इस प्रकार निर्दय मत बनो, इत्यादि रूप से नारकीय जीवों के चिल्लाने पर और मैं प्यासा हूं मुझे पानी दो ऐसा कहने पर नरकपाल गण उनको तपा-गला-हुआ सीसा लाकर अञ्जलिमें देते हैं; जिसको देखते ही देह से धूजते हुए और आंखो में आंसू भर कर नारक जीव कहते हैं--महाराज ! हमारी प्यास मिटगई, अब हमें पानी नहीं चहिए, ऐसा कहते हुए चारों ओर भागने लगते हैं, तब उन्हें जबर्दस्ती पकडकर निर्दय यमदूत हंसते हुए उकलता हुआ सीसा मुहमें डाल देते हैं। उससे जलकर वे रोते हैं, भयङ्कर क्रन्दन करते हैं, नरक पाल व नारक जीवों के चिल्लाहट से नरकावास में बडा अनिष्ट शोर होने लगता है। जैसे किसी बडे नगर के जलने से वहाँ हाहाकार होने लगता है और चारों ओर उद्विग्नता फैल जाती है वैसे अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित नारकों का कोलाहल उद्वेजक हो जाता है। असिवन और वैतरणी आदि नरक के दुःख दायी

स्थानों में वे नारक जीव रोके जाते हैं। अत्यन्त उष्ण व कांटे युक्त रथमें जोते जाते, मुद्गर आदि अनेक वैक्रिय आयुधों से वे परस्पर भी प्रहार करते और दुःख उत्पन्न करते हैं, छिन्न भिन्न और अङ्गों के क्षत विक्षत हो जाने से अजरित देह होकर वे भूमितल पर लोटते हैं। इतने पर भी खैर नहीं, वृक कुत्ता और व्याघ्र आदि हिंसक पशु पक्षिओं से विविध तरह से मारे और पीडित किये जाते हैं बेहाल बने हुए नारक जीव चिल्लाते, उछलते और नीचे गिरते, एवं भँवरों की तरह चक्कर काटते हैं,। पश्चात्ताप के चलते जलते एवं अपने दुष्कर्मों को निन्दा करने लगते हैं,। वहां नरकावास में अधिकता से चिकने कर्मों को भोगकर आयु के पूर्ण हो जाने से वे मरकर तिर्यञ्चयोनि में जाते हैं। जो बहुत दुस्तर व दारुण है, जन्म जरा मरण और व्याधिओं के अनेक चक्र वाली तथा जल चर आदि जन्तुओं के रूप से परस्पर हिंसा के प्रपञ्च वाली हैं। पशुगति का दुःख जग प्रसिद्ध है। वह हिंसक जीव दीर्घकाल तक उसको भोगता रहता है,। पशुगति के दुःख—ठंढो, गर्मी, भूख, प्यास, तथा पराधीनता से होने वाले अनेक प्रकार के बंध बन्धन, ताडन, अङ्कन, अङ्गादि-छेदन, भेदन, अस्थि मोडन आदि हैं जो सुगम है, ऐसे नरक से आये हुए जीव, कर्म बचे रहने से तथा हार्दिक वर्तमान राग द्वेष से सञ्चित सैकडों दुःखों की तिर्यञ्च योनिमें पाते हैं। जो अत्यन्त कठोर होते हैं। सू० ५। ४।

सूत—"भमर मसगमच्छिमाइएसु य जाइकुल कोडिसय सहस्सेहिं नवहिं चउरिंदियाण तहिं तहिं चेव जम्मण मरणाणि अणुभवंता कालं संखेज्जकं भमंति नेरइअसमाण तिव्वदुक्खा फरिस रसण घाण चक्खुसहिया, तहेव तेइंदिएसु कुंथु पिप्पी-लिका अवधिकादिकेसु य जातिकुल कोडि सयसहस्सेहिं अट्ठहिं अणूणएहिं तेइंदियाण तहिं तहिं चेव जम्मणं मरणाणि अणुह-वंता कालं संखेज्जकं भमंति नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फरिस रसण घाण संपउत्ता, ( तहेव बेइंदिएसु ) गंडूलय जलूय किमिय चंदणगमादिएसु य जातिकुल कोडिसयसहस्सेहिं सत्तहिं अणू-णएहिं बेइंदियाण तहिं २ चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखिज्जकं भमंति नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फरिसरसण संप-उत्ता, पत्ता एगिंदियत्तणंपिय पुढवि जल जलण मारुयवणप्फति

सुहुमबायरं च पज्जत्तमपज्जत्तं पत्तेयसरीरणामसाहारणं च, पत्तेय सरीरजीविएसु य, तत्थवि कालमसंखेज्जगं भमंति अणंतकालं च अणंतकाए फासिंदिय भाव संपउत्ता दुक्खसमुदयं इमं अणिट्ठं पाविंति पुणो २ तहिं २ चेव परभव तरुगणगणे (गहणे) कोद्दालकुलिय दालण सलिल मलण खुंभण रुंभण अणलाणिल विविह सत्थघट्टण परोप्परामिहणण मारण विराहणाणिय अकामकाइं परप्पओगो दीरणाहिय कज्जप्पओयणेहिय पेस्सपसु निमित्तं ओसहाहारमाइएहिं उक्खणणउक्कत्थण पयणकोट्टण पीसण पिट्टण भज्जण गालण आमोडण सडण फुडण भंजण छेयण तच्छण विलुंचण पत्तज्झोडण अग्गिदहणाइयाति, एवं ते भवपरंपरादुक्खसमणुबद्धा अडंति संसारबोहणकरे जीवा पाणाइवायनिरया अणंतकालं। जेविय इह माणुसत्तणं आगया कहंचि (कहिवि) नरगा उव्वट्टिया अधन्ना तेविय दीसंति पायसो विकयविगल रूवा खुज्जा वडभा य वामणा य बहिरा काणा कुंटा पंगुला विउला य मूका य मम्मणा य अंधयगा एगचक्खूविणिहयसचिल्लया वाहिरोग पीलिय अप्पाउय सत्थवज्झबाला कुलक्खणुक्किन्नदेहा दुब्बल कुसंघयण कुप्पमाण कुसंठिया कुरूवा किविणा य हीणा हीणसत्ता निच्चं सोक्खपरिवज्जिया असुह दुक्ख भाग (गा) णरगाओ उव्वट्टिया इहं सावसेसकम्मा, एवं णरगं तिरिक्खजोणिं कुमाणुसत्तं च हिंडमाणा पावंति अणंताइं दुक्खाइं पावकारी। एसो सो पाणवहस्स फलविवागो इहलोइओ पारलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भयो बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चती, नय अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहंसु, नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नामधेज्जो कहेसीय (कहइसीह) पाणवहस्स फलविवागं। एसो सो पाणवहो चंडो रुद्दो खुद्दो अणारिओ निग्घिणो निस्संसो महब्भओ बीहणओ तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो निद्धम्मो निप्पि-

**वासो निक्कलुणो निरयवासगमण निधणो मोह महब्भय पव-ड्ढओ मरणवेमणस्सो । पढमं अहम्मदारं समत्तं त्ति बेमि ॥ सू० ६ । ४ ॥**

छाया-"भ्रमर मशक मक्षिकादिषुच जाति कुल कोटि शत सहस्रै र्नवभिश्चतुरिन्द्रियाणाम्, तत्र तत्र चैवं जन्ममरणानि—अनुभवन्तः कालं संख्यातक भ्रमन्ति नैरयिकसमानतीव्र दुःखाः स्पर्शन रसन घ्राण चक्षुः सहिताः । तथैव त्रीन्द्रियेषु कुन्थु पिपीलिकाऽवधिकादिषु च जाति कुल कोटिशतसहस्रैरष्टभिरन्यूनकैस्त्रीन्द्रियाणाम् तत्र तत्र चैव जन्म मरणान्यनुभवन्तः कालं संख्येयकं भ्रमन्ति नैरयिक समान तीव्र दुःखाः स्पर्श रसन घ्राण सम्प्रयुक्ताः ( तथैव द्वीन्द्रियेषु ) गण्डलक-जलौक-कृमिक-चन्दन कादिकेषु च जाति कुल कोटिशत सहस्रैः सप्तभिरन्यूनैः, द्वीन्द्रियाणां तत्र २ चैव जन्म मरणान्यनुभवन्तः कालं संख्येयकं भ्रमन्ति नैरयिकसमान तीव्र दुःखाः स्पर्शन रसन सम्प्रयुक्ताः । प्राप्ता एकेन्द्रियत्वमपिच पृथिवी-जल-ज्वलन-मारुत-वनस्पति सूक्ष्मं बादरं च पर्याप्तमपर्याप्त प्रत्येक शरीर नाम साधारणं च प्रत्येक शरीर जीवितेषु च तत्रापि कालमसंख्येय भ्रमन्ति; अनन्तकालं चानन्तकाये स्पर्शेन्द्रिय भाव सम्प्रयुक्ताः दुःख समुदाय मिममनिष्टं प्राप्नु वन्ति, पुनः २ तत्र तत्र चैव परभव तरुगणगहने कोद्दाल कुलिक दारणं, सलिल मलन क्षोभण रोधनम्, अनलाऽनिल विविध शस्त्र घट्टण परस्पराभिहनन मारण विराधनानिच, अकामकानि पर प्रयोगोदोरणाभिश्च कार्य प्रयोजनाभिश्च, प्रेष्य पशु निमित्तमौषधाऽऽहारादिकैः-उत्खननो त्कथन पचन कुट्टन प्रेषण पिट्टन भर्जन गालनाऽऽमोटन शटन स्फुटनाऽऽमर्दन च्छेदन तक्षण विलुञ्चन पत्र ज्झोडनाग्नि दाहनादीनि, एवन्ते भवपरम्परा दुःखसमणुबद्धा अटन्ति संसारे भयङ्करे जीवाः प्राणाति पात निरता अनन्त कालम् । येऽपिच इह मानुषत्वमागताः कथञ्चिन्नरकादुद्धृता अधन्यास्तेऽपिच दृश्यन्ते प्रायो विकृतविकलरूपाः कुब्जा वटभाश्च वामनाश्च वधिराः, काणाः, कुण्टाः, पङ्गुला, विकलाश्च, मूकाश्च, मन्मना अन्धका एकचक्षु र्विनिहताः, सर्वाऽपचक्षुषः, व्याधिरोगपोडिता अल्पायुषः शस्त्रवध्या बालिशाः ( बालाः ) कुलक्षणोत्कीर्णदेहा दुर्वल कुसंहनन कुप्रमाण कुसंस्थानाः ( संस्थिताः ) कुरूपाः कृपणाश्च, हीना हीनसत्वा नित्यं सौख्यपरिवर्जिता अशुभ दुःख भाजो नरकादिह सावशेषकर्म्माणः । एवं नरकं तिर्यग्योनिं कुमानुषतांच हिण्डमानाः प्राप्नु वन्ति-अनन्तानि दुःखानि पाप कर्म कारिणः । एष स प्राणवधस्य फलविपाक ऐहलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो बहुरजःप्रगाढो दारुणः कर्क-

ग्रोऽमातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते । नचाऽवेदयित्वा अस्ति हि मोक्ष इति आख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेयः कथितवान् प्राणवधस्य फल-विपाकम् । एष स प्राणवधश्चण्डो रुद्रः क्षुद्रोऽनार्यो निर्घृणो नृशंसो महाभयो भयानक-स्त्रासनकोऽन्याय्य ( नार्यः ) उद्वेजनकश्च निरवकांक्षो निर्द्धर्मो निष्पिपासो निष्करुणो निरय वास गमन निधनो मोहमहाभय प्रवर्धकः-प्रवर्तकः मरण वैमनस्यः । प्रथम मधर्म द्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ क ॥

## प्रथममधर्मद्वारं समाप्तम् ॥

अन्व-( य ) और ( चउरिंदियाण ) चतुरिन्द्रिओंके ( भमर मसग मच्छिमाइ-एसु ) भौंरे, मशक, मच्छर तथा मक्खी आदि में ( नवहिं जाइकुल कोडि सय सहस्सेहिं ) नव लक्ष-लाख जाति की कुल कोटिसे ( तहिं तहिं चेव ) चतुरिन्द्रियों के उन उन स्थानों में ही ( जम्मण मरणाणि ) जन्म मरणों को ( अणुभवंता ) अनुभव करते हुए ( संखेज्जकं कालं ) संख्येय कालतक ( भमंति ) परिभ्रमण करते हैं, वे ( नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा ) नैरयिक के समान तीव्र दुःख वाले ( फरिस रस घाण चक्खु सहिया ) स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु इन ४ इन्द्रियों से सहित हैं, ( तहेव ) चउरिन्द्रिय के समान ही ( ते इंदिएसु ) त्रीन्द्रिय=तीन इन्द्रिय वाली जाति में ( कुंथु पिप्पीलिका अवधिकादिकेसु य ) कुंथु पिपीलिका कीडी और अवधिका आदिकमें ( अट्ठाहिं जातिकुलकोडिसयसहस्सेहिं ) जाति कुल कोडि से जो आठ लाख हैं ( तेइंदियाण ) तीन इन्द्रियों के ( तहिं २ ) उन उन स्थानों में ( चेव ) ही ( जम्मण मरणाणि ) जन्म मरणों को ( अणुहवंता ) अनुभव करते हुए ( संखेज्जकंकालं ) संख्येयकालतक ( भमंति ) परिभ्रमण करते हैं, वे भी ( नेरइय समाण तिव्वदुक्खा ) नैरयिक के समान तीव्र दुःख वाले और ( फरिस रसण घाण संपउत्ता ) स्पर्शन रसन व घ्राण रूप तीन इन्द्रियों से युक्त हैं । ( य ) फिर ( गंडूलय जलूय किमिय चंदणगमादिएसु ) गिंडोला, जलूका, कृमि—कीडे और चंदनक—कौडी आदि में ( अणूणएहिं सत्तहिं जाति कुल कोडि-सयसहस्सेहिं ) पूरी सात लाख जाति की कुल कोडि से, ( बे इंदियाण ) बे इन्द्रिय जीवों के ( तहिं २ ) उन उन स्थानों में ( चेव ) ही ( जम्मण मरणाणि ) जन्म मरणों को ( अणु हवंता ) अनुभव करते हुए ( संखिज्जंकालं ) संख्येय कालतक ( भमंति ) भटकते हैं, वे—( नेरइय समाणदुक्खा ) नारकीय जीवों के समान तीव्र दुःखवाले ( फरिस रसण संपउत्ता ) स्पर्शनव रसन रूप २ इन्द्रियों से युक्त होते हैं,

( य ) फिर ( एगिंदियत्तणंपि ) एकेन्द्रियपन को भी ( पत्ता ) पाकर ( पुढविजल जलण मारुयवणप्फति ) पृथ्वी काय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय सम्बन्धी ( सुहुम बायरं ) सूक्ष्म और बादर नाम कर्म के उदय से होने वाले ( च ) और ( पज्जत्तमपज्जत्तं ) पर्याप्त तथा अपर्याप्त दशा ( पत्तेय सरीरणाम ) प्रत्येक शरीर नाम कर्म ( सहारणंच ) और साधारण नाम कर्म के उदय से साधारण पन को पाते हैं ( य ) और ( पत्तेयसरीरजीविएसु ) एक शरीर में एक जीव रूप से जीने वाले-प्रत्येक-भिन्न जीविओं में ( तत्थवि ) वहाँ पर भी ( कालमसंखेज्जं ) असंख्य कालतक ( भमंति ) परि भ्रमण करते हैं ( च ) और ( अणंतकाए ) अनन्त काय-निगोद आदि में ( अणंतं कालं ) अनन्त काल तक भ्रमण करते हैं ( फासिंदिय भाव संपउत्ता ) स्पर्शेन्द्रिय के भाव से युक्त जीव, वहां-( इमं अणिट्ठं ) कहे जाने वाले इस अनिष्ट ( दुक्खसमुदयं ) दुःख समूह को ( पुणो २ ) बारबार ( पाविंति ) पाते हैं ( तहिं २ चेव ) उन २ प्रत्येक आदि स्थानों में ही ( परभव तरुगण गहणे ) उत्कृष्ट स्थिति युक्त वृक्ष समूह के भव वाले अथवा परभव रूप वृक्ष समूह से गहन ऐसे एकेन्द्रिय पन में ( कोद्दाल कुलिय दालण सलिल मलण खुंभण रुंभण ) कुदाल और कुलिक एक प्रकार के भूमिखनने का अस्त्र व हल उनसे विदारण करना व पानी को मर्दन करना क्षुब्ध करना तथा रोक रखना "इस अंश से पृथ्वी वनस्पति और अप् कायके दुःख कहे गये हैं" ( अणला णिल विविह सत्थ घट्टण परोप्पराभि हयण मारण विराहणाणिय ) अग्निकाय और वायुकाय को अनेक प्रकार के पृथ्वी जल आदि शस्त्रों से घट्टन करना, तथा परस्पर के अभिघात से मारना, व पीड़ा पहुंचाना ( अकामकाइं ) इस प्रकार नहीं चाहने योग्य दुःख होते हैं, ( परप्पओगोदीरणाहिय ) दूसरे के प्रयोग से दुःख का उत्पादन और ( कज्जपओयणाहिय ) कार्य के प्रयोजनों से जो ( पेस्सपसुनिमित्तओसहाहारमाइएहिं ) सेवक जन और पशु आदि के लिये औषध व आहार आदि कारण से ( उक्खणण ) उखेड़ना ( उक्कत्थण ) त्वचा हटना—छीलना ( पयण कोट्टण ) पकाना कूटना—टुकडे करना ( पीसण-पिट्टण ) चक्की आदि में पीसना, पीटना या ऊखल आदि में कूटना ( भज्जण गालण ) भट्ठी में पकाना, गलाना या कपडे में छानना ( आमोडन सडन ) थोड़ा मोड़ना, खुद बिखर जाना, ( फुडण भज्जण ) फूटना—दो भाग होना भङ्ग होना ( छेयण तच्छण ) छेदना व वसूले आदि से छीलना ( विलुंचण-पत्तज्झोडण ) रोम आदि हटाना, नोचना, पत्ते गिराना ( अग्गिदहणाइयाति ) अग्नि दहन इत्यादिक इके-

न्द्रिय जीव के लिये ये सब दुःख के कारण होते हैं। ( एवं ते ) इस प्रकार वे ( भव परंपरा दुक्खसमणुबद्धा ) भव परम्परा—अनेक जन्मों में निरन्तर दुःखवाले ( जीवा ) एकेन्द्रिय जीव ( संसारवीहणकरे ) भयङ्कर संसार में ( पाणाइवाय-निरया ) प्राणातिपात—हिंसा में निरत ( अणतकलं ) अनन्त काल तक ( अडंति ) भटकते हैं ( जेविय ) और जोभी ( कहिंवि ) किसी तरह ( नरगाउव्वट्टिया ) नरक से निकले हुए ( इह ) यहाँ-मनुष्य लोक में ( मणुस्सत्तण ) मनुष्यपन—नरभव को ( आगया ) प्राप्त किये ( तेवि अधन्ना ) वेभी अधन्य-मन्दपुण्यवाले ( य ) और ( पायसो ) प्रायः ( विकयविगलरूवा ) विकृत व विकट रूप वाले ( दीसंति ) दिखते हैं, इसी बात को स्पष्ट कहते हैं, ( खुज्जा वडभा य ) कुब्ज—कूबडे वटभ-ऊपर से वक्र-वांके देह वाले और ( वामणा ) वामन-बहुत छोटे ( य ) और ( वहिरा ) बहरे ( काणा ) काणे ( कुंटा ) विकृत हाथ वाले ( पंगुला ) पंगु-चलने में असमर्थ ( विउला य ) और विकल अङ्ग वाले ( मूका ) गूंगे ( य ) और ( मंमणा ) मन्मन रूप से-अस्पष्ट रूप से बोलने वाले ( अंधिल्लगा ) अंधे ( एगचक्खू ) एक आंख वाले ( विणिहय सचेल्लया ) जिनकी एक आंख नष्ट हो गई है ऐसे एकाक्ष, तथा-पिशाचबाधा से पीडित ( वाहि रोग पीलिय अप्पाउय सत्थवज्झ वाला ) व्याधि कुष्ठ आदि, रोग—ज्वरादि इन दोनों से पीडित और अल्प आयु वाले; व शस्त्र से मारे गए तथा मूर्ख ( कुलक्खणुक्किन्नदेहा ) अशुभ लक्षणों से आकीर्ण-पूर्ण-देहवाले ( दुब्बल कुसंघयण-कुप्पमाण कुसंठिया ) दुर्बल, उत्तम-संहनन व शरीर रचना से हीन अधिक बडे या अधिक छोटे आकार वाले ( कुरूवा ) कुरूप ) किवणा य ) और कृपण अर्थात् रङ्क ( हीणा ) जाति आदि से हीन ( हीणसत्ता ) अल्प-सत्त्व वाले ( निच्चं सोक्खपरिवज्जिया ) सदा सुख से रहित ( इहं ) यहाँ ( असुह दुक्ख भाग णरगाओ ) नरक से निकले हुए अशुभ दुःख के भागी ( सावसेस-कम्मा ) अशुभ कर्म जिनके अवशेष हैं, ऐसे वे दिखते हैं, ( एवं ) इस प्रकार ( णरगं ) नरक ( तिरिक्खजोणिं ) तिर्यञ्चयोनि ( कुमाणुसत्तंच ) और कुमनुष्य जन्म में ( हिंडमाणा ) हींडते हुए ( पावकारी ) हिंसक लोग ( अणंताइं दुक्खाइं ) अनन्त दुःखों को ( पावंति ) पाते हैं, ( एसोसो ) वह है यह ( पाणवहस्स ) जीव हिंसा का ( फलविवागो ) फलरूप विपाक जो ( इहलोइओ ) इस मनुष्य लोक सम्बन्धी, और ( परलोइओ ) अन्य तीन लोक सम्बन्धी ( अप्पसुहो ) अल्प सुख वाला ( बहुदुक्खो ) बहुत दुःख वाला ( महब्भओ ) महाभय रूप ( बहुरयप्पगाढो )

अधिक कर्म रज के कारण अतिगाढा ( दारुणो ) रौद्र तथा ( कक्कसो ) कठोर ( असाओ ) असातवेदनीय कर्म के उदय से दुःखरूप ( वाससहस्सेहिं ) हजारों वर्षों से प्राणी उस दुःख से ( मुच्चइ ) छूटता है ( अवेदयित्ता ) विना भोगे ( नय अत्थिहु मोक्खोत्ति ) कर्म से छूटना नहीं होता, ( एवमाहंसु ) ऐसा तीर्थङ्करने कहा है जो ( नाय कुलणंदणो ) ज्ञात कुल के नन्दन ( महप्पा ) महात्मा ( जिणोय ) और वीतराग ( वीरवरनामधेज्जो ) वीरवर-महावीर नाम वाले तीर्थङ्करने ( सीह कहेसी पाणवहस्स ) सिंह के समान क्रूर ऐसे प्राण वध के ( फलविवागं ) फलरूप विपाक को ( कहइ ) कहा है। उपसंहार--( एसोसो ) यह पूर्व कथित स्वरूप वाला ( पाणवहो ) प्रणवध ( चंड ) क्रूर-कुपित करने वाला ( रुद्दो ) रौद्र-भयङ्कर ( खुद्दो ) नीच जनों से सेवित (अणारिओ) अनार्य कर्म ( निग्घिणो ) घृणा-रहित ( निसंसो ) दया रहित ( महब्भओ ) महाभय पैदा करने वाला ( बीहणओ ) डराने वाला और ( तासणओ ) त्रास देने वाला ( अणज्जो ) न्याय से बहिर्भूत तथा ( उव्वेयणओ ) उद्वेग करने वाला ( य ) और ( णिरवयक्खो ) दूसरे के प्राण की अपेक्षा रहित, ( निद्धम्मो ) धर्म से शून्य (निप्पिवासो ) पर प्राणी के प्रति स्नेह रहित ( निक्कलुणो ) करुणा रहित है, इसलिये ( निरय वास गमण निधणो ) नरक गतिमें गमन रूप अन्त वाला है, ( मोहमहब्भयपवड्ढओ ) मोह तथा भय को बढाने वाला और ( मरणवेमणस्सो ) मरण से प्राणिओं के चित्त में वैमनस्य - दीनता पैदा करने वाला है ( त्तिवेमि ) ऐसा मैं कहताहू। यहाँ प्रथम अधर्म द्वार समाप्त हुआ।

विवेचन—अर्थ सहजही है। इसलिये मात्र इसका सरांश लिखते हैं—'पञ्चेन्द्रियकी तरह हिंसक जीव चउरिंदिय के नो लाख कुल कोडिमें भ्रमर आदि रूप से जन्म मरण करते हैं, वहां स्पर्शन, रसन घ्राण और चक्षुरूप चार इन्द्रियों से युक्त होते हैं, ऐसे त्रीन्द्रिय के ८ आठ लाख कुल कोडी में कुंथु पिपोलिका आदि रूप से भी जन्म मरणों का अनुभव करते हैं। ये त्रीन्द्रिय जीव स्पर्शन रसन और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त होते हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय-बे इन्द्रिय के पूरे सात लाख कुल कोडिओं में गिडोला जलूका आदि रूप से जन्म मरण करते हैं। स्पर्श और रसन ये दो इन्द्रियाँ द्वीन्द्रिय जीवों को होती हैं। इन तीनों स्थनों में नारक जीवों के समान तीव्र दुःख भोगते और प्रत्येक के इन स्थानों में भ्रमण करता हुआ उत्कृष्ट संख्येय काल याने हजारों वर्ष पूर्ण कर देता है। फिर एकेन्द्रिय पन को पाकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति भेद से सूक्ष्म बादर, पर्याप्त अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर और

साधारण दशा में, वहाँ असंख्य तथा साधारण की अपेक्षा अनन्त काल तक दुःख समूह को पाते हैं। वृक्ष समूह से गहन परभव में कुद्दाल आदि से विदारण करना, जल का मर्दन करना, अग्नि वायु का संघट्टन करना ये सब दुःख का कारण है। निष्प्रयोजन या सप्रयोजन-प्रेष्य आदि के आहार अदि कारणों से उत्खनन आदि विविद दुःखों को भोगते हुए भव परम्परा से सम्बन्धित अनन्त काल तक इस भयङ्कर संसार में भटकते हैं। अगर कहीं पुण्यवशात् ये जीव मनुष्यपन में भी आ जांय तो अधन्य और प्रायः विकल रूप वाले कुब्ज कुरूप आदि होते हैं। इस प्रकार नरकयोनि तिर्यञ्चयोनि और पुण्य हीन मनुष्य भव को भटकते हुए पापी जीव अनन्त दुःख को पाते हैं यह प्राणवध का फलरूप विपाक है, जो उभय लोक सम्बन्धी और सुख रहित व बहुत दुःख वाला है, महाभयङ्कर कर्म रजकी अधिकता से प्रगाढ, दारुण और कठोर है, हजारों वर्ष से छूट सकता है, किन्तु विना भोगे कर्म से छुटकारा नहीं होता, ज्ञात कुल नन्दन भगवान् महात्मा महावीर ने हिंसाके इस प्रकार फल विपाक को कहा है।

उपसंहार—यह प्राणवध[1] क्रोध से होने के कारण चण्ड रौद्र है। आत्मभाव से गिरे हुए नीच लोक ही इसे करते हैं। इसलिये यह क्षुद्र एवं अनार्य कर्म है। दया व घृणा से शून्य तथा महाभय को उत्पन्न करने वाला है, हिंसा में न्याय बुद्धि नहीं होती अतः यह अन्याय्य है, उद्वेग जनक एवं पर प्राणों की अपेक्षा रहित होने से यह अधर्म है मोह तथा महाभय को बढाने वाला और नरकगति में निवासही इसका परिणाम है, दूसरे प्राणिओं के साथ वैमनस्य पैदा करना तो हिंसा का खास कार्य है। अतएव हिंसा रूप अधर्म द्वार सर्वथा हेय है। यह प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण हुआ। सू० ६।४॥

॥ इति प्रथममधर्म द्वारं समाप्तम् ॥

---

१—यहां स्थूल दृष्टि से छ काय के जीवों की शारीरिक हिंसा को ही प्राणवध में लिया है हिंसा का नाम भी प्राणवध अर्थात् दूसरे के प्राणों का वध करना रक्खा है। क्योंकि प्राणी सदा अमर है, इसलिये प्राणों का नाश करना उसके साथ वैर भाव नियत करना होता है। व्यवहार में अधिकांश होने वाली हिंसा का ही इस आस्रव द्वार में वर्णन है। अतएव मनुष्यवध का उल्लेख नहीं किया है। क्योंकि एक तो यह किसी जाति में विहित नहीं है और दूसरा निस्संकोच भाव से किया भी नहीं जाता। (अनुवादक)

—

"द्वितीयास्त्रवद्वारमधर्माख्यमारभ्यते"

# अथ द्वितीय-आस्रवद्वार

प्रकरण सम्बन्ध—

प्राणवध के बाद दूसरा आस्रव—मृषावाद है। इसमें मृषावाद-असत्य का वर्णन किया जाता है। हिंसा करनेवालों को झूठ भी बोलना पडता है अतः झूठ वाचिक-वचन सम्बन्धी-हिंसा बन जाती है। अतः अब प्रस्तुत अध्ययन में पांच द्वारों से मृषावाद की प्ररूपणा की जाती है। श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामीसे इस प्रकार फरमाते हैं—"

**मूल—"जम्बू! बितियं च अलियवयणं, लहुसगलहु चवल भणियं भयंकरं दुहकरं अयसकरं वेरकरगं अरतिरति राग दोस मणसंकिलेसवियरणं, अलिय नियडि साति जोय बहुलं नीयजण-निसेवियं, निस्संसं, अप्पच्चय कारकं, परम साहुगरहणिज्जं परपीलाकारकं, परमकिण्हलेस्ससहियं, दुग्गइविणिवाय वड्ढणं, भवपुणब्भवकरं चिरपरिचियमणुगतं, दुरंतं, कित्तितं वितितं अधम्मदारं !! ५ ॥**

छाया—"हे जम्बू! द्वितीयञ्चालीकवचनम्। लघु स्वकलघु चपलभणितं, भयङ्करं, दुःखकरमयशस्करं, वैरकरमरतिरतिरागद्वेषमनः संक्लेशवितरणम्, अलीक निकृति स्वाति—निर्विश्रम्भ योग बहुलं, नीचजन निषेवितं, नृशंसमप्रत्ययकारकं, परमसाधुगर्हणीयं, परपीडाकारकं परकृष्णलेश्यासहितं, दुर्गति विनिपातवर्द्धनं, भवपुनर्भवकरं चिरपरिचितमनुगतं, दुरन्तं, कीर्तितं, द्वितीयमधर्मद्वारम्। १ सूत्र ५॥

अन्वयार्थ—"( जंबू ! ) हे जम्बू ! ( अलिय ) अलीक वचन-झूठ ( वितियं ) दूसरा आस्रव है ( च ) और स्वरूप से वह-( लहुसगलहुचवलभणियं ) गुण गौरव से रहित लघु-तुच्छ लोगों से भी हल्का और चपल मनुष्यों से बोला गया ( भयंकरं ) भयङ्कर ( दुक्करं ) दुःखदायी ( अयसकरं ) अयश करने वाला ( वेरकरगं ) द्वेष कारक ( अरति रति राग दोस मण संकिलेस वियरणं ) अरति, रति, राग, द्वेष रूप मानसिक संक्लेश को देने वाला है ( अलिय ) निष्फल ( नियडि सातिजोय वहुलं ) कपट और अविश्वास जनक वचन के व्यापार की अधिकता वाला ( नीयजण निसेवियं ) और जो नीच जनों से सेवित है ( निस्संसं ) कृपा या श्लाघा से रहित ( अप्पच्चय कारकं ) विश्वास को नाश करने वाला ( परमसाहु गरहणिज्जं ) उत्तम साधुओं से निन्दनीय, ( निन्दित ) ( पर पीला कारकं ) दूसरे को पीड़ा देनेवाला ( परमकिण्हलेससहियं ) परमकृष्णलेश्यावाला ( दुग्गइ विणिवाय वड्ढणं ) दुर्गति व अधःपात को बढाने वाला, ( भव पुण ब्भवकरं ) जन्म जन्मान्तर को करने वाला ( चिरपरिचियमणुगतं ) अनेक जन्मों का परिचित होने से साथ रहने वाला ( दुरंतं, कित्तितं ) दुःख से अन्त है जिसका, वैसा कहा गया है यह ( वितित अधम्म-दारं ) दूसरा अधर्म द्वार है। १। सू० ५।

विवेचन—सूत्र का अर्थ स्पष्ट है। इस सूत्र में लघु आदि अनेक विशेषणों से मृषा वचन का स्वरूप दिखाया गया, अब छट्ठे सूत्र से इस मृषावाद के गुण निष्पन्न तीस नाम दिखाते हैं—"

**मूल—"तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा-अलियं १, सढं २, अणज्जं ३, मायामोसो ४, असंतकं ५, कूड कवडमवत्थुगंच ६, निरत्थयमवत्थयं च ७, विद्देसगरहणिज्जं ८, अणुज्जुकं ९, कक्कणाय १०, वंचणाय ११, मिच्छापच्छा कडंच १२, सातीउ १३, उच्छन्नं १४, उक्कूलंच १५, अट्टं १६, अब्भ-क्खाणं च १७, किब्बिसं १८, वलयं १९, गहणं च २०, मम्मणं च २१, नूमं २२, नियडी ( डी ) २३, अप्पच्चओ २४, असमओ २५, असच्च संघत्तणं २६, विवक्खो २७, अवहीयं २८, उवहिअ सुद्धं २९, अवलोवोत्ति ३०, अविय तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं, सावज्जस्स अलियस्स वइजोगस्स अणेगाइं ॥ सू० । २ । ६ ॥**

छाया—"तस्य च नामानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्। तानि यथा-'अलीकम् १, शठम् २, अनार्यम् ३, मायामृषा ४, असत्कम् ५, कूट कपटाऽवस्तुकञ्च ६, निरर्थकापार्थकञ्च ७, विद्वेष गर्हणीयम् ८; अनृजुकम् ९; कल्कना १०, वञ्चनाच ११, मिथ्या पश्चात्कृतम् १२, च सातिस्तु (अविश्रम्भम्) १३, अपच्छन्नम् १४; उत्कूलञ्च १५, आर्तम् १६, अभ्याख्यानञ्च १७, किल्विषम् १८, वलयम् १९, गहनञ्च २०, मन्मनञ्च २१, नूमं-(प्रच्छादनम्) २२; निकृतिः २३, अप्रत्ययः २४ असमयः २५, असत्य सन्धत्वम् २६, विपक्षः २७; अपधीकम्-(आज्ञातिगम्) २८, उपध्यशुद्धम् २९, अवलोप इति ३०, अपिच तस्यैतान्येवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत, सावद्यस्यालीकस्य वाग्योगस्यानेकानि ॥ २ ॥ ६ ॥

अन्व०—'(तस्स य) और उस मृषा वादके (गौण्णाणि) गुणनिष्पन्न (तीसं) तीस (णामाणि) नाम (होंति) होते हैं, (तंजहा) जैसे कि-वे निम्न लिखित हैं—'(अलियं १) अलीक-झूठ १, (सढं) मायावियों से किये जाने से शठ है २ (अणज्जं) अनार्यों के वचन होने से अनार्य है ३, (माया मोसो ४) माया रूप कषायसे सहित होने और मृषा होने से मायामृषा है ४, (असंतकं ५ असद् वस्तु को कहता है इसलिये असत्क है, (कूडकवडमवत्थुगंच) दूसरों को ठगने से कूट भाषा विपर्यय होने से कपट मौजूद नहीं होने से अवस्तु, इन तीनों पदों में किसी तरह समानता होने से यह सम्मिलित 'कूट कपट अवस्तु' एक ही छट्टा नाम है ६, (निरत्थयमवत्थयंच ७) निष्प्रजोजन होने से तथा सत्यहीन होने से 'निरर्थकापार्थक है ७' (विद्देस गरहणिज्जं) विद्वेष व निन्दा इन दोनों का कारण होने से विद्वेष गर्हणीय है ८, (अणुज्जुकं) कुटिल होने से अनृजुक है ९, (कक्कणाय) मायामय होने से कल्कना १०, (वंचणाय) ठगने का कारण होने से वञ्चना है ११, (मिच्छापच्छाकडंच) झूठा समझ कर न्यायवादियों से पीछा कर दिया जाता है, इसलिये यह मिथ्या पश्चात्कृत है १२ (सातीउ) अविश्वास कारक होने से इसको 'साति' कहते हैं १३ (उच्छन्नं) अपने दोष को व परगुणों को ढक देने से यह 'अपच्छन्न' है १४, (उक्कूलंच) सन्मार्ग से अथवा न्याय नदी के तट से गिरादेने के कारण यह 'उत्कूल' है १५ (अट्टं) पाप पीडितों का वचन होने से 'आर्त' १६, (अब्भक्खाणं) अविद्यमान दोषों को कहने से यह 'अभ्याख्यान' कहाता है १७,

( किब्बिसं ) पाप ) कारण होने से 'किल्विष है १८, ( वलयं ) वलय की तरह अन्तर शून्य और टेढा होने से इसको 'वलय' कहते हैं १९ ( गहणंच ) झूठे के अभिप्राय का पता नहीं चलने से यह सघन वन की तरह 'गहन' है २०; ( मम्मणंच ) साफ नहीं होने से 'मन्मन'है २१ ( नूमं ) सत्य को ढक देता है इसलिये 'नूम' प्रच्छादन है २२, ( नियथो ) माया को ढकने का वचन होने से यह 'निकृति' है २३ ( अप्प-घओ ) विश्वास का कारण नहीं होने से 'अप्रत्यय' है २४ ( असमओ ) सम्यक् आचार से हीन होने से 'असमय' है २५ ( असच्चसंधत्तणं ) झूठी प्रतीज्ञा का कारण होने से 'असत्य सन्धत्व है २६, ( विवक्खो ) सत्य और धर्म के विरोधी होने से 'विपक्ष' है २७ ( अवहीयं ) निन्दित बुद्धि वाला होने से यह 'अपधीक' कहाता है ( आणाइयं )–जिन भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करने से यह 'आज्ञातिग' है ) २८ ( उवहि असुद्धं ) उपधि—माया से अशुद्ध होने के कारण 'उपध्यशुद्ध' है २९ ( अवलोवोत्ति ) वस्तु के सद्भाव का लोप करने से 'अवलोप' कहाता है ३०, ( अविय तस्स० ) और उस मृषावाद के इत्यादि इस प्रकार के ये तीस नाम हैं; जो मृषावाद सावद्य सपाप और अलीक है तथा वचन का व्यापार है उसके ऐसे अनेक नाम हैं।

भावः–अर्थ स्पष्ट है, । मतलब यह कि इन मृषावाद के पूर्वोक्त तीस नाम हैं ही किन्तु इस प्रकार और भी अनेक नाम हो सकते हैं। इस तरह इस मृषावाद का यह नाम द्वार कहा गया । २ ।सू० ६ ।

## अब झूट बोलने वाले जीवों को कहते हैं–

मूल—"तंच पुण वदंति केई अलियं पावा असंजया अवि-रया कवड कुडिल कडुय चडुलभावा, कुद्धा लुद्धा भया य हस्स-ट्ठिया य सक्खी चोर चार भडा, खंडरक्खा, जियजूईकरा य, गहियगहणा, कक्ककुरुग कारगा, कुलिंगी, उवहिया, वाणियगा य, कूडतुल कूडमाणी. कूडकाहावणोवजीवी, पडगार कलाय

कारुइज्जा, वंचणपरा, चारिय चाटु यार नगर गोत्तिय परिचा-
रगा, दुट्ठवायि सूयक अणवल भणिया य, पुव्वकालियवयणदच्छा
साहासिका, लहुस्सगा, असच्चा, गारविया, असच्चट्ठावणाहिचित्ता
उच्चच्छंदा, अणिग्गहा, अणियता, छंदेण मुक्कवाता भवंति
अलियाहिं जे अविरया। अवरे नत्थिकवादिणो वामलोकवादी
भणंति-नत्थिजीवो न जाइ इह परे वा लोए, न य किंचिविफुसति
पुन्नपावं, नत्थिफलं सुकय दुक्कयाणं, पंच महाभूतियं सरीरं
भासंति हे! वातजोगजुत्तं पंच य खंधे भणंति। केई मणं च मण
जीविकावदंति। वाउजीवोत्ति एवमाहंसु, सरीरं सादियं सनि-
धणं इहभवे एगे भवे तस्स विप्पणासंमि सव्वनासोत्ति, एवं
जंपंति मुसावादी, तम्हा दाण वय पोसहाणं तव संजम बंभ-
चेरकल्लाणमाइयाणं नत्थि फलं, नवि य पाणवहे अलियवयणं, न
चेव चोरिक्क करण परदारसेवणं वा सपरिग्गह-पाव-कम्म-करणं
पि नत्थि किं चि न नेरइयातिरिय मणुयाण जोणी, न देवलोको वा
अत्थि, न य अत्थि सिद्धिगमणं अम्मापियरो नत्थि, नवि अत्थि
पुरिसकारो, पच्चक्खाणमवि नत्थि, नवि अत्थि कालमच्चूय
अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा नत्थि, नेवत्थि के वि (इ)
रिसओ धम्माधम्म फलं च, नवि अत्थि किंचिबहुयं च थोव-
कंवा, तम्हा एवं विजाणिऊण जहा सुबहु इंदियाणुकूलेसु सव्व
विसएसु वट्टह। णत्थि काइ किरिया वा अकिरिया वा एवं भणंति
नत्थिकवादिणो वामलोगवादी। इमं पि वितीयं कुदंसणं असब्-
भाववाइणो पण्णवेंति मूढा—संभूतो अंडकाओ लोको, सयं-
भुणा सयंच निम्मिओ, एवं एयं अलियं-पयावइणा इस्सरेण य
कयंतिकेति। एवं विण्हुमयं कसिणमेव य जगंति केई। एवमेके
वदंति मोसं। एको आया अकारको वेदको य सुकयस्स दुक्क-
यस्स य करणाणि कारणाणि सव्वहा सव्वहिं च निच्चोय नि-
क्किओ निग्गुणो य अणुवलेवओत्ति विय। एवमाहंसु असब्भावं,

जंपि इहं किंचि जीवलोके दीसइ सुकयंवा दुक्कयंवा एयं जदिच्छाए वा, सहावेण वावि दइवतप्पभावओ वावि भवति, नत्थेत्थ किंचि कयकं तत्तं लक्खणाविहाण नियतीएकारियं, एवं केइ जंपंति इड्ढिरससातगारवपरा, बहवे करणालसा परूवेंति धम्मवीमंसएण मोसं। अवरे अहम्मओ रायदुट्ठं अब्भक्खाणं भणेंति-अलियं चोरोत्ति अचोरयं करेंतं, डामरिउत्तिविय, एमेव उदासीणं दुस्सीलोत्ति य परदारं गच्छतित्ति मइलिंति सीलकलियं, अयंपिगुरुतप्पओ, अण्णे एमेव भणंति उवाहणंता मित्तकलत्ताइं सेवंति, अयंपिलुत्तधम्मो, इमोवि विस्संभवाइओ, पावकम्मकारी अगम्मगामी अयं दुरप्पा बहुएसु य पावगेसु जुत्तोत्ति एवं जपंति मच्छरी। भद्दके वा गुणकित्तिनेहपरलोग निप्पिवासा, एवंते अलियवयणदच्छा परदोसुप्पायणप्पसत्ता वेढेंति अक्खातिय वीएण अप्पाणं, कम्मबंधणेण मुहरी असमिक्खियप्पलावा निक्खेवे अवहरंति, परस्स अत्थंमि गढियगिद्धा अभिजुंजंति य परं असंतएहिं, लुद्धाय करेंति कूडसक्खित्तणं, असच्चा अत्थालियं च कन्नालियं च भोमालियं च तह गवालियं च गरुयं भणंति, अहरगतिगमणं, अन्नंपि य जातिरूवकुलसील पच्चंद मायाणिगुणं, चवलपिसुणं, परमट्ठभेदकमसकं, विदेसमणत्थकारकं, पावकम्मूलं, दुद्दिट्ठं दुस्सुयं, अमुणियं निल्लज्जं लोकगरहणिज्जं वहबंध परिकिलेसबहुलं जरा मरण दुक्खसोयनिम्मं असुद्ध परिणामसंकिलिट्ठं भणंति अलियाहि संधिसंनिविट्ठा, असंतगुणुदीरका य संतगुणनासका य हिंसाभूतोवघातितं अलियसंपउत्ता वयणं सावज्जमकुसलं साहुगरहणिज्जं अधम्मजणणं भणंति, अणभिगय पुन्नपावा, पुणोवि अधिकरण-

किरियापवत्तका बहुविहं अणत्थं, अवमद्दं, अप्पणो परस्स य करेंति, एमेव जंपमाणा महिससूकरे य साहिंति घायगाणं, ससय पसय रोहिए य साहिंति-वागुराणं, तित्तिर वट्टक लावके य कविंजलकवोयके य साहिंति साउणीणं, झस मगर कच्छभे य साहिंति मच्छियाणं, संखंके खुल्लए य साहिंति मगराणं, अयगर गोणस मंडलिदव्वीकरे मउली य साहिंति बालवीणं, गोहा सेहग सल्लग सरडगे य साहिंति लुद्धगाणं, गयकुल वानर-कुले य साहिंति पासियाणं, सुकवरहिण मयणसाल कोइल हंस कुले सारसे य साहिंति पोसगाणं, वध बंध जायणं च साहिंति गोम्मियाणं, धण धन्न गवेलए य साहिंति तक्कराणं, गामागर नगर पट्टणे य साहिंति चारियाणं, पारघाइय पंथघातियाओ साहिंति य गंठिभेयाणं, कयं च चोरियं नगरगोत्तियाणं, लंछण निल्लंछण धमण दुहण पोसण वणण दवण वाहणादियाइं साहिंति बहूणि गोमियाणं, धातुमणि सिलप्पवाल रयणागरे य साहिंति आगरीणं, पुप्फविहिं फलविहिं च साहिंति मालियाणं, अग्घ-महुकोसए य साहिंति वणचराणं, जंताइं विसाइं मूलकम्मं आहे-वण आविंधण आभिओग मंतोसहिप्पओगे चोरियपरदारगमण-बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघातियाओ वण दहण तलागभे-यणाणि बुद्धि विसविणासणाणि वसीकरणमादियाइं भयमरण किलेस दोसजणणाणि भाव बहुसंकिलिट्ठ मलिणाणि भूतघातो-वघातियाइं, सच्चाइंपि ताइं हिंसकाइं वयणाइं उदाहरंति-पुट्ठावा अपुट्ठावा परतत्तियवावडा य असमिक्खियभासिणो उव-दिसंति; सहसा उट्ठा गोणा गवया दमंतु, परिणयवया अस्सा हत्थी गवेलगकुक्कुडा य किज्जंतु, किणावेध य, विक्केह, पयह य सयणस्स देह पियय, दासिदास भयक भाइल्लका य सिस्सा य पेसकजणो कम्मकरा य किंकरा य एए सयण परिजणो य कीस अच्छंति ? भारिया भे करिंतु कम्मं, गहणाइं वणाइं खेत्तखिल भूमिवल्लराइं उत्तण घण संकडाइं डज्झंतु, सूडिज्जंतु य रुक्खा,

भिज्जंतु जंत भंडाइयस्स उवहिस्स कारणाए बहुविहस्सय अट्ठाए उच्छूदुज्जंतु, पीलिज्जंतु य तिला, पयावेह य इट्टकाउ मम घरट्ठयाए; खेत्ताइं कसह, कसावेह य लहुं, गाम आगार नगर खेड कव्वडे निवेसेह अडवीदेसेसु, विपुलसीमे पुप्फाणिय फला-णिय कंदमूलाइं कालपत्ताइं गेण्हेह, करेह संचयं परिजणट्ठयाए, साली वीही जवा य लुचंतु मलिज्जंतु उप्पणिज्जंतु य, लहुं च पविसंतु य कोट्ठागारं, अप्प मह उक्कोसगा य हंमंतु पोयसत्था, सेणा णिज्जाउ जाउ डमरं, घोरा वट्टंतु य संगामा, पवहंतु य सगड वाहणाइं, उवणयणं चोलगं विवाहो जन्नो अमुगम्मिउ होउ दिवसेसु करणेसु, मुहुत्तेसु, नक्खत्तेसु, तिहिसु य, अज्ज होउ ण्हवणं मुदितं, बहुखज्जपिज्जकलियं कोतुकं विण्हावणकं संतिकम्माणि कुणह, ससिर विगहोव रागविसमेसु सज्जण परियणस्स य नियकस्स य जीवियस्स परिरक्खणट्ठयाए पडि-सीसकाइं च देह, देह य सीसोवहारे, विविहोसहि मज्ज मंस-भक्खन्नपाण मल्लाणुलेवण पईवजलिउज्जलसुगंधिधूवावकार-पुप्फफल समिद्धे पायच्छित्ते करेह, पाणाइवायकरणेणं बहुविहेणं, विवरीउप्पायदुस्सुमिण पावसउणअ सोमग्गह चरिय अमंगल-निमित्त पडिघायहेउं, वित्तिच्छेयं करेह, मा देह किंचिदाणं, सुट्टुहओ (२) सुट्टुछिन्नो, भिन्नत्ति उवदिसंता, एवंविहं करेंति अलियं मणेण वायाए कम्मुणा य, अकुसला अणज्जा, अलियाणा, अलियधम्मणिरया, अलियासु कहासु अभिरमंता तुट्ठा अलियं करेत्तु होंति य बहुप्पयारं ॥ सू० ३ । ७ ॥

छाया—'तत्र पुनर्वदन्ति केचिदलीकं पापा असंयता अविरताः कपट कुटिल कटुक-चटुल-स्वभावाः, क्रुद्धा लुब्धा भय भीताश्च, हास्यार्थिकाश्च, साक्षिणः, चौर-चारभटाः, खण्डरक्षका, जितद्यूतकाराश्च, गृहीतग्रहणकाः कल्क गुरुक कारकाः, कुलिङ्गिनः, औपधिका ; वाणिजकाश्च, कूटतुला कूटमानिनः, कूटकार्षापणोपजीविनः, पटकार—कलाद—कारकीयाः वञ्चनपराश्चारिक चाटुकार नगर गोप्तृक परिचारकाः, दुष्टवादि सूचकर्णबलभणिताश्च, पूर्वकालिकवचनदक्षाः. साहसिका, लघुस्वकाः,

असत्या गौरविका, असत्य स्थापनाधिचित्ता, उच्चच्छन्दा, अनिग्रहा, अनियताश्छन्देन मुक्तवाचो भवन्त्यलीकाद् येऽविरताः । अपरे नास्तिकवादिनो वामलोकवादिनो भणन्ति—"नास्ति जीवो, न याति इह परत्र वा लोके, नच किञ्चिदपि स्पृशति पुण्य-पापम्, नास्ति फलं सुकृत दुष्कृतानाम्, पञ्चमहाभौतिकं शरीरं भाषन्ते हि वातयोग-युक्तम् । पञ्च च स्कन्धान् भणन्ति केचित् ( रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार-रूपान् ) मनश्चैव मनोजीविका वदन्ति । वायुर्जीव इत्येवमाख्यान्ति, । शरीरं सादिकं सनिधनम्, इह भव एको भवः । तस्य विप्रणाशे सर्वनाश इति । एवं जल्पन्ति मृषा-वादिनः । तस्माद्दानव्रतपोषधानां तपःसंयमब्रह्मचर्यकल्याणादीनां नास्ति फलम् । नापि च प्राणवधः, अलीक वचनं, नचैव चौर्यकरणं परदारसेवनं वा, सपरिग्रहपाप-कर्म करणमपि नास्ति, काचिन्न नैरयिकतिर्यङ्मनुष्याणां योनिः । न देवलोको वास्ति, न चास्ति सिद्धिगमनम् । मातापितरौ न स्तः । नाप्यस्ति पुरुषकारः, प्रत्या-ख्यानमपि नास्ति, नैवास्ति कालो मृत्युश्च । अर्हन्तश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवा न सन्ति, नैव सन्ति केऽपि ऋषयः धर्माऽधर्म फलं च नाप्यस्ति किञ्चद् बहुकं चस्तोकं वा; तस्मादेवं विज्ञाय यथा सुबहिन्द्रियानुकूलेषु सर्वविषयेषु वर्तस्व । नास्ति काचित् क्रिया वाऽक्रिया वा, एवं भणन्ति नास्तिकवादिनो वामलोकवादिनः । इदमपि द्वितीयं कुदर्शनमसद्भाववादिनः प्रज्ञपयन्ति मूढाः—"सम्भूतोऽण्डकाल्लोकः स्वयम्भुवा स्वयञ्च निर्मितः । एवमेतदलीकम्—प्रजापतिना चेश्वरेण कृतमिति केचिद्वदन्ति । एवं विष्णुमयं कृत्स्नमेव च जगदिति केचित्, एवमेके वदन्ति मृषाम्-"एक आत्माऽकारको वेदकोऽपि च सुकृतस्य दुष्कृतस्य च करणानि कारणानि सर्वत्र सर्वथा च नित्यश्च निष्क्रियो निर्गुणश्च अनुपलेपक इत्यपि च । एवं वदन्त्यसद्भावम् । यदपीह किञ्चिज्जीवलोके दृश्यते सुकृतं वा दुष्कृतं वा एतद् यदृच्छया वा, स्वभावेन वापि, दैवत-प्रभावा द्वापि भवति । नास्त्यत्र किमपि कृतक तत्त्वम् लक्षणविधान नियत्या कारितम्, एवं केऽपि जल्पन्ति । ऋद्धि रस सात गौरवपरा बहवः करणालसाः प्ररूपयन्ति धर्मविमर्शकेन मृषाम् । अपरेऽ-धर्मता राजदुष्ट मभ्याख्यानं भणन्ति–अलीकम्–चोर इत्यचौर्यं कुर्वन्तं, डामरिक इत्यपिच वैरमकुर्वाणञ्च । एवमेवादासीनं दुश्शील इति च परदारं गच्छतीति मलिनयन्ति शीलकलितम्–अयमपि गुरुतल्पगः । अन्य एवमेव भणन्ति–उपहन्ता मित्र कलत्राणि सेवन्ते । अयमपि लुप्तधर्मा इमेऽपि विश्रम्भवादिनः पाप कर्म कारिणोऽ गम्यागामिनः । अयं दुरात्मा बहुकेषु पापकेषु युक्त इति, एवं जल्पन्ति मत्सरिणो भद्रके वा गुण कीर्तिस्नेह परलोकनिष्पिपासाः । एवंतेऽलीक वचन दक्षाः परदोषो-

त्पादन प्रसक्ता वेष्टयन्ति अक्षितिक बीजेनाऽऽत्मानं कर्मबन्धनेन मुखरिणोऽसमोक्षित-प्रलापाः। निक्षेपानपहरन्ति परस्यार्थे ग्रथित गृद्धाः। अभियुञ्जते च परमसद्भिर्लुब्धाः, कुर्वन्ति कूटसाक्षित्वम्, असत्या अर्थालीकच, कन्यालीकच, भूम्यलीकञ्च तथा गवालीकञ्च, गुरुकं भणन्ति-अधरगतिगमनम्। अन्यदपि च जाति रूप कुल शील प्रत्यय माया निर्गुण चपल पिशुनं परमार्थ भेदकमसत्कम्, विद्वेषमनर्थकारकं पाप कर्ममूलं दुर्दृष्टं दुःश्रुतममनोज्ञम्, अनुचितं निर्लज्जं लोकगर्हणीयं वधबन्ध परिक्लेश-बहुलं जरा मरण दुःखशोक मूलं-(नेमम्) अशुद्ध परिणाम संक्लिष्टं भणन्ति, अलीका अली काऽभिसन्धि संनिविष्टा, असद्गुणोदीरकाश्च सद्गुणनाशकाश्च हिंसाभूतोप घातकम् अलीकसम्प्रयुक्ता वचनं सावद्यमकुशलं साधु गर्हणीयमधर्मजननं भणन्ति, अनभिगत पुण्यपापाः। पुनर प्यधिकरण-क्रिया प्रवर्तका बहु विधमनर्थमपमर्दमात्मनः परस्यच कुर्वन्ति, एवमेव जल्पन्तो महिष शूकरौच साधयन्ति घातकानाम्। शश प्रशय रोहितांश्च साधयन्ति वागुरिकाणाम्। तित्तिर वर्तक लावकांश्च कपिञ्जलक-[.]तोपांश्च साधयन्ति शाकुनिकानाम्। झषमकर कच्छ (क्ष) पांश्च साधयन्ति मात्स्य-कानाम्, शङ्खाङ्को क्षुल्लकांश्च साधयन्ति मकराणाम्। अजगर गोनस मण्डलि दर्वीक-रांश्च मुकुलिनश्च साधयन्ति व्यालपानाम्। गोधान् सेहक शल्यक शरटकांश्च साध-यन्ति लुब्धकानाम्। गजकुल वानरकुलानिच साधयन्ति पाशिकानाम् शुकबर्हि मदनशाला कोकिल हंसकुलानि सारसांश्च साधयन्ति पोषकाणाम्। वध बन्ध यातनांच साधयन्ति गौल्मिकानाम्। धन धान्य गवेलकांश्च साधयन्ति तस्करा-णाम्। ग्रामाकर नगर पत्तनानिच साधयन्ति चारिकाणाम्। पार घातिक पथि घातिको साधयन्ति च ग्रन्थिभेदकानान्। कृतांच चौरिकां नगर गुप्तिकानाम्। लाञ्छन निर्लाञ्छन ध्मान दोहन पोषण वञ्चन दमन वाहनादिकानि साधयन्ति बहूनि गोमि-कानाम्। धातु मणि शिला प्रवाल रत्नाकरांश्च साधयन्ति-आकरिणाम्। पुष्प विधि फलविधिच साधयन्ति मालिकानाम्। अर्घ्य मधु कोशांश्च साधयन्ति वनेचराणाम्। यन्त्राणि विषाणि मूलकर्माऽऽक्षेपणा वेधनाऽभियोग मन्त्रौषधिप्रयोगान् चौरिक परदार गमन बहु पाप-कर्म करणन्-अवस्कन्दान् ग्राम घातिकाः वन दहन तडाग भेदनानि, बुद्धि विषय विनाशनानि, वशीकरणादिकानि, भय मरण क्लेश दोष जन-कानि भावबहु संक्लिष्ट मलिनानि भूत घातोपघातकानि सत्यान्यपि, तानि हिंसकानि वचनान्युदाहरन्ति पृष्टा वा अपृष्टा वा परतप्तिव्यापृताश्च, असमोक्षितभाषिण उपदि-शन्ति-सहसा-उष्ट्रा गावो गवया दम्यन्ताम्। परिणत वयसोऽश्वाहस्तिनो गवेलकुक्कु

कुरुध्वं क्रीणीत, क्रापयत, विक्रीणीत, पचत च, स्वजनाय दत्त, पिबत, । दासीदास-भृतकभागहारिणः शिष्याश्च प्रेष्यजनः कर्मकराश्च किंकराश्च एते स्वजन परिजनाश्च कस्मादासते ? भर्या भवतः कृत्वा कर्म ( कुर्वन्तु कर्माणि ) गहनानि वनानि क्षेत्र खिलभूमिवल्लराणि उत्तृण घनसङ्कटानि दह्यन्तां सूद्यन्ताञ्च, वृक्षा भिद्यन्ताम्,यन्त्र भाण्डादिकस्योपधेः कारणाय बहु विधस्य चार्थाय, इक्षवो दूयन्ताम्, पीड्यन्ताञ्च तिलाः, पाच्यन्तां चेष्टका मम गृहार्थाय, क्षेत्राणि कृषत, कर्षयत च लघु; ग्रामाऽऽकर नगर खेट कर्वटानि निवेशयत, अटवीदेशेषु विपुलसीमानि ;पुष्पाणि च फलानि च, कन्द-मूलानि कालप्राप्तानि गृह्णीत; कुरुत सञ्चयम् । परिजनार्थाय शालयो व्रीहयो यवाश्च लूयन्ताम्; मर्द्यन्ताञ्च, उत्पूयन्ता—( उपनीयन्ता ) ञ्च, लघुच प्रविशन्तु कोष्ठागारम् । अल्पमहोत्कर्षकाश्च हन्यन्तां पोतसार्थाः । सेना निर्यातु डमरम्, घोरा वर्तन्ताञ्च संग्रामाः, प्रवहन्तु च शकटवाहनानि । उपनयनं, चूडाकर्म, विवाहो, यज्ञोऽमुष्मिन् भवन्तु ( तु ) दिवसे, करणे, मुहूर्ते, नक्षत्रे, तिथौच । अद्य भवतु स्नपन मुदितं, बहु खाद्यपेयकलितम् । कौतुकं, विस्नापनकं, शान्तिकर्माणि कुरुत, शशि रवि ग्रहोपराग विषमेषु स्वजन परिजनस्य च निजकस्य च जीवितस्य परिरक्षणार्थाय प्रतिशीर्षकाणि च दत्त, दत्त च शीर्षोपहारान्, विविधौषधिमद्यमांस भक्ष्यान्नपानमाल्यानुलेपन प्रदीपज्वलितोज्ज्वल सुगन्धि धूपापचार ( पापकार ) पुष्प फल समृद्धानि प्रायश्चित्तानि कुरुत, प्राणातिपातकरणेन बहुविधेन, विपरीतोत्पात दुःस्वप्न पाप शकुनाऽसौम्य ग्रह चरिताऽमङ्गलनिमित्तप्रतिघातहेतोर्वृत्तिच्छेदं कुरुत, मादत्त किञ्चिद्दानम् सुष्ठु हत २; सुष्ठु छिन्त, भिन्त, इत्युपदिशन्ति एवंविधं कुर्वन्त्यलीकम् । मनसा वचसा कर्मणा च अकुशला अनार्या अलीकाज्ञा अलीकधर्मनिरताः । अलीकासु कथासु अभिरममाणास्तुष्टा अलीकं कृत्वा भवन्ति च बहुप्रकारम् । ॥ सू० । ३ । ७ ।

## अब असत्य बोलनेवालोंका परिचय देते हैं—

अन्वयार्थ—"( तंचपुण ) और फिर उस ( अलियं ) असत्य वचनको ( वदंतिः ) बोलते हैं ( केई ) कई ( पावा ) पापी लोग जो ( अस्संजया ) असंयमशील( अवि० ) विरति रहित हैं ( कवडकुडिलकडुयचटुलभावा ) कपट के कारण कुटिल और परिणाम से दारुण व चंचल मन वाले ( य )और ( कुद्धा लुद्धा भया ) क्रोधी लोभी और दूसरों को डराने वाले, तथा स्वयं डरने वाले ( हस्सट्ठिया ) हंसी मजाक के अर्थी ( सक्खी ) साक्षी देने वाले ( चोर चार भडा ) चोर; गुप्तदूत व सैनिक ( खंडरक्खा ) सायर के हासिल लेने वाले ( जिय जूई करा य ) और जूआ में हारकर

फिर जूआ खेलने वाले ( गहियगहणा ) गिरवी रखने वाले ( कक्क कुरुग कारगा ) माया-कपट करने वाले ( कुलिंगी ) कुतिर्थी-या वेषधारी, ( उवहिया ) ठग ( वाणियगा ) व्यापार करने वाले-वणिक् लोग, ( कूड तोल कूडमानी ) खोटे तोल माप करने वाले ( कुडकाहावणोपजीवी ) नकली मुद्रा बनाने वाले ( पडगार कलायकार रुउ ) वस्त्र बुनने वाले, गहना-अलङ्कार बनाने वाले व शिल्पी लोग-छींपे आदि ( वंचण परा ) दिन रात ठगाई करने वाले ( चारिय-चाटुयार-नगर गोत्तिय-परिचारगा ) खोज निकालने में लगे हुए, खुशामद करने वाले और नगर की रक्षा करने वाले, व व्यभिचार में मदत देने वाले ( दुट्ठवायि सूयक अणवल भणिया य ) और खराबपक्ष लेने वाले, चुगली करने वाले, और सदा कर्जदार कहाने वाले ( पुव्वकालियवयणदच्छा ) बोलने वाले के अभिप्राय को जानकार उसके पहले बोलने में चतुर अथवा अतिशय और आगमज्ञान से विकल होने के कारण पूर्व कालिक अर्थ को बोलने में जो अदक्ष हैं; वैसे ( साहसिका ) बिना विचारे बोलने वाले ( लहुस्सगा ) आत्मबलसे हीन ( असच्चा ) सज्जनों के लिये अहितकारक ( गारविया ) ऋद्धि आदि गौरव से युक्त ( असच्चट्ठावणाहिचित्ता ) असत्य की स्थापना में चित्त वाले ( उच्चछंदा ) आत्मोत्कर्ष के विचार वाले, ( अणिग्गहा ) स्वच्छन्द ( अणियमा ) नियम रहित—अव्यवस्थित जीवन वाले ( छंदेण मुक्कवाता ) इच्छानुसार वचन का प्रयोग करने वाले, ( जे अलियाहिं ) जो झूठ वचनों से ( अविरया ) अविरत—अनिवृत्त ( भवंति ) होते हैं। वे अपनी इच्छानुसार झूठ बोलते हैं। अब दार्शनिक असत्यवादी कहे जाते हैं ( अवरे ) लौकिक झूठ बोलने वालों की अपेक्षा से दूसरे ( नत्थिकवादिणो ) नास्तिक वादी-लौकायतिक ( वाम लोक वादी ) लोक को विपरीत रूप से कहने वाले ( भणंति ) बोलते हैं कि—( नत्थिजीवो ) जीव नहीं है, ( न जाइ इह परे वा लोए ) मनुष्य आदि वर्तमान गति के जन्म में या परलोक में नहीं जाता ( नय किंचिवि फुसति पुन्नपावं ) और पुण्य अथवा पापका किञ्चित् भी स्पर्श नहीं करता है ( नत्थि फलं सुकय दुक्कयाणं ) सुकृत व दुष्कर्मों का कुछ भी फल नहीं है ( पंच महाभूतियं सरीरं भासंति ) पञ्च महाभूत—पृथ्वी, जल, वह्नि, वायु आकाश, इन से बना यह शरीर ही आत्मा भासित होता है (वात जोग जुत्तं) प्राण वायु के योग से क्रिया में लगा हुआ है, ( केई ) और कई-बौद्धाचार्य ( पंच य खंधे ) पांच [ रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार—नामके ] स्कन्धों को आत्मा ( भणंति ) कहते हैं ( च ) और कुछ बौद्ध विशेष ( मण जीविका ) मनको ही जीव

मानने वाले ( मणं ) मन को आत्मा ( वदंति ) कहते हैं, ( वाउजीवोत्ति ) ( उच्छ्वास आदि लक्षण वाला जीव है. ( एवम हंसु ) इस प्रकार कई कहते हैं. ( सरीरं साइयं सनिधनं ) शरीर पैदा होने से आदि वाला और मरने से अन्त वाला है ( इहभवे ) इस संसार में प्रत्यक्ष दिख पडने वाला भवही ( एगेभवे ) एक भव—जन्म है ( तस्स विप्पणासंमि ) इसके विनाश हो जाने पर ( सव्वनासोत्ति ) सर्व नाश हो जाता है अर्थात् आत्मा पुण्य पाप आदि कुछ नहीं रहता ( एवं ) इस प्रकार ( मुसा वादी ) झूठ बोलने वाले ( जपंति ) बोलते हैं ( तम्हा ) शरीर के साथ सबका नाश होता है, इसलिये ( दाण वय पोसहाणं ) दान, व्रत, पौषधोंका ( तव-संजम बंभचेर कल्लाणमाइयाणं ) तप, संयम, ब्रह्मचर्य रूप कल्याण मार्ग तथा सम्य-ग्दर्शनादि मार्गों का ( न त्थिफलं ) कोई फल नहीं है ( नवि य ) और न ( पाणवहे ) प्राणवध—हिंसा, ( अलियवयणं ) झूठबोलना ( चोरिक्ककरण ) चोरी करना ( वा ) अथवा ( परदार सेवणं ) पर स्त्री गमन करना ( सपरिग्गहपावकम्मकरणं ) परिग्रहों के साथ पाप क्रिया का सेवन करना ( पि ) भी अशुभ फल का कारण ( नत्थि ) नहीं है ( किंचि ) कुछ भी ( नेरइयतिरियमणुयाण ) नरक तिर्यक् मनुष्यों की ( जोणी ) योनि—जन्मस्थान ( न ) नहीं है ( वा ) अथवा ( देवलोको न अत्थि ) देव लोक नहीं है ( नय अत्थि सिद्धिगमणं ) और सिद्ध गति में गमन नहीं है ( अम्मा पियरो ) माता पिता ( नत्थि ) नहीं है, ( नवि अत्थि पुरिसकारो ) और पुरुषार्थ भी नहीं है ( पचक्खाणमवि नत्थि ) प्रत्याख्यान—धर्म साधन रूप से त्याग भी नहीं है. ( नवि अत्थि कालं मच्चूय ) और काल व मृत्यु भी नहीं है ( अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा ) अरिहन्त चक्रवर्ती बलदेव और वासु-देव ( नत्थि ) नहीं हैं ( नेवत्थि केवि रिसओ ), और कोई ऋषि—महर्षि भी कुछ नहीं हैं ( धम्माधम्म फलं च नवि अत्थि ) तथा धर्माधर्मों का फल भी कुछ नहीं है ( किंचि ) कुछ ( बहुयं ) बहुत ( वा ) अथवा ( थोवकं ) थोडा पुण्य पाप का परिणाम नहीं है। ( तम्हा ) इसलिये ( एव ) जीव को धर्माधर्म का फल नहीं मिलता ऐसा ( विजाणिऊण ) जान कर ( जहासुबहु ) जिस प्रकार बहुत अनुकूल हो वैसे ( इंदियाणुकूलेसु ) इन्द्रियों के अनुकूल ( सव्वविसएसु ) सर्व विषयों में ( वट्टह ) वर्तन करो—प्रवृत्ति करो ( काइ किरिया ) कोई क्रिया—प्रशस्त कार्य ( वा अकिरिया ) या अक्रिया अर्थात् पापक्रिया ( णत्थि ) नहीं है, ( एवं ) इस प्रकार ( नत्थिकवादिणो ) नास्तिक मतवाले ( भणंति ) बोलते हैं ( वामलोगवादी )

विपरीत लोक को कहने वाले ( इमंपि वितीयं कुदंसणं ) दूसरे इस कुदर्शन को भी ( असब्भाववाइणो ) कुभावों को-असद्भाव को बोलने वाले ( मूढा ) मूढ मति लोग ( पण्णवेंति ) प्ररूपण करते हैं जैसे (अंडकाओ ) अण्डे से ( लोको) यह संसार (संभूतो) पैदा हुआ है, ( सयंभुणा ) स्वयम्भू ब्रह्माने (सयं) खुद ( निम्मिओ) बनाया है. (एवं) इस प्रकार ( एयं ) यह (अलियं) मृषावद है (केति )कईवादी( पयावइणा )प्रजा पतिने (ईसरेणय) और ईश्वर ने (कयंति) बनाया 'ऐसाकहते हैं' (एवं) इस प्रकार (केई) कई वादी ( विण्हुमयं कसिणमेव जगंति ) समस्त जगत् ही विष्णुमय है 'ऐसा कहते हैं' ( एवमेके ) इस प्रकार कई एक वादी ( मोसं वदंति ) मिथ्या बोलते हैं; ( एको आया अकारको वेदकोय ) आत्मा एक तथा अकर्ता और भोक्ता है ( सुकयस्स ) सुकृत के ( य ) और ( दुक्कयस्स ) दुष्कृत के ( करणाणि ) इन्द्रियाँ ( कारणाणि ) हेतु ( सव्वहा ) सब प्रकार से ( सव्वहिंच ) और सब जगह 'हैं' ( निच्चोय ) और यह आत्मा नित्य ( निक्किओ ) निष्क्रिय तथा ( निग्गुणो ) निर्गुण अर्थात् सत्व रज-स्तम इन तीन गुणों से रहित है ( य ) और ( अणुवलेव ओत्ति विय ) कर्म बन्ध से अलिप्त-रहित—है ( एवमाहंसु—असब्भावं ) इस प्रकार असद् भाव को कहते हैं ( इहं जीव लोए ) इस संसार में ( जंपि ) जोभी( किंचि ) कुछ ( दीसइ ) दिखता है ( सुकयं ) सुकृत ( वा ) या ( दुकयं ) दुष्कृत ( एयं ) यह ( जदिच्छाए ) यदृच्छा से ( वा ) अथवा ( सहावेण ) स्वभाव से ( दइवत्तप्पभावओ वावि ) अथवा देवता-विधि या भाग्य के प्रभाव से ( भवति ) होता है, ( नत्थेत्थ किंचि कयकं तत्तं) यहाँ शुभ अशुभ कुछ भी पुरुषार्थ से किया हुआ तत्त्व-सत्य नहीं है, ( लक्खण विहाण नियतीए ) लक्षणों से विधान-भेद और स्वभाव से ( कारियं ) किया हुआ है, ( एवं केई जंपंति ) इस प्रकार कई वादी बोलते हैं ( इड्डिरससातागारव परा ) ऋद्धि, रस और साता के आदर वाले याने गर्व वाले ( बहवे ) बहुत से ( करणा-लसा ) क्रिया में आलसी लोग ( धम्म वीमंसएणं ) धर्म के विचार से ( मोसं ) मृषा का ( परूवेंति ) प्ररूपण करते हैं ( अवरे ) दूसरे कई ( अहम्मओ ) अधर्म को अङ्गीकार करके ( रायदुट्ठं ) राज दुष्ट अर्थात् राज विरोधी ( अब्भक्खाणं ) दोष कथन रूप ( अलियं ) झूठ ( भणंति ) बोलते हैं, जैसे ( अचोरयं ) चोरी नहीं ( करेंतं ) करने वाले को ( चोरोत्ति ) चोर ऐसा ( य ) और ( डामरिउत्तिवि ) शत्रु को भी लड़ाई करने वाला ( एमेव ) इसी प्रकार ( उदासीणं ) उदासीन को ( दुस्सीलोत्ति ) दुरशील-दुराचारी ( य ) और ( परदारं ) परस्त्री में ( गच्छतित्ति)

गमन करता है इस प्रकार ( अयंपि ) यह भी ( गुरुतप्पओ ) गुरु पत्नी गामी है, 'ऐसा कहकर' ( सीळ कळियं ) शील युक्त को ( मइलिंति ) मलिन बनाते हैं ( एमेव ) इसी प्रकार ( अन्ने ) दूसरे ( उवाहणंता ) दूसरों की कीर्ति को मिटाते हुए ( भणंति ) मृषा बोलते हैं, जैसे कि-( मित्त कलत्ताइं ) मित्र स्त्री में ( सेवंति ) गमन करते हैं ( अयंपि ) 'केवल वे नहीं किंतु' यह भी ( लुत्त धम्मो ) धर्म रहित है ( इमेवि ) यह भी ( विस्संभ घाइओ ) विश्वास घाती ( पावकम्मकारी ) पाप करने वाला तथा ( अगम्म गामी ) अगम्या-लकडी बहन आदि में गमन करने वाला है, ( अयं ) यह ( दुरप्पा ) दुष्ट आत्मा ( बहुएसु पावगेसु ) बहुत से पाप कार्यों में ( जुत्तोत्ति ) युक्त है ( एवं ) इस प्रकार ( मच्छरी ) मत्सरी लोग ( जंपंति ) बोलते हैं ( वा ) अथवा ( भद्दके ) गुणी व निर्दोष पुरुष के विषय में ( गुण कित्ति नेह पर लोग निप्पिवासा ) गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की इच्छा से रहित होकर मृषा बोलते हैं, ( एवं ) इस प्रकार ( अलिय वयण दच्छा ) झूठ बोलने में निपुण तथा ( परदोसुप्पायणप्पसत्ता ) दूसरों के दोष उत्पादन में तत्पर ( ते ) वे मृषावादी ( अक्खातियबीएण ) अक्षय दुःख के कारण भूत ( कम्म बंधणेणं ) कर्म बन्ध से ( अप्पाणं ) अपनी आत्मा को ( वेढेंति ) घेर लेते हैं ( मुहरी ) अनर्थ कारी होने से जिनका मुख ही शत्रु है, वे मुखारि वैसे ( असमिक्खियप्पलावा ) बिना विचारे बोलने वाले ( परस्स ) दूसरे के ( अत्थंमि ) द्रव्य में ( गढिय गिद्धा ) अत्यन्त लोभ वाले ( निक्खेवे ) रखी हुई ठेव को ( अव हरंति ) अपहरण कर लेते हैं ( य ) और ( परं ) दूसरे को ( असंतएहिं ) अविद्यमान दोषों से ( अभिजुंजंति ) जोडते हैं अर्थात् झूठे आक्षेप करते हैं ( लुद्धाय ) और लोभी मनुष्य ( कूडसक्खित्तणं ) झूठी साक्षी देने के कार्य को ( करेंति ) करते हैं, ( च ) और ( असच्चा ) अहित कारी लोग ( अत्थालियं ) धन सम्बन्धी झूठ ( कन्नालियं ) और कन्या सम्बन्धी झूठ ( तह ) तथा ( भोमालियं ) भूमि सम्बन्धी झूठ ( च ) और ( गवालियं ) गोआदि पशु सम्बन्धी झूठ ( गरुयं ) स्वपर को पीडा कारी होने से भारी ऐसे झूठ को' ( भणंति ) बोलते हैं, जो झूठ-( अहरगति गमणं ) नीचगति का कारण है ( अन्नं पिय ) और कहे हुए के सिवाय अन्य भी ( जातिरूव कुलसील पच्चयं ) जाति, रूप, कुल और शील-आचार के कारण वाला ( माया णिगुणं ) माया का गुण वाला या माया से निपुण ( चवल पिसुणं ) विचार आदि से चपल व पिशुन लोग ( परमट्ठ भेदकं ) जो वचन मोक्ष रूप परमार्थका घातक ( असकं ) अविद्य मान अर्थ वाला

या-'असंतगं' सत्त्व रहित ( विद्देसमणत्थकारगं, अप्रिय और अनर्थ कारक है ( पाव कम्म मूलं ) पाप कर्म का मूल ( दुद्दिट्ठं ) दुष्ट-मिथ्या दृष्टि वाला, ( दुस्सुयं ) मिथ्या श्रुत युक्त ( अमुणियं ) ज्ञान रहित और ( निल्लज्जं ) लज्जा से हीन ( लोक गरहणिज्जं ) लोक में निन्दनीय है ( वह बंध परिकिलेस बहुलं ) वध बन्ध और क्लेश की अधिकता वाला ( जरा मरण दुक्ख सोय निम्मं ) जरा-वृद्धावस्था मरण, दुःख तथा शोक का जो मूल है. वैसे ( असुद्ध परिणाम संकिलिट्ठं ) अशुद्ध परिणाम से संक्लेश युक्त 'ऐसे असत्य वचन को' ( भणंति ) बोलते हैं, जो ( अलियाहि संधि संनिविट्ठा ) झूठे अभिप्राय में लगे हुए ( य ) और ( असंत गुण दीरका ) असत् गुण की उदीरणा करने वाले याने झूठे गुण कहने वाले ( य ) और ( संत गुण नासगा ) विद्यमान गुण को नष्ट करने वाले अर्थात् छिपाने वाले ( हिंसा भूतोवघातित ) हिंसा से प्राणिओं का उपघात हो वैसे ( सावज्ज मकुसलं ) पाप सहित और जोवों के लिये अकुशल कारक ( साहुगरहणिज्ज ) साधुओं से निन्दित ( अहम्मजणणं ) अधर्म जनक (वयणं) वचन को (भणंति) कहते हैं ( अलिय संपउत्ता ) जो झूठ के प्रयोग करने वाले हैं ( अणभिगय पुन्नपावा ) पुण्य और पाप के हेतुओं से अनजान होते हैं ( पुणोवि ) और ( अधिकरण किरिया पवत्तका ) अज्ञान के वाद शस्त्र आदि अधिकरण बनाने व जोडने की क्रिया को करने वाले ( बहुविहं ) बहुत प्रकार के ( अणत्थं ) अनर्थ का कारण रूप ( अप्पणो ) अपने ( य ) और ( परस्स ) परके ( अवमद्दं ) अपमर्द--हानि को ( करेंति ) करते हैं, ( एमेव ) इसी प्रकार-बुद्धि के विना ( जंपमाणा ) बोलते हुए ( घायगाणं ) हिंसकों के लिये ( महिससूकरेय ) भैंसे और सूअर को ( साहिंति ) बताते हैं ( य ) और ( ससय पसय रोहिए ) शश; प्रशय व रोहित—पशु विशेष ( वागुराणं ) वागुरी को ( साहिंति ) बताते हैं, ( तित्तर वट्टक लावके ) तीतर वर्तक-वतक तथा लावक-लवे ( य ) और ( कविंजल कवोयकेय ) कपिंजल व कबूतरों को ( साउणोणं ) पक्षी मारने वाले शिकारिओं को (साहिंति ) बताते हैं ( झस मगर कच्छभेय ) झस, मगर और कच्छप आदि जलचर जन्तु ( मच्छियाणं ) मच्छीमारों को ( साहिंति ) बताते हैं। ( संखंके ) शङ्ख व अङ्क—जल जीव विशेष ( य ) और ( खुल्लए ) क्षुल्लक – कौडो के जीव ( मगराणं ) धीवर लोगों को ( साहिंति ) बताते हैं ( अयगर गोणस मंडलि दव्वीकरे ) अजगर, गोणस, मंडली और दर्वीकर जाति के सर्प ( मउलीय ) और मुकुली—फणा रहित सर्प के सब ( वालवीणं ) व्यालप-सर्पपकडने वालोंको ( साहिंति बताते हैं

( गोहा सेहग सल्लग सरडकेय ) और गोधा, सेह, शल्लकी और सरट ( लुद्धगाणं ) लुब्धकों को ( साहिंति ) बताते हैं ( य ) और ( गयकुल वानर कुले ) गजकुल और वानर कुलों को ( पासियाण ) पाश वालों के लिये (साहिंति ) बताते हैं (सुक बरहिण मयण साल कोइल हंस कुले ) तोता, मयूर, मेना कोकिला और हंस के कुल ( सारसेय ) और सारस पक्षी ( पोसगाणं ) पालने वालों को ( साहिंति ) कहते हैं ( च ) और ( गोम्मियाणं ) गुप्ति पालकों को ( वधबंधजायणं ) वध बंध और यातना ( साहिंति ) बताते हैं ( य ) और ( तक्कराणं ) चोरों को ( धणधन्न गवेलए ) धन धान्य तथा पशु ( साहिंति ) बताते हैं ( चारियाणं ) चारिक—गुप्तचरों को ( गामागर नगर पट्टणे य) ग्राम, आकर, नगर और पत्तन ( सहिंति ) बाते हैं ( य ) और ( गंठिभेयाणं ) ग्रन्थि छेदन करने वालों को ( पार घातिय पंथघातियाओ ) मार्ग के अन्त में याबीच में मारने—लूटने-की क्रियायें ( सहिंति ) कहते हैं ( च ) और ( नगर गोत्तियाणं ) नगर रक्षक-कोटवाल आदि को ( कयं चोरियं ) की हुई चोरी 'बताते हैं' ( गोमियाणं ) गो आदि पशु वालों को ( लंछण निल्लंछण धमण दुहण पोसण ) लांछन-कान आदि कतरना या निशान बनाना, निर्लांछन—बधिया करना याने खसी करना धमान-भैंस आदि के देह में हवा भरना, दोहन-दुहना, पोषण यव आदि देकर पुष्ट करना ( वण्ण दवण वाहणा दियाइ ) बछडे को दूसरी गौ में लगाकर दूसरी गौ को धोखा देना अर्थात् यह बच्चा मेरा ही है ऐसा धोखा देना, दुवन-पीडा देना वाहन—गाडी आदि में जोतना इत्यादि ( बहूणि ) बहुत से कार्य ( साहिंति ) कहते हैं ( य ) और ( आगरीणं ) खान वालों को ( धातु मणि सिल प्पवाल रयणागरे ) गैरिक आदि धातु, मणि-चन्द्रकान्त आदि, शिला-पत्थर, प्रवाल-विद्रुम-मूंगे और रत्नों की खानें ( साहिंति ) कहते हैं (मालियणं)मालिओं को (पुप्फविहिं) पुष्प के प्रकार ( च ) और ( फलविहिं ) फल के प्रकार ( साहिंति ) बताते हैं (य) और ( वणचराण ) भील आदि जंगलिओं को (अग्घमहुकोसए) कीमत और मधु के छाते ( साहिंति ) बताते हैं ( जताइं ) यन्त्र-लिखे हुए अक्षरों की रचना विशेष अथवा जलयन्त्र आदि ( विसाइं ) अनेक प्रकार के विष ( मूलकम्मं ) मूलकर्म-गर्भपात या गर्भाधान ( आहेवण आविंधणा आभिओग मंतोसहिप्पओगे ) आक्षेप-नगर में क्षोभ उत्पन्न करना, आव्यधन—क्षन्त्रप्रयोग, आभियोग्य-वशीकरण आदि प्रयोग, मन्त्र और औषधिओं के प्रयोगों को ( चारिय परदार गमण बहु पाव कम्म करणं ) चोरी, परस्त्रीगमन और अधिक पाप बंध के व्यापार करना ( उक्खंधे )

कपट से दूसरेके बलका उपमर्दन करना; ( गाम घातियाओ ) ग्राम घातक ( वण दहण तलाग भेयणाणि ) वन जलाना और तलाव फोडना (बुद्धि विस विणासणाणि) बुद्धि के विषय को नष्ट करना ( वसीकरणमादियाइं ) वशीकरण इत्यादि ( भयमरण किलेस दोस जणणाणि ) भय, मरण, क्लेश और द्वेष को उत्पन्न करने वाले ( भाव बहुसंकिलिट्ठ मलिणाणि ) जो अध्यवसाय-भाव से बहुत दुःखप्रद और मलिन हैं ( भूतघातोवघातियाइं ) प्राणिओं के घात और उप घात वाले ( सच्चाइंपि ) सत्य भी ( ताइं ) ऐसे उन ( हिंसकाइं ) हिंसक ( वयणाइं ) वचनोंको ( उदाहरंति ) बोलते हैं ( पुट्ठावा ) पूछे गये या ( अपुट्ठावा ) विना पूछे गये ( परतत्तियं वावडा ) दूसरेके कार्योंको सोचने विचारने में लगे हुए ( य ) और ( असमिक्खियभासिणो ) विना विचारे बोलने वाले ( सहसा ) अकस्मात् ( उवदिसंति ) उपदेश करते हैं ( उट्टा ) ऊंट ( गोणा ) गाय बैल, ( गवया ) गवय-रोझ जंगली गाएं को ( दंमंतु ) दमन करो अर्थात् इनको शिक्षित बनाओ ( परिणयवया ) प्रौढवय वाले-जवान ( अस्सा ) घोडे ( हत्थी ) हाथी ( गवेलग कुक्कुडाय ) और बकरे व मुर्गों को ( किज्जंतु ) खरीदो ( किणावेध ) खरीद कराओ ( य ) और ( विक्केह ) वेचो ( य ) और ( पयह ) पकाने योग्य वस्तुओं को पकाओ (सयणस्स ) स्वजन को (देह) देओ ( पियय ) मदिरा आदि पेय वस्तु को पिओ ( दासीदास भयक भाइल्लकाय ) और दासी, दास-नोकर भृतक-भोजन देकर पाले गए सेवक और भागीदार ( सिस्सा ) शिष्य ( य ) और ( पेसकजणो ) काम पर भेजने योग्य आदमी ( य ) और ( कम्मकरा ) कर्म करने वाले अर्थात् नियत समय तक आज्ञा पालने वाले (य किंकरा) और किंकर-पूछर कर काम करने वाले (एए) ये (सव सयणपरि जणोय) और स्वजन परिज(कीस)किसलिये (अच्छंति) बैठे हैं (भारिया) भरण करने योग्य हैं अर्थात् इनको वेतन चुका देना चाहिए ये (भे) आपके (कम्मं) कामको (करिंतु) करें, (गहणाइं) गहन-सघन ( वणाइं ) वन ( खेत्तखिलभूमिवल्लराइं ) खेत, खिलभूमि-विना जोती गई भूमि और वल्लर-खेत विशेष ( उत्ताण घण संकडाइं ) जो ऊगे हुए घासों से अत्यन्त भरे हैं उनको ( डज्झंतु ) जलाओ ( य ) और ( सूडिज्जंतु ) घास कटाओ या उखडाओ ( जंत भंडाइयस्स ) तिलयन्त्र - घानी और भांड-कुंडे आदि भाजन वगैरह ( उवहिस्स ) उपकरण के ( कारणाए ) निमित्त ( अ ) और ( बहुविहस्स अट्ठाए ) बहुत प्रकार के प्रयोजन से ( रुक्खा ) वृक्षों को ( भिज्जंतु ) कटाओ ( उच्छू ) इक्षु को ( दुज्जंतु ) कटाओ ( य ) और ( तिल ) तिलों को (पीलिज्जंतु)

पीलो-उनका तेल निकालो (य) और (इट्टकाउ) ईटों को (पयावेह) पकाओ (मम घरट्ठयाए) मेरे घर के लिये (खेत्ताइं) खेतों का (कसह) कर्षण करो (कसावेह) कर्षण कराओ. (य) और (लहुं) शीघ्र (गाम आगर नगर खेड कव्वडे) गांव, आकर-खान, नगर, खेडा और कर्वट-कुनगर इन सब को (निवेसेह) वसाओ (अडवी देसेसु). अटवी के प्रदेश में (विउलसीमे) विपुल सीमा वाले 'गांव आदि बसाओ' (य) और (पुप्फाणि) पुष्प (य) और (फलाणि) फलों को तथा (काल पत्ताइं) प्राप्त काल— लेने के समय पर पहुंचे हुए (कंद मूलाइं) कन्द मूल को (गेण्हेह) ग्रहण करो (परिजणट्ठयाए) परिजनों के लिये (संचयं) उनका संचय (करेह) करो (सालो) साल-धान्य (वीही) व्रीहि (य) और (जवा) जौको (लुणंतु) काटो, (मलिज्जंतु) मलो—मसलो (उप्पणिज्जंतु) हवा से साफ करो (लहुंच) और शीघ्र (कोट्ठागारं) कोठार में (पविसंतु) डालो (अप्पमहउक्कोसगाय) और छोटे, उसकी अपेक्षा मध्यम व उत्तम (पोयसत्था) नौकाके समूह-नौका व्यापारी (हम्मंतु) चलो या लूटो (सेणा) सेना (णिज्जाउ) निकले (डमरं) संग्राम भूमि में (जाउ) जावे (य) और (घोरा) भयङ्कर (संगामा) संग्राम (वट्टंतु) प्रवृत्त होवे (य) और (सगडवाहणाइं) गाडी व नौका आदि वाहन (पवहंतु) चलें (उवणयणं) उपनयन संस्कार (चोलगं) बालकका प्रथम मुंडन (विवाहो) विवाह सम्बन्ध (जन्नो) यज्ञ (अमुगम्मिउ) 'ये सब कार्य' अमुक (दिवसेसु) दिनों में (करणेसु) वालव आदि करणों में (मुहुत्तेसु) अमृत सिद्धि आदि मुहुर्तों में (नक्खत्तेसु) अश्विनी आदि नक्षत्रों में (य) और (तिहिसु) नन्दा आदि तिथिओं में (होउ) हो-होना चाहिए (अज्ज) आज (ण्हवणं) स्नपन-सौभाग्य आदि के लिये स्नान (होउ) हो (मुदितं) प्रमोद युक्त (बहु-खज्जपिज्जकलियं) मद्य मांस आदि बहुत से पेय भक्ष्य वाला (कोतुक) रक्षा या क्रीडा आदि (विण्हावणकं) विविध मन्त्र मूल आदि के द्वारा संस्कृत जल से स्नान कराना (ससिरवि गहोवरागविसमेसु) चन्द्र और सूर्य का राहु से उपराग-ग्रहण होना और विषम दुष्ट स्वप्न-अमङ्गल आदि में (संति कम्माणि) शान्ति कर्म (कुणह) करो (सजणपरियणस्स) स्वजन और परिजन (य) और (नियकाय) अपने (जीवियस्स) जीवन की (परिरक्खणट्ठयाए) रक्षा करने के लिये (पडिसोसगाइं) अपने मस्तक को पीठ—आटे आदि से बनी हुई आकृति (देह) देओ-दो (च) और (सीसोवहारे) पशु आदि के शिर की

बलि ( दहय ) दो-चढाओ ( विविहोसहि मज्ज मंस भक्खन्न पाण मल्लाणुलेवण पईव-जलि उज्जल सुगंधि धूवावकारपुष्फफलसमिद्धे ) जो शोषोंपहार विविध औषधि मद्य मांस भक्ष्य अन्न पानक-पेय, माल्य, माला चन्दन आदि का अनुलेपन और जलते हुए उज्ज्वल प्रदीप; सुगंधियुक्त धूप का अंगार पर डालना. तथा फूल फलों से पूर्ण है। ( पायच्छित्ते ) प्रायश्चित्त—दुष्ट स्वप्न आदि अशुभ के प्रतीकारको ( बहुविहेणं ) बहुत प्रकार के ( पाणाइवायकरणेणं ) प्राणातिपातरूप क्रिया से ( करेह ) करो 'प्रायश्चित्त करने का हेतु'-( विवरी उप्पाय दुस्सुमिण पावसउण असोमग्गह चरिय अमंगल निमित्त पडिघायहेउं ) विपरीत-अशुभसूचक-उत्पात, दुष्ट स्वप्न, पाप शकुन-खराब निमित्त, क्रूरग्रहों का संचार, अमङ्गलकारी-अङ्गस्फुरण आदि निमित्त इन सबके निवारणार्थ प्रायश्चित्त करो, ( वित्तिच्छेयं ) वृत्तिच्छेद जोविका का नाश ( करेह ) करो अर्थात् अमुक को जिविका तोडदो, ( मादेह किंचिदाणं ) कुछ भी दान मत दो ( सुट्ठु हओ सुट्ठुहओ ) अच्छा मारा, अच्छी तरह मारा गया ( सुट्ठु छिन्नो ) अच्छी तरह काटा गया ( भिन्नत्ति ) अच्छा भेदा गया ऐसा ( उवदिसंता ) उपदेश करते हुए ( एवं विहं ) इस प्रकार के ( अलियं ) मृषावाद को ( मणेण ) मनसे ( वायाए ) वाणी से ( य ) और ( कम्मुणा ) कर्म—कायासे ( करेंति ) करते हैं ( अकुसला ) जो क्या बोलना व क्या नहीं बोलना इस विचार से हीन हैं ( अणज्जा ) अनार्य हैं ( अलियाणा ) झूठे सिद्धान्त वाले व झूठी आज्ञा वाले ( अलिय धम्मणिरया ) मिथ्या धर्म में तत्पर ( अलियासु कहासु ) झूठी कथाओं में ( अभिरमंता ) रमण करने वाले (य) और (बहुप्पगारं) अनेक प्रकार के ( अलियं करेत्तु ) मिथ्या भाषण को करके ( तुट्ठा ) सन्तुष्ट ( होंति ) होते हैं ॥ सू० ३।७॥

भावार्थ—'कई पापी मनुष्य झूठ बोलते हैं जो संयम और व्रत से दूर हैं। तथा कपटी व चञ्चल स्वभाव वाले हैं। क्रोध, लोभ भय और हास्य के प्रयोजन से झूठ बोला जाता है। अधिकता से नीचे कहे गए लोग झूठ बोलते हैं। जैसे—गवाही देने वाले १, चोर २, दूत ३. भट-भाट या सैनिक ४, खंडरक्षक ५, जुआरी ६, गिरवी लेने वाले ७, मायावी-कपटी ८, भेषधारी-कुसाधु ९, ठग १०, वणिक-लेन देन करने वाले ११, नकली नाप तोल करने वाले १२, झूठे सिक्के बनाने वाले १३, वस्त्र बनाने वाले १४, सुनार १५, शिल्प से जीने वाले १६, ठगाई, खोज, परीक्षा और खुशामद आदि के लिये झूठ बोलते हैं। झूठे लोग शास्त्र ज्ञान से हीन बिना विचारे बोलने वाले तुच्छ हृदय के और धन आदि के अभिमानी होते हैं। प्रतिष्ठा की रक्षा और

मिथ्या मान मिटाने के लिये भी झूठ बोला जाता है। अपने आपको बडे मानने वाले स्वच्छन्दचारी व अनियमित जीवी लोग भी अधिकांश झूठ बोलते हैं। कई दार्शनिक भी लोकोत्तर मृषावादी होते हैं। जैसे नास्तिक लोग लोक के स्वरूप को विपरीत रूप से कहते हैं और तत्त्वों का असत् प्रतिपादन करते हैं। वामलोक वादी कहते हैं कि जीव नहीं है, और न वह परभव में ही जाता है। जीव न पुण्य पाप का बन्ध करता है और न उसको शुभ अशुभ फल ही भोगना पडता है। पञ्चभूतों का यह शरीर प्राण वायु से युक्त ऐसा भासित होता है। कई एक बौद्ध आचार्य-विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप ऐसे पांच स्कन्धों को कहते हैं। इनके विचारानुसार आत्मा यह कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। कितनेक मतवादी मन को ही आत्मा मानते हैं। दूसरे वायु-प्राण वायु को ही जीव कहते हैं। इनके मत से शरीर सादि सान्त है और वर्तमान जन्म ही एक भव है, क्योंकि शरीर के नाश होने के साथ ही सबका नाश हो जाता है। इस प्रकार ये सब मिथ्या बोलते हैं। शरीर के साथ सब का नाश हो जाता है इसलिये दान व्रत आदि सत्कर्मों का फल भी नहीं होता। हिंसा, झूठ चोरी, परदार गमन और परिग्रह रूप पापबंध का कोई कारण नहीं है। नरक, तिर्यञ्च और मनुष्य योनि; देवलोक तथा सिद्धिगति भी नहीं है। पुरुषार्थ, प्रत्याख्यान और काल मृत्यु भी नहीं हैं। माता पिता ऋषि और तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि भी नहीं हैं धर्म व अधर्म का थोडा बहुत फल भी नहीं मिलता। इसलिये इन्द्रिय के अनुकूल सब विषयों में प्रवृत्त रहना चाहिए। क्रिया वा अक्रिया कुछ नहीं है, इस प्रकार नास्तिक वादी मिथ्या कहते हैं। दूसरा कुदर्शन कर्तृत्ववादी का है, वे कहते हैं कि-लोक अण्डे से उत्पन्न हुआ और स्वयं ब्रह्मा ने इसको बनाया है। कई सम्पूर्ण जगत् को ही विष्णुमय कहते हैं, आदि। कई सांख्याचार्य इस प्रकार मृषा बोलते हैं—"आत्मा एक, अकर्ता और भोक्ता है। सुकृत और दुष्कृतों का कारण इन्द्रियाँ हैं आत्मा तो सब प्रकार से और सब जगह नित्य, निष्क्रिय तथा सत्त्वादिगुणों रहित व कर्म बन्ध से निर्लेप है-इस प्रकार असत्य बोलते हैं। इनके विचार से जो कुछ भी संसार में सुकृत दुष्कृत या इनके शुभाशुभ फल दिखते हैं ये स्वभाव प्रकृति-स या ईश्वर-विधि के प्रभाव से होते हैं, यहाँ कोई भी कृतक तत्त्व नहीं है इत्यादि कई कहते हैं, ऋद्धि, रस व साताके अहङ्कारी बहुत से आलसी लोग धर्म के विचार से झूठ बोलते हैं। दूसरे अधर्म से राजदुष्ट झूठा आरोप बोलते हैं-चोरी नहीं करने वाले को चोर और शीलवान् को भी दुश्शील तथा अगम्या गामी कहते,

हैं। भद्र पुरुष में मत्सरी लोग गुण कीर्ति आदि की अपेक्षा नहीं रखते हुए झूठे दोष लगाते हैं। इस प्रकार वे झूठ बोलने वाले दूसरों के दोष निकालने में तत्पर अपनी आत्मा को गाढ कर्म बन्ध से बांध लेते हैं। दूसरे के धन में आसक्त होकर निक्षेप-ठेव का अपहरण करते हैं और दूसरों के ऊपर असत्य कारणों से अभियोग करते हैं, लोभ वश झूठी साक्षी देते हैं। असत्य के मुख्य प्रकार---'अर्थालीक-धन सम्बन्धी झूठ १ कन्यालीक-लडके लड़की व स्त्री पुरुष के बाबत बोला जाने वाला झूठ २ भूम्यलीक भूमि के विषय में बोला गया ३ गवालीक और पशुओं के लिये बोला गया झूठ ४ इस प्रकार महा अनर्थ के कारण व नीच गति में पहुंचाने वाले मृषावाद को बोलते हैं। जाति, रूप, कुल और शील के कारण झूठ बोला जाता है, वह परमार्थ का भेदक और द्वेष व अनर्थ का कारण है। यावत् जरा मरण दुःख और शोक का मूल तथा अशुद्ध परिणाम से मलिन है। झूठे लोग असत्य गुण को कहने वाले व सद्गुण को छिपाने वाले हिंसाकारी सावद्य-वचन को बोलते हैं। जो साधु पुरुषों से निन्दित और अधर्म का जनक है। पुण्य पाप के अनजान व असत्य वादी फिर बहुत तरह की शस्त्र क्रिया के प्रवर्तक कई तरह के अनर्थ और स्वपर का अपमर्द करते हैं। ये लोक निर्दयता से शिकार करने वाले शिकारिओं को उनको शिकार-पशु, पक्षी या मच्छी आदि बताते हैं। तथा शिकारी को उत्तेजित करते हैं। हिंसक लोग भय मरण और क्लेश को उत्पन्न करने वाले मलिन भावों से युक्त भय को भी हिंसा मय बनाकर बोलते हैं। फिर वे दूसरों के कार्यों को विचारने वाले और बिना विचारे बोलने वाले सहसा निम्न प्रकार से उपदेश करते हैं-ऊंट बैल आदि का दमन करो। जवान हाथी घोडे आदि खरीदो, और खरीद कराओ, देखो अमुक चीज पकाओ, स्वजनों को दो, मद्य आदि का पान करो, ये दासी दास आदि क्यों बैठे हैं? इनका पालन करो, ये आपका काम करें, गहन वन तथा खेत आदि जलाये जांय। यन्त्र या भाजन आदि के लिये वृक्षों को काटो, इक्षु को काटो, और तिलों से तेल निकालो, रस निकालो। मेरे घर के लिये ईंटें पकाओ, खेत जोतो, तथा दूसरों से जुतवाओ। इस अटवी के मैदान में बडे गांव नगर आदि बसाओ, पके हुए फल फूल और कन्द मूल आदि को ग्रहण करो; तथा संचय करो, शाल आदि धान्यों को काटो, खला बनाओ, मर्दन करो और हवा में उडाकर साफ करो तथा शीघ्र कोठे में भरो। छोटे बडे जहाज चलाये जांय, सेना प्रयाण करे व युद्ध भूमि में जाय भयङ्कर संग्राम चालू हो, गाडी या नौका आदि वाहन चलाये जांय। अमुक

शुभतिथि, दिन, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में उपनयन आदि संस्कार किये जाय, यज्ञ किया जाय। आज वधू का सौभाग्य सूचक स्नान हो। बहुत प्रकार के खान पान वाला उत्सव किया जाय, और अभिषेक हो। चन्द्र सूर्य के ग्रहण और अमाङ्गलिक शकुन आदि की शान्ति की जाय। स्वजन परिजन और अपने जीवन की रक्षा के लिये बनावटी शिर चढाओ। पशुओं के शिर चढाओ, जो विविध ओषधि व मद्य मांस फल फूल आदि से पूर्ण हो। उत्पात व अशुभ स्वप्न आदि के निवारणार्थ बहुत प्रकार के हिंसा युक्त कार्यों से प्रायश्चित करो। इसकी वृत्ति बंद करदो कुछ भी दान मत दो। यह अच्छा काटा गया, मारा गया इस प्रकार सावद्य उपदेश करते हुए मन वचन तथा कर्म से मृषा कार्य करते हैं। ये लोग भाषा ज्ञान में अकुशल अनार्य और झूठे सिद्धान्त वाले हैं, मिथ्या धर्म में तत्पर होने से झूठी कथाओं में रमण करते हुए बहुत प्रकार से झूठ बोल कर सन्तुष्ट होते हैं ॥ सू० । ३ । ७ ॥

## अब झूठ बोलने का फलदिखाते हैं—

मूल—तस्सय अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालं बहुदुक्ख संकडं नरय तिरियजोणिं। तेणय अलिएणसमणुबद्धा आइद्धा पुणब्भवंध-कारे भमंति भीमे दुग्गतिवसहिमुवगया। तेय दीसंतिह दुग्गया दुरंता परवसा अत्थभोगपरिवज्जिया असुहिता फुडियच्छवि बीभच्छविवन्ना खरफरुसविरत्तज्झामज्झुसिरा निच्छाया लल्ल-विफलवाया असक्कतमसक्कया अगंधा अचेयणा दुभगा अकंता काकस्सरा हीणभिन्नघोसा विहिंसा जडबहिरन्धया य मम्मणा अकंतविकय करणाणीया णीयजण निसेविणो लोग गरहणिज्जा भिच्चा असरिसजणस्स पेस्सा, दुम्मेहा लोक वेद अज्झप्प समय सुतिवज्जियानराधम्मबुद्धि वियला अलिएण य तेणं पडज्झ-माणा असंतएण य अवमाणण पट्ठिमंसाहिक्खेव पिसुणभेयण गुरुबंधव-सयण-मित्तवक्खारणादियाइं अब्भक्खाणाइं बहु-विहाइं पावेंति, अणुत्तमाणि ( मणोरमाइं ) हिययमण दूमकाइं, जावज्जीवं दुरुद्धराइं। अणिट्ठखर फरुस वयण तज्जण निब्भच्छण

दीणवदण विमणा कुभोयणा कुवाससा कुवसहीसु किलिस्संता नेव सुहं, नेव निव्वुइं उवलभंति। अच्चंत विपुलदुक्खसयसंपलिता। एसो सो अलियवयणस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ। न य अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पाजिणोउ वीरवरनामधेज्जो कहेसी य अलियवयणस्स फलविवागं। एयं तं वितीयंपि अलियवयणं लहुसगलहु चवल भणियं भयकरं दुहकरं अयसकरं वेरकरगं अरति रति राग दोस मण संकिलेस वियरणं अलियणियडि साइजोगबहुलं णीयजण निसेवियं निस्संसं अप्पच्चयकारकं परमसाहुगरहणिज्जं परपीलाकारकं परमकण्हलेससहियं दुग्गतिविनिवायवड्ढणं पुणब्भवकरं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं (त्तिबेमि) दारं वितियं अधम्मदारं समत्तं॥ ४॥ सू० ८॥

टीका—"तस्य चालीकस्य फलविपाक मजानन्तो वर्द्धयन्ति महाभयामविश्राम वेदनां दीर्घ कालं बहु दुःख सङ्कटां नारक तिर्यग्योनिम्। तेन चालीकेन समनुबद्धा आदिग्धाः पुनर्भवान्धकारे भ्रमन्ति भीमे दुर्गतिवसतिमुपगताः। तेच दृश्यन्ते दुर्गता दुरन्ताः परवशा अर्थभोगपरिवर्जिता असुखिताः स्फुटितच्छवि बीभत्सविवर्णाः खर परुष विरक्त ध्याम सुषिरा निच्छाया लल्लविफलवाचः, असंस्कृताऽसत्कृता अगन्धा अचेतना दुर्भगा अकान्ताः काकस्वरा हीनभिन्नघोषा विहिंसा जडबधिराऽन्धक अ मम्मणा अकान्त विकृत करणा नीचा नीच जन निषेविणो लोकगर्हणीया भृत्या असदृशजनस्य प्रेष्या दुर्मेधसः लोकवेदा ध्यात्म समय-श्रुति-विवर्जिता नरा धर्मबुद्धि विकलाः, अलीकेन च तेन प्रदह्यमाना अशान्तकेन च अवमानन-पृष्टमांसाधिक्षेप पिशुन भेदन गुरुबान्धव स्वजन मित्रा पक्षारणादिकानि—अभ्याख्यानानि बहुविधानि प्राप्नुवन्ति। अमनोरमाणि हृदयमनोदावकानि यावज्जीवं दुरुद्धराणि। अनिष्ट खर परुष वचन तर्जन निर्भर्त्सन दीन वदन विमनसः कुभोजनाः कुवाससः कुवसतिषु क्लिश्यन्तो नैव सुखं नैव निर्वृतिमुपलभन्तेऽत्यन्त विपुल दुःखशतसम्प्रदीप्ताः। एष सोऽलीकवचनस्य फल विपाक ऐहलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो

बहुरजः प्रगाढो दारुणः कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैमुच्यते, नचाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्ष इति। एवमाख्यातवान् ज्ञातकुल नन्दनो महात्मा जिनस्तु वीव वर नाम धेयः कथ यियाति चालीकवचनस्य फल विपाकम्। एतत्तद्वितीयमपि अलीक वचनं लघु स्वक लघुचपलभणितं भयङ्करं दुःखकरमयशस्करं वैर कारकम् अरति रतिरागदोष-मनः संक्लेश विरचनम् अलीक निकृतिसाति योग बहुलं नीच जननिषेवितं नृशंसम-प्रत्ययकारकं परमसाधु गर्हणीयं पर पीडा कारकं परम कृष्णलेश्या सहितं दुर्गति विनिपातवर्द्धनं पुनर्भवकरं चिरपरिचया (चिता,) ऽनुगतं दुन्रनं (दुरुक्तं) इति व्रविमी द्वितीयम धर्मद्वारंसमाप्तम् ॥ २ ॥ सूत्र ४। ८॥

अन्व—"( तस्सय ) ओर उस ( अलियस्स ) झूठ के ( फलविवागं ) फपरूप परिणाम को ( अयाण माणा ) नहीं जानते हुए ( महब्भयं ) भयङ्कर ( अविस्सामवे-यणं ) अविश्रान्त वेदना वाली ( दीहकाले ) दीर्घ काल की स्थितियुक्त ( बहु दुक्ख संकडं ) बहुत दुःखों से पूर्ण-ऐसे ( नरय तिरिय जोणिं ) नरक और तिर्यग्योनि को ( वड्ढेंति ) बढाते हैं, ( तेणय अलिएण ) और उस झूठ से ( समणुबद्धा ) अच्छी तरह बंधे हुए ( आइद्धा ) अच्छी तरह से बढे हुए ( भीमे ) भयङ्कर ( पुणब्भवंध कारे ) पुनर्भव-जन्मान्तर रूप अन्धकार में ( दुग्गति वसहि मुवगया ) दुर्गतिवास को प्राप्त हुए ( भमंति ) भटकते हैं ( तेय ) और वे-मृषावादी ( दीसंतिह ) इस संसार में ऐसे दिखते हैं ( दुग्गया ) बुरी हालत वाले ( दुरंता ) दुःख मय अन्त वाले ( परवसा ) पराधीन ( अत्थभोगपरिवज्जिया ) धन और धनोपभोग से हीन ( असुहिया ) सुख से या मित्र से रहीत ( फुडियच्छवि बीभच्छविवन्ना ) फटी हुई चमडी वाले, विकार युक्त रूप और खराब वर्ण वाले हैं ( खर फरुस विरत्तज्झाम ज्झुसिरा ) अत्यन्त कर्कश स्पर्श वाले, निरानन्द, कान्तिहीन और सारहीन शरीर वाले ( निच्छाया ) शोभा रहित ( लल्ल विफलवाया ) अव्यक्त व सफलता से रहित वाणी वाले ( असक्कत मसक्कया ) संस्कार और सत्कार से रहित हैं ( अगंधा ) बदबूदार देह वाले-दुर्गन्ध ( अचेयणा ) विशिष्ट चेतना से हीन ( दुभगा ) दुर्भगय कमनसीब ( अकंता ) अशोभन ( काकस्सरा ) काक के समान रूक्ष स्वर वाले ( हीण भिन्न घोसा ) धीमी और अस्फुट-फटे हुए स्वर यानी आवाज वाले ( विहिंसा ) विशेष हिंसा वाले ( य ) और ( जड बहिरंधया ) गूंगे बहरे तथा अन्धे व ( मम्मणा ) अव्यक्त बोलने वाले होते हैं ( अकंत विकयकरणा ) सुन्दरता रहित विकृत इन्द्रिय वाले ( णीया ) नीच ( नीयजण निसेविणो ) नीच जनों की सेवा करने वाले( लोग

गरहणिज्जा ) लोक में निन्दनीय ( भिच्चा ) भृत्य ( असरिस जणस्स पेस्सा ) असमान शील वाले लोगों के नोकर या द्वेषपात्र होते हैं ( दुम्मेहा ) दुष्ट बुद्धि ( लोक वेद अज्झप्प समयसुतिवज्जिया ) लोकशास्त्र-भारत आदि, वेद-ऋक् साम आदि, अध्यात्म शास्त्र-मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय-जैन बौद्ध आदि सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिवर्जित अर्थात् शास्त्र ज्ञान से शून्य ( धम्म बुद्धि वियला ) धर्म बुद्धि से विकल ऐसे ( नरा ) नर ( अलिएण य तेणं ) उस पूर्व कथित अलीक भाषण रूप पाप से ( पडज्झमाणा ) जलते हुए ( असंतएणय ) और अनुप शान्त मृषावाद रूप पाप से ( अवमाणणपिट्ठिमंसा हिक्खेव पिसुण भेयण गुरु बंधव सयण मित्त वक्खारणादियाइं ) अपमान, परोक्ष में दूषण प्रकट करना-निन्दा और चुगल खोरी से परस्पर का प्रेम भङ्गऔर गुरु, बान्धव, स्वजन तथा मित्र जनों के तिरस्कार वचन इत्यादिक ( बहु विहाइं ) बहुत प्रकार के ( अब्भक्खाणाइं ) झूठे आरोपों को ( पावेंति ) प्राप्त करते हैं, जो ( अमणो रमाइं ) अमनो राम ( हियय- मणदूमगाइं ) हृदय और मन को जलाने वाले-उपताप करने वाले तथा ( जाव- जीव ) जीवन पर्यन्त ( दुरुद्धराइं ) दुःख से पार करने योग्य होते हैं। ( अणिट्ठ- खर फरुस वयण तज्जन निब्भच्छण दीण वदण विमणा ) अनिष्ट और अत्यन्त कठोर वचन से तर्जना व निर्भर्त्सना पाने के सबब कारण जो दीन वदन और उदा समन वाले हैं ( कुभोयणा कुवाससा ) मांस आदि कुत्सित भोजन और खराब वस्त्र वाले हैं ( कुवसहीसु किलिस्संता ) कुग्रामों में क्लेश पाते हुए ( नेवसुहं ) न शारीरिक सुख को और ( नेव निव्वुइं ) न मानस सन्तोष को ही ( उवलभंति ) पाते हैं, ( अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलित्ता ) अत्यन्त विशाल सैकड़ों दुःखों से ये जीव जलते रहते हैं। ( अलियवयणस्स ) झूठ बोलने का ( एसोसो ) यह ऊपर कहा हुआ वह ( फल विवागो ) फल रूप परिणाम ( इहलोइओ पर लोइओ ) इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी ( अप्पसुहो बहु दुक्खो ) अल्पसुख व अधिक दुःख वाला है ( महब्भओ महाभय का कारण ( बहुरयप्पगाढो ) कर्म रज की अधिकता से अत्यन्त गाढ ( दारुणो ) हृदय को विदारण करने वाला ( कक्कसो ) कठोर ( असाओ ) दुःख रूप ( वाससहस्सेहिं ) हजारों वर्षों से ( मुच्चइ ) छूटता है ( नय अवेदित्ता ) किन्तु बिना भोगे ( अत्थिहु मोक्खोत्ति , मोक्ष-इसकर्म से मुक्ति नहीं होती है ( नाय कुल नन्दणो ) ज्ञात कुल नन्दन ( जिणो ) जिनवर ( वीर वर नाम धेज्जो ) [illegible] नाम वाले ( महप्पा ) महात्मा ने ( एवमाहंसु ) ऐसा कहा है ( य ) और

णस्स ) झूठ बोलने के ( एयं ) इस ( फल विवागं ) फल रूप विपाक को ( कहेसी ) भविष्य में भी कहेंगे। ( तं ) वह ( वितीयपि ) दूसरा भी ( अलिय वयणं ) मृषावाद रूप आस्रव ( लहुस गलहु चवलभ० ) छोटे से छोटे और चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा ( भयंकरं ) भयङ्कर ( दुहकरं ) दुःख कारक ( अयसकरं ) अकीर्ति करने वाला ( वेर करगं ) वैर का कारण ( अरतिरवि राग दोस मण संकिलेस वियरणं ) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के संक्लेश को करने वाला ( अलिय नियडि सादि जोग बहुल) झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण-निसेवियं ) नीच जनों से सेवित ( निस्संस ) घृणा व दया रहित ( अपञ्चय कारकं ) अविश्वास कारक ( परमसाहु गरहणिज्जं ) परम साधुओं से निन्दनीय ( पर पीला-कारकं ) दूसरों को पोडा देने वाला ( परम कण्ह लेस सहियं ) परम कृष्ण लेश्या वाला ( दुग्गति विनिवाय वड्ढणं ) दुगति पतन को बढाने वाला ( पुणब्भवकरं ) पुनर्भव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगयं ) चिर काल का परिचित होने से पोछे रहने वाला तथा ( दुरंतं ) दुःख से अन्त वाला है। ऐसा मैं कहता हूं। (वितिय अधम्म० ) दूसरा अधर्म द्वार समाप्त हुआ । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—"उपरोक्त सूत्र में कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए भूठे लोग लंबे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को बढाते हैं। असत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे में दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं। मनुष्य होकर भी वे परवश बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं। शरोर से भी वे लोगों में बुरे दिखते हैं क्यों कि वे गूंगे बहरे व अन्धे होते हैं। लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं। भूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और तिरस्कार पाते हैं। भूठे आरोप में पडते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुरुद्धर होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुग्राम में क्लेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारीरिक सुख व शान्ति नहीं पाते। प्रत्युत सैकडों तरह को दुःखाग्नि में जलते रहते हैं। भूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुफलों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावीर ने फरमाया है जो बहुत भयङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है। विना भोगे इससे मुक्ति नहीं होतो। यह दूसरा अधर्मद्वार अर्थात् मृषावाद झूठे हलके और चंचल लोकोंसे कहा गया है। अन्य उपसंहार

हरण आदि से त्रास पैदा करने वाल है। इसका मूल लोभ है। यह चोरी कर्म प्राय: विषम स्थान और कुसमय में किया जाता है। दुर्गति के अनुकूल समझ वाला अकीर्ति कारक और अनर्थ कर्म है। यावत् प्रेमी जनों में भेद और अप्रिति उत्पन्न करने वाला तथा राग द्वेष की प्रधानता वाला है। जनसंहारक संग्राम–लड़ाई तथा पश्चात्ताप का कारण है। दुर्गति में गिराने वाला और चिर काल तक संसार में जन्म धारण करके भी दुःख से अन्त करने योग्य है। इस प्रकार उभय लोक में अहित कारक यह चोरी कर्म तीसरा अधर्म द्वार है॥ १।९॥

## अब दूसरा नाम द्वार कहते हैं —

मूल–"तस्स य णामाणि गोन्नाणि होंति तीसं, तंजहा-'चोरिक्कं १ परहडं २ अदत्तं ३ कूरिकडं ४ परलाभो ५ असंजमो ६ परधणंमिगेही ७ लोलिक्कं ८ तक्करत्तणंतिय ९ अवहारो १० हत्थल (हुं) त्तणं ११ पावकम्मकरणं १२ तेणिक्कं १३ हरण विप्पणासो १४ आदियणा १५ लुंपणा धणाणं १६ अप्पच्चओ १७ ओवीलो १८ अक्खेवो १९ खेवो २० विक्खेवो २१ कूडया २२ कुलमसीय २३ कंखा २४ लालप्पण पत्थणाय २५ (आससणाय) वसणं २६ इच्छामुच्छाय २७ तण्हागेहि २८ नियडिकम्मं २९ अपरच्छंति ३० विय तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं अदिन्ना दाणस्स पाव कालिकलुस कम्मबहुलस्स अणेगाइं॥ सू० २। १०॥

## अदत्तादान के नाम कहते हैं—

अन्वयार्थ—"( तस्सय ) उस चौर्यकर्म के ( गोण्णाणि ) गुण-निष्पन्न ( तीसं ) तीस ( णामाणि ) नाम ( होंति ) होते हैं ( तं जहा ) वे इस प्रकार हैं ( चोरिक्कं ) चुरालेने से 'चोरिका' कहते हैं, ( परहडं ) दूसरे के पास से हरण करने से 'परहृत, कहाता है ( अदत्तं ) बिना दिया हुआ होने से 'अदत्त' ( कूरिकडं ) और क्रूरचित्त वाले से किया जाने के कारण इसें कूरिकृत' कहते हैं ( परलाभो ) दूसरे के श्रम और आश्रय का लिया जाता है इसलिये' परलाभ' ( असंजमो ) तथा उसमें संयम नहीं रहता, वास्ते यह असंयम कहाता है ( परधणम्मिगेही ) दूसरे के धन में लालच होने से चोरी की जाती है वास्ते इसे परधनगृद्धि ( लोलिक्कं ) और लौल्य कहते हैं ( य ) और ( तक्करत्तणंत्ति ) चोर का कर्म होने से 'तस्करत्व' है ( अवहारो ) स्वामी की इच्छा बिना लिया जाता है इसलिये 'अपहार' कहते हैं ( हत्थलहुत्तणं ) दूसरे के धन को चुराने से जिसका हाथ कुत्सित हेतु सका कार्य, अथवा हाथ को चालाकी के कारण इसको 'हस्तलघुत्व' कहते हैं ( पावकम्मकरणं ) इसे 'पाप कर्म करण' भी कहते हैं ( तेणिक्कं ) चोर का कार्य होने से इसको 'स्तैनिका' कहते हैं ( हरणविप्पणासो ) चुरा के दूसरे के धन को नष्ट करने के कारण यह 'हरण-विप्रणाश' कहाता है ( आदियणा ) परधन का ग्रहण करने से इसको 'आदान' कहते हैं ( लुंपणा धणाणं ) धन को लुप्त करने से 'धनलुम्पना' कहाता है ( अपच्चओ ) अविश्वास का कारण होने से इसे 'अप्रत्यय' कहते हैं ( ओवीलो ) दूसरों को पीडा करने से 'अवपीड' ( अक्खेवो ) पर द्रव्य को अलग रखने से 'आक्षेप' ( खेवो ) क्षेप और ( विक्खेवो ) 'विक्षेप भी कहते' हैं ( कूडया ) तराजू आदि का खोटा करना भी चोरी है इसलिये इसको 'कूटता' कहते हैं ( कुलमसी ) कुल को मलिन करने के कारण 'कुलमषी' ( य ) और ( कंखा ) तीव्र इच्छा के कारण यह 'कांक्षा' कहाता है ( लालप्पणपत्थणा ) निन्दित-लाभ की प्रार्थना करने से या दीन वचन युक्त प्रार्थना करने से 'लालपन-प्रार्थना' ( य ) और ( वसणं ) विपत्ति का कारण होने से 'व्यसन' कहाता है ( इच्छामुच्छा ) परधन में इच्छा व आसक्ति होने से 'इच्छा मूर्च्छा' ( य ) और ( तण्हागेही ) प्राप्त द्रव्य का मोह व अप्राप्त की वांछा होने से 'तृष्णागृद्धि' कहते हैं ( नियडि कम्मं ) कपट से यह कार्य किया जाता है इसलिये 'निकृति कर्म' कहते हैं ( अपरच्छंतिविय ) और यह दूसरे की दृष्टि से छिपाके किया जाता है; वास्ते इसे 'अपराक्ष' भी कहते हैं। ( तस्स आदि ) उस

अदत्ता दान के (एयाणि) उपरोक्तये ( तीसं ) तीस (नाम धेज्जाणि) नाम (होंति) होते हैं और (एवमादीणि) इत्यादि ( पाव-कलि कलुस-कम्म बहुलस्स ) पाप और कलह से मलिन मित्र द्रोह आदि कर्म की अधिकता वाले अदत्तादान के (अणेगाइं) अनेक नाम हैं ॥ सू।२।१०॥

भावार्थ—"इस अदत्ता दान के तीस नाम हैं, जैसे-चोरिका १ परहृत २ अदत्त ३, क्रूरिकृत ४, परलाभ ५, असंयम ६, पर धन-गृद्धि ७, लौल्य ८, तस्करत्व ९, अपहार १०, हस्तलघुत्व ११ पापकर्मकरण १२, स्तैन्य १३, हरण विप्रणाश १४, आदान १५, धनलुम्पना १६, अप्रत्यय १७, अवपीडन १८, आक्षेप १९, क्षेप २०, विक्षेप २१ कूटता २२, कुलमषी २३, कांक्षा २४, लालपन प्रार्थना २५, व्यसन २६, इच्छामूर्छा २७, तृष्णा गृद्धि २८, निकृति कर्म २९ और अपराक्ष ३०, ये अदत्तादान के तीस नाम हैं। पाप और कलह से मलिन कर्म युक्त ऐसे उसके अनेक नाम होते हैं ॥ ३।१०॥

## अब चौर्यकर्म करने वालों का वर्णन करते हैं—
## इसमें चोरी कौन और कैसे करते यह बताया जायगा,

मूल—"तंपुण करेंति चोरियं तक्करा परदव्वहरा छेया कय करण-लद्धलक्खा साहसिया लहुस्सगा अति-महिच्छ-लोभ गत्था, दद्दर-ओवीलका य गेहिया अहिमरा अणभंजक-भग्ग

**हत्थिसय-सएहिं सेन्नेहिं संपरि-वुडा पउम-सगड-सूइ-चक्क-सागर-गरुल-वूहादिएहिं अणिएहिं उत्थरंता अभिभूय हरंति परधणाइं**

छाया–"तत्पुनः कुर्वन्ति चौर्यं तस्कराः परद्रव्यहराश्छेकाः कृतकरणलब्धलक्ष्याः, साहसिकाः, लघुस्वका अतिमहेच्छलोभग्रस्ताः दर्दराऽपत्रीडकाश्च, गृद्धिकाश्चाऽभिमराः, ऋणभञ्जक-भग्नसन्धिका, राजदुष्टकारिणश्च, विषयनिर्घाटित लोकबाह्या, उद्दोहक-ग्रामघातक-पुरघातक-पथिघातकाऽऽदीपक-तीर्थभेदा लघुहस्तसम्प्रयुक्ताः, द्यूतकराः खण्डरक्षस्त्रीचौरकपुरुषचौर—सन्धिच्छेदकाः, ग्रन्थिभेदक—परधनहरण—लोमापहाराक्षेपिणः, हठकारकाः, निर्मर्दक—गूढ चौर-गोचौराऽश्वचौर—दासीचौराश्च, एकचौराः, अपकर्षक—सम्प्रदायकाऽवच्छिम्पक-सार्थघातक-बिलकोलीकारकाश्च, निर्ग्राह-विप्रलोपका, बहुविधस्तेनकरणबुद्धयः, एतेऽन्ये चैवमादयः परस्य द्रव्याद् येऽविरताः। विपुलबलपरिग्रहाश्च बहवो राजानः परधनेषु गृद्धाः, स्वके द्रव्येऽसन्तुष्टाः; परविषयानभिघ्नन्ति, ते लुब्धाः परधनस्य कार्ये चतुरङ्ग-विभक्तबलसमग्रा निश्चित वरयोध-युद्धश्रद्धिताऽहमहमिकादर्पितैः सैन्यैः सम्परिवृताः पद्मशकट-सूची—चक्र-सागर-गरुड—व्यूहादिकैरनीकैरुत्तरन्तोऽभिभूय हरन्ति परधनानि। मू०। ३।१०॥

अन्वयार्थ—"(तंपुण) फिर उस (चोरियं) चोरी को (तक्करा) तस्कर (करेंति) करते हैं, जो (परदव्वहरा) पर द्रव्य का हरण करने वाले (छेया) कुशल (कय-करण लद्धलक्खा) बहुत बार चोरी कर्म को किये हुए और अवसर को जानने वाले हैं; (साहसिया) साहसिक (लहुस्सगा) तुच्छ आत्मा वाले (अतिमहिच्छलोभ-गत्था) बहुत बडी इच्छा वाले और लोभ से ग्रस्त (य) और (दद्दर ओवीलका) वचनों के आडम्बर से जो अपने आत्मस्वरूप को विशेष लजाने वाले या पीडा पहुंचाने वाले हैं, (गेहिया) अतिलोभी (अहिमरा) सामने आए हुए को मारने वाले (अण भंजक भग्ग संधिया) ऋण को नहीं देने वाले और विरोध में सन्धि को तोडने वाले हैं (य) और (रायदुट्ठकारी) खजाना लूटना आदि राज विरुद्ध कार्य करने वाले (विसयनिच्छूढ—लोयवज्झा) विषय अर्थात् देश से निकाले हुए तथा लोक से बाहर निकाले गए (उद्दोहक गामघायय पुरघायग पंथघायग आलि-वग तित्थभेया) घातक तथा ग्राम, नगर, और मार्ग में घात करने वाले-लूटने वाले, जलाने वाले तथा तीर्थ में भेद करने वाले (लहुहत्थ संपउत्ता) हाथ की चालाकी से युक्त (जूईकरा) जुआरी (खंड रक्खत्थीचोर पुरिसचोर संधिच्छेया) चूंगी लेने-वाले या कोतवाल, स्त्री चोर—स्वयं स्त्री को या स्त्री के पास से अथवा स्त्री रूप

धनकर चुराने वाले, पुरुष चोर-पुरुष को चुराने वाले और संधि छेदक-खात खोदने वाले ( य ) और ( गंथिभेदग ) ग्रन्थि काटने वाले ( परधन हरण लोमावहार [illegible] ) परधन हरने वाले, निर्दयता से या भय से दूसरों को मारकर चुराने वाले-लोमावहार, वशीकरण आदि के द्वारा आक्षेप करके चुराने वाले ( हडकारग ) हठसे चोरी करने वाले, ( निम्मद्दग गूढचोरग गोचोरग अस्सचारग दासिचोरा ) सदा दूसरे का उपमर्द करने वाले, गुप्त चोर, गो चोर-गौ चुराने वाले, अश्व चुराने वाले और दासी चुराने वाले ( य ) और ( एगचोरा ) अकेले चोरी करने वाले ( ओकड्ढक संपदायक उच्छिंपक सत्थघायक विलकोलीकारक ) घरसे द्रव्य निकालने वाले या चोरों को बुलाकर दूसरों के घर चुराने वाले, अथवा चोरों को सहायता पहुंचाने वाले, संप्रदायक-चोरों को भोजन आदि देने वाले, उच्छिंपक, सार्थ घातक समूह को लूटने वाले बिलकोली-दूसरे को धोखा देने के लिये बनावटी आवाज से बोलने वाले ( य ) और ( निग्गाह विप्पलुंपगा ) राजा से निगृहीत और छल से [illegible] को लूट करने वाले, ( बहुविह तेणिक्क हरण बुद्धी ) बहुत प्रकार की चोरी से हरण करने की बुद्धिवाले ( एते ) ये ( अन्नेय ) और ऐसे ही दूसरे ( एवमादी ) [illegible] ( जे ) जो ( परस्स ) दूसरे के ( दव्वाइ ) द्रव्य आदि में ( अविरया ) [illegible] से अनिवृत्त हैं अर्थात् परधन की लालच रखते हैं। ( विपुलबलपरिग्गहा य ) और [illegible] बल व अधिक परिवार वाले ( बहवे ) बहुत से ( रायाणो ) राजा लोग ( परधणम्मि० ) दूसरे के धन में गृद्ध-मूर्छावाले ( सए य दव्वे ) तथा अपने द्रव्य में ( असंतुट्ठा ) सन्तोष नहीं रखने वाले ( परविसए ) दूसरे के देश पर ( अभिहणंति ) आक्रमण करते हैं अर्थात् चढ़ाई करते हैं ( ते लुद्धा ) वे लोभी बने हुए ( परधणस्स कज्जे ) दूसरे के धन के लिये ( चउरंग-विभत्तबलसमग्गा ) चार अंगों-हाथी, घोड़े, रथ, व पैदल सेना-रूप भेदों से विभक्त-बंटे हुए सैन्य बल से युक्त ( निच्छिय वरजोह जुद्धसद्धिय अहमहमिति दप्पिएहिं ) विश्वास पूर्ण उत्तम योद्धाओं के साथ युद्ध करने में श्रद्धावाले और आत्माभिमान से दर्प वाले ( सेन्नेहिं ) [illegible] सैन्यों से (संपरिवुडा) घिरे हुए ( पउम-सगड-सूइ-चक्क-सागर गरुलवूहाइएहिं ) पद्मव्यूह, शकटव्यूह, सूचीव्यूह, चक्रव्यूह, सागरव्यूह और गरुडव्यूह [illegible] रचे गए ( [illegible] ) सैन्यसमूहों से ( [illegible]यरंता ) पर सैन्य को दबाते हुए ( अभिभूय ) उन्हें जीत कर ( हरंति परधणाइं ) पर धन को हरण करते हैं।

सू० । ३ । १३ ।

मूल—"अवरे पाईक्कलद्धलक्खा संगामंमि अतिवयंति सन्नद्ध—बद्धपरियर-उप्पीलियचिंधपट्टगहियाउहप्रहरणा, माढिवरवम्मगुंडिया, आविद्ध-जालिका, कवयकंकडइया उरसिरमुहबद्धकंठतोणमाइलवरफलहरचितपहकर—सरहस खरचाव—करकरंछिय- सुनिसियसरवरिस—चडकरक—मुयंतघणचंडवेगधारानिवायमग्गे, अणेगधणुमंडलग्गसंधिता—उच्छलिय-सत्तिकणग—वामकरगहिय—खेडग—निम्मलनिक्किट्ठखग्ग—पहरंतकोंत तोमर-चक्क-गया-परसु मुसल-लंगल-सूलवउल-भिंडमाला-सब्बल पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण-मोट्ठिय —मोग्गर-वरफलिहजंतपत्थर—दुहणतोण--कुवेणी--पीढकलिय-ईलीपहरण-मिलिमिलि मिलंत-खिप्पंत—विज्जुज्जल-विरचित—समप्पहणभतले, फुडपहरणे महारणसंखभेरि—वरतूर —पउरपडुपडहाहय—णिणायगंभीरणंदित--पक्खुभियविपुलघोसे, हय--गय-रह--जोह-तुरितपसरितउद्धत तमंधकारबहुले, कातरनर—णयण—हिययवाउलकरे, विलुलियउक्कडवरमउड--तिरीड--कुंडलोडुदामाडोवियम्मि पागडपडागउसियज्झय-वेजयंति-चामरचलंत-छत्तंधकारगंभीरे, हयहेसियहत्थिगुलुगुलाइय—रह-घणघणाइय-पाइक्क-हरहरहराइय अप्फोडियसीहनाया, छेलियविघुट्ठुक्कुट्ठ—कंठगय--सद्दभीमगज्जिए, सयराह-हसंत—रुसंत-कलकलरवे, आसूणियवयणरुद्दे, भीमदसणाधरोट्ठ-गाढदट्ठे, सप्पहरणुज्जयकरे, अमरिसवस-तिव्वरत्त--निद्दारितच्छे, वेरदिट्ठिकुद्धचिट्ठिय-तिवली-कुडिल-भिउडिकयनिलाडे, वहपरिणय—नरसहस्स—विक्कम—वियंभियबले, वग्गंततुरग—रहपहाविय —समरभडा, आवडिय-छेय—लाघवपहारसाधिता, समूसवियबाहुजुयले, मुक्कट्टहास-पुक्कंतबोलबहुले, फुरफलगावरण-गहिय—गयवर-पत्थित-दरिय-भडखलपरोप्पर-पलग्गजुद्ध-गव्वित-विउसित-वरासिरोसतुरियअभिमुह पहरिंत-छिन्नकरिकरविभंगित करे, अवइट्ठ-निसुद्ध-भिन्न-फालिय-

धनकर चुराने वाले, पुरुष चोर-पुरुष को चुराने वाले और संधि छेदक-खात खोदने वाले ( य ) और ( गंठिभेदग ) ग्रन्थि काटने वाले ( परधन हरण लोमावहार अक्खेवी ) परधन हरने वाले, निर्दयता से या भय से दूसरों को मारकर चुराने वाले-लोमावहार, वशीकरण आदि के द्वारा आक्षेप करके चुराने वाले ( हडकारग ) हठसे चोरी करने वाले, ( निम्मद्दग गूढचोरग गोचोरग अस्सचोरग दासिचोरा ) सदा दूसरे का उपमर्द करने वाले, गुप्त चोर, गो चोर-गौ चुराने वाले, अश्व चुराने वाले और दासी चुराने वाले ( य ) और ( एगचोरा ) अकेले चोरी करने वाले ( ओकड्ढक संपदायक उच्छिंपक सत्थघायक बिलकोलीकारक ) घरसे द्रव्य निकलने वाले या चोरों को बुलाकर दूसरों के घर चुराने वाले, अथवा चोरों को सहायता पहुँचाने वाले, संपदायक-चोरों को भोजन आदि देने वाले, उच्छिंपक, सार्थ घातक समूह को लूटने वाले बिलकोली-दूसरे को धोखा देने के लिये बनावटी आवाज से बोलने वाले ( य ) और ( निग्गाह विप्पलुंपगा ) राजा से निगृहीत और छल से राजा को लूट करने वाले, ( बहुविह तेणिक्क हरण बुद्धी ) बहुत प्रकार की चोरी से हरण करने की बुद्धिवाले ( एते ) ये ( अन्नेय ) और ऐसे ही दूसरे ( एवमादी ) इत्यादि ( जे ) जो ( परस्स ) दूसरे के ( दव्वाइ ) द्रव्य आदि में ( अविरया ) इच्छा से अनिवृत्त हैं अर्थात् परधन की लालच रखते हैं। ( विपुलबलपरिग्गहा य ) और अधिक बल या अधिक परिवार वाले ( बहवे ) बहुत से ( रायाणो ) राजा लोग ( परधणंमि० ) दूसरे के धन में गृद्ध-मूर्छावाले ( सए य दव्वे ) तथा अपने द्रव्य में ( असंतुट्ठा ) सन्तोष नहीं रखने वाले ( परविसए ) दूसरे के देश पर ( अभिहणंति ) आक्रमण करते हैं अर्थात् चढ़ाई करते हैं ( ते लुद्धा ) वे लोभी बने हुए ( परधणस्स कज्जे ) दूसरे के धन के लिये ( चउरंग-विभत्तबलसमग्गा ) चार अंग-हाथी, घोड़े, रथ, व पैदल सेना-रूप भेदों से विभक्त-बंटे हुए सैन्य बल से युक्त ( निच्छिय वरजोह जुद्धसद्धिय अहमहमिति दप्पिएहिं ) विश्वास पूर्ण उत्तम योद्धाओं के साथ युद्ध करने में श्रद्धावाले और आत्माभिमान से दर्प वाले ( सेन्नेहिं ) सेना या सैन्यों से ( संपरिवुडा ) घिरे हुए ( पउम-सगड-सूइ-चक्क-सागर गरुलवूहाइएहिं ) पद्मव्यूह, शकटव्यूह, सूचीव्यूह, चक्रव्यूह, सागरव्यूह और गरुडव्यूह इनसे रचे हुए ( अणिएहिं ) सैन्यसमूहों से ( उत्थरंता ) पर सैन्य को दबाते हुए ( अभिभूय ) उन्हें जीत कर ( हरंति परधणाइं ) पर धन को हरण करते हैं।

सू० । ३ । १० ।

मूल—"अवरे रणसीसलद्धलक्खा संगामंमि अतिवयंति सन्नद्ध—बद्धपरियर-उप्पीलियचिंधपट्टगहियाउहपहरणा, माढिवरवम्मगुंडिया, आविद्ध-जालिका, कवयकंकडइया उरसिरमुहबद्धकंठतोणमाइलवरफलहरचितपहकर-सरहस खरचाव—करकरंछिय- सुनिसितसरवरिस—चडकरक—मुयंतघणचंडवेगधारानिवायमग्गे, अणेगधणुमंडलग्गसंधिता—उच्छलियसत्तिकणग—वामकरगहिय-खेडग— निम्मलनिक्किट्ठखग्ग—पहरंतकोंततोमर-चक्क-गया-परसु मुसल-लंगल-सूललउल-भिंडमाला-सब्बलपट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण-मोट्ठिय -मोग्गर-वरफलिहजंतपत्थर—दुहणतोण--कुवेणी--पीढकलिय-ईलीपहरण—मिलिमिलि मिलंत-खिप्पंत—विज्जुजल-विरचित—समप्पहणभतले, फुडपहरणे महारणसंखभेरि—वरतूर —पउरपडुपडहाहय—णिणायगंभीरणंदित—पक्खुभियविपुलघोसे, हय—गय-रह--जोह-तुरितपसरितउद्धततमंधकारबहुले, कातरनर-णयण—हिययवाउलकरे, विलुलियउक्कडवरमउड--तिरीड--कुंडलोडुदामाडोवियम्मि पागडपडागउसियज्झय-वेजयंति-चामरचलंत-छत्तंधकारगंभीरे, हयहेसियहत्थिगुलुगुलाइय—रह-घणघणाइय-पाइक्क-हरहरहराइय अप्फोडियसीहनाया, छेलियविघुट्ठुक्कुट्ठ—कंठगय-सद्दभीमगज्जिए, सयराह-हसंत—रुसंत-कलकलरवे, आसूणियवयणरुद्दे, भीमदसणाधरोट्ठ-गाढदट्ठे, सप्पहरणुज्जयकरे, अमरिसवस-तिव्वरत्त--निद्दारितच्छे, वेरदिट्ठिकुद्धचिट्ठिय-तिवली-कुडिल-भिउडिकयनिलाडे, वहपरिणय—नरसहस्स—विक्कम—वियंभियबले, वग्गंततुरग—रहपहाविय —समरभडा, आवडिय-छेय—लाघवपहारसाधिता, समूसवियबाहुजुयले, मुक्कट्टहास-पुक्कंतबोलबहुले, फुरफलगावरण-गहिय—गयवर-पत्थित्त-दरिय-भडखलपरोप्पर-पलग्गजुद्ध-गव्वित-विउसित-वरासिरोसतुरियअभिमुहपहरित-छिन्नकारिकरविभंगित्त करे, अवइट्ठ-निसुद्ध-भिन्न-फालिय-

संकुलं बहुप्पाइयभूयं, विरचित बलिहोम धूवउवचार दिन्न रुधिरच्चणाकरण पयलजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चरं, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुण्णं असियसिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गंतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकंपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-समाणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हियय-छिन्नलज्जाबंदिगह गोग्गहेय गेण्हंति, दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधि, निक्खित्ताणिय हरंति धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया। तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयण अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयखिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह कहित-पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सोसियसरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मंसकुणिमकंद-मूल जंकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वालसत संकणिज्जं। अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती, वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमहिया परेंति नरवति मज्जाय मतिक्कंता, सज्जणजणदुगुंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

पगलिय-रुहिरकयभूमिकद्दम—चिलिचिल्लपहे, कुच्छिदालिय-गलिय-रुलिंत-निभेलितंत—फुरफुरंतऽविगलमम्मपहयविकय—गाढदिन्नपहारमुच्छित—रुलंत-वेंभलविलावकलुणे, हय-जोह-भमंततुरग—उद्दाममत्तकुंजर-परिसंकित-जणनिव्वुक-छिन्न धय भग्गरहवरनट्ठसिर करि कलेवराकिन्न पतितपहरणविकिन्ना भरणभूमिभागे, नचंतकबंधपउर—भयंकरवायस—परिलंत गिद्धमंडलभमंतच्छायंधकारगंभीरे, वसु—वसुह-विकंपितव्व-पच्चक्खपिउवणं, परमरुद्दबीहणगं, दुप्पवेसतरगं अभिवयंति, संगामसंकडं परधणं महंता, अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावति-चोरवंदपागड्ढिका य अडवीदेसदुग्गवासी, काल-हरित-रत्त-पीत-सुक्किल-अणेगसयचिंधपट्टबद्धा, परविसए अभिहणंति लुद्धा, धणस्स कज्जे रयणागरसागरं उम्मीसहस्समालाउलाकुल विततोय-पोतकलकलेंतकलियं, पायालसहस्स-वायवस-वेग सलिल उद्धम्ममाण दगरयरयंधकारं, वरफेण पउर धवल पुलंपुल समुट्ठियट्टहासं, मारुयविच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पीलहुलियं, अविय समंतओ खुभिय-लुलिय—खोखुब्भमाण पक्खलिय चलिय विपुलजल चक्कवाल महानई वेगतुरिय आपूरमाण गंभीर विपुल आवत्त चवल भममाण गुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणियत्त पाणिय पधाविय खर फरुस पयंडवाउलिय सलिल फुट्टंतवीचिकल्लोल-संकुलं, महामगर मच्छकच्छभोहार गाह तिमि सुंसुमार सावय समाहय समुद्धायमाणक पूर घोरपउरं कायरजण हिययकंपणं, घोरमारसंतं महब्भयं भयंकरं पतिभयं उत्तासणगं अणोरपारं आगासं चेव निरवलं उप्पाइय पवण धणिय नोल्लिय उवरुवरि तरंग दरिय अतिवेगवेग चक्खुपहमुच्छ-रंत कत्थइ गंभीर विपुलगज्जिय गुंजिय निग्घाय गरुय निवतित सुदीह नीहारि दूरसुव्वंत गंभीर धुगधुगंतसद्दं, पडिपहरुंभंत जक्खरक्खसकुहंड पिसाय रुसियतज्जाय उवसग्ग सहस्स

संकुलं बहुप्पाइयभूयं, विरचित बलिहोम धूवउवचार दिन्न रुधिरच्चणाकरणा पयलजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चरं, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुराणं असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गंतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकंपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टण-समणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हियय-छिन्नलज्जाबंदिगह गोग्गहेय गेण्हंति, दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधि, निक्खित्ताणिय हरंति धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया। तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयण अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह कहित-पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सोसियसरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मंसकुणिमकंद-मूल जकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वालसत संकणिज्जं। अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती, वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमाहिया परेंति नरवाति मज्जायमतिक्कंता, सज्जणजणदुगुंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

पगलिय-रुहिरकतभूमिकद्दम—चिलिचिल्लपहे, कुच्छिदालिय-गलित-रुलिंत-निभेल्लंतंत—फुरुफुरंतऽविगलमम्माहयविकय-गाढदिन्नपहारमुच्छित—रुलंत-वेंभलाविलावकलुणे, हय-जोह-भमंततुरग—उद्दाममत्तकुंजर-परिसंकित-जणनिव्वुक-च्छिन्न धयभग्गरहवरनट्ठसिर करि कलेवराकिन्न पतितपहरणाविकिन्ना भरणभूमिभागे, नच्चंतकबंधपउर—भयंकरवायस—परिलेंत गिद्धमंडलभमंतच्छायंधकारगंभीरे, वसु—वसुह-विकंपितव्व-पच्चक्खपिउवणं, परमरुद्दबीहणगं, दुप्पवेसतरगं अभिवयंति, संगामसंकडं परधणं महंता, अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावति-चोरवंदपागड्ढिकाय अडवीदेसदुग्गवासी, काल-हरित-रत्त-पीत-सुक्किल्ल-अणेगसयचिंधपट्टबद्धा, परविसए अभिहणंति लुद्धा, धणस्स कज्जे रयणागरसागरं उम्मीसहस्समालाउलाकुल वितोय-पोतकलकलेंतकलियं, पायालसहस्स-वायवस-वेग सलिल उद्धम्ममाण दगरयरयंधकारं, वरफेण पउर धवल पुलं पुल समुट्ठियट्टहासं, मारुयविच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पी-लहुलियं, अविय समंतओ खुभिय-लुलिय-खोखुब्भमाण पक्खलिय चलिय विपुलजल चक्कवाल महानई वेगतुरिय आपू-रमाण गंभीर विपुल आवत्त चवल भममाण गुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणियत्त पाणिय पधाविय खर फरुस पयंडवाउलिय सलिल फुट्टंतवीतिकल्लोल-संकुलं, महामगर मच्छकच्छभोहार गाह-तिमि सुंसुमार सावय समाहय समुद्धायमाणक पूर घोरपउरं कायरजण हिययकंपणं, घोरमारसंतं महब्भयं भयंकरं पतिभयं उत्तासणगं अणोरपारं आगासं चेव निरवलं उप्पाइय पवण धणित नोल्लिय उवरुवरि तरंग दरिय अतिवेगवेग चक्खुपहमुच्छ-रंतकच्छइ गंभीर विपुलगज्जिय गुंजिय निग्घाय गरुय निवातित सुदीह नीहारि दूरसुच्चंत गंभीर धुगधुगंतसद्दं, पडिपहरुंभंत जक्खरक्खसकुहंड पिसाय रुसियतज्जाय उवसग्ग सहस्स

संकुलं बहुप्पाइयभूयं, विरचित बलिहोम धूवउवचार दिन्न रुधिरच्चणाकरण पयलजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चरं, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुण्णं असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गंतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकंपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंव-दोणमुह-पट्टणा-समणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हिययछिन्नलज्जावंदिगह गोग्गहेय गेण्हंति, दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधि, निक्खित्ताणिय हरंति धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया। तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयण अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह कहितपहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सोसियसरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मंसकुणिमकंद-मूल जंकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वालसत संकणिज्जं। अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती,वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमहिया परेंति नरवति मज्जाय मतिक्कंता, सज्जणजणदुगुंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

**परिणया य दुक्खभागी, निच्चाइल दुहमनिव्वुइमणा इहलोके चेव किलिस्संता परदव्वहरानरा वसण सयसमावरणा ॥ सू० ४ । ११ ॥**

छाया—"अपरे रणशीर्षलब्धलक्ष्याः संग्रामेऽतिपतन्ति, सन्नद्धबद्ध परिकरोत्पी-डित-चिह्नपट्ट-गृहीताऽऽयुधप्रहरणा माढीवर-वर्मगुण्ठिता आविद्धजालिकाः कवच-कण्टकिता उरःशिरोमुखबद्धकण्ठतोण मायितवर (हस्तपाशितवर) फलक-रचित प्रहकर (समुदाय) सरभस खरचापकर करञ्छित-सुनिशितशर-वर्ष चटकरक मुच्यमान घनचण्डवेगधारानिपातमार्गे, अनेकधनुर्मण्डलाग्र-सन्धितोच्छलितशक्ति कनक वामकरगृहीत खेटक निर्मल निष्कृष्ट-खड्गप्रहार प्रवृत्त-(प्रहरत्) कुन्त-तोमर-चक्रगदा-परशु-मुशल-लाङ्गल-शूल-लकुट-भिन्दिपाल (गदमाळ) शब्बल-पट्टिश-चर्मेष्ट-द्रुघण-मौष्टिक-मुद्गर-वरपरिघ-यन्त्रप्रस्तर-द्रुहण-तोण-कुवेणी-पीठ—कलिते, इलीप्रहरण—चिकिचिकायमान (मिलिमिलिमिलत्) क्षिप्यमाण-विद्युज्ज्वल-विरचितसमप्रभनभस्तले, स्फुटप्रहरणे महारण-शंखभेरी-वरतुर्य-प्रचुर-पटुपटहाऽऽहत-निनादगम्भीर—नन्दितप्रक्षुब्ध-विपुलघोषे, हय—गज-रथ-योध-त्वरितप्रसृतोद्धत—तमोन्धकारबहुले, कातर—नर—नयन—हृदय—व्याकुलकरे, विलुलितोत्कटवरमुकुट—किरीट-कुण्डलोडुदामाटोपिके, प्रकटपताकोच्छ्रित-ध्वज-वैजयन्ती-चामर-चलच्छत्रान्धकारगम्भीरे, हयहेषित हस्ति—गुलगुलायित-रथघन-घनायित-पदातिहरहरायितास्फोटित्तसिंहनादे सोत्कृष्ट (सेंटित) विघुष्टोत्कृष्ट-कण्ठकृत-शब्द—भीमगर्जिते, सहेलहसद्रुष्यत्कलकलरवे. आशूनित—वदनरुद्र भीमदशनाधरोष्ठगाढदष्टे, सत्प्रहरणोद्यतकरे, आमर्षवश—तीव्ररक्तनिर्दारिताक्षे वैरदृष्टि-क्रुद्धचेष्टित—त्रिवलीकुटिल—भ्रुकुटि—कृतललाटे, वधपरिणत—नरसहस्र-विक्रम-विजृम्भितबले, वल्गत्तुरङ्ग—रथ—प्रधावितसमरभटाः, आपतित—छेककाघ-व-प्रहारसाधिताः समुच्छ्रितबाहुयुगल-मुक्ताट्टहास-पूत्कुर्वद् बोल (कोलाहल)-बहुले, स्फुरत्फलकावरणगृहीत-गजवर—प्रार्थ्यमान दृप्त—भट—खलपरस्परप्रलग्न-युद्धगर्वित—विकोशितवरासि—रोषत्वरिताभिमुख—प्रहरच्छिन्नकरिकर—व्यङ्गितकरे अपविद्ध-निशुद्ध-भिन्न-स्फाटित-प्रगलित-रुधिरकृतभूमिकर्दम—प्रस्खलत् (चिलि-चित्) पथे, कुक्षिदारितगलल्लुठद्—निर्भेलितान्त्र फुरफुरायमाण-विकल-मर्मा-हत-विकृत-गाढदत्तप्रहार-मूर्च्छित-[illegible]

मत्त कुञ्जर-परिशङ्कितजन-निर्मूल ( निवुक्क ) छिन्नध्वज-भग्नरथवर-नष्टशिरः-करिकलेवराकीर्ण-पतितप्रहरण-विकीर्णाभरणभूमिभागे, नृत्यत्कबन्ध प्रचुर भयङ्कर-वायस परिलीयमान-गृद्धमण्डलभ्रमच्छायाऽन्धाकारगम्भीरे, वसुवसुधा-विकम्पयितारइव प्रत्यक्षपितृवनं परमरुद्र दारुण भयानकं दुष्प्रवेशतरकम्; अभिपतन्ति संग्रामसङ्कटं, परधनं महान्तोऽपरे पदातिचौरसंघाः सेनापतयश्चौरवृन्द-प्रकर्षकाश्च, अटवीदेश दुर्गवासिनः कृष्ण-हरित-रक्त-पीत-शुक्लाऽनेकशत-चिह्नपट्ट-बद्धाः परविषयेऽभिघ्नन्ति। लुब्धा धनस्य कार्याय रत्नाकरसागरं-मूर्मिसहस्रमालाऽ-कुलाकुलवितोय-पोत-कलकलायमानकलितम्, पातालसहस्र वातवश वेगसलिलो-द्धूयमानोदकरजोरजोऽन्धकारं, वरफेणप्रचुरधवल निरन्तरसमुत्थिताट्टहासं, मारुत-विक्षोभ्यमाण-पानीय-जलमालोत्पलीहुलितम्; अपिच समन्ततः क्षुभित-लुलित-चोक्षुभ्यमाण-प्रस्खलित-चलित-विपुल-जलचक्रवाल-महानदीवेग-त्वरितापूर्यमाण-गम्भीर-विपुलावर्त-चपल-भ्रमद्-गुण्यद्-गुच्छ लदरया वर्तमान पानीय-प्रधावित-खर-परुष-प्रचण्ड-व्याकुलित-सलिलस्फुटद्वीचिकल्लोलसङ्कुलम्, महामकर-मत्स्य कच्छपाऽऽहार ग्रहतिमि-सुंसुमार-श्वापद-समाहत-समुद्धावत्पूरघारप्रचुरम्, कातर जन हृदय-कम्पनम्; घोरमारसन्तम्, महाभयम्-भयङ्करम्, प्रतिभयम्, उत्त्रासनकम् अनवांपारम्, आकाशमिव निरवलम्बम् औत्पातिक पवनात्यर्थं नोदितोपर्युपरितरङ्ग-दृप्तातिवेग-वेगचक्षुः पथाऽतृणवत्-क्वचिद्गम्भीर-विपुलगर्जितगुञ्जित-निर्घातगुरुकनिपतित-सुदीर्घनिर्ह्रादि-दूरश्रूयमाण-गम्भीरधुगधुगितिशब्दम्, प्रतिपथरुन्ध-यक्षराक्षस-कूष्माण्ड-पिशाचरुषित-तज्जातोपसर्गसहस्रसङ्कुलम्, बहूत्पातिकभूतम्, विरचित-बलिहोम-धूपोपचारदत्त-रुधिरार्चनाकरण प्रयतयोगप्रयतचरितम्, पर्यन्तयुगान्त-कालकल्पोपमम्, दुरन्तमहानदीनदीपति-महाभीमदर्शनीयम्, दुरणुचरम्, विषम-प्रवेशम् दुःखोत्तारम्, दुराशयम् लवणसलिलपूर्णम्, असितसितसमुच्छ्रितकैः दक्ष-तरैः वाहनैरतिपत्य समुद्रमध्ये घ्नन्ति गत्वा जनस्य पोते। परद्रव्यहरा नरा निरनु-कम्पा निरवकांक्षा ग्रामागरनगर-खेट-कर्बट-मडम्ब-द्रोणमुख-पट्टणाश्रम-निगम-जनपदेच धनसमृद्धे घ्नन्ति; स्थिरहृदयछिन्नलज्जा वन्दिग्रहगोग्रहान् च गृह्णन्ति, दारुणमतयो निष्कृपा निजं घ्नन्ति, छिन्दन्ति गृहसन्धिम्; निक्षिप्तानिच हरन्ति, धन-धान्य-द्रव्य-जातानि जनपदकुलानां, निर्घृणमतयः, परस्य द्रव्याद् ये ऽविरताः। तथैव-केऽपि अदत्तादानं गवेषयन्त; कालाऽकालयोः सञ्चरन्तः चितिका-प्रज्वलित-सरस-दर-

दग्ध कृष्टकलेवरे, रुधिरलिप्तवदनाऽक्षतखादितपीतडाकिनोभ्रमणभयङ्करे जम्बुककृतखीखीतिशब्दिते, घूककृतघोरशब्दे वेतालोत्थितनिशुद्ध (विशुद्ध) कहकहायमानप्रहसितभयानकनिरभिरामे, अतिदुरभिगन्धबीभत्सदर्शनीये, श्मशान-वन-शून्य-गृहलयनान्तरापण—गिरिकन्दराविषमश्वापदसमाकुलासु वसतिषु क्लिश्यन्तः; शीताऽतप शोषितशरीराः, दग्धच्छवयो निरयतिर्यग्भवसङ्कटदुःखसम्भारवेदनीयानि पापकर्माणि सञ्चिन्वन्तो दुर्लभभक्ष्यान्न पानभोजनाः, पिपासिताः, श्माताः क्लिद्यमानाः, मांसकुणपकन्दमूलयत्किञ्चित्कृताहाराः, उद्विग्ना उत्प्लुता, अशरणा, अटवीवासमुपयन्ति व्यालशतशङ्कनीयम् । अयशस्करास्तस्करा भयङ्कराः कस्य हरामोऽद्य द्रव्यम् ? इति सामर्थ्यं कुर्वन्तिगुह्यम् । बहुकस्य जनस्य कार्य कारणयो र्विघ्नकराः, मत्त-प्रमत्त-प्रसुप्त-विश्वस्त छिद्रघातिनो व्यसनाभ्युदययोर्हरणबुद्धयो वृकाईव रुधिरमहिताः पर्यटन्ति, (पर्यन्ति) नरपतिमर्यादामतिक्रान्ताः; सज्जनजन जुगुप्सिताः, स्वकर्मभिः पापकर्मकारिणोऽशुभपरिणताश्च दुःखभागिनो नित्याऽविलदुःखाऽनिर्वृत्तमानसा इहलोके चैव क्लिश्यन्तः परद्रव्यहराः; नरा व्यसनशत समापन्नाः॥ सू० ४ । ११ ॥

अन्वयार्थ—(अवरे) दूसरे-स्वयं लडने वाले राजा (रणसीसल द्धलक्खा) संग्राम के अग्रभाग में अपने लक्ष्य को पाने वाले (संगामंमि) संग्राम में (अतिवयंति) खुद ही कूद पडते हैं (सन्नद्ध बद्ध परियर उप्पीलिय चिंधपट्ट गहियाउहपहरणा) तैयारी किये हुए, कवच बांधे हुए, चिह्न पट को मस्तक पर मजबूत बांध कर जो प्रहार करने के साधन-विविध आयुधों को ग्रहण किये हुए हैं, फिर (माढिवर वम्म गुंडिया) बखतर व उत्तम वर्म शिरस्त्राण-से सुरक्षित रहने वाले (आविद्ध जालिका) लोह की जाली पहने हुए (कवय कंकडइया) कवच से कांटे युक्त शरीर वाले (उर सिर मुह बद्ध कंठ तोंण माइतवरफलह रचित पहकर सरहस खर चाव कर करंछिय सुनिसित सर वरिस चड करक मुयंत घण चंडवेग धारा निवाय मग्गे) जिन्होंने छाती के साथ गले में ऊंचे मुंह वाले तूणीर बांधे हैं तथा हाथ में लिये हुए प्रधान पाटियों से जिन्होने दूसरे के शस्त्र प्रहार को विफल करने केलिये समूह बना लिया है तथा वेग वाले या हर्षयुक्त एवं हाथ में कठोर धनुष को लिये हुए हैं और धनुर्धारियों से खींचेगये अतिशय तीक्ष्ण बाणों की मेघ के समान वेग से होने वाली धारा वृष्टि का जहाँ मार्ग है (अणेग धणुमंडलग्ग संधिताउच्छलियसत्ति-कणग-वाम कर गहिय

खेडग निम्मल निक्कि्ट्ठ खग्ग-पहरंत कोंत-तोमर-चक्क-गया-परसु-मुसल-लंगल सूल लउल भिंडमाला सव्वल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण-मोट्ठिय-मोग्गर-वर फलिह-जंत पत्थर-दुहण तोण-कुवेणी-पीढ-कलिय ईली पहरण मिलि मिलि मिलंत खिप्पंत विज्जुज्जल विर चित समप्पहणभतले) अनेक धनुष और मण्डलाग्रखड्ग विशेष, तथा फेंकने को निकली हुई तथा उछलती हुई शक्तियाँ त्रिशूल, और बाण तथा बायें हाथ में लिये हुए पाटिये फलक, निकली हुई उज्जवल चमकदार खड्ग, प्रहार में प्रवृत्त कुन्त-भाले, तोमर-बाण चक्र, गदा, परसु-कुठारविशेष, मूशल, लांगल, हल, शूल और लकुट-दंडा, भिंड माल शस्त्रविशेष, शव्वल-भाला, पट्टिस-अस्त्रविशेष, चर्मेष्ट—चमडे में बंधा पत्थर, द्रुघण—एक प्रकार का मुद्गर, मौष्टिक—मुष्टि में आने लायक पत्थर, मुद्गर और बडी आगल—वर परिघा, यन्त्र प्रस्तर—गोफण आदि के पत्थर, द्रुहण—धक्का देकर वृक्ष गिराने का साधन, तोण तूणीर, कुवेणी, पीठ-आसन इन प्रहरणों से युक्त रहने वाले, तथा ईली—एक प्रकार के तलवार विशेष और फेंके जाते हुए चिक चिकाहट युक्त अन्य प्रहारों से उज्ज्वल बिजली की प्रभा के समान बनी है दीप्ति जिसमें, ऐसे आकाश तल से युक्त तथा ( फुड पहरणे ) जहां प्रहरण शस्त्र खुले हुए हैं ऐसे संग्राम में, फिर ( महारण-संख-भेरि-वरतूर-पउर-पडुपडहाहय – णिणाय-गंभीर णंदित पक्खुभिय विपुल घोसे ) महारण सम्बन्धी शंख, भेरी और वरतूर्य के प्रचुर तथा स्पष्ट ध्वनिवाले बजाये गए पटह के गम्भीर निनाद-ध्वनि—से जो प्रसन्न और भयभीत लोकों के विस्तीर्ण घोष-कोलाहल से युक्त है ( हय गय रह जोह तुरित पसरित उद्धत तमंधकार बहुले ) घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओं के गमनागमन से शीघ्र फैला हुआ रज ही जहाँ अतिशय प्रबल अन्धकार है वैसे ( कायर नर णयण हियय वाउल करे ) कायर मनुष्यों के नेत्र और हृदय को व्याकुल करने वाले ( विलु लिय उक्कड-वर मउड-तिरीड – कुंडलोडु दामा डाविया ) ढिलाई से चञ्चल और अधिक ऊंचे जो उत्तम मुकुट तथा तिरीट-तीन शिखर वाला मुकुट विशेष और कुण्डल व नक्षत्र माला नामक आभरण विशेष उन से जो चमक और आटोप युक्त है, ( पागड-पडाग-ऊसिय-ज्झय-वेजयंति चामर चलंत छत्तंध-कार गंभीरे ) प्रकट की गई पताका तथा ऊंची उठाई हुई ध्वजा और वैजयन्ती—विजय सूचक पताकायें-और चलते हुए चामर व छत्रों के कारण जो अन्धकार से गम्भीर अर्थात् अति अन्धकार वाला है ( हय हेसिय हत्थि—गुल गुलाइय रह घण घणाइय पाइक्क हर हराइय अप्फाडिय सीहनाया ) घोडों का हिन हिनाना, हाथी का गुल गुलाना

तथा रथों का घर घराना और पैदल सैनिकों का हर हर आदि शब्द करना ताल बजाना और सिंह नाद करना फिर ( छेलिय विघुट्टकुट्ठ कंठ गय सद्द भीम गज्जिए ) सेंटित-सीत्कार करना, विरूप घोष करना तथा उत्कृष्ट-आनन्द की महा ध्वनि और कंठ से किया हुआ शब्द ये ही जहाँ मेघ की गर्जना है ऐसे, ( सय राह हसंत रुसंत कल कलरवे ) एक हेला-एक उमंग-से, हंसते वा रुष्ट होते हुए लोकों के कल-कल शब्द से व्याप्त ( आसूणिय-वयणरुद्दे ) कुछ मोटे किये हुए व फुलाये हुए मुंह से जो रुद्र भयानक है ( भीम—दसणाधरोट्ठ—गाढदट्ठे ) भयङ्करता के साथ जिन्होंने दांतों से नीचे के ओष्ठ को गाढ काटा है वैसे लोग वाला ( सप्प हरणुज्जय करे ) जो अच्छी तरह प्रहार करने में तत्पर योद्धाओं के हाथ वाला है ( अमरिस वस तिव्वरत्त-निद्दारितच्छे ) जहाँ क्रोध वश आंखें अत्यन्त लाल और निकाली हुई हैं ( वेर—दिट्ठि कुद्ध—चिट्ठिय-तिवली-कुडिल-भिउडि-कय निलाडे ) बैर की नजर से जो क्रुद्ध और चेष्टा युक्त हैं, ललाट पर तीन रेखाओं से वक्र—टेढी—जहाँ भ्रुकुटि चढी हुई है, ऐसे दृश्यों से संग्राम भूमि युक्त है' ( वह परिणय नर सहस्स विक्कम वियंभिय बले ) मारने के विचार वाले हजारों मनुष्यों के परा क्रम से जो विस्तृत बल वाला है अर्थात् जहाँ प्रहार करने वाले हजारों सुभटों का बल प्रदर्शित होरहा है ( वग्गंतर-तुग-रह-पहाविय समरभडा ) जहाँ उछलते हुए घोडों के रथ से सांग्रामिक योद्धा जोश के साथ जुटे हुए हैं, ( आवडिय छेय लाघव पहार साधिता ) जो लडने को आये हुए दक्ष और हल्के प्रहार से साधन किये हुए हैं ( समूसवियबाहुजुगलं ) हर्ष की अधिकता से जहाँ दोनों हाथ उठाये हुए हैं ( मुक्कट्ट हास-पुक्कंत-बोलबहुले ) मुक्ताट्टहास-महाहास करने वाले और पूत्कार करने वाले मनुष्यो के कल कल शब्द की अधिकता वाला ( फुर फलगा वरण गहिय गयवर पत्थित दरिय भड खल परोप्पर पलग्गजुद्ध गव्वित विउसित वरासिरोस तुरिय अभिमुह पहरिंत छिन्न करिकर विभंगित करें ) स्फुर अथवा स्फार याने चमकते हुए फलक और सन्नाह को ग्रहण किये हुए शत्रु दल के हाथिओं के कुम्भस्थल पर चढ के उनको मारने की अभिलाषा करने वाले जो दर्पयुक्त दुष्ट योद्धा हैं, वे परस्पर लडने को लगे हुए हैं और युद्ध कला के विज्ञान में अहङ्कार युक्त तथा उत्तम तलवारों को कोष से निकाले हुए रोष से शीघ्र सामने प्रहार करते हुए जिन्होंने हाथिओं को सूंडें काटली हैं और जहाँ अनेकों के हाथ भी खंडित दिखाई पडते हैं ( अवइद्ध निसुद्ध भिन्न फालिय

पगलिय रुहिर कत भूमि कद्दम चिलि चिल्लपहे ) बाण आदि से बींधे गये, अच्छी तरह कटे हुए और जो शरीर विदारण किये गये हैं उनके देह से गलते हुए रक्त से भूमि पर के मार्ग, कीचड से भरगये हैं ऐसे, तथा ( कुच्छि-दालिय-गलित रुलित निभेल्लतं फरु फुरंतऽविगल मम्माहय विकय गाढ दिन्न पहार मुच्छित रुलंत वेंभल विलाव कलुणे ) कुक्षि—पेट में विदारण करने से जहाँ गला हुआ रक्त बहता है और भूमि पर घायल लोग लुढक रहे हैं, तथा कइओं को पेट से आंतें निकालदी गई हैं, ( फुरफुरायमाण ) धूजते हुए और जो अङ्ग से विकल इन्द्रियों की विरुद्ध वृत्ति वाले हैं तथा जो मर्मस्थल में आहत हैं व जिनको बुरी तरह से गाढ प्रहार दिया गया है, इसीलिये जो मूछित होकर जमीन पर लौटते और विह्वल बने हैं, उन सबके विलाप से जो स्थान करुणा जनक है वहां ( हय जोह भमंत तुरग उद्दाम मत्त कुंजर परिसंकित जण निव्वु कच्छिन्न धय भग्ग रह वर नट्ट सिर करि कलेवरा किन्न पतित पहरण विकिन्नाभरण भूमि भागे ) मरे हुए सैनिकों के स्वेच्छा से इधर उधर फिरते हुए घाडे, मद मस्त हाथी और भयभीत मनुष्य तथा 'निवुक्क च्छिन्न'—निमूल कटी हुई ध्वजायें और टूटे रथ जहाँ दिखाई पडते हैं, फिर कटे हुए मस्तक वाले हाथिओं के कलेवरों से भरा हुआ तथा गिरे हुए शस्त्रास्त्र और बिखरे हुए अलङ्कारों से जहाँ का भूप्रदेश युक्त है ( नचंत कबंध पउर भयंकर वायस परिलेंत गिद्ध मंडल भमतच्छायंधकार गंभीरे ) नाचते हुए-कबंध-विना शिर के देहों की प्रचुरता वाला तथा डरावने कौए और चारों ओर फैलते हुए गिद्धों के भ्रमण करते हुए मण्डल की छाया से जो गहरे अन्धकार वाला है, ऐसे संग्राम में।वसुवसुहविकंपितव्व ) देव और वसुधा को कम्पित करने वालों के समान वे राजालोग, ( पच्चक्ख पिउवणं ) साक्षात् पितृवन श्मशान के जैसे ( परमरुद्दवाहणगं ) परम रौद्र और भय उत्पन्न करने वाले ( दुप्पवेसतरगं ) सामान्य जनों के लिये कठिनाइ से प्रवेश पाने योग्य ( संगाम संकडं परधणं ) और संग्राम से गहन पूर्ण, ऐसे परधन को ( महंता ) चाहते हुए ( अभिवयंति ) उस समर युद्ध में कूद पडते हैं। ( अवरे पाइक्क चोरसंघा ) राजाओं से भिन्न दूसरे पैदल चोर समूह ( सेणावति चारवंद पागड्डिकाय ) और चोर संघ को प्रेरणा करने वाले सेनापति जो ( अडवी देस दुग्गवासी ) अटवी के दुर्ग में रहने वाले ( काल-हरित रत्त-पीत-सुक्किल अणेगसय चिंधपट्टबद्धा ) काले, हरे, लाल, पीले और धोले ऐसे पांचों रंग के सैकडों चिह्नपट्ट-

निशान के कपडे जिन्होंने बांध रक्खे हैं। और (लुद्धा) लोभी (परविसए) दूसरे के प्रदेशों को (धणस्स कज्जे) धन के लिये (अभिहणंति) लूटते-मारते हैं, (रयणागरसागरं) रत्नों की खान रूप जो समुद्र (उम्मी सहस्स माला उलाकुल वितोय पोत कल कलेंत कलियं) हजारों तरङ्ग माला से आकुल तथा जल के अभाव से व्याकुल ऐसे नौका व्यापारियों की कल-कल ध्वनि से युक्त है (पायाल सहस्स वायवस-वेग सलिल-उद्धम्ममाण दग-रय-रयंधकारं) हजारों पाताल कलशों में से वायु के साथ वेग सेऊपर उछलता हुआ समुद्र जल ही जहाँ जलकण रूप धूलीमय अन्धकार है (वरफेण-पउर-धवल-पुलंपुल-समुट्ठियट्टहासं) उत्तम फेन ही जहाँ अत्यन्त धवल और सदा उठा हुआ अट्टहास है (मारुय-विच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पोलहुलियं) हवा से विक्षुब्ध होते हुए जल के कारण जो शीघ्र जलमाला के समूह वाला है (अविय समंतओ) और भी चारों तरफ से (खुभिय-लुलिय खो-खुब्भमाण-पक्खलिय-चलिय-विपुलजल—चक्कवाल-महाणई-वेगतुरिय-आपूरमाण गंभीर-विपुल आवत्त चवल-भममाण गुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणिअत्त-पाणिय पधाविय खरफरुस-पयंड-वाउलिय-सलिल-फुट्टंत-वीतिकल्लोल संकुलं) वायु आदि से क्षुब्ध किया गया, लुलिय-तीर की भूमि पर टकराता हुआ, बडे मत्स्य आदि के कारण अत्यन्त व्याकुल किया गया और प्रस्खलित-पहाड़ आदि से रोका गया-फिरकर अपने स्थान की ओर जाता हुआ जहाँ पानी का अधिक विस्तार में मंडल है; तथा बडी नदियों के वेग से जो जल्दी भरा जा रहा है, व गंभीर और अधिक फैले हुए आवर्तों में चपलता के साथ भ्रमण करते हुए, व्याकुल होते, उछलते, या नीचे गिरते हुए पानी तथा जीवों से युक्त है, वेग युक्त गतिवाली अत्यन्त कठोर, रौद्र तथा व्याकुलता युक्त जलवाली और विदीर्ण होती हुई तरङ्ग माला से जो संकुल है, (महामगर मच्छ कच्छभोहार-गाह-तिमि-सुंसुमार-सावय-समाहय समुद्धायमाणक पूर-घोर पउरं) फिर महा मगर, मत्स्य, कच्छप, ओहार—जल जन्तु विशेष, ग्राह, तिमि-बडा मत्स्य, सुंसुमार और श्वापद—हिंसक जीव इनके परस्पर एक दूसरे से मारे गये और प्रहार करने को उठे हुए बहुत समूहों से जो भयानक है। (कायर जण हियय कंपणं) कायर मनुष्यों के हृदय को धुजाने वाला (घोरमारसंतं) भयङ्कर शब्द करने वाला (महब्भयं) परम भय देने वाला (भयकरं) भयङ्कर (पतिभयं) प्रत्येक वस्तु में भय पैदा करने वाला (उत्तासणगं) डराने वाला—त्रास उत्पन्न करने वाला (अणोरपारं) जिसका ओर दिखाई नही देता वैसा (आगासंचेव) और आकाश

के समान ( निरवलम्बं ) आधार रहित ( उप्पाइय पवणधणित-नोल्लिय-उवरुवरि-तरंगदरिय-अतिवेग-वेग-चक्खु पह मुच्छरंत-कत्थइ गंभीर विपुल गज्जिय-गुंजिय-निग्घाय-गरुय निवतिन सुदीह नीहारि-दूर सुव्वंत गंभीर-धुगधुगंतसद्दं ) उत्पात सम्बन्धी पवन से अतिशय प्रेरणा पाई हुई जो निरन्तर ऊपर उठने वाली तरङ्गें हैं गर्व युक्त की तरह सब वेगों की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, जिनके वेग से दृष्टि का मार्ग ढका हुआ है, कहीं पर गम्भीर व मेघ ध्वनि की तरह विस्तीर्ण गर्जना रव से गुञ्जित; वाद्य विशेष के समान गुंजन और निर्घात-बिजली गिरने के समान शब्द अथवा व्यन्तरकृत महाध्वनि एवं विद्युत् आदि भारी द्रव्य के गिरने की जैसी महाध्वनि होती है और बहुत दूरतक सुन पडने वाला जहाँ धुग इस प्रकार गम्भीर शब्द होता है ( पडिपह रुंभंत-जक्ख-रक्खस-कुहंड-पिसाय-पढिगज्जिय-रुसिय-तज्जाय-उवसग्ग सहस्स संकुलं ) मार्ग में चलने वालों के राह को रोकने वाले यक्ष राक्षस, कूष्माण्ड और पिशाच रूप व्यन्तर विशेषों के प्रति गर्जना और हजारों उपसर्ग अथवा यक्ष आदि के रोष और उनसे किये गये उपसर्ग सहस्र से जो संकुल है ( बहुप्पाइय भूयं ) अनेक प्रकार के उत्पातों से युक्त ( विरचित बलिहोम-धूव-उवचार-दिन्न रुधिर चणा-करण-पयत जोग-पयय चरियं ) तथा बलिहोम और धूप से जिन्होंने देवता का पूजन किया एवं रुधिर-अपना या अन्य का रक्त दिया और उस पूजा कर्म में प्रयत्न शील तथा नौका के अनुकूल दूसरे कार्यों में तत्पर ऐसे सांयात्रिक-नौका व्यापारी से वह समुद्र सेवित है ( परियंत-जुगंतकाल-कप्पोवमं ) अन्तिम युग-कलियुग के अन्त काल-नाश काल के समान उपमा वाला ( दुरंत महानई-नइवई महाभीम दरिसणिज्जं ) जो दुख से अन्त मिलने योग्य गंगा आदि बडी नदियाँ तथा अन्य साधारण नदियों का स्वामी और महाभय जनक दर्शन वाला है ( दुरणुचरं ) दुःख से सेवन करने योग्य ( विसमप्पवेसं ) विषम प्रवेश वाले ( दुक्खुत्तारं ) दुःख पूर्वक उतरने योग्य ( दुरासयं ) कठिनता से पाने योग्य और ( लवण सलिल पुण्णं ) खारे पानी से भरे हुये समुद्र को ( असियसिय-समूसिय गेहि-दच्छतर फेहिं ) काली व सफेद ऊंची की हुई पताका वाले, अत्यन्त दक्ष याने वेग से चलने वाले ( वाहणेहिं ) वाहनों से ( अइवइत्ता ) प्रवेश करके ( समुद्द मज्झे गंतूण ) समुद्र के भीतर जाकर ( जणस्स पोते ) व्यापारी के जहाजों को ( हणंति ) लूटते-नष्ट करते हैं ( परदव्वहरा नरा ) दूसरे के धन को हरण करने वाले मनुष्य ( निरणुकंपा ) निर्दय ( निरवयक्खा ) परलोक की अपेक्षा नहीं करने वाले हैं, ( धण समिद्धे )

धन से समृद्ध ( गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मंडब-दोणमुह-पट्टणसम-णिगम जण-वतेय ) ग्राम, आकर-सोने चांदी आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर, खेट-धूली के कोट वाला, कर्वट-छोटा नगर मडंब-चारों ओर जिसके पास कोई दूसरा गांव नहीं हो, द्रोण मुख—जल मार्ग व स्थल मार्ग दोनों से जाने योग्य शहर पत्तन—रत्न भूमि या जल स्थल गत दोनों मार्गों में से किसी एक मार्ग से जाने योग्य; आश्रम-तापस आदि का निवास स्थान या तापसों से बसाया गया निगम-व्यापारिक क्षेत्र और जनपद-देश को (हणंति) वे लूटते-नष्ट करते हैं ( थिर हियय-छिन्न लज्जा ) ये अपने अर्थ में स्थिर चित्त-दृढ विचार वाले और लज्जा रहित होते हैं ( वंदिग्गह-गोगग-हेय ) मनुष्य को बन्दी बनाना और गौओं को पकड़नें रूप कार्यों को ( गेण्हति ) करते हैं ( दारुणमती-णिक्किषा ) दारुण बुद्धि वाले ये निर्दय ( णियं ) खुद को या निजी लोकों को भी ( हणंति ) मारते हैं ( छिंदति गेहसंधिं ) घर में सेंध लगाते हैं ( य ) और ( जणवय कुलाणं ) लोकों के घर के ( निक्खित्ताणि ) रक्खे हुए ( धण धन्न-दव्वजायाणि ) धन धान्य रूप द्रव्य समूहों को ( णिग्घिणमती ) निर्दय बुद्धि होकर ( हरंति ) हरण करते हैं ( जे ) जो ( परस्स दव्वाहिं अविरया ) दूसरे के द्रव्य को लेने से निवृत्त नहीं हैं अर्थात् जिन्होंने दूसरों के द्रव्य को लेना नहीं छोड़ा है ( तहेव केई ) इसी प्रकार कई लोग ( अदिन्ना दाणं गवेसमाणा ) बिना दिये द्रव्य को ढूंढते हुए ( काला कालेसु संचरंता ) समय और असमय में फिरते हुए ( चियका-पज्जलिय—सरस-दरदड्ढ—कड्ढिय कलेवरे ) चिताओं में जलते हुए मांस आदि युक्त, थोडे जलते हुए और मतलब से बाहर खींचे गए कलेवर वाले तथा ( रुहिरलित्त-वयण-अखत—खातिय—पीत—डाइणि भमंत भयकर ) रक्त से भरे हुए मुंह वाले अक्षत—पूरे मृतक खाये हैं और जिन्होंने उनके रक्त का पान किया है ऐसी डाकिनिओं के भ्रमण से जो भयङ्कर है, ( जंबुयखिक्खियंते ) जंबुक की खीखी रूप ध्वनि वाले तथा ( घूयकय घोर सद्दे ) उल्लुओं के घोर शब्दों से युक्त ( वेयालुट्ठिय—निसुद्ध कह—कहित—पहसित—बीहणक निरभिरामे ) बे ताल से किया गया शब्दान्तर वाला जो कह कह रूप प्रहसन से भयङ्कर और अशोभनीक है ( अति दुब्भिगंध—बीभच्छ—दरिसणिज्जे ) अत्यन्त दुर्गन्ध और भयङ्कर दर्शन वाले श्मशान में तथा ( सुसाणवण—सुन्नघर-लेण-अंतरावणगिरि कंदर-विसम-सावय समाकुलेसु ) श्मशान तथा जंगल का शून्य घर, लयन-पर्वत में खोदे हुए घर, ग्राम के मध्य की दुकानें और विषमता तथा हिंसक जन्तुओं से व्याप्त पर्वत की

कन्दरा रूप ( वसहीसु ) निवासस्थानों में ( किलिस्संता ) क्लेश पाते हुए ( सीतातप-सोसियसरीरा ) शीत-सर्दी व गर्मी से सुखाये हुए शरीर वाले ( दड्ढच्छवी ) जली हुई चमड़ी वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'वे लोग' ( निरय-तिरिय भव संकड-दुक्ख संभार वेयणिज्जाणि ) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन में होने वाले निरन्तर दुःख की अधिकता से वेदन करने योग्य ( पाव कम्माणि ) पाप कर्मों को ( संचिणंता ) संचय करते हुए 'रहते हैं' ( दुल्लह-भक्खन्न पाण भोयणा ) भक्ष्य-खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुर्लभ है. ( पिवासिया ) प्यासे (झुंझिया) भूखे ( किलंता ) थके हुए ( मंस कुणिमकंद-मूल जंकिंचि-कयाहारा ) मांस, शव-मुर्दा और कन्द मूल जो कुछ भी मिला उसी का आहार करने वाले हैं ( उव्विग्गा ) उद्वेग युक्त ( उप्पुया ) उत्सुकता वाले ( असरणा ) रक्षक से हीन ( अडवी वासं ) अटवी के निवास को ( उवेंति ) प्राप्त करते हैं, जो ( वाल सत संकणिज्जं ) सैकड़ों भुजंग आदि से शङ्का जनक है ( अजसकरा ) अकीर्ति करने वाले ( भयंकरा-तक्करा ) भयङ्कर चोर ( अज्ज ) आज ( कास ) किस को ( दव्वं ) द्रव्य ( हरामोत्ति ) हरण करें ( इति ) इस प्रकार ( सामत्थ गुज्झं ) गुप्त मन्त्रणा-विचार (करेंति) करते हैं (बहुयस्स जणस्स ) बहुत से मनुष्यों के ( कज्ज-करणेसु ) कार्य करने में ( विग्घकरा ) विघ्न करने वाले ( मत्त-पमत्त-पसुत्ता-वीसत्थ-छिद्दघाती ) मत्त-नशे में प्रमत्त बे सुध सोये हुए और विश्वास किये हुए लोगों का समय पर हनन करने वाले ( वसणब्भुदएसु हरण बुद्धी ) व्यसन—विपत्ति और अभ्युदय-उन्नति के प्रसङ्ग में हरण करने की बुद्धी वाले ( विगव्व रुहिर महिया ) वृक-व्याघ्र के जैसे रक्त को चाहने वाले ( परेंति ) चारों ओर भ्रमण करते हैं ( नरवति मज्जाय मतिक्कंता ) राजाओं की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले ( सज्जण जण-दुगुंछिया ) सज्जन लोगों से निन्दित ( पाव कम्मकारी ) पाप कर्म करने वाले ( स-कम्मेहिं ) अपने कर्मों के कारण ( असुभ परिणाया ) असुभ परिणाम वाले ( य ) और ( दुक्खभागी ) दुःख के भागी होते हैं ( निच्चाइल-दुहमनिव्वु इमणा ) सदा मलिन, दुःख का कारण और अशान्त मनवाले ( परदव्वहरानरा ) दूसरे के धन को चुराने वाले मनुष्य ( इह लोके चेव ) इस संसार में ही ( किलिस्संता ) क्लेश पाते हुए ( वसणसय समावण्णा ) सैकड़ों कष्टों से घिरे रहते हैं ॥ सूत्र ४ । ११ ॥

भावार्थ—" सूत्र के आदि में चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के प्रकार से, चोरों के अवान्तर भेद बताये गये हैं। तत्पश्चात् सैन्य बल को साथ लेकर

परचक्र पर आक्रमण करने वाले लुटेरों का वर्णन किया गया है। ये लुटेरे चतुरङ्गिणी-हय, गज, रथ और पैदल रूप इन चार प्रकार की सैनिकों से चक्र, शकट आदि विविध व्यूह बनाकर परधन को लूटते हैं। इनमें कई साहसिक राजा सेना की सहायता के बिना ही स्वयं भयङ्कर संग्राम में प्रवेश करके दूसरों का धन हरण करते हैं। केवल परधन के लालच से संग्राम करके दूसरों को लूटते हैं। राजाओं से भिन्न पैदल चोर संघ सेनापति आदि अटवी के दुर्ग स्थानों में रहकर विविध वर्णों के चिह्नपट्टों को बांधे हुए दूसरों के प्रदेश को भी ग्रहण करते हैं। जो हजारों उत्ताल तरल तरङ्गों से दुरवगाह है, ऐसे सागर में प्रवेश करके भी नौका आदि प्रबल साधनों से सज्जित होकर कई दूसरे के जहाजों को लूटते हैं। अनेक ग्रामों को नष्ट कर देते हैं। घर की दीवालों को फोडते, लोकों को मारते और सर्वस्व जबर्दस्ती ले लेते हैं। ऐसा मलिन आचरण वे लोग करते हैं जो परधन से अविरत हैं अर्थात् जो परधन की लालसा से अलग नहीं हुए हैं। अदत्त-बिना दिये हुए-धन को खोजते हुए वे लुटेरे श्मशान में जाते और गुफाओं में प्रवेश करते हैं, वहाँ पर सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, परिश्रम आदि सैकडों प्रकार के क्लेश सहते हैं। रक्षाहीन ऐसे अटवी वास को भी स्वीकार करते हैं। चोरों के समुद्र युद्ध तथा लूटने के प्रकार का विशद वर्णन मूल के अनुसार अन्वयार्थ में कहा गया है। जो स्पष्ट है। सू० ४। ११॥

**मूल**—तहेव केइ परस्स दव्वं-गवेसमाणा गहिता य हया य बद्धरुद्धा य तुरियं अतिधाडिया, पुरवरं समप्पिया, चोरग्गह-चारभड-चाडुकराण तेहिय कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय खर फरुस-वयण-तज्जण-गलच्छ-उल्लच्छणाहिं विमणा चारगवसहिं पवेसिया, निरयवसहि सरिसं तत्थवि गोमिय-प्पहार दूमण-निब्भच्छण-कडुय-वयण-भेसणग भयाभिभूया अक्खित्त नियंसणा मलिणदंडि खंड-निवसणा उक्कोडालंच-पासमग्ग परायणेहिं [ दुक्ख समुदीरणेहिं ] गोम्मिय भडेहिं विविहेहिं बंधणेहिं, किंते ?, हडि-निगड-बालरज्जुयकुदंडगवरत्त-लोहसंकल-हत्थंदुय-वज्झपट्टदाम कणिक्कोडणेहिं, अन्नेहि य एवमादिएहिं गोम्मिक भंडोवकरणेहिं दुक्ख समुदीरणेहिं संकोडण

मोडणाहिं बज्झंति मंदपुण्णा। संपुड-कवाड-लोहपंजर भूमि-घर-निरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय-चक्क-वितत-बंधण-खंभा-लण उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य विहेडयंता अवकोडक-गाढ उरसिरबद्ध-उद्धपूरितफुरंत—उरकडग मोडणा मेडणाहिं बद्धा य नीससंता सीसावेढ-उरुयावल-चप्पडगसंधि बंधण-तत्त-सलाग-सूइया कोडणाणि-तच्छण-विमाणणाणिय खार—कडुय-तित्त--नावण--जायणा--कारण-सयाणि बहुयाणि पावियंता, उर-क्खोडी--दिन्न-गाढपेल्लण अट्ठिक-संभग्ग-सुपंसुलीगा, गलकालक लोहदंड-उर-उदर-वत्थि परिपीलिता, मत्थंतहियय संचुण्णि-यंगमंगा, आणत्तीकिंकरेहिं केति अविराहिय वेरिएहिं जमपुरिस सन्निहेहिं पहया, ते तत्थ मंदपुण्णा चडवेला-वज्झपट्ट-[4]पाराइं-छिवकस लत वरत्त [5]नेत्तप्पहारसय-तालियंगमंगा, किवणा लंबंत-चम्म-वण वेयण विमुहियमणा घणकोट्टिम-नियल-जुयल-संकोडिय-मोडिया य, कीरंति निरुच्चारा एया अन्नाय-एवमा-दीओ वेयणाओ पावा पावेंति, अदंतिंदिया वसट्टा बहु मोह मोहिया परधणंमि लुद्धा, फासिंदियविसय तिव्वगिद्धा, इत्थि-गय-रूव-सद्द-रस-गंध-इट्ठ-रति-महित-भोग तण्हाइया य धण-तोसगा, गहिया य जे नरगणा पुणरावि ते कम्मदुव्वियद्धा, उव-णीया राय-किंकराण तेसिं वहसत्थग पाढयाणं, विलउली कार-काणं, लंचसय- गेण्हगाणं कूड-कवड-माया-नियडि आयरण-पणिहि वंचण-विसारयाणं, बहुविह अलिय-सत जंपकाण पर-लोक-परम्मुहाणं, निरयगति गामियाणं, तेहि य आणत्त-जीय दंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग- तिय-चउक्क-चच्चर-चउ-म्मुह-महापह पहेसु, वेत्त--दंडाल उड-कट्ठ-लेट्ठु पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग महिय

गत्ता, अट्ठारस कम्मकारणा, जाइ यंगमंगा[1] कलुणा सुक्कोट्ठकंठ-गलक तालुजीहा जायंता पाणियं, विगय जीवियासा, तण्हा-दिता वरागा तंपिय ण लभंति वज्झपुरिसेहिं घाडियंता, तत्थ य खर फरुस पडह घट्टित कूडग्गह गाढ रुट्ठ निसट्ठ परामुट्ठा वज्झ करकुडि जुय नियत्था, सुरत्त कणवीर गहिय विमुकुल कंठेगुण वज्झदूत आविद्ध मल्लदामा, मरण भयुप्पण्ण सेद आयतणेहुत्तु पियकिलिन्नगत्ता, चुण्णगुंडिय सरीर रय रेणुभरियकेसा, कुसुं भगोक्किन्न मुद्धया, छिन्नजीवियासा, घुन्नंता वज्झयाण[2] भीता तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीर विकंत लोहिओलित्ता कागणि मंसाणि खावियंता, पावा खरफरुसएहिं तालिज्जमाणदेहा, वातिक नर नारि संपरिवुडा, पेच्छिज्जंता य नागरजणेण, वज्झ ने वत्थिया, पणेज्जंति नयरमज्झेण किवण कलुणा अत्ताणा, असरणा, अणाहा अबंधवा, बंधु विप्पहीणा, विपिक्खिंता दिसोदिसिं मरण भयुव्विग्गा आघायण-पडिदुवार-संपाविया, अधन्ना सूलग्ग-विलग्ग-भिन्नदेहा, तेयतत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा, उल्लंबिज्जंति रुक्खसालासु केई कलुणाइं विलवमाणा, अवरे चउरंग धणिय बद्धा पव्वय कडगा पमुच्चंते, दूरपात बहुविसम पत्थरसहा, अन्नेय गयचलण-मलणि य निम्मद्दिया कीरंति पावकारी, अट्ठारस खंडिया य कीरंति, मुंडपरसूहिं केई उक्कत्त कन्नोट्ठ नासा, उप्पाडिय नयण-दसण वसणा, जिब्भिंदियछिया छिन्न-कन्नसिरा, पणिज्जंते छिज्जंते य असिणा निव्विसया, छिन्न हत्थपाया। पमुच्चंते जावज्जीव बंधणा य कीरंति केइ। पर दव्वहरणलुद्धा, कारग्गल-नियलजुयलरुद्धा, चारगावहतसारा सयणविप्पमुक्का, मित्तजणनिरिक्खिया[3] निरासा बहुजणधिक्कार सद्दलज्जायिता, (अलज्जाविया) अलज्जा अणुबद्ध-खुहा पारद्धसी उण्ह-तण्ह वेयण दुग्घट्ट-घट्टिया, विवन्नमुह-विच्छविया, विहल मलिन दुब्बला,

१—क. पाणि यंगुपंगा। २—क. वज्झगयाणीया। ३—क. निरक्कया।

किलंता, कासंता, वाहिया य आमाभिभूयगत्ता, परूढ नह-केस-मंसुरोमा, छगमुत्तंमि णियगंमि खुत्ता तत्थेव मया अकामका बंधिऊण पादेसु कड्ढिया खाइयाए छूढा, तत्थ य वग-सुणग-सियाल-कोल-मज्जार-वंद संदंसगतुंड पक्खिगण-विविहमुह सयल विलुत्तगत्ता कय विहंगा केइ किमिणा य कुहियदेहा अणिट्ठ वयणेहिं सप्पमाणा सुट्ठुकयं जं मउति पावो तुट्ठेणं जणेणं हम्ममाणा लज्जावणकाय होंति सयणस्सवि दीह कालं मया संता ॥ सू० ५ । १२ ॥

छाया—तथैव केचिद् परस्य द्रव्यं गवेषयन्तः गृहीताश्च हताश्च बद्ध रुद्धाश्च त्वरित मति भ्राढिताः ( भ्रामिताः ) पुरवरं समर्पिता श्चौरग्राह चार भट चाटुकाराणाम् । तैश्च कर्पट प्रहार निर्दयाऽऽरक्षिक खर परुष वचन तर्जन गलग्रहणो ( च्छलो ) च्छलना नाभिर्विमनश्चारक वसतिं प्रवेशिता निरय वसति सदृशीम् । तत्रापि गौल्मिक प्रहार-दवन-निर्भर्त्सन कटुक वचन भेपणक भयाऽभिभूताः, आक्षिप्त निवसना मलिन दण्डि-खण्ड-निवसना, उत्कोचा लञ्च पार्श्वे मार्गण परायणैः ( दुःख समुदीरणैः ) गौल्मिक भटैर्विविधैर्बन्धनैः, किं तानि ? ( तद्यथा ) काष्ठ ( हड्डि ) निगड-बालरज्जुक-कुदण्डक-वरत्र-लोहशृङ्खल-हस्तान्दुक-वर्धपट्ट-दामक निष्कोट नैरन्यैश्चैवमादिकै गौल्मिक भण्डोपकरणैः, दुःख समुदीरणैः सङ्कोचन मोटनाभिर्बध्यन्ते मन्दपुण्याः, सम्पुट कपाट-लोहपञ्जर-भूमिगृह निरोध-कूप-चारक-कीलक-यूप-चक्र-वितत बन्धनस्तम्भाऽऽलिङ्गनो—र्ध्वचरण बन्धन-विधर्मणाभिश्च विहेष्यमानाः ( बध्यमानाः ) अवकोटक गाढोरः-शिरो बद्धोर्ध्व पूरित-स्फुर दुरः-कटक मोटनाऽऽम्रेडनाभिर्बद्धाश्च, निःश्वसन्तः शीर्षाऽवेष्टकोरुकाऽऽवलन-चप्पडक-सन्धि बन्धन-तप्तशलाका-सूचीनामा-कोटनानि च ( तानि प्राप्यमाणाः ) तक्षण विमाननानि च क्षार-कटुक-तिक्त-दापनं ( नावण ) यातना-कारणशतानि बहुकानि ( बहूनि ) प्राप्यमाणाः । उरसिखोडी ( दीर्घकाष्ठ ) दत्तगाढ प्रेरणाऽस्थिक-संभग्न-सुपार्श्वाऽस्थिका-गल कालक लौहदण्डोर उदर वस्ति परिपीडिताः, मथ्यमान हृदय सञ्चूर्णिताङ्ग प्रत्यङ्गा, आज्ञप्ति किङ्करैः केचिद विराधित वैरिकैर्यम पुरुषसन्निभैः प्रहतास्तेत्र मन्दपुण्याः, चडवेला ( चपेटा ) वर्धपट्ट प राइं ( लोह कुशी ) छिवा-

कष-लत-वरत्र-नेत्र-प्रहारशत ताडिताऽङ्ग प्रत्यङ्गाः कृपणा लम्बमान चर्म व्रण वेदना-विमुखित-मानसाः घन कुट्टिम-निगड-युगल-सङ्कोटित-मोटिताश्च क्रियन्ते निरुच्चाराः। एता अन्याश्चैवमादिका वेदनाः पापाः प्राप्नुवन्ति। अदान्तेन्द्रिया वशार्ताः ( विषय पीडिताः ) बहु मोह मोहिताः, परधनेलुब्धाः, स्पर्शेन्द्रिय विषय तीव्र गृद्धाः, स्त्रीगत रूप-शब्द-रस-गन्धेष्टरति-महित भोग तृष्णार्दिताश्च धनतोषका गृहीताश्च ये नरगणाः। पुनरपि ते कर्म दुर्विदग्धा उपनीता-राजकिङ्कराणां तेषां वधशास्त्र पाठकानां, विटपोल्लक कारकाणां, लञ्चाशत ग्राहकाणां, कूट कपट माया-निकृति काऽऽचरण-प्रणिधिवञ्चन-विशारदाना, बहुविधालीक शत जल्पकानां, परलोक पराङ्मुखानां, निरयगति गामिनाम्। तैश्च आज्ञप्त जीत ( जीवित ) दण्डात्वरित मुद्घाटिताः पुरवरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ पथेषु, वेत्रदण्ड-लकुट-काष्ठ-लेष्टु प्रस्तर-प्रणाली-प्रणोदी मुष्टिलता-पादपार्ष्णि-जानुकूर्पर प्रहार संभग्नाऽऽमथितगात्राः, अष्टादश कर्म कारणात्-यातिताङ्ग-प्रत्यङ्गाः, करुणाः, शुष्कौष्ठ कण्ठ गलक-तालु-जिह्वा, याचमानाः पानीयं विगत जीविताशास्तृष्णार्दिता वराकास्तदपि न लभन्ते, वध्यपुरुषैः धाड्यमानाःप्रेर्यमाणाः। तत्र च खर परुष पटह घट्टित, कूट ग्रह गाढ रुष्ट निसृष्ट परामृष्टाः वध्य कर कुटी युग निवसिताः सुरक्त कणवीर ग्रथित विमुकुल कण्ठे गुण वध्य दूताऽऽविद्ध माल्यदामानः मरण भयोत्पन्न स्वेदायत स्नेहित हुत्तुपित ? क्लिन्न गात्राः, चूर्णगुण्डित शरीर रजोरेणुभृत केशाः कुसुम्भ कोत्कीर्ण मूर्ध्वजाश्छिन्नजीविताऽऽशा घूर्णमानावध केभ्यो भीतास्तिलं तिलं चैव छिद्यमानाः शरीर व्युत्क्रान्त लोहितोलिप्तानि काकिणी मांसानि खाद्यमानाः पापाः खरपरुषैः (खरकरशतैः) ताड्यमान देहा, वातिक नर-नारी संपरिवृताः प्रेक्ष्यमाणाश्च, नागरजनेन वध्यने पथ्यिताः प्रनीयन्ते नगरमध्येन कृपण करुणा अत्राणा-अशरणा अनाथा-अबान्धवा-बन्धुविप्रहीना-विप्रेक्षमाणा-दिशोदिशं मरणभयोद्विग्नाः, आघातन प्रतिद्वार सम्प्रापिता अधन्याः, शूलाग्र विलग्नभिन्न देहाः स्ते च तत्र क्रियन्ते परिकल्पिताङ्ग प्रत्यङ्गाः। उल्लम्ब्यन्ते वृक्षशाखासु केचित्करुणानि विलपन्तः, अपरे चतुरङ्ग दृढ बद्धाः पर्वत कटकात्प्रमुच्यन्ते दूरपात बहुविषम प्रस्तरसह्याः अन्ये च गज चरण मलन निर्मर्दिताः क्रियन्ते पापकारिणः, अष्टादश खण्डिताश्च क्रियन्ते, मुण्डपरशुभिः केचिदुत्कीर्ण कर्णोष्ठनासा उत्पाटित नयन-दशन-वृषणाः, जिह्वेन्द्रियाच्छिताः, छिन्न कर्ण शिराः, प्रणीयन्ते छिद्यन्ते चाऽसिना, निर्विषयाश्छिन्न हस्तपादाः प्रमुच्यन्ते

यावज्जीव बन्धनाश्च क्रियन्ते, केऽपि परद्रव्य हरण लुब्धाः, कारागला-निगल-युगल रुद्धाश्चारकाऽपहृतसाराः, शयन ( स्वजन ) विप्रमुक्ता मित्रजन निरीक्षिता ( निराकृताः ) निराशा बहुजन धिक्कार शब्द लज्जापिता अलज्जा अनुबद्ध क्षुधाः प्रारब्ध शीतोष्ण तृष्णा वेदना दुर्घटा घट्टिता-विवर्णमुख विच्छवयो विफल मलिन दुर्बलाः, क्लान्ताः, काशमाना व्याधिताश्च आमाभिभूतगात्राः प्ररूढ नख-केश श्मश्रुलोमानः पुरीष ( छग ) मूत्रे निजके क्षिप्ताः, तत्रैव मृताः अकामकाः बध्वा पादयोराकृष्टाः खातिकायां क्षिप्ताः, तत्र च वृक शुनक-शृगाल-कोल-मार्जार चण्ड सन्दंशक तुण्ड पक्षिगण विविध मुख शकल विलुप्तगात्राः कृतविभागाः, ( विभंगाः ) केऽपिकृमिमन्तश्च कथितदेहा, अनिष्टवचनैः शप्यमानाः, सुष्ठुकृतं यन्मृत इति पापः तुष्टेन जनेन हन्यमानाः, लज्जापनाश्च भवन्ति स्वजनस्यापि दीर्घकालंमृताः सन्तः । सू० ५ । १२ ॥

## अब चोरी का फल वर्णन करते हैं ।

अन्व०— ( तहेव ) पूर्वोक्त प्रकार से ( केइ ) कई ( परस्स दव्वं गवेसमाणा ) दूसरे के द्रव्यों को ढूंढते हुए ( गहिया ) पकडे गये ( य ) और ( हया ) मारे गये ( य बद्धरुद्धा ) डोरी आदि से बांधे गये और रोके गए ( य ) और ( तुरियं अतियाडिया ) जल्दी २ घुमाये गए तथा ( पुरवरं ) नगर में पहुँचा कर ( चोरग्गह-चारभड-चाडु कराण समप्पिया ) चोरों को पकड़ने वाले, जेल के अधिकारी और चाटुकार-सिपाही वगैरह को सौंपे जाते हैं ( तेहि य ) और उनके द्वारा ( कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय-खर-फरुसवयण-तज्जण गलुच्छलुल्लच्छणाहिं विमणा ) कर्पट-कपडे के कोरड़े का प्रहार, दयारहित कोतवालों के अत्यन्त कठोर वचन और तर्जना तथा गला पकड के पीछे हटाना, इन सब कष्टों से उदास होकर ( चारक वसहिं ) चारक वसति—जैलखाने में ( पवेसिया ) ले जाये जाते हैं, जो जैलखाना ( निरयवसहिसरिसं ) नरकावास के समान है ( तत्थवि ) वहां पर भी ( गोम्मिय-प्पहार-दूमण-निब्भच्छण-कडुय वदण-भेसणग भयाभिभूता ) गुप्ति पाल के प्रहार, पीडा, आक्रोश और कटु वचन तथा भय जनक-डरावने मुखाकृति आदि भय से अभिभूत होते हैं ( अक्खित्त नियंसणा ) जिनके वस्त्र खींचे गए ( मलिन-दंडि खंड-निवसणा ) मलिन और फटे हुए चिथडे पहने हुए ( उक्कोडालंच-पास-मग्गण-परायणेहिं ) लोगों से रिशवत व नज़राना मांगने वाले [ दुःखों की उदीरणा करने वाले ] ( गोम्मियभडेहिं ) गुप्तिपाल-अधिकारियों के द्वारा ( विविहेहिं बंधणेहिं ) अनेक प्रकार के

बन्धनों से बांधे जाते हैं (किंते) वे बन्धन कौन से हैं? 'उत्तर' —(हडि निगड़ बाल रज्जुय-कुदंडग-वरत्त-लोहसंकल-हत्थंदुय-वज्झपट्ट-दाम-कणिकोडणेहिं) काष्ठ का खोडा, निगड-लोह की बेडी, बाल-केशों की रज्जु-डोरी, कुदण्ड अन्त में डोरी वाला पाशा, वरत्रा,-चमडे की डोरी और लोहे की संकल तथा हस्तान्दुक—एक प्रकार का बंधन वर्धपट्ट-चमडे की पट्टी, डोरी का बना हुआ पाँव का बन्धन और निष्कोट रूप बंधनों से (अन्नेहि य एवमादिएहिं) और अन्य इस प्रकार के (गोम्मिक-भंडोवकरणेहिं) गुप्ति पाल के भंडोपकरण-विविध साधन (दुक्ख समुदीरणेहिं) जो दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं उनसे (संकोड मोडणाहिं) देह को सिकोडने व मोडने से (वज्झंति) बांधे जाते हैं (मंदपुन्ना) मन्द पुण्य वाले (संपुड-कवाड-लोह पंजर-भूमिघर-निरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय-चक्क-विलित-बंधण खंभालण-उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य) और काष्ठमय संपुट कपाट लोहे के पिंजरे और तल घरमें रोक रखना कूप-अन्धकूप, चारक-बन्दी खाना. कील, यूप, युग गाडी का जुआ जो बैलों के कंधे पर दिया जाता है और चक्र से पीडा पहुँचाना, बाहु व जंघा का प्रमर्दन करके विशेष पीडा देना, थंभे में बांधना, पैर ऊपर करके बांधना इन सब कदर्थनाओं से (विहेडयंता) पीडित किये गए—अङ्ग प्रत्यङ्गों से मोडे-सिकोडे जाते हैं (अवकोडक-गाढ-उर-सिर बद्ध उद्ध पूरित-फुरंत-उर-कडग-मोडणा—मेडणाहिं) गर्दन को नीचे लेजा कर जो हृदय और मस्तक में गाढ-बल पूर्वक बांधे गये तथा हवा भरे गये या खडे २ को धूलि के नीचे दबाये गए हैं, धूजती छाती वाले, देह को मोडने या उलट पुलट करने अर्थात् ऊंचा नीचा करने से (बद्धाय) बांधे गए और (नीससंता) श्वास गिराते हुए (सीसावेढ-ऊरु-यावल—चप्पडग संधि बंधण-तत्तसलाग-सूइया कोडणाणि) चमडे से शिर को लपेट कर बाँधना, जंघों को विदारण करना या जलाना, घुटनों आदि पर काष्ठ के यन्त्र विशेष को बांधना, तपी हुई शलाका—कील और सूई के अग्रभाग को कूटकर देह में घुभोना-भोंकना (तच्छण-विमाणणाणिय) वसूले से लकडी की तरह छीलना-तरछना, अपमानित करना और (खार-कडुय-तित्त—नावण--जायणा-कारण सयाणि) क्षार-तिक्ष्ण क्षार आदि, मरची आदि कटुक, और निम्ब आदि तिक्त पदार्थों के देने से सैकड़ों पीडा के कारण (बहुयाणि) ऐसे बहुत से कारणों को (पावियंता) प्राप्त करते हुए (उरक्खोडी-दिन्न-गाढपेल्लण-अट्ठिक—संभग्ग—सुपंसुलीगा) छाती पर बाँधे गये

बड़े काष्ठ की मजबूत चोट से जो टूटी हुई अस्थि और पांसली वाले हैं ( गल कालक-लोह दंड-उर-उदर-वत्थि-परिपीलिता ) मत्स्य वेधो अस्त्र की तरह घातक होने से जो काले लोहमय दण्ड से वक्षःस्थल, पेट और गुह्य प्रदेश तथा पीठ पर पीटे गये हैं ( मच्छंत—हियय संचुण्णियंग मंगा ) मथा गया है हृदय जिनका और अङ्ग चूर्णित किये—पीसे गये हैं ( आणत्ती किंकरेहिं केति ) कई आज्ञा करने वाले किंकर पुरुषों से ( अविराहिय वेरएहिं ) बिना अपराध के वैरी बने हुए एवं ( जमपुरिस संनिहेहिं ) यम पुरुषों के समान जो कठोर हैं, उनसे ( पहया ) ताडना पाये हुए—पीटे गए ( ते ) वे ( मंदपुण्णा ) मन्द पुण्य वाले ( तत्थ ) वहाँ ( चडवेला—वज्झपट्ट-पारा-इं—छिव-कस-लत-वरत्त-वेत्तप्पहार सय तालियंग मंगा ) चपेटा, वर्ध्रपट्ट—चमडे की पट्टी; पारा—लोहमयकुशी, छिवा-चिकनी चाबुक, कष-चमडे का चाबुक, लता-बेंत की छडी, चमडे की बडी डोरी, बैंत, इन सबके सैकडों प्रहारों से जिनके अङ्गो पाङ्ग ताडित किये गये हैं, वैसे ( किवणा ) बुरी दशा वाले ( लंबत-चम्मवण-वेयण-विमुहियमणा ) लटकती हुई चमडी वाले घावों की पीडासे जो चोरी में विमुख मन वाले हैं ( घण कोट्टिम-नियल-जुयल—संकोडिय मोडियाय ) और लोहमय घन के मारने व बेडी के युगल से जो संकुचित और मोडे हुए अंग वाले हैं ( निरुधारा ) भ्रमण रहित या रुकी हुई जबान वाले तथा जिनका टट्टी पेशाब तक रोक दिया गया है, ऐसे ( कोरंति ) किंकरों के द्वारा-किये जाते हैं ( एया अन्नाय ) ये और ऐसी दूस-री ( एवमादी ) इत्यादि ( वेयणाओ ) वेदनायें ( पावा ) पापी ( पावंति ) पाते हैं ( अदंतिंदिया वसट्टा ) असंयत इन्द्रिय वाले एवं विषय की परतंत्रता से पीडित ( बहुमोह मोहिया ) मोह कर्म की तीव्रता से मुग्ध बने हुए ( परधणंमि लुद्धा ) जो परधन में लुब्ध हैं ( फासिंदिय विसय तिव्वगिद्धा ) स्पर्श इन्द्रिय के विषय तीव्र आसक्ति वाले ( इत्थिगय-रूव सद्द रस-गंध-इट्ठ—रति-महित भोग-तण्हाइयाय ) स्त्री के रूप—सौन्दर्य, मनोहर शब्द, रस व गन्ध सुगन्ध में मानी हुई जो रति तथा स्त्री के इष्ट भोग में तृष्णा रखने वाले और ( धण तोसगा ) धन से सन्तुष्ट होने वाले ( गहिया य ) और राज पुरुषों से पकडे गए ( जे नरगणा ) जो चोर मनुष्य ( पुण-रवि ते ) फिरभी छूट कर वे ( कम्म-दुव्वियद्धा ) कर्म के वशीभूत हुए ( उवणीया राय किंकराण ) राज पुरुषों के पास पहुँचाये जाते हैं ( तेसिं वह सत्थग पाठयाणं ) वध दण्ड शास्त्र के जानकार ( विलउली कारकाणं ) वृक्षों को झोंके देने वाले या व्याकुल करने वाले या ( लंचसय गेण्हगाणं ) सैंकडों प्रकार के घूंस लेने वाले ( कूड-

कवड-माया-नियडि—आयरण—पणिहि-वंचण विसारयाणं ) कूट—खोटे माप आदि, कपट-वेष व भाषा बदलना, माया-ठगबुद्धि, निकृति-धूर्तता, वंचन क्रिया इनका आचरण करने वाले अर्थात् एक चित होकर सदा कपट बाजी में विशारद ( बहुविह अलिय-सत् जंपकाणं ) बहुत प्रकार से सैंकडों झूठ बोलने वाले ( परलोक परम्मुहाणं ) परलोक से पराङ्मुख अर्थात् परलोक बिगडने की अपेक्षा नहीं करने वाले ( निरय गति गामियाणं ) एवं नरक गति में जाने वाले हैं ( तेहि य ) और उन राज पुरुषों के द्वारा ( आणत्त जीय दंडा ) जो दुष्ट निग्रह के लिये किया गया दण्ड या जीवन दण्ड रूप आदेश वाले ( तुरियंउग्घा डिया पुरवरे ) जल्दी से नगर के राज मार्ग में खुले किये गए ( सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर चउम्मुह-महापह-पहेसु ) शृङ्गाटक,-सिंघोडे के आकार का त्रिकोण स्थान त्रिके, चतुष्क-चौक, चत्वर-मैदान, चतुर्मुख-चारों ओर मार्ग वाला, देवकुल आदि महान् मार्ग और साधारण मार्ग इन सब जगहों में ( वेत्त-दंड-लउड-कट्ठ-लेट्ठु-पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग महियगत्ता ) वेत्र दण्ड, लकुट-दंडा, काष्ठ, ढेला, पत्थर, प्रणालि-शरीर प्रमाण लाठी, प्रणोदी-भार आदि की लकडीं, मुष्टि, लता, पादपार्ष्णि-पैर की एडी, जानु-कूर्पर-घुटना व कोहनी इन सब के प्रहारों से भङ्ग किये और मथे गये देहवाले ( अट्ठारस कम्मकारणा जाइयंग मंगा ) अट्ठारह प्रकार के कर्मों के कारणों से कदर्थित अङ्ग प्रत्यङ्ग वाले ( कलुणा ) दीन ( सुक्कोट्ठ-कंठ-गलक-तालु जीहा ) जिनके ओठ, कण्ठ, गला, तालु और जीभ सूखे हैं ऐसे ( पाणीयं जायंता ) पानी को माँगते हुए ( विगय जीवियासा ) जीवन की आशा छोड़े हुए ( तण्हादिता वरागा ) तृष्णा से पीडित बेचारे ( तंपिय न लभंति ) उस पानी को भी नहीं पाते हैं ( वज्झपुरिसेहिं घाडियंता ) वध्य-पुरुषों पर नियुक्त अधिकारिओं से प्रेरणा पाये हुए ( तत्थ य ) और उस प्रेरणा में ( खर-फरुस—पडह—घट्टित-कूडग्गह—गाढ—रुट्ठ-निसट्ठ परामुट्ठा ) अत्यन्त कठिन पटह-ढोल से चलने के लिये धकेले गये तथा अत्यन्त रुष्ट कर्मचारिओं के द्वारा छल पूर्वक पकडने के कठिन साधन—पाश विशेष से मजबूत पकडे गये ( वज्झकर कुडि-जुय निवत्था ) वध्य के योग्य करकुटीयुग-वस्त्र का जोडा विशेष-पहने हुए हैं ( सुरत्त—कणवीर-गहिय-विमुकुल-कंठे गुण वज्झदूत-आविद्ध मल्लदामा ) खिले हुए-खूब लाल कनेर के फूलों से गूंथे गये सुवर्ण हार के समान, कंठ में वध्य के दूत की तरह फूलमाला को जो पहने हुए हैं ( मरण

भयुप्पण्ण-सेद-आयत्त-णेहुत्तु पिय किलिन्नगत्ता ) मरण भय से उत्पन्न पसीने के कारण जैसे किसी ने थक कर तैल से शरीर मसला हो वैसे गीले शरीर वाले ( चुण्ण-गुंडिय सरीर रयरेणु भरिय केसा ) राख आदि के चूर्ण से भरे शरीर वाले तथा हवा से उड़ी हुई धूलि के कणों से जिनके केश भरे हैं ( कुसुंभ-गोकिन्न मुद्धया ) कसूंबा के रंग से व्याप्त केश वाले (छिन्न जीवियासा ) जीवन को आशा जिन की छूट गई है ( धुन्नंता ) भय की अधिकता से जो धूज रहे हैं ( बज्झयाण भीता ) घातक पुरुषों से डरे हुए या ( वज्झप्पाण पीता ) वध्य और दूसरे के प्राणों का पान करने-नाश करने वाले ( तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा ) तिल जैसे टुकडे २ कर के काटे गये ( सरीर विकिंत—लेहिओलित्ता कागणि मंसाणि ) शरीर से तत्काल काटे हुए अतएव रक्त स्राव से लिप्त ऐसे मांस के छोटे २ टुकडों को ( खावियंता ) खिलाये जाते हुए ( पावा ) पापी जीव ( खर फरुसएहिं ) अतिशय कठोर अथवा ( खर करसएहिं- ) सैकडों कठिन हाथों या पत्थर आदि से भरी हुई थैली से ( तालिज्जमाण देहा ) पीटे जाते हुए शरीर वाले ( वातिक नर नारि संपरिवुडा ) वातिक-स्वच्छन्द स्त्री पुरुषों से घिरे हुए ( पेच्छिज्जंता य नागर जणेण ) और नागरिक लोकों से देखे जाते हुए ( वज्झ नेवत्थिया ) वध्य के पूर्ण वेश वाले चोर ( नयर मज्झेण ) शहर के बीच से 'वध्य भूमि में' ( पणेज्जंति ) ले जाये जाते हैं ( किवण कलुणा ) अत्यन्त दीन ( अत्ताणा,—असरणा-अणाहा-अबंधवा-बंधु विप्पहोणा ) त्रास रहित, असरण गृह हीन, तथा नाथ बन्धु और बान्धवों से विप्रहीण अर्थात् प्रियजनों से दूर किये गए ( दिसोदिसिं विपिक्खंता ) एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर देखते हुए ( मरण भयु व्विग्गा) मरणभय से उद्विग्न (आघायण पडिदुवार संपाविया) वध्य भूमि के प्रतिद्वार पर पहुँचाये गए ( सूलग्ग-विलग्ग भिन्न देहा ) शूली के अग्रभाग पर लगे होने से विदीर्ण-छिदे हुए शरीर वाले ( अधन्ना ) जो अधन्य-विफल हैं ( ते य तत्थ ) और वे वहां पर ( परिकप्पियंग मंगा कीरंति ) छिन्न भिन्न अङ्गों पाङ्ग वाले किये जाते हैं ( रुक्ख-सालासु उल्लंबिज्जंति) वृक्ष की शाखाओं में लटकाये जाते हैं (केई कलुणाइं विलवमाणा) कई करुणा जनक विलाप करते हुए और ( अवरे ) दूसरे ( चउरंग धणिय बद्धा ) हाथ पांव रूप चार अङ्गो में दृढ बाँधे गए ( पव्वय कडगा पमुच्चंते ) पर्वत के शृङ्ग-शिखर से गिरा दिये जाते हैं ( दूरपात-बहुविसम—पत्थरसहा य ) और दूर से बहुत विषम पत्थर पर गिराये गये पतन के दुःख को सहने वाले हैं ( अन्ने ) दूसरे

( गय चलण मलण निमद्दिया कीरंति ) हाथी के पैर नीचे मसलने के कारण मर्दित किये जाते हैं; ( पावकारी अट्ठारस खंडिया य ) और चोरी के पाप को करने वाले अठारहों स्थान में खंडित ( कीरंति ) किये जाते हैं जैसे—( मुसुंढि परसूहिं ) मुशुंडी-कुण्ठित कुठार और परशु से ( केइ उक्कत्त-कन्नोट्ठ नासा ) कई काटे गये कान ओष्ठ और नाक वाले ( उप्पाडिय-नयण-दसण-वसणा ) आंख, दांत और वृषण-अंडकोश जिनके निकाले गये हैं वैसे ( जिब्भिंदियंछिया छिन्न कन्न सिरा ) खींची गई जीभ वाले, कटे हुए कान और नाडी वाले ( पणिज्जंते ) वध्य भूमि में लाये जाते हैं ( छिज्जंते य असिणा ) और तलवार से काटे जाते हैं ( निव्विसया ) देश से निकाले गये ( छिन्न हत्थपाया पमुच्चंते ) हाथ पांव काट कर राज पुरुषों से छोडे जाते हैं ( जावज्जीव बंधणाय कीरंति केइ ) और कई चोर आजीवन के लिये बंदी किये जाते हैं ( परदव्व हरण लुद्धा ) ये दूसरों के धन को हरण करने में लोभी ( कारगल नियल-जुयलरुद्धा ) जेल के कटहरे और दो बेडिओं से रुके हुए ( चारगावहतसारा ) चारक-कैद में छीने हुए द्रव्य वाले ( सयण विप्पमुक्का ) स्वजनों से छोडे गये ( मित्तजन निरिक्खि [ रंकि ] या निरासा ) मित्र जनों से देखे गये या हटाये गये अतएव निराश ( बहुजणधिक्कार सद्द लज्जायिता ) बहुत से लोकों के धिक्कार शब्द से लज्जा पाये हुए ( अलज्जा ) निर्लज्ज ( अणुबद्धखुहा ) सदा भूखे ( पारद्ध-सीउण्ह वेयण-दुग्घट्ट-घट्टिया ) प्रारब्ध के योग से सर्दी गर्मी और तृषा की दुर्घट वेदना से युक्त हैं ( विवन्नमुहविच्छविया ) विरूप मुख और कान्तिहीन शरीर वाले ( विहल मलिण दुब्बला ) निष्फल मनोरथ वाले, मलिन और असमर्थ हैं ( किलंता कासंता ) ग्लानियुक्त तथा खांसते हुए ( वाहिया य ) और कुष्ट आदि व्याधि वाले ( आमभिभूयगत्ता ) आम-अपक्वअंश रूप-रोग से आक्रान्त कायवाले ( परूढनह-केस-मंसुरोमा ) बधे रहने से जिनके नख, केश दाढी व रोम बढे हुए हैं ( छगमुत्तंमि णियगंमि खुत्ता ) अपने टट्टी पेशाब में पडे हुए ( तत्थेव ) परवश होकर वहाँ-मल मूत्र के स्थान पर ही ( मया अकामका बंधिऊण पायेसु ) विना इच्छा के ही अचिन्तित मरजाने से जो पांव में बांधकर ( कड्डिया खाइयाए छूढा ) खींचे गए और खाई में गिरा दिये गये ( तत्थ य ) और वहाँ गिराने के बाद ( वग-सुणग-सियाल-कोल-मज्जार चंड संदंसग तुंड पक्खिगण विविहमुह सयल-विलुत्तगत्ता ) वृक, कुत्ता, शृगाल, कोल बिल्ली के समूह और

ंडाशे के समान मुख वाले पक्षि समूह के अनेक प्रकार के सैकडों मुखों से उनके शव नोचे जाते हैं ( कयविहंगा ) उन मांस भक्षी जीवों से टुकडि किये गये ( केइ किमिणा य ) और कई कृमियुक्त शरीर वाले ( कुहियदेहा ) सडे हुए देह वाले अणिट्ठवयणेहि सप्पमाणा ) लोकों के द्वारा अनिष्ट वचनों से क्लेश पाते हुए ( सुट्ठुकयं ज मउत्तिपावो ) अच्छा किया जो पापी मर गया इस प्रकार ( तुट्ठेणं जणेणं हम्म ) सन्तुष्ट हुए मनुष्य से मारे जाते हैं ( सयणस्स विय ) और स्वजन वर्ग को भी बेचारे ( दीहकालं ) लम्बे समय तक ( लज्जावणकाय होंति ) शरमाने वाले होते हैं ( मया संता ) मरे हुए क्या दशा भोगते हैं ?, । ५ । १२ ॥

भावार्थ— दूसरे के धनको ढूंढते हुए चोर पकडे जाते व मारे जाते हैं, बांध कर रोक रक्खे जाते हैं । शीघ्रता से चारों ओर घुमाकर नगर में पहुंचाये जाते हैं और फिर अधिकारिओं को सौंपे जाते हैं । अधिकारिओं के द्वारा दिये गये विविध प्रहार और तर्जन से उदास बने हुए नरकावास के समान दुःख प्रद ऐसे बन्दिगृह में गौल्मिकों के प्रहार आदि से अभिभूत पोडा को भोगते हैं । वहाँ जो वध, बंधन, ताडन आदि दिये जाते हैं उनका वर्णन सहज है❀ अठारह प्रकार के चौर्य कर्मों के कारण कई चोर शूली पर चढाये जाते, कई आजीवन सजा पाते हैं और कुछ अन्धकूप आदि यातनाओं से सताये गये विना इच्छा के ही मृत्यु पाते हैं । अन्य प्रकरण सुलभ है । सू० । ५ । १२ ॥

**मूल—"पुणो परलोग समावन्ना, नरए गच्छंति निरभिरामे, अंगार पलित्तक-कप्प-अच्चत्थ-सीतवेदण-अस्सा उदिन्न-सयत-दुक्खसय समभिद्दुते, ततोवि उव्वट्टिया समाणा पुणोवि पवज्जंति तिरिय जोणिं,तहिंपि निरयोवमं अणु हवंति वेयणं। ते अणंत कालेण जति नाम कहिंपि मणुयभावं लभंति णेगेहिं णिरयगति-गमण-तिरिय भव-सयसहस्स परियट्टेहिं, तत्थविय भवंतऽणा-रिया नीच-कुल-समुप्पण्णा आरिय जणेवि लोगवज्झा, तिरिक्ख भूता य अकुसला, काम भोग तिसिया, जहिं निबंधंति निरय-वत्तणि, भवप्पवंचकरण-पणोल्लि पुणोवि संसारा वत्तणेम मूले धम्मसुति विवज्जिया अणज्जा कूरा मिच्छत्त सुति पवन्ना य**

❀ परिशिष्ट में देखिए

होंति,एगंत दंड रुहणो वेढेंता,कोसिकार कीडोव्व अप्पगं अट्ठकम्म तंतुघण बंधणेणं, एवं नरग-तिरिय-नर-अमर-गमण पेरंतचक्कवालं, जम्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख पखुभिय-पउर-सलिलं,संजोग विओग-वीची-चिंता पसंग-पसरिय वह-बंध-महल्ल-विपुल-कल्लोल-कलुण-विलवित-लोभ-कल कलिंत बोल बहुलं अवमाणण फेणं, तिव्व खिंसण-पुलं पुलप्पभूय-रोग वेयण-पराभव विणिवात-फरुस-धरिसण-समावाडिय-कठिण कम्म-पत्थर-तरंग-रंगंत-निच्च मच्चुभय-तोयपट्ठं, कसाय पायाल संकुलं, भवसय सहस्स जल संचयं, अणंतं उव्वेयणयं अणोरपारं, महब्भयं भयंकरं पइभयं, अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति-वाउवेग-उद्धम्ममाण-आसा पिवास-पायाल-कामरति-रागदोस-बंधण बहुविह संकप्प विपुल-दगरय-रयंधकारं, मोह महावत्त-भोग भममाण-गुप्प माणुच्छलंत-बहुगब्भवास-पच्चोणियत्त पाणियं, पधावित-वसण समावन्न-रुन्न चंड-मारुय समाहया मणुन्न वीची-वाकुलित-भग्ग-फुट्टंत-निट्ठ-कल्लोल-संकुलजलं पमात बहुचंड दुट्ठ साघय-समाहय उद्धायमाणग-पुरघोर विद्धंसणत्थबहुलं, अण्णाण-भमंत मच्छ परिहत्थं, अनिहुतिंदिय-महामगर-तुरिय-चरिय खोखुब्भमाण संताव-निचय-चलंत चवल-चंचल-अत्ताणाऽसरण-पुव्वकयकम्म-संचयोदिन्न वज्ज वेइज्जमाण-दुहसय-विपाक-घुन्नंत जल समूहं, इड्ढिरस साय-गारवोहार-गहिय कम्म पडिबद्ध सत्त-कड्ढिज्जमाण-निरयतल-हुत्तसन्न-विसन्न बहुला, अरइ रइ-भय-विसाय-सोग मिच्छत्त-सेल संकडं, अणाति संताण कम्म बंधण किलेस-चिक्खिल्ल सुदुत्तारं, अमर-नर-तिरिय-निरय गति गमण कुडिल परियत्त-विपुल वेलं, हिंसालिय-अदत्तादाण-मेहुण-परिग्गहारंभ करण-कारावणाणु मोदण-अट्ठविह-अणिट्ठ कम्म-पिंडित-गुरु भारक्कंत-दुग्ग जलोघ-दूर पणोलिज्जमाण-उम्मग्ग-निमग्ग-दुल्लभतलं,सारीरमणो मयाणि-दुक्खाणि उप्पियंता,सात-साय परितावणमयं उब्बुड्ड निबुड्डयं करेंता, चउरंत महंत मण

भयगं, रुद्दं संसार सागरं अट्ठियं अणालंबण मपतिठाण मप्पमेयं, चुलसीति जोणि सयसहस्स गुविलं, अणालोक मंधकारं, अणंत कालं निच्चं उत्तत्थ सुण्णभय-सण्ण संपउत्ता [1]वसंति उव्विग्गवास वसहिं। जहिं आउयं निबंधंति पाव कम्मकारी बंधव जण-सयण-मित्त परिवज्जिया अणिट्ठा भवंति अणादेज्ज दुव्विणीया कुठाणासण-कुसेज्ज-कुभोयणा, असुइणो कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया, कुरूवा, बहु कोह-माण-माया-लोभा, बहु मोहा धम्मसन्न-सम्मत्त परिब्भट्ठा, दारिद्दोवद्दवाभिभूया, निच्चं परकम्म कारिणो, जीवणत्थरहिया, किविणा, परपिंडतक्का दुक्खलद्धाहारा, अरस-विरस-तुच्छकय कुच्छिपूरा, परस्स पेच्छंता, रिद्धिसक्कार-भोयण विसेस-समुदयविहिं, निंदंता अप्पकं कयंतं च, परिवयंता इह य पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं, विमणसो सोएण डज्झमाणा परिभूया होंति सत्ता परिवज्जिया य, छोभा-सिप्पकला समय-सत्थ परिवज्जिया, जहाजाय पसुभूया, अवियत्ता णिच्चनीय कम्मोव जीविणो, लोय कुच्छणिज्जा, मोघमणोरहा, निरास बहुला आसापास पडिबद्ध पाणा, अत्थोपायाण--कामसोक्खेय लोयसारे होंति अफल वंतगा य सुट्ठुविय उज्जमंता तद्दिव सुज्जुत्त-कम्मकयदुक्ख संठविय-सित्थपिंड-संचय-पक्खीणदव्वसारा, निच्चं अधुवधण-धरण-कोस-परिभोग विवज्जिया, रहिय काम भोग परिभोग सव्वसोक्खा, परसिरिभोगोवभोग-निस्साण-मग्गण परायणा, वरागा अकामिकाए विणेंति दुक्खं, णेव सुहं, णेव निव्वुतिं उवलभंति अच्चंत विपुल दुक्ख सय संपलित्ता। परस्स दव्वेहिं जे अविरया। एसो सो अदिण्णादाणस्स फलविवागो, इहलोइओ, पारलोइओ, अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो, दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चति। न य अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुल

१ क—संसार सागरं वसंति।

होंति,एगंत दंड रुइणो वेढेंता,कोसिकार कीडोव्व अप्पगं अट्ठकम्म तंतुघण बंधणेणं, एवं नरग-तिरिय-नर—अमर-गमण पेरंतचक्कवालं, जम्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख पखुभिय-पउर-सलिलं,संजोग वियोग-वीची-चिंता पसंग-पसरिय वह-बंध-महल्ल-विपुल-कल्लोल-कलुण-विलवित-लोभ-कल कलिंत बोल बहुलं अवमाणण फेणं, तिव्व खिंसण—पुलं पुलप्पभूय—रोग वेयण-पराभव विणिवात-फरुस—धरिसण—समावडिय—कठिण कम्म— पत्थर—तरंग-रंगंत-निच्च मच्चुभय—तोयपट्ठं, कसाय पायाल संकुलं, भवसय सहस्स जल संचयं, अणंतं उव्वेयणयं अणोरपारं, महब्भयं भयंकरं पइभयं, अपरिमिय—महिच्छ—कलुसमति—वाउवेग—उद्धम्ममाण-आसा पिवास—पायाल—कामरति—रागदोस—बंधण बहुविह संकप्प विपुल-दग-रय-रयंधकारं, मोह महावत्त-भोग भममाण-गुप्प माणुच्छलंत-बहुगब्भवास—पच्चोणियत्त पाणियं, पधावित—वसण समावन्न—रुन्न चंड--मारुय समाहया मणुन्न वीची-वाकुलित-भग्ग-फुट्टंत-निट्ठ-कल्लोल-संकुलजलं पमात बहुचंड दुट्ठ-सावय-समाहय उद्धायमाणग-पुरघोर विद्धंसणत्थबहुलं, अण्णाण-भमंत मच्छ परिहत्थं, अनिहुतिंदिय-महामगर-तुरिय--चरिय खोखुब्भमाण संताव-निचय-चलंत चवल-चंचल-अत्ताणाऽसरण-पुव्वकयकम्म—संचयोदिन्न वज्ज वेइज्जमाण—दुहसय-विपाक-घुन्नंत जल समूहं, इड्डिरस साय-गारव ओहार-गहिय कम्म पडिबद्ध सत्त-कड्डिज्जमाण-निरयतल-हुत्तसन्न-विसन्न बहुलं, अरइ रइ-भय—विसाय—सोग मिच्छत्त-सेल संकडं, अणाति संताण कम्म बंधणकिलेस-चिक्खिल्ल सुदुत्तारं, अमर-नर—तिरय-निरय गति गमण कुडिल परियत्त-विपुल वेलं, हिंसालिय-अदत्तादाण-मेहुण-परिग्गहारंभ करण—कारावणाणु मोदण—अट्ठविह-अणिट्ठ कम्म-पिंडित-गुरु भारक्कंत-दुग्ग जलोघ-दूर पणोलिज्जमाण-उम्मग्ग-निमग्ग-दुल्लभतलं,सारीरमणो मयाणि-दुक्खाणि उप्पियंता,सात-स्साय परितावणमयं उब्बुड्ड निबुड्डयं करेंता, चउरंत महंत मण

वधगं, रुद्दं संसार सागरं अट्टियं अणालंबण पतिट्ठाणमप्प-
मेयं, चुलसीति जोणि सयसहस्स गुविलं, अणालोक मंधकारं,
अणंत कालं निच्चं उत्तत्थ सुण्णभय-सण्ण संपउत्ता वसंति
उव्विग्गवासवसहिं । जहिं आउयं निबंधंति पाव कम्मकारी बंध-
वजण-सयण-मित्त परिवज्जिया अणिट्ठा भवंति अणादेज्ज दुव्वि-
णीया कुट्ठाणासण-कुसेज्ज-कुभोयणा, असुइणो कुसंघयण-कुप्प-
माण-कुसंठिया, कुरूवा, बहु कोह-माण-माया लोभा, बहु मोहा
धम्मसन्न-सम्मत्त परिभट्ठा, दारिद्दोवद्दवाभिभूया, निच्चं परकम्म
कारिणो, जीवणत्थरहिया, किविणा, परपिंडतक्का दुक्खलद्धा-
हारा, अरस-विरस-तुच्छकय कुच्छिपूरा, परस्स पेच्छंता, रिद्धि-
सक्कार-भोयण विसेस-समुदयविहिं, निंदंता अप्पकं कयंतं च, परि-
वयंता इह य पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं, विमणसो सोएण डज्झ-
माणा परिभूया होंति सत्त परिवज्जिया य, छोभा-सिप्पकला
समय-सत्थ परिवज्जिया, जहाजाय पसुभूया, अवियत्ता णिच्च-
नीय कम्मोवजीविणो, लोय कुच्छणिज्जा । मोहमणोरहा, निरास
बहुला आसापास पडिबद्ध पाणा, अत्थोपायाण-कामसोक्खे य
लोयसारे होंति अफल वंतगा य सुट्ठुवि य उज्जमंता तद्दिवसुज्जु-
त-कम्मकयदुक्ख संठविय-सित्थपिंड-संचय-पक्खीणदव्व-
सारा, निच्चं अधुवधण-धण्ण-कोस-परिभोग विवज्जिया, रहिय
काम भोग परिभोग सव्वसोक्खा, परसिरि भोगोवभोग-
निस्साण-मग्गण परायणा, वरागा अकामिकाए विणेंति दुक्खं,
णेव सुहं, णेव निव्वुतिं उवलभंति अच्चंत विपुल दुक्ख सय सं-
पलित्ता । परस्स दव्वेहिं जे अविरया । एसोसो अदिण्णादाणस्स
फलविवागो, इहलोइओ, पारलोइओ, अप्पसुहो बहुदुक्खो
महब्भओ बहुरयप्पगाढो, दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं
मुच्चति । न य अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुल

१ क—संसार सागरं वसंति ।

णंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर-नाम धेज्जो, कहेसी य अदिण्णा दाणस्स फलविवागं, एयं तं ततियंपि अदिण्णादाणं हरदह-मरण भय-कलुसतासण-पर संतिक भेज्ज लोभ मूलं एवं जाव चिर-परिगतमणुगतं दुरंतं। ततियं अहम्मदारं सम्मत्तं त्तिबेमि ॥ ३ ॥ ६ ॥ सूत्र १२ ॥

छाया—पुनः परलोक समापन्ना नरकेगच्छन्ति निरभिरामे, अङ्गारप्रदीप्तक कल्पाऽत्यर्थ-शीतवेदनाऽसातोदीर्ण--सतत दुःख-शत-समभिद्रुते ततोऽप्युद्वर्तिताः समानाः पुनरपि प्रव्रजन्ति तिर्यग् योनिम्। तत्राऽपि निरयोपमामनुभवन्ति वेदनाम्। तेऽनन्त कालेन यदि नाम क्वापि मनुजभाव लभन्ते नैकेषु निरयगति-गमन-तिर्यग् भवशत सहस्र परिवर्तेषु। तत्राऽपि च भवन्तोऽनार्या नीच कुल समुत्पन्ना आर्यजनेऽपि लोक बाह्यास्तिर्यग् भूताश्च अकुशलाः, कामभोग तृषिता यत्र निबध्नन्ति निरयवर्तिभवप्रपञ्च करण प्रणोदीनि। पुनरपि संसारावर्तनेमि मूलानि। धर्मश्रुति विवर्जिता अनार्याः क्रूरा मिथ्यात्व श्रुतिप्रपन्नाश्च भवन्ति। एकान्त-दण्ड रुचयो वेष्टयन्ति कोशिकाऽऽकार कीटा इवात्मानमष्टकर्म तन्तु--घनबन्धनेन। एवं नरक तिर्यङ् नराऽमरगमन-पर्यन्त-चक्रवाल, जन्म जरा-मरण-करण-गम्भीर-दुःखप्रक्षुब्ध-प्रचुरसलिलं संयोग-वियोग-वीची-चिन्ता प्रसङ्ग प्रसृत वध-बन्ध-महा (हल्ल) विपुल कल्लोल करुण-विलपित-लोभ कलकलायमान-बोल बहुलम्, अवमानन फेनं, तीव्र खिंसनं [पुलं पुल] प्रभूत-रोग वेदना-पराभव विनिपात परुष घर्षण समापतित-कठिन-धर्म प्रस्तर रङ्ग त्तरङ्ग नित्य मृत्यु-भय तोय-पृष्ठम्, कषाय पाताल संकुलं, भवशत सहस्र जलसञ्चय मनन्त मुद्वेजनक मनवकपारं, महाभय, भयङ्करं, प्रतिभयं अपरिमित-महेच्छा कलुषमति-वायु वेगोद्धूयमानाऽऽशा-पिपासा पाताल-कामरति-राग दोष-बन्धन-बहुविध सङ्कल्प-विपुलोदक रजोरयान्धकारं, मोहमहावर्त-भोग-भ्राम्यद् गुप्यदुच्छलद् बहु गर्भवास-प्रत्यव निवृत्त पानीयं प्रधावितव्यसन-समापन्न-रुदित-चण्ड मारुत-समाहिताऽमनोज्ञ वाची-व्याकुलित-भङ्ग स्फुटदनिष्ट-कल्लोल सङ्कुलजलं, प्रमाद बहु-चण्डदुष्ट-श्वापद समाहतोत्तिष्ठत्सूर--घोर विध्वंसाऽनर्थबहुलम् अज्ञान भ्रमन्मत्स्य परिहस्तम्। अनिभृतेन्द्रिय-महामकरत्वरित-चरित-चोक्षुभ्यमाण सन्ताप-निचय-चलच्चल-चञ्चलाऽत्राण-ऽशरण पूर्वकृत कर्म-सञ्चयोदीर्ण--वज्र वेद्यमान दुःखशत-विपाक-घूर्णमानजलसमूहम्, ऋद्धि-रस-सात गौरवापहार-गृहीत कर्म प्रति

बद्ध सत्त्वाऽऽकृष्यमाण नरक तलाभिमुखसन्न विषण्ण-बहुलाऽरति-रतिभय विषाद शोक-मिथ्यात्व शैल सङ्कटम्, अनादि सन्तान कर्म बन्धन क्लेश-चिक्खिल्ल सुदुस्तारम्, अमर-नर-तिर्यङ् निरयगति गमन कुटिल-पर्यस्त-विपुलवेलम्, हिंसाऽलीका दत्ताऽदान मैथुन-परिग्रहाऽऽरम्भ करण-कराणाऽनुमोदनाऽष्टविधाऽनिष्टकर्म-पिण्डित-गुरु भाराऽऽक्रान्त दुर्गजलौघ दूर [ निमज्जमान ] प्रणोन्मग्नोन्मग्न-निमग्न-दुर्लभतलम्, शरीर मनोमयानि दुःखान्यनुभवन्तः, साताऽसात-परितापनमयम्, उन्मग्न-निमग्न कुर्वन्तः, चतुरन्त महान्त मनवदग्रं, रुद्रं, संसार सागरम् । अस्थितानामनालम्बन मप्रतिष्ठानमप्रमेयम्, चतुर शीति योनिशत सहस्र गुपिलम्, अनालोकमन्धकारमनन्त कालम्, नित्यमुत्त्रस्तशून्यभयसंज्ञा-सम्प्रयुक्ता वसन्ति-उद्विग्नवासवसतिम् । यत्राऽऽयुर्निबध्नन्ति पाप कर्म कारिणो बान्धवजन-स्वजन मित्र-परिवर्जिता, अनिष्टा भवन्ति-अनादेय दुर्विनीता कुस्थानाऽऽसन-कुशय्या-कुभोजना अशुचयः, कुसंहनन कु प्रमाण-कुसंस्थानाः, ( स्थिताः ) कुरूपाः बहुक्रोध मान माया लोभा, बहुमोहा, धर्म संज्ञा-सम्यक्त्वप्रभ्रष्टा दारिद्र्योपद्रवाऽभिभूता नित्यं पर कर्मकारिणो जीवनार्थरहिताः, कृपणाः, पर पिण्डतर्ककाः, दुःखलब्धाऽऽहाराः, अरस विरस तुच्छ कृत कुक्षिपूराः, परस्य प्रेक्षकाः, ऋद्धि सत्कार भोजन विशेष समुदयविधि, निन्दन्तः-आत्मानं कृतान्तं च परिवदन्तः, इह च पुराकृतानि कर्माणि पापकानि विमनसः शोकेन दह्यमानाः परिभूता भवन्ति-सत्त्व परिवर्जिताश्च [ क्षोभणीय ] शोभनशिल्प-कला समय-शास्त्र परिवर्जिताः, यथा जात पशुभूताः, अप्रत्ययाः नित्यं नीचकर्मोपजीविनो लोक कुत्सनीयाः मोघ मनोरथाः, निराशा-बहुलाः, आशा पाश प्रतिबद्ध प्राणाः अर्थोपार्जन कामसौख्ये च लोकसारे भवन्त्यफलवन्तश्च । सुष्ठ्वपि च उद्यच्छमाना दिवसोद्युक्त-कर्मकृत-दुःख संस्थापित-सिक्थ-पिण्ड सञ्चय-प्रक्षीण द्रव्यसाराः, नित्याध्रुव-धन-धान्य कोश-परिभोग-विवर्जिताः, रहित-काम भोग-परिभोग सर्वसौख्याः, परश्री भोगोपभोग-निश्राण मार्गण परायणाः, वराका अकामिकया वितरन्ति दुःखम् । नैव सुखं नैव निर्वृतिमुपलभन्ते, अत्यन्त विपुल दुःखशत सम्प्रदीप्ताः, परस्य द्रव्येषु येऽविरताः । एष सोऽदत्तादानस्य फल विपाक ऐहलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो, बहुदुःखो महाभयो, बहुरजः प्रगाढो दारुणः कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते । न चाऽवेदयित्वाऽस्ति मोक्ष इति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीर वरनामधेयः कथयिष्यति चाऽदत्तादानस्य फल विपाकम् । एतत् तत् तृतीयमप्य-

दत्ताऽऽदानं दुरदह मरण-भय कालुष्य त्रासन पर सत्का भया लोभ मूलमेवं यावत् चिर परिगत मनुगतं दुरन्तम् । तृतीयमधर्मद्वारं समाप्तम् । इति ब्रवीमि ॥ ३ ॥ सूत्र । ६ । १२ ॥

अन्वयार्थ— ( पुणो परलोक समापन्ना ) मरजाने के बाद फिर परलोक गये हुए वे चोर ( नरए गच्छंति ) नरक में जाते हैं ( निरभिरामे ) जो नरक सुन्दरता से हीन है और ( अंगार पलित्तक-कप्प-अच्चत्थ-सीत वेदण अस्सा उदिन्न-सयत दुक्ख सयसमभिदुते ) अग्नि से जलते हुए घर के समान जो अत्यन्त शीत वेदना वाला और असाता-दुःख से उदीरणा पाये हुए लगातार सैकड़ों दुःखों से व्याप्त घिरा हुआ है ( ततोवि उव्वट्टिया समाणा ) उस नरक स्थान से निकले हुए ( पुणोवि पवज्जंति ) फिर भी प्राप्त करते हैं ( तिरियजोणिं ) तिर्यक् योनि को ( तहिंपि ) वहाँ पर भी ( निरयोवमवेयण ) नरक के समान वेदना को ( अणुहवंति ) अनुभव करते हैं ( अणंतकालेणं ) अनन्त काल से ( जतिनाम ) अगर कदाचित् ( ते ) वे-चोर के जीव ( कहिंचि ) किसी प्रकार या कहीं भी ( मणुयभावं ) मनुष्यता को ( णेगेहिं ) अनेक ( निरय गति गमण तिरियभवसय सहस्स पारयट्टेहिं ) नरक गति में जानेरूप और तिर्यञ्च भव के लाखों परिवर्तन होजाने पर ( लभंति ) प्राप्त करते हैं ( तत्थवि य ) और वहाँ मनुष्य भव के लाभ में भी ( भवंतऽणारिया ) अनार्य होजाते हैं, जो ( नीयकुलसमुप्पण्णा ) नीच कुल में पैदा हुए हैं ( आरियजणेवि ) अनार्य मनुष्य में उत्पन्न होकर भी ( लोगवज्झा तिरिक्खभूता य ) लोकों से बहिष्कृत और पशु के समान ( अकुसला ) तत्त्व ज्ञान में अनिपुण ( काम भोग तिसिया ) काम भोग की तृषा वाले ( जहिं ) जहाँ, मनुष्य भव का बन्ध हुआ वहाँ, ( निरय गति-भवप्पवंच-करणपणोल्लि पुणोवि संसारावत्तणेम मूले ) नरक गति संबन्धी अनेक भव करने से पुनः उसी में प्रवृत्ति परायण जीव, पुनः पुनरावर्तन से संसार प नींव वाले दुःखों के मूल कर्मों को ( निबंधंति ) बांधते-सञ्चय करते हैं ( धम्म सुति विवज्जिया ) धर्म शास्त्र से विवर्जित-विकल ( अणज्जाकूरा ) अनार्य र—हिंसाकारी उपदेश देने वाले ( मिच्छत्तसुति पवन्नाय होंति ) और वे मिथ्यात्व रूप श्रुति-सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले होते हैं ( एगंत दंड रुइणो ) एकान्त तरह से-हिंसा को रुचि वाले ( कोसिकार कीडोव्व अप्पगं ) रेशम के कीड़े की तरह अपने आपको ( अट्ठकम्मतंतु-घण बंधणेणं ) अष्ट प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सघन बन्धन से ( वेढेंति ) वेष्टित करते हैं ( एवं ) इस प्रकार ( नरग-तिरिय-नर अमर गमण पेरंत चक्कवाले ) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन परिधि वाले ( जम्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख-पक्खुभिय-पउरसलिलं ) जन्म, जरा मरण रूप साधन वाला गम्भीर दुःख ही जहां अत्यन्त क्षुब्ध प्रचुर पानी है ( संजोग-विओग-वीची-चिंता-पसंग-पसरिय- वह—बंध—महल्ल विउल-कल्लोल-कलुण-विलविय-लोभ-कलकलिंत-बोल बहुलं ) संयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो बंध—बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण कल्लोल वाला है, दीनता से विलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की अधिकता वाले ( अवमाणणफेणं ) अपमान रूप फेन वाले ( तिव्व-खिंसण-पुलंपुलप्पभूय-रोग-वेयण-पराभव- विणिवात-फरुस-धरिसण-समावडिय-कढिण-कम्म-पत्थर-तरंग रंगंत-निच्च मच्चुभयतोयपट्ठं ) तीव्र निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की वेदनायें, अनादर का संयोग और कठिन वचनों का संसर्ग, ये सब जिनसे प्राप्त हों ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-सहज मृत्यु भय रूप जल के पृष्ठ भाग वाले ( कसाय पायाल संकुलं ) ४ कषाय रूप पाताल कलशों से व्याप्त ( भवसय सहस्स जल संचयं अणंतं ) लाखों भवरूप जल समूह वाले, अन्त रहित ( उव्वेजणयं अणोरपारं ) उद्वेगजनक अपार एवं अति विस्तीर्ण ( महब्भयं भयंकरं पइभयं ) महाभयानक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने वाला है ( अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति वाउ वेग उद्धम्ममाण—आसा-पिवासा-पायाल—काम-रति-राग—दोस-बंधण-बहुविह संकप्प-विपुल-दग—रय-रयंधकारं ) अपरिमित-बड़ी इच्छा वाले मलिन मति रूप वायु के वेग के कारण आशा पिपासा रूप पाताल कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप बन्धन और अनेक प्रकार के सङ्कल्परूप विस्तीर्ण पानी के रजःकण हैं उन के वेग से भवसमुद्र अन्धकार युक्त है ( मोह-महावत्त-भोग-भममाण—गुप्पमाणुच्छलंत-बहु गब्भवास-पच्चोणियत्त पाणियं ) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग-इन्द्रिय के विषय ही परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-मध्य भाग-में उछलकर पीछे लौटे हुए पानी हैं ( पधाविय वसण-समावन्न-रुन्न-चंड-मारुय-समाहया—मणुन्न वीची-वाकुलिय भग्ग-फुट्टंत—निट्ठ कल्लोल—संकुल जलं ) इधर उधर फैले हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप प्रचण्ड वायु से

आघात पाये हुए अमनोज्ञ तरङ्गों से व्याकुल और तरङ्ग से विदलित-चपल-कल्लोलों से व्याप्त जलवाला है (पमात बहुचंड-दुट्ठ-सावय-समाहय उद्धायमाणग-पूरघोर-विद्धंसणत्थ बहुलंम ( च आदि प्रमाद ही बहुत रौद्र व दुष्ट श्वापद-हिंसक जन्तु हैं, उनके आघात से उठते हुए पुरुष आदि रूप मगरों का समूह हो पूर है उसके भयङ्कर विनाश लक्षण अनर्थों से जो बहुल-व्याप्त है (अण्णाण भमंत मच्छ परिहत्थं) अज्ञान रूपी भ्रमण करते हुए दक्ष मत्स्यों से युक्त ( अणिहुतिंदिय—महा मगर—तुरिय-चरिय खोखुब्भमाण-संताव-निचय-चलंत-चवल-चचल—अत्ताणऽसरण-पुव्वकय कम्म-संचयोदिन्न वज्र वेइज्जमाण दुह सय विपाक घुण्णंत जल समूहं ) अनुपशान्त इन्द्रिय रूप बडे मकरों के जल्दी चलने या चेष्टा करने से जो अधिक क्षुब्ध तथा नित्य सन्ताप वाला है, चलता हुआ चपल व चञ्चल और त्राण रहित एवं अशरण प्राणिओं के पूर्वकृत कर्म के संचय से उदय पाये हुए-पापों का भोगा जाता हुआ सैंकडों दुःख रूप विपाक ही भ्रमण करता हुआ जल समूह है ( इड्ढि-रस-सात-गारवोहार-गहिय-कम्म पडिबद्ध-सत्त-कड्ढिज्जमाण-निरयतलहुत्त सन्न—विसन्न-बहुला-अरइ-रइ—भय—विसाय-सोग-मिच्छत्त सेल संकड ) ऋद्धि, रस और साता ये तीन गौरव रूप अपहार-जलचर विशेष से गृहीत और कर्म बन्ध से जकडे हुए प्राणी खींचे जाते हुए जो नरक रूप पाताल तल के सम्मुख सन्न और विषण्ण-खेद युक्त-हैं, उन से बहुल, अरति, रति, भय, दीनता, शोक तथा मिथ्यात्व रूप पर्वतों से संकट ( अणादि-संताण-कम्म-बंधण-किलेस-चिक्खिल्ल सुदुत्तारं ) अनादि—आदि रहित सन्तान वाला कर्म बंधन और रागादि क्लेश रूप कीचड़ के कारण बहुत कठिनता से तरने योग्य ( अमर-नर-तिरिय निरयगतिगमण-कुटिल-परियत्त-विपुल वेलं ) देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, और निरय-नरक-गति में जाने रूप कुटिल परिवर्तन युक्त विस्तीर्ण वेला-जल वृद्धि वाले ( हिंसालिय—अदत्तादाण-मेहुण—परिग्गहारंभ—करण—कारावणाणुमोदण-अट्ठ-विह अणिट्ठकम्म-पिंडिय गुरुभारक्कंत—दुग्ग-जलोघ—दूर-पणोलिज्जमाण—उम्मग्ग-निमग्ग-दुल्लभतलं ) हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह लक्षण, आरम्भ के करने कराने व अनुमोदन से सञ्चित आठ प्रकार के अनिष्ट कर्म के भारी बोझ से दबे हुए हैं, व्यसन रूप जल के प्रवाह से दूर फेंके जाते हुए और पानी में ऊपर नीचे होते हुए जिसका तल प्रदेश मिलना दुर्लभ है ( सरीर मणोमयाणि दुक्खाणि ) शरीर व मन सम्बन्धी दुःखों को ( उप्पयंता ) प्राप्त करते हुए ( सातासा

परित्तापण मयं) साता-सुख और दुःख से उत्पन्न परितापना वाले (उच्चुड़ निच्चुड्डयं) सुख दुःख रूप उच्च नीच दशा को (करेंता) करते हुए (चउरंत महंत मणवयग्गं रुद्दं (रुद्दं) संसार सागरं) दिशा व गति से चार तरफ अन्त वाले, बड़े अन्त रहित और अत्यन्त विशाल संसार सागर को (अट्ठियं अणालंबणमपतिट्ठाणमप्पमेयं) संयम में अस्थित, आलम्बन रहित अप्रतिष्ठान-आधार रहित या त्राण-रक्षा के कारण से रहित तथा अल्पज्ञों से नहीं जानने योग्य (चुलसीति जोणि सय—सहस्स-गुविलं) चोरासी-लाख जीव योनिओं से गुपिल-व्याप्त (अणालोकमंधकारं) अज्ञान के अन्धकार स्वरूप ऐसे संसार सागर में (अणंतकालं) अनन्त काल (णिच्चं उत्तत्थ सुन्न भयसन्न संपउत्ता) सदा त्रास युक्त शून्य—कर्तव्य विचार में मूढ—और भयसंज्ञा सहित जीव (वसंति) रहते हैं (उव्विग्गवासम वसहिं) जो संसार उद्विग्न जनों का निवास्थान है (जहिं) जिस ग्राम कुल आदि में (पावकम्मकारी) पाप कर्म करने वाले (आउय) आयु को (निबंधंति) बंध करते हैं, वहां (बंधव जण-सयण मित्त-परिवज्जिया, बांधव जन स्वजन तथा मित्रों से परिवर्जित-रहित (अणिट्ठा) अनिष्ट (भवंति) होते हैं, (अणादेज्ज दुव्विणीया) हित वचन [illegible] वाक् एवं दुर्विनीत-विनय से भ्रष्ट (कुट्ठाणासण-कुसेज्ज-कुभोयणा) [illegible] स्थान, आसन शय्या, और खराब भोजन वाले (असुइणो) अशुचि-शुचि रहित या [illegible] श्रुति से हीन (कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठाण-कुरूवा) सेवार्त आदि अशुभ संहनन वाले, अधिक लम्बे या अधिक छोटे हुंड आदि आकार वाले कुरूप सुन्दरता से हीन (बहुकोह-माण-माया-लोभा—बहुमोहा) बहुत क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, बहु मोहा-अधिक कामी या अज्ञानी (धम्म सन्न-सम्मत्त-परिब्भट्ठा) धर्म बुद्धि और सम्यक्त्वसे परिभ्रष्ट (दारिद्दोवद्दवाभिभूया) दरिद्रता के उपद्रव से [illegible] हुए (निच्चं पर कम्म कारिणो) सदा दूसरों के काम करने वाले (जीवणत्थ-रहिया) जीने योग्य द्रव्य से रहित या जीवन के पवित्र उद्देश्य से रहित (किवणा-पर पिंड-तक्कका) रंक, भिखारी, तथा दूसरे के दिये हुए पिंड को ताकने वाले अर्थात् परमुखापेक्षी (दुक्खलद्धाहारा) दुःख से आहार का लाभ करने वाले (अरस विरस तुच्छकय कुच्छिपूरा) अरस-हींग आदि रस रहित, विरस-पुराने-बासी और तुच्छ आहार से उदर भरण करने वाले (परस्स) दूसरे की (रिद्धि-सक्कार-भोयण विसेस समुदयविहिं पेच्छंता) ऋद्धि—संपत्ति, सत्कार और

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते ( निंदंता-अप्पकं ) अपनी निन्दा करते हुए ( कयंतं च परिवयंता ) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए ( इह य ) इस जन्म में ही ( पुरे कडाइं कम्माइं पावगाइं ) पूर्व कृत-जन्मान्तर के किये हुए—अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए ( विमणसो ) उदास मन वाले ( सोएण डज्झमाणा ) शोक से जलते हुए ( परिभूया होंति ) अनादर युक्त होते हैं, ( सत्त परिवज्जिया य ) और सामर्थ्य रहित ( छोभा ) असहाय-क्षोभपाने योग्य ( सिप्प-कला समयसत्थ परियज्जिया ) शिल्प-चित्रकला आदि, कला-धनुर्वेद आदि और समय शास्त्र—जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिवर्जित अर्थात् अनजान होते ( जहाजाय पसुभूया ) मूर्ख और पशु के समान ( अवियत्ता ) अप्रीति उत्पन्न करने वाले ( णिच्चं नीयकम्मोवजीविणो ) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले ( लोय कुच्छणिज्जा ) लोक में निन्दनीय ( मोघ मणोरहा निरास बहुला ) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले ( आसापास पडिबद्धपाणा ) आशा के पाश में रुके हुए प्राण वाले ( अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे ) अर्थ संग्रह—धन सञ्चय तथा काम सुखरूप लोक के सारांश में ( सुट्ठुयिय उज्जमंता ) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी ( अफलवंतका होंति ) निष्फल होते हैं, ( तद्दिवसुज्जुत्तकम्म कय—दुक्खसंठविय—सित्थपिंड-संचय-पक्खीण दव्वसारा ) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिलाये गये सिक्थ-गिरे हुए आहार के अंशको संचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सार वाले याने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले ( निच्चं ) सदा ( अधुव-धण-धन-कोस परिभोग विवज्जिया ) अस्थिर धन, धान्य और कोष के स्थिर रहने पर भी जो परिभोग से रहित हैं ( रहिय काम-भोग-परिभोग सव्व सोक्खा ) काम—शब्द रूप, भोग—गंध रस और इष्ट स्पर्श के परिभोग में आनन्द रहित हैं ( परसिरि भोगोवभोग निस्साण मग्गण परायणा ) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में निश्रा—आश्रय की खोज करने वाले ( अकामिकाए वरागा ) विना इच्छा से बेचारे ( विणेंति दुक्खं ) दुःख को वहन करते हैं ( नेव सुहं नेव निव्वुतिं उवलभंति ) न सुख को और न कहीं शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं ( अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलित्ता ) अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकडों दुःखों से जलते रहते ( जे परस्स दव्वेहिं अविरया ) जो दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—( एसोसो ) ऐसा यह-( अदिण्णादाणस्स फल विवागो ) अदत्तादान का फल रूप विपाक ( इहलोइओ पारलोइओ ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो ) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ ( दारुणो कक्कसो असाओ ) भयङ्कर, कठोर और दुःख रूप है ( वाससहस्सेहिं मुच्चति ) हजारों वर्षों से छूटता है ( न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति ) बिना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है एवमाहसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो ) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन-जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है ( कहेसी य अदिण्णा-दाणस्स फल विवागं ) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे ( एयं तं तितियंपि अदिन्नादाणं ) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ हर-दह-मरणभय—कलुस—तासण-परसंतिक-भेज्ज-लोभमूलं एवं जाव चिर-रिगत मणुगतं दुरतं ) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के नग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरंत—दुःख से अन्त वाला है ( ततियं० ) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दुःखों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान कर तिर्यञ्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहिष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीडे की तरह आठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एवं कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री के भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसंहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते ( निंदंता-अप्पकं ) अपनी निन्दा करते हुए ( कयंतं च परिवयंता ) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए ( इह य ) इस जन्म में ही ( पुरे कडाइं कम्माइं पावगाइं ) पूर्व कृत-जन्मान्तर के किये हुए—अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए ( विमणसो ) उदास मन वाले ( सोएण डज्झमाणा ) शोक से जलते हुए ( परिभूया होंति ) अनादर युक्त होते हैं, ( सत्त परिवज्जिया य ) और सामर्थ्य रहित ( छोभा ) असहाय-क्षोभपाने योग्य ( सिप्प-कला समयसत्थ परिवज्जिया ) शिल्प—चित्रकला आदि, कला-धनुर्वेद आदि और समय शास्त्र—जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिवर्जित अर्थात् अनजान होते ( जहाजाय पसुभूया ) मूर्ख और पशु के समान ( अवियत्ता ) अप्रीति उत्पन्न करने वाले ( णिच्चं नीयकम्मोवजीविणो ) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले ( लोय कुच्छणिज्जा ) लोक में निन्दनीय ( मोघ मणोरहा निरास बहुला ) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले ( आसापास पडिबद्धपाणा ) आशा के पाश में रुके हुए प्राण वाले ( अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे ) अर्थ संग्रह—धन सञ्चय तथा काम सुखरूप लोक के सारांश में ( सुट्ठु विय उज्जमंता ) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी ( अफलवंतका होंति ) निष्फल होते हैं, ( तद्दिवसुज्जुत्तकम्म कय—दुक्खसंठविय—सित्थपिंड-संचय-पक्खीण-दव्वसारा ) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिलाये गये सिक्थ-गिरे हुए आहार के अंशको संचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सार वाले याने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले ( निच्चं ) सदा ( अधुव-धण-धन्न-कोस परिभोग विवज्जिया ) अस्थिर धन, धान्य और कोष के स्थिर रहने पर भी जो परिभोग से रहित हैं ( रहिय काम-भोग-परिभोग सव्व सोक्खा ) काम—शब्द रूप, भोग—गंध रस और इष्ट स्पर्श के परिभोग में आनन्द रहित हैं ( परसिरि भोगोवभोग निस्साण मग्गण परायणा ) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में निश्रा—आश्रय की खोज करने वाले ( अकामिकाए वरागा ) विना इच्छा से बेचारे ( विणेंति दुक्खं ) दुःख को वहन करते हैं ( नेव सुहं नेव निव्वुतिं उवलभंति ) न सुख को और न कहीं शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं ( अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलित्ता ) अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकड़ों दुःखों से जलते रहते ( जे परस्स दव्वेहिं अविरया ) जो दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—( एसोसो ) ऐसा यह-( अदिण्णादाणस्स फळ विवागो ) अदत्तादान का फल रूप विपाक ( इहलोइओ पारलोइओ ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो ) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ ( दारुणो कक्कसो असाओ ) भयङ्कर, कठोर और दुःख रूप है ( वाससहस्सेहिं मुच्चति ) हजारों वर्षों से छूटता है ( न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति ) विना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है ( एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो ) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन--जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है ( कहेसी य अदिण्णादाणस्स फल विवागं ) और अदत्तादान के फलरूप विपाक को कहेंगे ( एयं तं ततियंपि अदिन्नादाणं ) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ ( हर-दह-मरणभय—कलुस—तासण-परसंतिक-भेज्ज-लोभमूलं एवं जाव चिर-परिगत मणुगतं दुरतं ) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरंत—दुःख से अन्त वाला है ( ततियं० ) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दुःखों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहिष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीडे की तरह आठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एवं कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसंहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते ( निंदंता-अप्पकं ) अपनी निन्दा करते हुए ( कयंतं च परिवयंता ) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए ( इह य ) इस जन्म में ही ( पुरे कडाइं कम्माइं पावगाइं ) पूर्व कृत-जन्मान्तर के किये हुए-अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए ( विमणसो ) उदास मन वाले ( सोएण डज्झमाणा ) शोक से जलते हुए ( परिभूया होंति ) अनादर युक्त होते हैं, ( सत्त परिवज्जिया य ) और सामर्थ्य रहित ( छोभा ) असहाय-क्षोभपाने योग्य ( सिप्प-कला समयसत्थ परियज्जिया ) शिल्प-चित्रकला आदि, कला-धनुर्वेद आदि और समय शास्त्र—जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिवर्जित अर्थात् अनजान होते ( जहाजाय पसुभूया ) मूर्ख और पशु के समान ( अवियत्ता ) अप्रीति उत्पन्न करने वाले ( णिच्चं नीयकम्मोवजीविणो ) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले ( लोय कुच्छणिज्जा ) लोक में निन्दनीय ( मोघ मणोरहा निरास बहुला ) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले ( आसापास पडिबद्धपाणा ) आशा के पाश में रुके हुए प्राण वाले ( अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे ) अर्थ संग्रह—धन सञ्चय तथा काम सुखरूप लोक के सारांश ( सुट्ठु वि य उज्जमंता ) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी ( अफलवंतका होंति ) निष्फल होते हैं, ( तद्दिवसुज्जुत्तकम्म कय—दुक्खसंठविय—सित्थपिंड-संचय-प[...] [...]ण-दव्वसारा ) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिला[...] सिक्थ-गिरे हुए आहार के अंशको संचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सा[...] पाने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले ( निच्चं ) सदा ( अधुव-[...] कोस परिभोग विवज्जिया ) अस्थिर धन, धान्य और कोष के स्थिर रहने प[...] परिभोग से रहित हैं ( रहिय काम-भोग-परिभोग सव्व सोक्खा ) काम—[...] भोग—गंध रस और इष्ट स्पर्श के परिभोग में आनन्द रहित हैं ( परसिरि भोग निस्साण मग्गण परायणा ) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में नि[...] की खोज करने वाले ( अकामिकाए वरागा ) विना इच्छा से बेचा[...] दुक्खं ) दुःख को वहन करते हैं ( नेव सुहं नेव निव्वुतिं उवलभंति और न कहीं शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं ( अच्चंत विपुल दुक्खस[...] अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकड़ों दुःखों से जलते रहते ( जे परस्स दव्वेहिं [...] दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—( एसोसो ) ऐसा यह-( अदिण्णादाणस्स फल विवागो ) अदत्तादान का फल रूप विपाक ( इहलोइओपारलोइओ ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो ) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ ( दारुणो कक्कसो असाओ ) भयङ्कर, कठोर और दुःख रूप है ( वाससहस्सेहिं मुच्चति ) हजारों वर्षों से छूटता है ( न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति ) बिना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है ( एवमाहसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो ) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन--जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है ( कहेसी य अदिण्णा-दाणस्स फल विवागं ) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे ( एसो तं ततियंपि अदिन्नादाणं ) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ ( हर-दह-मरणभय—कलुस—तासण-परसंतिक-भेज्ज-लोभमूलं एवं जाव चिर-परिगत मणुगतं दुरतं ) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरंत—दुःख से अन्त वाला है ( ततियं० ) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा में कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दुःखों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहि-ष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीड़े की तरह आठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एवं कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसंहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

# चौरासी ८४ लक्ष जीव योनि–

७ लाख पृथ्वी काय, ७ लाख अप्काय, ७ लाख तेजस्काय, ७ लक्ष वायु काय, १० लक्ष प्रत्येक वनस्पति, १४ लक्ष साधारण वनस्पति, २ लक्ष द्वीन्द्रिय, २ लक्ष त्रीन्द्रिय, २ लक्ष चतुरिन्द्रिय, ४ लक्ष नारक,—४ लक्ष देव, ४ लक्ष तिर्यञ्च, और १४ लक्ष मनुष्य, ऐसे ८४ लक्ष जीवों की योनियाँ हैं।

# "चतुर्थम् अब्रह्माध्ययनम्"

सम्बन्ध-तीसरे अध्ययन के बाद चौथे अध्ययन का प्रारम्भ करते हैं, सूत्र में किये हुए निर्देश के अनुसार अब्रह्म में आसक्त चित्त वाला प्राणी आस्रव का सेवन करता है। पञ्च द्वारों से अब्रह्म वर्णन करते हुए श्री सुधर्मा स्वामी पहले इसका स्वरूप वर्णन करते हैं-

**मूल-"जंबू! अबंभं च चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं, पंक-पणय-पासजालभूयं, थी-पुरिस-नपुंसवेद-चिंधं, तव संजम बंभचेरविग्घं, भेदायतण-बहुपमादमूलं, कायर-कापुरिस सेवियं, सुयणजण वज्जणिज्जं, उड्ढ-नरग-तिरिय-तिलोक पइट्ठाणं, जरा-मरण-रोग-सोग बहुलं, वध बंधविघाय दुव्विघायं, दंसण-चरित्त मोहस्स हेउभूयं चिरपरिगयमणुगयं दुरंतं चउत्थं अधम्मदारं ॥ सू० १ । १३ ॥**

छाय-"हे जम्बू ! अब्रह्म च चतुर्थं सदेव मनुजासुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयं, पङ्क-पनक पाशजालभूतं, स्त्री पुरुष-नपुंसक वेद चिह्नम्, तपः संयम ब्रह्मचर्य विघ्नः, भेदायतन-बहुप्रमादमूलम्, कातर कापुरुष सेवितम्, सुजनजन वर्जनीयम् ऊर्ध्व नरक-तिर्यक्-त्रैलोक्य प्रतिष्ठानं, जरा-मरण-रोग-शोक बहुलम्, वध-बन्धन-विघात दुर्विघातम्, दर्शन चारित्र मोहस्य हेतुभूतम्, चिर-परिगतमनुगतम् दुरन्त चतुर्थमधर्मद्वारम् ॥ ० १ । १३ ॥

अन्व-'( जंबू! ) हे जम्बू! ( अबंभं च ) तीसरे के बाद अब्रह्म नाम का ( चउत्थं ) चौथा आस्रव द्वार है ( सदेवमणुया सुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं ) देव, सहित मनुष्य और असुर लोक का प्रार्थनीय है ( पंक-पणय-पासजालभूयं ) कीचड़, चिकनी काई, पाश और जाल के समान ( थी पुरिस नपुंसवेद चिंधं ) स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदका चिह्न है (तव, संजम बंभचेर विग्घं ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य का विघ्न ( भेदा-यतण बहु पमादमूलं ) चारित्र भंग का स्थान और अनेक प्रमादों का मूल कारण है ( कायर कापुरिस सेवियं ) कायर तथा अधम मनुष्यों से सेवित ( सुयण जण वज्ज-

णिज्जं ) सुजन जनों से परिहार करने योग्य ( उड्ढ नरय तिरिय तिल्लोक पइट्ठाणं ) ऊर्ध्वलोक, नरकलोक, अधोलोक, तिर्यग्-मध्यलोक रूप त्रिलोकी में प्रतिष्ठान-स्थिति वाला ( जरा मरण रोग सोग बहुलं ) जरा, मरण और रोग शोक की अधिकता वाला ( वध बंध विघात दुव्विघातं ) वध, बन्धन और नाश से दुष्कर विघात वाला ( दंसण चरित्त मोहस्स हेउभूयं ) दर्शन मोह और चारित्र मोह का कारण ( चिर-परिगयमणुगयं दुरंतं चउत्थं अधम्मदार ) अनादि काल से परिचित, पीछे २ आने वाला और दुःख से अन्त हो ऐसा यह चतुर्थ अधर्मद्वार है' ॥ सू० १ ॥ १३ ॥

भाव—सुधर्म स्वामी फरमाते हैं-हे जम्बू! अब्रह्म यह चतुर्थ आस्रव है, देव, मनुष्य और असुर आदि जीवों से प्रार्थनीय, प्राणिओं को कलङ्कित करने व फसाने के कारण कीचड तथा जाल के समान है, स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद का चिह्न, तप, संयम आदि में विघ्न, चारित्र भङ्ग का स्थान और विविध प्रमादों का मूल है। कायर व नीच जन से सेवित, सुजन-सन्त पुरुषों से छोडा हुआ, तीनों लोक में आश्रय पाया हुआ, जरा मरण और रोग शोक की प्रचुरता वाला यावत् दर्शन मोह और चारित्र मोह का हेतु है। शेष पूर्ववत् ॥ सू० १ । १३ ॥

**मूल—"तस्स य णामाणि गोन्नाणि इमाणि होंति तीसं, तं जहा- १ अबंभं २ मेहुणं ३ चरंतं ४ संसग्गि ५ सेवणाधिकारो ६ संकप्पो ७ बाहणा ८ पदाणं दप्पो ९ मोहो १० मण संखेवो ११ अणिग्गहो १२ वुग्गहो १३ विघाओ १४ विभंगो १५ विब्भमो १६ अधम्मो १७ असीलया १८ गामधम्म तित्ती १९ रती २० राग, २१ काम-भोग मारो २२ वेरं २३ रहस्सं २४ गुज्झं २५ बहुमाणो २६ बंभ-चेर विग्घो २७ वावत्ति २८ विराहणा २९ पसंगो ३० कामगुणो त्ति विय, तस्स एयाणि एवमादीणि नाम धेज्जाणि होंति तीसं ॥ सू० २ । १४ ॥**

छाया—तस्य च नामानि गौणानीमानि भवन्ति त्रिंशत्, तानि यथा अब्रह्म, मैथुनम्, चरन्, संसर्गि, सेवनाधिकारः, सङ्कल्पः, बाधनापदानाम्, दर्पः, मोहः, मनः-संक्षोभः, अनिग्रहः, विग्रहः, विघातः, विभङ्गः, विभ्रमः, अधर्मः, अशीलता, ग्रामधर्म-तृप्तिः, रतिः, रागः, कामभोगमारः, वैरं रहस्यम्, गुह्यम्, बहुमानः, ब्रह्मचर्यविघ्नः,

१ क—राग चिन्ता।

व्यापत्तिः विराधना; प्रसङ्गः, कामगुणः, इत्यपि च तस्य एतानि एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सूत्र २ । १४ ॥

अन्व०—( तस्स य ) और उस अब्रह्म के ( इमाणि गोण्णाणि ) ये कहे जाने वाले गुण निष्पन्न ( नामाणि ) नाम ( तीसं होंति ) तीस होते हैं ( तं जहा ) जैसे कि-( अबंभं ) अब्रह्म-अशुभ आचरण ( मेहुणं ) मैथुन -स्त्री पुरुष का कर्म ( चरंतं ) चरत्—विश्व को व्याप्त करने वाला ( संसग्गि ) संसर्गि-स्त्री पुरुष के विशेष संसर्ग वाला ( सेवणाधिकारो ) सेवना अधिकार-चोरी आदि को प्रतिसेवना का अधिकारी (संकप्पो) सङ्कल्प--विकल्प से होने वाला ( बाहणा पदाणं ) बाधना-संयम स्थान या प्रजा को बाधा करने वाला (दप्पो ) दर्प-अभिमान से होने वाला (मोहो ) मोहोदय से होने वाला ( मण संखेवो ) मनः संक्षेप अथवा मनः संक्षोभ-मन को संकुचित या क्षुब्ध करने वाला ( अणिग्गहो ) अनिग्रह-विषय में प्रवृत्त मन को निग्रह नहीं करने वाला ( वुग्गहो ) विग्रह-कलह का कारण ( विघाओ ) विघात-गुणों का नाश करने वाला ( विभंगो ) विभंग-गुणों का खंडन करने वाला ( विब्भमो ) विभ्रम-सुख की भ्रान्ति करने वाला ( अधम्मो ) धर्म विरुद्ध ( असीलया ) अशीलता-कुशीलपन ( गामधम्मतित्ती ) ग्राम धर्मतृप्ति-तप्ति शब्दादि—कामगुणों में तृप्ति करना या काम गुणों का गवेषण करना ( रति ) बुरा प्रेम ( रागो ) राग—विषयानुराग ( काम भोग मारो ) काम भोगों के साथ मरण वाला ( वेरं ) वैर शत्रुता का कारण ( रहस्सं ) रहस्य-एकान्त में छिपके करने योग्य ( गुज्झं ) गुह्य-छिपाने योग्य व अवाच्य ( बहुमाणो ) बहुमान-बहुतों का माना हुआ ( बंभचेर विग्घो ) ब्रह्मचर्य का विघ्न ( वावत्ति ) व्यापत्ति—सद्गुणों से गिराने वाला ( विराहणा ) विराधना-एक देश से व्रत खण्डन का कारण ( पसंगो ) प्रसङ्ग-कामगुणों में प्रसङ्ग करना ( काम गुणोत्ति वि य ) और कामगुण इस प्रकार ( तस्स एयाणि ) उस अब्रह्म के ये पूर्वोक्त ( एवमादीणि ) इस प्रकार के अन्य, इत्यादि ( नाम धेज्जाणि ) नाम ( तीसं होंति ) तीस होते हैं ॥ सू० २ । १४ ॥

भावार्थ—" उस अब्रह्म के ये गुण युक्त ३० नाम होते हैं, जो ऊपर कहे जा चुके हैं। ये केवल मुख्य २ बातों का सङ्केत मात्र है। अतएव एवमादीनि, यह विशेषण है, इससे दूसरे नामों की सूचना हो रही है। इसलिये तीस ही नाम निश्चित न समझकर दुराचार, विषय भोग आदि नाम भी समझ लेने चाहिये। सू० २। १४ ॥

## अब इसके सेवन करने वालों को कहते हैं ।—

मूल—"तं च पुण निसेवंति सुरगणा, स अच्छरा, मोह मोहिय-मती, असुर-भुयग-गरुल-विज्जु-जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण थणिया १० । अणवन्नि-पणवन्निय-इसिवादिय-भूयवादिय कंदिय महाकंदिय—कूहंड-पयंग देवा ८ । पिसायभूय-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस—महोरग-गंधव्वा ८ । तिरिय-जोइस-विमाण-वासि-मणुय गणा, जलयर—थलयर-खहयरा य मोह-पडिबद्ध-चित्ता, अवितण्हा, काम-भोग तिसिया, तण्हाए बलवईए मह-ईए समभिभूया, गढिया य अतिमुच्छिया य अबंभे उस्सण्णा, ताम-सेण भावेण अणुम्मुक्का, दंसण-चरित्त-मोहस्स पंजरं पिव करंति [1]अन्नोऽन्नं सेवमाणा । भुज्जो असुर—सुर—तिरिय-मणुअ-भोग-रति-विहार संपउत्ता य चक्कवट्टी सुरनरवति सक्कया सुर वरव्व देवलोए, भरह णग णगर [2]णियम—जणवय—पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संवाह-पट्टण—सहस्स मंडियं, थिमिय मेयणियं, एग-च्छत्तं, ससागरं भुंजिऊण वसुहं, नरसीहा नरवई नरिंदा नर-वसभा मरुय—वसभकप्पा अब्भहियं रायतेय—लच्छीए दिप्पमाणा सोमा रायवंसतिलगा, रवि—ससि-संख-वरचक्क-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-भग-भवण—विमाण—[3]तुरय-तोरण-गोपुर-मणिरयण—नंदियावत्त-मुसल-णंगल-सुरइयवर कप्परुक्ख-मिग-वति-भद्दासण-सुरुवि थूभवर-मउड—सरिय-कुंडल-कुंजर—वर-वसभ-दीव-मंदिर-गरुल-ज्झय-इंदकेउ-दप्पण—अट्ठावय-चाव-बाण-नक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-छत्त-दाम—दामिणि-कमंडलु-कमल-घंटा-वरपोत-सूइ—सागर—कुमुदागर—मगर—हार गागर-नेउर णग-णगर-वइर-किन्नर-मयूर-वरराय हंस—सारस-चकोर-चक्कवाग-मिहुण-चामर-खेडग—पव्वीसग-विपंचि—वरतालियंट सिरिया-भिसेय-मेइणि-खग्गंकुस-विमल कलस-भिंगार-वद्धमाणग-पसत्थ

१ ख-अन्नमन्नं २ क-णिगम ३ क-तुरंग

उत्तम विभत्तवर-पुरिसलक्खण धरा। बत्तीसं वराय सहस्साणु-
जायमग्गा, चउसट्ठि सहस्स पवर जुवतीण णयणकंता, रत्ताभा
पउम-पम्ह-कोरंटग—दाम चंपक सुतयवरकणक—निहसवण्णा,
सुजाय-सव्वंग सुंदरंगा, महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग-एणि-
पेणि-णिम्मिय-दुगुल्ल-वरचीण पट्टकोसेज्ज-सोणी सुत्तक विभूसि-
यंगा, वरसुरभि-गंधवर-चुण्णवासवरकुसुम-भरिय सिरया,
कप्पिय-छेया यरिय-सुकय-रइत-माल-कडगंगय-तुडिय-पवर भूस-
ण पिणद्धदेहा, एकावलि-कंठ रइय-वच्छा, पालंब-पलंबमाण
सुकय-पडउत्तरिज्ज-मुद्दिया पिंगलंगुलिया, उज्जल-नेवत्थ-रइय
चेल्लग विरायमाणा, तेएण दिवाकरोव्व दित्ता, सारय-नव-
त्थणिय महुर-गंभीर निद्धघोसा, उप्पन्न-समत्त-रयण-चक्क-रयण-
पहाणा, नवनिहि वइणो, समिद्ध कोसा, चाउरंता चाउराहिं
सेणाहिं समणुजातिज्जमाणमग्गा, तुरगवती, गयवती, रह-
वती, नरवती, विपुलकुलवीसुयजसा, सारय—ससि—सकल
सोमवयणा, सूरा तेलोक्क-निग्गय-पभावलद्धसद्दा- समत्त भर-
हाहिवा, नरिंदा, ससेलवण काणणंच हिमवंत सागरंतं, धीरा
भुत्तूण भरहवासं जियसत्तू पवर रायसीहा, पुव्वकड तवप्पभावा,
निविट्ठ संचियसुहा, अणेगवाससयमायुवंतो भज्जाहि य जण-
वयप्पहाणाहिं लालियंता-अतुल सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे य अणुभ
वेत्ता तेवि उवणमंति मरणधम्मं, अवितत्ता कामाणं ॥सू० ३।१५।

छाया—"तत्र पुनर्निषेवन्ते सुरगणाः साप्सरसो मोहमोहितमतयः असुर-भुजग-
रुड-विद्युज्ज्वलण-द्वीपोदधि-दिक्-पवन-स्तनिताः.१०। अणपन्निक-पणपन्निक-ऋषि-
ादिक-भूतवादिक-क्रन्दित-महाक्रन्दित-कूष्माण्ड-पतङ्गदेवा.८। पिशाच भूत-यक्ष-
ाक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्वाः,८। तिर्यग्-ज्यौतिषः विमानवासि मनुजगणाः,
लचर-स्थलचर-खेचराश्च मोहप्रतिबद्धचित्ताः, अवितृष्णाः काम भोग तृषिताः,तृष्णया
लवत्या महत्या समभिभूता गृद्धाश्चातिमूर्च्छिताश्च अब्रह्माणि अवसन्नास्तामसेन

क-सुतत्त इति पाठेन भाव्यं १ क-नवनिहि पइणा

## अब इसके सेवन करने वालों को कहते हैं।—

मूल—"तं च पुण निसेवंति सुरगणा, स अच्छरा, मोह मोहिय-मती, असुर-भुयग-गरुल-विज्जु-जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण थणिया १०। अणवन्नि-पणवन्निय-इसिवादिय-भूयवादिय कंदिय महाकंदिय—कूहंड-पयंग देवा ८। पिसाय भूय-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस—महोरग-गंधव्वा ८। तिरिय-जोइस-विमाण-वासि-मणुय गणा, जलयर—थलयर-खहयरा य मोह-पडिबद्ध-चित्ता, अवितण्हा, काम-भोग तिसिया, तण्हाए बलवईए मह-ईए समभिभूया, गढिया य अतिमुच्छिया य अबंभे उस्सण्णा, ताम-सेण भावेण अणुम्मुक्का, दंसण-चरित्त-मोहस्स पंजरं पिव करेंति अन्नोऽन्नं सेवमाणा। भुज्जो असुर—सुर—तिरिय-मणुअ-भोग-रति-विहार संपउत्ता य चक्कवट्टी सुरनरवति सक्कया सुर वरुव्व देवलोए, भरह णग णगर णियम—जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संवाह-पट्टण—सहस्स मंडियं, थिमिय मेयणियं, एग-च्छत्तं,ससागरं भुंजिऊण वसुहं, नरसीहा नरवई नरिंदा नर-वसभा मरुय—वसभकप्पा अब्भहियं रायतेय—लच्छीए दिप्पमाणा सोमा रायवंसतिलगा, रवि—ससि-संख-वरचक्क-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-भग-भवण—विमाण—तुरय-तोरण-गोपुर-मणिरयण—नंदियावत्त-मुसल-णंगल-सुरइयवर कप्परुक्ख-मिग-वति-भद्दासण-सुरूवि थूभवर-मउड—सलिय-कुंडल-कुंजर—वर-वसभ-दीव-मंदिर-गरुल-द्धय-इंदकेउ-दप्पण—अट्ठावय-चाव-बाण-नक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-छत्त-दाम—दामिणि-कमंडलु-कमल-घंटा-वरपोत-सूइ—सागर—कुमुदागर—मगर—हार गागर-नेउर णग-णगर-वइर-किन्नर-मयूर-वरराय हंस—सारस-चकोर-चक्कवाग-मिहुण-चामर-खेडग—पव्वीसग-विपंचि—वरतालियंट सिरिया-भिसेय-मेइणि-खग्गंकुस-विमल कलस-भिंगार-वद्धमाणग-पसत्थ

१ क—पाठ... २ क—विमाण ३ क—तुरंग

उत्तम विभत्तवर-पुरिसलक्खण धरा। बत्तीसं वराय सहस्साणु-जायमग्गा, चउसट्ठि सहस्स पवर जुवतीण णयणकंता, रत्ताभा पउम-पम्ह-कोरंटग—दाम चंपक सुतयवरकणक—निहसवण्णा, सुजाय-सव्वंग सुंदरंगा, महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग-एणी-पेणि-णिम्मिय-दुगुल्ल-वरचीण पट्टकोसेज्ज-सोणी सुत्तक विभूसियंगा, वरसुरभि—गंधवर—चुण्णवासवरकुसुम-भरिय सिरया, कप्पिय-छेया यरिय-सुकय-रइत-माल-कडगंगय-तुडिय-पवर भूसण पिणद्धदेहा, एकावलि-कंठ रइय-वच्छा, पालंब-पलंबमाण सुकय—पडउत्तरिज्ज—मुद्दिया पिंगलंगुलिया, उज्जल-नेवत्थ-रइय चेल्लग विरायमाणा, तेएण दिवाकरोव्व दित्ता, सारय-नव-त्थणिय महुर-गंभीर निद्धघोसा, उप्पन्न-समत्त—रयण—चक्करयण-प्पहाणा, नवनिहि वइणो, समिद्ध कोसा, चाउरंता चाउराहिं सेणाहिं समणुजातिज्जमाणमग्गा, तुरगवती, गयवती, रहवती, नरवती, विपुलकुलवीसुयजसा, सारय—ससि—सकल सोमवयणा, सूरा तेलोक्क-निग्गय-पभावलद्धसद्दा. समत्त भरहाहिवा, नरिंदा, ससेलवण काणणंच हिमवंत सागरंतं, धीरा भुत्तूण भरहवासं जियसत्तू पवर रायसीहा, पुव्वकड तवप्पभावा, निविट्ठ संचियसुहा, अणेगवाससयमायुवंतो भज्जाहि य जण-वयप्पहाणाहिं लालियंता-अतुल सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे य अणुभवेत्ता तेवि उवणमंति मरणधम्मं, अवितत्ता कामाणं ॥सू०।३।१५।

छाया—"तत्र पुनर्निषेवन्ते सुरगणाः साप्सरसो मोहमोहितमतयः असुर-भुजग-गारुड-विद्युज्ज्वलण-द्वीपोदधि-दिक्-पवन-स्तनिताः १०। अणपन्निक-पणपन्निक-ऋषिवादिक-भूतवादिक-क्रन्दित-महाक्रन्दित-कूष्माण्ड-पतङ्गदेवाः ८। पिशाच भूत-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-महोरग गन्धर्वाः ८। तिर्यग्-ज्यौतिषः विमानवासि मनुजगणाः, जलचर-स्थलचर-खेचराश्च मोहप्रतिबद्धचित्ताः, अवितृष्णाः काम भोग तृषिताः, तृष्णया बलवत्या महत्या समभिभूता गृद्धाश्चातिमूर्च्छिताश्च अब्रह्मणि अवसन्नास्तामसेन

---

१ क-सुतत्त इति पाठेन भाव्यं २ क-नवनिहि पइणा

भावेनाऽनुन्मुक्ताः,-दर्शन चारित्रमोहस्य पञ्जरमिव कुर्वन्ति अन्योऽन्यं ( परस्परं ) सेवमानः। भूयोऽसुर-सुर-तिर्यङ्-मनुज भोग रति विहार सम्प्रयुक्ताश्च चक्रवर्तिनः सुर नरपति सत्कृताः सुरवरा इव देव लोके, भरत-नग-नगर-निगम-जनपद-पुरवर-द्रोणमुख-खेट-कर्बट-मडम्ब-संबाह-पत्तन सहस्रमण्डिता स्तिमितमेदिनीकामेकच्छत्रां, ससागरां भुक्त्वा वसुधां, नरसिंहा नरपतयो नरेन्द्रा नरवृषभा मरुद् ( ज ) वृषभकल्पा अभ्यधिकं राजतेजोलक्ष्म्या दीप्यमानाः सौम्या राजवंशतिलकाः, रवि-शशि शङ्ख-वर-चक्र-स्वस्तिक-पताका-यव-मत्स्य-कूर्म-रथवर-भग-भवन-विमान-तुरग-तोरण-गोपुर-मणिरत्न-नन्द्यवर्त-मुषल-लाङ्गल-सुरचितवरकल्पवृक्ष-मृगपति-भद्रासन-सुरुचि-स्तूप-वरमुकुट-मुक्तावली-कुण्डल-कुञ्जर-वरवृषभ-द्वीप-मन्दर-गरुड-ध्वजेन्द्रकेतु-दर्पणा-ष्टापद-चाप-वाण-नक्षत्र-मेघ-मेखला-वीणा-युगच्छत्र-दाम-दमिनी-कमण्डलु-कमल-घण्टा-वरपोत-सूची-सागर-कुमुदाकर-मकर-हार-स्त्री परिधान ( गागर ) नूपुर-नग-नगर-वज्र-किन्नर-मयूरवर-राजहंस-सारस-चकोर-चक्रवाक-मिथुन-चामर-खेटक-पव्वीसक-विपञ्ची-वरतालवृन्त-श्रीकाभिषेक-मेदिनी-खड्गाऽङ्कुश-विमल कलस-भृङ्गार-वर्द्धमानक-प्रशस्तोत्तम-विविक्त वर पुरुष लक्षणधराः। द्वात्रिंशद्वरराज सहस्राऽनुजात मार्गाः, चतुः षष्ठिवरयुवतीनां नयनकान्ताः, रक्ताभाः पद्म-गर्भ कोरण्टक-दाम चम्पक-सुतप्तवर कनक-निकषसवर्णाः, सुजात-सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गाः, महार्घवर पत्तनोद्गत-विचित्ररागैणी-प्रेणी ( चर्म ) निर्मित-दुकूलवर चीनपट्ट कौशेयक श्रोणी सूत्रक विभूषिताङ्गा, वरसुरभिगन्धवर चूर्णवास वरकुसुम भरित-शिरस्काः, कल्पित छेकाचार्य-सुकृत-रतिद-माला-कटकाङ्गद तुटिकाः, प्रवर भूषण पिनद्धदेहा, एकावली कण्ठ सुरचितवक्षसः, प्रलम्ब प्रलम्बमान सुकृत पटोत्तरीय मुद्रिका-पिङ्गलाऽऽङ्गुलयः, उज्ज्वल नेपथ्य-रचितै-चेल्लक-विराजमानाः, तेजसा दिवाकरा इव दीप्ताः, शारद नवस्तनित-मधुर गम्भीर स्निग्धघोषाः, उत्पन्न समस्तरत्न-चक्ररत्न प्रधानाः, नवनिधिपत्तयः, समृद्धकोशाश्चतुरन्ताश्चतसृभिः सेनाभिः समनुयायमान मार्गाः,तुरगपतयो-गजपतयो-रथपतयो-नरपतयो-विपुल कुल विश्रुत यशसः,शारद शशि सकलसौम्यवदनाः,शूरास्त्रैलोक्यनिर्गत प्रभाव लब्धशब्दाः, समस्त-भरताधिपा नरेन्द्राः, सशैलवन-काननं च हिमवत्सागरान्तं धीरा भुक्त्वा भरतवर्षं जितशत्रवः प्रवरराजसिंहाः, पूर्वकृततपः, प्रभावाः, निविष्ट सञ्चित सुखा, अनेक वर्षशतमायुष्मन्तो भार्याभिश्च जनपद प्रधानाभिर्लाल्यमाना अतुल शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धांश्चाऽनुभूय तेऽपि उपनमन्ति मरण धर्मम् वितृप्ताः कामेषु। सं० । ३ । १५ ॥

अन्वयार्थ—( तं च पुण ) और फिर उस चौथे अब्रह्म को ( निसेवंति ) सेवन करते हैं ( सुरगणा स अच्छरा ) अप्सरा सहित वैमानिक देव समूह, ये कैसे हैं ? ( मोह मोहियमतो ) मोह से मोहित बुद्धि वाले ( असुर-भुयग-गरुल-विज्जुजलण-दीव-उदहि—दिसि-पवण-थणिया ) १ असुर कुमार २ भुजंग—नाग कुमार ३ गरुड-ध्वजवाले—सुपर्ण कुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधि-कुमार, ८ दिक्कुमार, ९ पवनकुमार; और १० स्तनितकुमार, ऐसे दश भवन पति ( अणवन्नि—पणवन्निय—इसिवाइय-भूयवादिय-कंदिय-महाकंदिय—कूहंड-पयंगदेवा ) १ अणपन्नि; २ पणपन्निक, ३ ऋषिवादिक, ४ भूतवादिक, ५ क्रन्दित, ६ महाक्रन्दित, ७ कूष्माण्ड और पतङ्ग देवरूप व्यन्तर विशेष ( पिसाय—भूय-जक्ख—रक्खस-किन्नर—किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा ) १ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किंनर, ६ किम्पुरुष ७ महोरग और ८ गन्धर्व ये आठ जाति के व्यन्तर देव ( तिरिय-जोइस-विमाणवासि मणुयगणा ) तिर्यग् लोक में जो ज्योतिष्क, विमान वासी-ज्योतिष्क देव तथा मनुष्यगण ( जलयर-थलयर-खहयरा य ) और जलचर, स्थलचर व खेचर—आकाश मार्ग में चलने वाले पशु पक्षिगण ( मोह पडिबद्धचित्ता ) जो मोह में बंधे चित्त वाले हैं ( अवितण्हा काम भोगतिसिया ) प्राप्त विषय में बिना बुझी हुई प्यास वाले अर्थात् सन्तोष रहित व अप्राप्त काम भोग की तृषा वाले ( तण्हाए बलवईए महईए समभि-भूया ) बलवती और अधिक विषय वाली, महती—बडी भोग लालसासे घिरे हुए ( गढिया य ) और ग्रथित—विषयों मे गुंथे हुए—गृद्ध हैं ( अतिमुच्छिया य अबंभे ) फिर अब्रह्म—मैथुन में अत्यन्त आसक्त बने हुए ( उस्सण्णा ) कीचड के जैसे फंसे ए हैं ( तामसेण भावेण ) तमोगुण रूप भाव से ( अणुमुक्का ) नहीं छूटे हुए अन्नोन्नं सेवमाणा ) अब्रह्म को परस्पर सेवन करते हुए 'देव आदि' ( दंसण-चरित्त-ोहस्स पंजरपिव करेंति ) दर्शन मोह तथा चारित्र मोह के बन्ध को आत्म रूप पक्षी ः लिये पञ्जर जैसा करते हैं, ( भुज्जो असुर—सुर—तिरिय—मणुअ—भोग—रति ाहार संपउत्ता ) फिर विशेष रूप से कहते हैं—और असुर, सुर तिर्यञ्च और मनुष्यों ः भोग में—रति—आसक्ति प्रधान अनेक क्रीडाओं से युक्त जो ( देव लोए सुरवरुव्व ) ःवलोक में प्रधान देव की तरह 'यहाँ' ( सुर नरवति सक्कया चक्कवट्टी ) सुरेन्द्र और ारेन्द्र से सत्कार पाये हुए चक्रवर्ती 'हैं' ( भरह—णग—णगर—णियम—जणवय ुरवर—दोणमुह—खेड—कव्वड—मडंब—संवाह—पट्टण सहस्स मंडियं ) भरत-ारत वर्ष के नग—पर्वत, नगर, निगम—वणिक् प्रधान बस्ती, जनपद—देश, पुरवर-

राजधानी रूप शहर और द्रोणमुख, खेट, कर्वट, मडम्ब, संवाह—रक्षा के लिये धान्य आदि के संवहन योग्य दुर्ग विशेष और पत्तन, इनके हजारों समूह से शोभित ( थिमिय-मेयणियं एगच्छत्तं ) स्तिमित-निर्भय जन समूह वाली एकच्छत्र (ससागरं वसुहं भुंजिऊण ) समुद्र सहित पृथ्वी का पालन करके ( नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसभा ) नरसिंह-मनुष्यों में सिंह के समान, नरपति, नरेन्द्र-मनुष्यों में इन्द्र, नर वृषभ-पुरुषश्रेष्ठ ( मरुय वसभकप्पा ) मरुद्वृषभ—मरुभूमि के जातिमान् वृषभ के समान कार्यभार को निभाने वाले ( रायतेय लच्छीए अब्भहियं ) राजतेज की लक्ष्मी से अतिशय ( दिप्पमाणा ) दीप्यमान-दीपते हुए ( सोमा रायवंसतिलगा) सौम्य आकृति वाले, राजवंश में तिलक रूप ( रवि—ससि-संख-वरचक्क—सोत्थिय-पडाग-जव—मच्छ—कुम्म-रहवर-भग-भवण—विमाण—तुरग—तोरण—गोपुर-मणि-रयण नंदियावत्त-मुसल-लंगल) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, वरचक्र-प्रधानचक्र, स्वस्तिक, पताका, यव, मत्स्य, कूर्म,रथवर-उत्तमरथ भग-योनि, भवन,विमान, तुरग-घोडा, तोरण, गोपुर-नगर का द्वार, मणि, रत्न-कर्केतन आदि, नन्द्यावर्त—नव कोण का स्वस्तिक विशेष मूसल, और लांगल—हल ( सुरइय-वरकप्परुक्ख-मिगवति-भद्दासण-सुरुवि-थूभवर-मउड—सरिय—कुंडल—कुंजर—वरवसभ-दीव- मंदिर-गरुलद्धय-इंदकेउ-दप्पण-अट्ठावय-चाव-बाण—नक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-च्छत्त—दाम ) अच्छी रचना वाला या सुखप्रद—उत्तम कल्पवृक्ष, मृगपति-सिंह, भद्रासन—आसन विशेष, सुरूची या सुरूपि-आभरण विशेष, स्तूप-यज्ञस्तम्भ, उत्तम मुकुट, सरिका-मुक्तावली आदि, कुंडल-कान के आभरण, कुंजर—हाथी, उत्तमवृषभ, द्वीप-जल के बीच का भूमिभाग, मन्दर-मेरुपर्वत या मन्दिर, गरुड, ध्वजा, इन्द्र केतु—इन्द्रयष्टि-लकडी पर चिन्ह विशेष, दर्पण-काँच, अष्टापद-जूए का पाशा अथवा कैलाश पर्वत, चाप-धनुष, बाण, नक्षत्र, मेघ, और मेखला-कमर का डोरा, वीणा, युग—गाडी का जूआ, छत्र, दाम-माला, तथा ( दामिणि—कमंडलु-कमल-घंटा—वरपोत-सूइ-सागर-कुमुदागर—मगर-हार-गागर-णेउर-णग-णगर-वइर—किन्नर-मयूर-वररायहंस-सारस-चकोर—चक्कवाक ( ग ) मिहुण—चामर—खेडग-पव्वीसग-विपंचि—वरतालियंट-सिरियाभिसेय-मेइणि-खग्गंकुस-विमल कलस-भिंगार-वद्धमाणग-पसत्थ उत्तम विभत्त-वर पुरिस लक्खणधरा) दामिनी—डोरी, कमंडलु-कुण्डी, कमल, घण्टा, उत्तम जहाज, सूची—सूई, सागर, कुमुद-चन्द्र विकाशि कमल का समूह, मकर, हार-आभरण विशेष, गागर-स्त्री के पहिनने का कपडा, नूपुर—पांव का भूषण, नग—पर्वत, नगर,

वज्र, किन्नर,—देव या वाद्य विशेष; मयूर-मोर; उत्तम राजहंस, सारस, चकोर, और चक्रवाक-चकवा चकवी का जोडा, चामर, खेटक-पाटिया विशेष, पव्वीसक और विपञ्ची-वाद्यविशेष, श्रेष्ठ तालवृन्त-उत्तम पंखा, लक्ष्मी का अभिषेक, मेदिनी—पृथ्वी, खड्ग-तलवार, अङ्कुश, निर्मल कलस, भृङ्गार-झारी, वर्द्धमानक-शरावा अथवा पुरुष के कंधे पर आरूढ पुरुष, इन शुभकारी उत्तम पुरुषों के प्रधान लक्षणों को शुद्ध रूप से धारण करने वाले ( बत्तीसं वर राय सहस्साणु जायमग्गा ) पीछे चलने वाले बत्तीस हजार उत्तम राजाओं से अनुगत मार्ग वाले ( चउसट्ठि सहस्स-पवर जुवतीण-णयण-कंता ) चौसठ हजार उत्तम युवतिओं के नयनाभिराम ( रत्ताभो ) लाल कान्ति वाले ( पउमपम्ह कोरंटग—दाम—चंपक सुतय-वर कणग-निहसवण्णा ) कमल का गर्भ, कोरंट, फूलों की माला, चम्पक-चम्पा का फूल और अच्छी तरह तपे हुए उत्तम सुवर्ण को रेखा के जैसे वर्ण वाले ( सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगा ) अच्छी तरह से निष्पन्न सभी अङ्गों से सुन्दर शरीर वाले ( महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग एणि पेणि णिम्मिय दुगुल्लवरचीणपट्ट कोसेज्ज सोणीसुत्तक विभूसियंगा ) बहु मूल्य उत्तम पट्टन में बने हुए तथा अनेक प्रकार के रङ्ग वाले और हरिणी के चर्म से निर्मित वस्त्र, दुकूल वृक्ष विशेष की वल्क-छाल को जल के साथ ऊखल में कूटकर उस के सूत से बनाये हुए वस्त्र दुकूल वस्त्र कहाते हैं, वरचीन —दुकूल वृक्ष की छालके भीतरी तन्तुओं-हीरकों से बनाये गये अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र अथवा चीन देश में बने हुए, पट्ट-पट्टसूत्र-पाट के कपडे, कौशेयक-कीट से बने हुए रेशमी वस्त्र और श्रोणी सूत्र-कटिसूत्र-कंदोरा इनसे विभूषित शरीर वाले ( वर सुरभिगंध – वर चुण्ण वास-वर-कुसुम भरिय सिरया ) उत्तम सुगन्धित पदार्थ, सुगन्धि युक्त चूर्ण, वास और प्रधान फूलों से भरे हुए शिर वाले ( कप्पिय-छेया यरिय—सुकय-रइत्त-माल-कडगंगय तुडिय-पवर भूसण-पिणद्धदेहा ) कुशल आचार्य से अच्छी तरह बनाये गये इष्ट और मन को आनन्द देने वाले माला, कटक—कंकण, अङ्गद—भुज बन्ध, त्रुटिक-बाहु रक्षक-बहरखा तथा अन्य मुकुट आदि प्रवर भूषण—शरीर पर पहने हुए हैं ( एकावलि कंठ-सुरइयवच्छा ) एकावली-सुवर्ण आदि की एक लडी माला कण्ठ में डालकर हृदय प्रदेश को सुशोभित करने वाले ( पालंब-पलंबमाण-सुकय-पडउत्तरिज्ज-मुद्दिया पिंगलंगुलिया ) लम्बे लटकते हुए उत्तम रचना युक्त उत्तरीय वस्त्र वाले तथा अङ्गूठिओं से पीली अङ्गुली वाले ( उज्जल नेवत्थ—रइय—चेल्लग-विरायमाणा ) सुख प्रद-उज्ज्वल वेष के वस्त्रों से विराजमान ( तेएण दिवाकरोव्व दित्ता ) तेज

से सूर्य के समान दीप्ति वाले ( सारय नव थणिय महुर गंभीर निद्ध घोसा ) शरत्काल के नवीन उत्पन्न गर्जारव के समान मधुर गम्भीर और स्निग्ध-प्रेमयुक्त ध्वनि वाले ( उप्पण्ण समत्तरयण चक्करयणप्पहाणा ) उत्पन्न हुए सभी रत्नों के स्वामी और चक्ररत्न की प्रधानता वाले ( नवनिहिवइणो ) नव निधान के मालिक तथा ( समिद्ध कोसा ) समृद्ध—परिपूर्ण खजाने वाले ( चाउरंता ) चार समुद्र रूप अन्त-पर्यन्त वाले ( चउराहिं सेणाहिं ) हाथी, घोडे, रथ और पदाति रूप-चतुरंगिनी सेनाओं से ( समणु जातिज्जमाणमग्गा ) अच्छी तरह अनुगमन किये हुए मार्ग वाले (तुरगवती गयवती रहवती नरवती) घोडों के स्वामी, गज के स्वामी, रथ के स्वामी और जो मनुष्यों के अधिपति हैं (विपुल कुल विस्सुय जसा) विस्तीर्ण कुल और प्रख्यात कीर्तिवाले ( सारयससि सकल सोम वयणा सूरा ) शरद ऋतु के पूर्णचन्द्र की तरह सौम्य मुख वाले, शूर-पराक्रमी हैं ( तेलोक्क निग्गय-पभाव-लद्ध-सद्दा ) त्रिलोकी में फैले हुए प्रभाव वाले व प्रसिद्धि पाये हुए ( समत्त भरहाहिवा नरिंदा ) समस्त भरत क्षेत्र के स्वामी, नरेन्द्र ( ससेल-वण-काणणं च धीरा ) और वे धीर शैल-पर्वत वन और उपवनों से युक्त ( हिमवंत सागरंतं भरहवासं ) हिमवान—चुल्लहिम गिरि और समुद्र से अन्त वाले भारतवर्ष को ( भुत्तूण ) पालकर ( जिय सत्तू पवर राय-सीहा ) शत्रु रहित उत्तम राजसिंह ( पुव्वकड तवप्पभावा ) पूर्वकृत तपस्या के प्रभाव से ( निविट्ठ संचिय सुहा ) संचित सुखों को भोगने वाले होते हैं ( अणेगवास-सयमायुवंतो ) सैकडों वर्ष की आयु वाले 'वे' ( भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं ) देश में प्रधान ऐसी भार्याओं से ( लालियंता ) विलास करते हुए ( अतुल सद्द-फरिस-रस-रूव- गंधे य ) और अतुल शब्द, स्पर्श, रूप और गंध का ( अणुभवेत्ता ) अनुभव करके ( तेवि ) वे भी ( कामाणं अवितत्ता मरणधम्मं उवणमंति ) काम से याने विषय भोग से विना तृप्ति पाये ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। ३। १५।

मूल—"भुज्जो भुज्जो बलदेव वासुदेवा य पवर पुरिसा महा-बल परक्कमा, महाधणुवियट्टका, महासत्तसागरा, दुद्धरा धणुद्धरा नर वसभा, रामकेसवा भायरो सपरिसा वसुदेव-समुद्दविजय-मादिय दसाराणं, पज्जुन्न-पतिव-संब-अनिरुद्ध-निसह-उम्मुय-सारण-गय-सुमुह-दुम्मुहादीण जायवाणं, अद्धुट्ठाणवि कुमार कोडीणं हियथदायिया, देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य आणंद

हियय भावनंदणकरा, सोलस रायवर सहस्साणु जातमग्गा, सोलस देवीसहस्स–वरणयण हियय–दयिया, णाणामणि-कणग-रयण-मोत्तिय-पवालधण-धन्न संचय-रिद्धि-समिद्ध कोसा, हय-गय-रह-सहस्ससामी, गामागर-णगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोण-मुह-पट्टणासम-संवाह सहस्स थिमिय निव्वुय मुदित जण विविह सस्स निप्फज्जमाण–मइणि-सर-सरिय-तलाग-सेल-काणण-आरो-मुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स दाहिणड्ढ वेयड्ढ गिरि वि-भत्तस्स लवणजलहि-परिगयस्स, छव्विह कालगुण काम जुत्तस्स, अद्ध भरहस्स सामिका, धीरकित्तिपुरिसा, ओहबला, अइबला, अनिहया अपराजियसत्तु-मद्दण-रिपुसहस्समाण–महणा, साणु-कोसा, अमच्छरी, अचवला, अचंडा, मितमंजुल-पलावा-हसिय-गंभीर महुरभणिया, अब्भुवगयवच्छला, सरण्णा, लक्खण-वंजण-गुणोववेया, माणुम्माण पमाण-पडिपुन्न सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगा, ससिसोमागार कंतापियदंसणा, अमरिसणा, पयंड-दंडप्पयार-गंभीर दरिसणिज्जा, तालद्ध उव्विद्ध गरुलकेऊ, बल-वग-गज्जंत–दरित दप्पित-मुट्ठिय चाणूरमूरगा, रिट्ठ–वसभ–घातिणो केसरिमुह विप्फाडगा, दरितनागदप्पमहणा, जमल-ज्जुण भंजगा, महासउणि-पूतणारिऊ कंस मउड मोडगा, जरा-सिंध माण महणा, तेहि य अविरल सम साहिय चंद मंडल-समप्पभेहिं, सूरमिरीयकवयं विणिम्मुयंतेहिं, सपतिदंडेहिं आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता, ताहि य पवर गिरि कुहर विह-रण समुट्ठियाहिं निरुवहय–चमर पच्छिम सरीर संजाताहिं अमइल–सियकमल विमुकुलुज्जलित रयतगिरि–सिहर–विमल ससि किरण सरिस कलहोय निम्मलाहिं पवणाहय चवल चलिय-सललिय-पणच्चिय-वीइ पसरिय-खीरोदग-पवर सागरु-प्पूरचंचलाहिं, माणस सर-पसर–परिचियावास–विसदवेसाहिं, कणगगिरि सिहर संसिताहिं, उवाउप्पात-चवल-जाणियासिग्घ-

वेगाहिं, हंसवधूयाहिं, चेव कलिया, नाणामणि-कणग-महारिहत-वणिज्जुज्जल विचित्त डंडाहिं, सललियाहिं, नरवति सिरिसमुदय-प्पगासण करीहिं वर पट्टणुग्गयाहिं, समिद्ध रायकुल सेवियाहिं, कालागुरुपवर कुंदुरुक्क तुरुक्क धूवव रवास विसद-गधुद्धूया-भिरामाहिं चिल्लिकाहिं, उभयोपासंपि चामराहिं, उक्खिप्प-माणाहिं, सुहसीतलवातवीतियंगा, अजिता अजितरहा हल-मुसल कणग पाणी, संख-चक्क-गय-सत्ति-णंदगधरा, पवरुज्जल-सुकत्त विमल कोथूभ-तिरीडधारी, कुंडल उज्जोवियाणणा, पुंडरीय णयणा एगावली कंठ-रतियवच्छा सिरिवच्छ सुलंछणा वरजसा सव्वोउय सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलंब-सोहंत-विय-संत-चित्त-वणमाल-रतियवच्छा, अट्ठसय-विभत्त-लक्खण पसत्थ-सुंदर विराइयंगमंगा। मत्तगय वरिंद-ललियविक्कम-विलसिय-गती, कडिसुत्तगनील-पीत कोसिज्जवाससा, पवर दित्ततयो, सारय-नवथणिय-महुरगंभीर-निद्धघोसा नरसीहा, सीहविक्कम-गई, अत्थमिया, पवर रायसीहा, सोमा बारवइ पुन्न चंदा पुव्व-कयतवप्पभावा, निविट्ठ संचिय सुहा, अणेगवास-सयमायुवंतो भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता, अतुलसद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे अणुभवेत्ता, ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं ॥ ४ । १५ ॥

छाया—" भूयो भूयो बलदेव वासुदेवाश्च प्रवर पुरुषा महाबलपराक्रमाः महाधनु-विकर्षका महासत्त्वसागराः, दुर्द्धराः, धनुर्द्धरा नरवृषभा [3]रामकेशवा भ्रातरः सपरि-षदो वसुदेव–समुद्रविजयादिक दशाऽऽर्हाणां प्रद्युम्न–प्रतिव-शम्बाऽनिरुद्ध–निषधोल्मुक-सारण—गज–सुमुख—दुर्मुखादीनां यादवानामध्युष्टानामपि कुमार कोटीनां हृदय-दयिताः, देव्या रोहिण्या देव्या देवक्याश्चाऽऽनन्द हृदय—भावनन्दनकराः, षोडश राजवर सहस्रानुजातमार्गाः, षोडश देवी सहस्र वर नयन हृदयदयिताः, नानामणि-कनक-रत्नमौक्तिक—प्रवाल-धन—धान्य—सञ्चयर्द्धिसमिद्ध कोशाः, हय—गज-रथ-

सहस्रस्वामिनो, ग्रामाकर—नगर—खेट—कर्बट—मडम्ब द्रोणमुख-पत्तनाऽऽश्रम-संवाह—सहस्र—स्तिमित-निर्वृत्त-प्रमुदित जन—विविध सस्य-निष्पद्यमान-मेदिनी-सरःसरित्-तडाग-शैल-काननाऽऽरामोद्यान-मनोऽभिराम-परिमण्डितस्य, दक्षिणार्द्ध-वैताढ्य गिरिविभक्तस्य लवण जलधि परिगतस्य षड्विधकाल गुण काम युक्तस्य अर्द्ध-भरतस्य स्वामिकाः, धीरकीर्तिपुरुषा-ओघबला-अतिबला-अनिहता-अपराजित—शत्रु-मर्दन-रिपुसहस्र-मानमथनाः सानुक्रोशाः, अमत्सरा अचपला अचण्डा मितमञ्जुल-प्रलापाः, हसित गम्भीर मधुरभणिताः, अभ्युपगतवत्सलाः, शरण्या, लक्षणव्यञ्जन गुणोपपेताः, मानोन्मान प्रमाण परिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गाः, शशि सौम्याकार-कान्तप्रियदर्शनाः, अमर्षणाः, प्रचण्ड दण्ड प्रचार गम्भीरदर्शनीयास्ताल ध्वजोद्विद्ध-गरुडकेतवो-बलवद्गर्ज दृप्त दर्पित-मौष्टिक-चाणूर मारकाः,रिष्ट वृषभघातिनः, केसरि मुखविस्फाटकाः, दृप्तनाग-दर्पमथनाः, यमलार्जुन भञ्जकाः, महाशकुनि पूतना रिपवः, कंस मुकुट मोटकाः, जरासन्ध मानमथनास्तैश्चाविरल—सम—सहित चन्द्रमण्डलसम-प्रभैः, सूर्यमरीचिकवचं विनिमुञ्चद्भिः, सप्रतिदण्डैरातपत्रैर्ध्रियमाणैर्विराजमानाः, तैश्चप्रवर-गिरि-कुहर विहरण समुत्थितैर्निरुपहत-चमरपश्चिम शरीरसञ्जातै-अमलिनः, सितकमल-विमुकुलोज्ज्वलित-रजतगिरि—शिखर-विमलशशि-किरण सदृश—कल-धौतनिर्मलैः, पवनाऽऽहृत चपल चलित ललित प्रवृत्त वीचो प्रसृत परिचिताऽऽवास विशदवेशाभिः, कनकगिरिशिखरसंश्रिताभिः, अवपातोत्पात चपल ( वस्त्वन्तर ) जयनशीघ्र-वेगाभिर्हंसवधूभिश्चैवकलिताः नानामणि कनक महार्ह-तपनीयोज्ज्वल-विचित्रदण्डैः, सललितैर्नरपति श्रीसमुदाय प्रकाशन करैर्वरपट्टनोद्गतैः, समिद्ध राज-कुलसेवितैः, कालागुरु प्रवर कुन्दुरुक्क-तुरुष्क-धूपवश वास-विशद-गन्धोद्धूताऽऽभि-रामैर्दीप्यमानैरुभयपार्श्वयोरपि, चामरै रुत्क्षिप्यमाणैः, शुभशीतल—वात—वीजिताङ्गाः, अजिताः, अजितरथाः, हलमुशल कनक पाणयः, शङ्ख-चक्र-गदा—शक्ति—नन्दक धराः, प्रवरोज्ज्वल सुकृत विमल-कौस्तुभ—किरीट धारिणः, कुण्डलोद्योतिताननाः, एकावली-कण्ठ रचितवक्षस्काः, श्रीवत्स सुलाञ्छना, वरयशस्काः, सर्वर्तुक—सुरभि—कुसुम—सु-रचित-प्रलम्ब शोभमान—विकचचित्रवनमाला रतिद-वक्षस्काः, अष्टशत—विभक्त—लक्षण-प्रशस्त—सुन्दर विराजिताङ्गोपाङ्गा, मत्तगजवरेन्द्र ललित—विक्रम विलसित गतयः, कटिसूत्रक-नील—पीत—कौशेयवासस्काः, प्रवरदीप्ततेजस्काः, शारद नवस्तनित—मधुर-गम्भीर-स्निग्धघोषाः,नरसिंहाः,सिंहविक्रमगतयः,अस्तमिताः, प्रवरराजसिंहाः, सौम्याः,

: गायनो पूर्णचन्द्राः, पूर्वकृत तपः प्रभावाः, निविष्ट सञ्चितसुखा, अनेकवास शत-
ायुषमन्तो भार्याभिश्च जनपद प्रधानाभिर्लाल्यमाना, अतुल शब्द-स्पर्श-रस-रूप-
न्धान अनुभूय तेऽपि उपनमन्ति मरणधर्ममवितृप्ताः कामेषु । ४ । १५ ।

अन्वयार्थ—( भुज्जो-भुज्जो ) फिर इसी प्रकार ( बलदेव वासुदेवा य पवर
रिसा ) बलदेव और वासुदेव रूप उत्तम पुरुष ( महाबल परक्कमा महाधणु विय-
का महासत्त सागरा ) जो बडे शारीरिक बल तथा पराक्रम वाले, बडे धनुष को
खींचने वाले और महान् साहस के समुद्र हैं ( दुद्धरा धणुद्धरा ) दुर्धर तथा प्रधान
धनुर्धारी ( नर वसभा ) नरों में वृषभ याने श्रेष्ठ ( रामकेसवा भायरो सपरिसा )
बलराम तथा कृष्ण अथवा बलदेव वासुदेव दोनों भाई, परिवार सहित भी, 'भोग में
तृप्त हो अस्त होगए' विशेष कहते हैं-( वसुदेव समुद्दविजयमादिय दसाराणं )
वसुदेव और समुद्रविजय आदि दशारों के ( पज्जुन्न-पतिव-संब-अनिरुद्ध-निसढ-
उम्मुय-सारण-गय—सुमुह—दुम्मुहादीण जायवाणं अद्धुट्ठाणवि कुमार कोडीणं हियय-
दयिता ) प्रद्युम्न कुमार, प्रतिव, शम्ब, अनिरुद्ध कुमार, निषध, औल्मुक, सारण, गज-
कुमार, सुमुख, और दुर्मुख आदि यादवों के तथा साढे तीन कोटि कुमारों के जो
हृदय वल्लभ हैं ( देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य ) देवी रोहिणी और देवी देवकी
के ( आणंदहियय भाव नंदणकरा ) आनन्द रूप हृदय के भाव को बढाने वाले
( सोलस रायवर सहस्साणु जातमग्गा ) मार्ग में सोलह हजार राजा जिनके साथ
चलते हैं ( सोलस देवी सहस्स वरणयण—हिययदइया ) सोलह हजार राणिओं के
नेत्रों व हृदयों के प्रधान प्रिय ( नानामणि-कणग रयण-मोत्तिय-पवाल-धण-धण्ण-
संचय-रिद्धि समिद्ध कोसा ) अनेक प्रकार के मणि,सुवर्ण,रत्न-कर्केतन आदि मौक्तिक,
प्रवाल-मूँगा, धन-गिनने योग्य, धान्य—तोलने योग्य के सञ्चय रूप लक्ष्मी से
समृद्ध भरपूर-भण्डार वाले (हय-गय रह-सहस्ससामी)हजारों हाथी घोडे व रथों के
स्वामी ( गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह—पट्टणासम-संवाह-सहस्स-
थिमिय-णिव्वुय—पमुदित जण विविह-सास निप्फज्जमाण मेइणि-सर-सरिय-तलाग-
सेल-काणण-आरामुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स ) ग्राम, आकर नगर, खेड,
कर्बड मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, और संवाह पूर्व कथित स्वरूप वाले इन हजारों
बस्तिओं के निर्भय स्थिर-स्वस्थ और प्रमुदित लोक वाला, अनेक प्रकार के धान्य से
अङ्कुरित पृथ्वी और सर, नदी, तालाव, पर्वत, कानन, उपवन; आराम—स्त्री पुरुषों के

रमण करने योग्य वन विशेष और मनोहर उद्यान-बगीचों से परिमण्डित ऐसे भारत-वर्ष का ( दाहिणड्ढ-वेयड्ढ—गिरि विभत्तस्स-लवण जलहि-परिगयस्स छव्विह-काल-गुण-कमजुत्तस्स--अद्धभरहस्स ) वैताढ्य पर्वत से विभाग पाये हुए दक्षिण के अर्ध भाग रूप, और लवण समुद्र से तीन दिशाओं में घिरे हुए छः प्रकार के कालगुण याने ऋतुओं के कार्य—क्रम से युक्त अर्द्ध भरत के ( सामिका ) नाथ हैं, ( धीरकित्ति पुरिसा ) धीरों के योग्य कीर्ति वाले पुरुष; ( ओहबला, अइबला, अनिहया ) ओह—अविच्छिन्न—अखूट बल वाले, अतिशय बली, किसी से नहीं मारे गये ( अपराजिय-सत्तुमद्दण—रिपुसहस्समाणमहणा ) किसी से नहीं हारे हुए शत्रुओं का मर्दन करने वाले, हजारों शत्रुओं के मानों को मथन करने वाले ( साणुक्कोसा अमच्छरी ) दयावान् तथा मत्सर—द्रोह से रहित ( अच-वला अचंडा ) चपलता रहित, विना कारण क्रोध नहीं करने वाले ( मित मंजुल—पलावा ) परिमित और मधुर संलाप वाले ( हसिय गंभीर महुर भणिया ) गम्भीर हास्य और गम्भीर ध्वनि वाले ( अब्भुवगयवच्छला सरण्णा ) आश्रितों के वत्सल व शरण दाता ( लक्खण वंजण गुणोववेया ) लक्षण, व्यञ्जन-तिल मशा आदि और गुण, दया आदि इन सबों से युक्त ( माणुम्माण पमाण पडिपुन्न सुजाय सव्वंगसुंद-रंगा ) मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण तथा अच्छे बने हुए सभी अवयवों से सुन्दर शरीर वाले ( ससि सोमागार कंतपियदंसणा ) चन्द्र की तरह सौम्य आकार और कान्त व प्रियदर्शन वाले ( अमरिसणा ) अपराधों को नहीं सहने वाले या कार्य में आलस्य रहित ( पयंड—डंड-प्पयार-गंभीर—दरिसणिज्जा ) प्रचण्ड दण्ड विशेष का विधान करने वाले या प्रकाण्ड सेना के विस्तार वाले तथा देखने में गम्भीर मुद्रा वाले ( तालद्ध उव्विद्ध गरुल केऊ ) उठी हुई ताल वृक्ष की ध्वजा वाले और गरुड केतु वाले 'बलराम और कृष्ण' ( बलवग—गज्जंत-दरित—दप्पित-मुट्ठिय-चाणूर—मूरगा ) बलवान तथा मेरे समान कौन है ? इस प्रकार गाजते हुए अह-ङ्कारियों में दर्पवाले, मौष्टिकमल्ल और चाणूर नामक मल्ल को चूर्ण करने वाले ( रिट्ठ-वसभघातिणो ) कंस के अरिष्ट नामक बैल को मारने वाले ( केसरिमुह विप्फाडगा ) केसरी का मुंह फाड़ने वाले ( दरित नागदप्पमहणा ) दुष्ट नाग के दर्प को मथने वाले ( जमलज्जुण भंजगा ) अर्जुन वृक्ष के रूप को धारण करने वाले दो विद्या-धरों के मान भङ्ग करने वाले 'श्री कृष्ण' ( महासउणि पूतनारिवू ) महा शकुनि और पूतना के शत्रु ( कंस मउड मोडगा ) युद्ध के लिये तत्पर ऐसे कंस के मुकुट को

मोडने वाले ( जरासिंधमाण महणा ) जरासन्ध नामक राजा के मान को मथन करने वाले ( तेहि'य अविरल—सम—सहिय—चंद-मंडल-समप्पभेहिं सूर—मिरीय-कवयं—विणिम्मुयंतेहिं सपति—दंडेहिं आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं ) और छिद्र रहित तुल्यशलाका वाले तथा हितकारी चन्द्र मन्डल के समान प्रभावाले, सूर्य की किरणों के समान चारों ओर प्रभा-समूह को फैलाते हुए प्रतिदण्ड वाले, शिरपर धारे जाते हुए—[1] छत्रों से ( विरायंता ) विराजमान हैं।

( ताहि य ) और इन चामरों से युक्त जो ( पवर गिरि कुहर विहरण समुट्टियाहिं ) ऊंचे पहाड़ की गुफा में चमरी गाय के विचरते समय उखडे हुए ( निरुवहय चमर-

१—वाचनान्तर में छत्र का वर्णन फिर ऐसा मिलता है-'अब्भपडल पिंगलुज्जलेहिं, अविरल सम सहिय-चंद मंडल समप्पभेहिं, मंगल सयभत्ति—च्छेय—चित्तियखिंखिणि—मणि—हेमजाल विरइय—परिगय—पेरंत—कणय—घंटिय—पयलिय-खिणिखिणिंत—सुमहुर—सुइ-सुह—सद्दाल सोहिएहिं, सपयरग—मुत्तदाम—लंबंत भूसणेहिं, नरिंद—वामप्पमाण-रुंदपरिमंडलेहिं, सीयायव-वायवरिस—विसदोसणासएहिं, तमरय—मलबहुल-पडल—धाडण—पहाकरेहिं, मुद्धसुह-सिवच्छायसमणुबद्धेहिं, वेरुलियदंडसज्जिएहिं, वयरामय—वत्थि-णिउण—जोइय—अट्ठसहस्स-वरकंचणसलाग-निम्मिएहिं, सुविमल—रयय-सुट्ठुच्छइएहिं, णिउणोविय-मिसिमिसिंत-मणि-रयण-सूर-मंडल—वितिमिर-कर—निग्गय—पडिहय-पुणरवि—पच्चोवयंत चंचल मरीइ कवयं विणिम्मुयंतेहिं:—'बडे बादल की तरह पीले और उज्ज्वल छिद्र रहित, बराबर हितकारी व चन्द्र-मण्डल के समान प्रभा वाले, कुशल शिल्पी के द्वारा मङ्गलकारी सैकड़ों विच्छित्तियों से चित्र युक्त, छोटी घंटिका और रत्न जटित सोने की जाल की रचना से चारों ओर घिरे हुए, प्रान्त भाग में हिलती हुई सुवर्ण घंटिकाओं के खिनखिनाहट से अतिशय मधुर और कर्णप्रिय शब्दों से शोभित, आभरण युक्त लटकती हुई मोती की माला के भूषण वाले, राजा के फैलाये हुए बाहुओं के प्रमाण गोल व विस्तार वाले; सर्दी गर्मी, धूप, हवा, वर्षा और विषसम्बन्धी दोषों को मिटाने वाले; अन्धकार तथा धूलिमल के सघन पटल को नष्ट करने वाली प्रभा वाले, मस्तक को सुखकारी निरुपद्रव, छाया के सम्बन्ध वाले, वैडूर्यरत्न के निर्मलदण्डों पर ताने हुए, वज्रमय मध्यभाग पर चतुर शिल्पियों से जोडे हुए और एक हजार आठ उत्तम सोने की शलाकाओं से जो निर्मित हैं, खूब साफ चांदी के पतरे से अच्छी तरह छाये हुए; कुशल शिल्पियों से साफ किये हुए और चाक चिक्ययुक्त मणिरत्न की किरणों से सूर्यमण्डल की निस्तिमिर बाहर पडती हुई किरणों की तरह किरण समूह को फैलाने वाले ( धारे जाते हुए ) ऐसे छत्रों से शोभायमान' ॥

पच्छिम सरीर संजाताहिं-) रोग-रहित चमरी गौ की पूंछ के पिछले भाग में (अम-इल-सिय-कमल-विमुकुलुज्जलित-रयत-गिरि-सिहर-विमल-ससि-किरण-सरिस-कलहोय निम्मलाहिं) निर्मल और खिला हुआ श्वेत कमल तथा उज्ज्वल किये हुए चांदी के पर्वत का शिखर एवं निर्मल चन्द्र की किरणों के समान तथा स्वच्छ चांदी जैसे निर्मल (पवणाहय-चवल-चलिय-सललिय-पणच्चिय-वीइ-पसरिय-खीरोदग-वरसागरुप्पूर चंचलाहिं) वायु से ताडित होकर जैसे चपल हो वैसे चलता हुआ, लीला के साथ प्रवृत्त तरङ्गों से फैले हुए उत्तम क्षीरोदधि-क्षीर समुद्र-के उत्पूर की तरह चञ्चल, (माणस-सर-पसर-परिचियावास-विसदवेसाहिं) मानस-सरोवर के विस्तार में परिचित आवास और सफेद वेष वाली-(कणग-गिरि-सिहर-संसिताहिं) सुवर्ण गिरि के शिखर पर आश्रय रखने वाली (उवाउप्पात-चवल जयिण-सिग्घ-वेगाहिं हंस वधूयाहिं चेव कलिया) नीचे जाने व ऊपर उठने में चपल वस्तुओं को जीतने योग्य शीघ्र वेगवाली जैसे हंस वधु-हंसनिओं की तरह जो (णाणामणि-कणग-महरिह-तवणिज्जुज्जल-विचित्त दंडाहिं सललियाहिं) अनेक प्रकार की मणियाँ और सुवर्ण तथा बहु मूल्य तपनीय-लाल सोने के उज्ज्वल व विचित्र दंड वाले लालित्य-युक्त (नरवति-सिरि समुदय-प्पगासणकरीहिं) राज लक्ष्मी के समुदाय को प्रकट करने वाली (वरपट्टणुग्गयाहिं समिद्धरायकुल सेवियाहिं) श्रेष्ठ बाजार में निर्मित तथा समृद्ध राजकुलों से सेवित, (कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूववस-वास-विसद-गंधुद्धूयाभिरामाहिं) काला, अगुरु, प्रधान कुंदुरुक्क-चीडा, तुरुक्क-सोल्हक, इनके धूप के कारण प्रकट, एवं स्पष्ट गन्ध की वासना से रमणीय (चिल्लिकाहिं उभओ पासंपि चामराहिं उक्खिप्पमाणाहिं) दीपते हुए तथा दोनों बाजू उछाले जाते हुए चामरों से विराजमान (सुह-सीतल-वातवीतियंगा) सुखकारी चामरों की शीतल हवा से वीजित शरीर वाले (अजिता अजितरहा) किसी से नहीं जीते गए-तथा अजित रथ वाले (हल मुसल-कणग पाणी) हल मूशल और बाण को हाथ में लिये हुए-बलदेव (संख-चक्क-गय-सत्ति-णंदगधरा) शङ्ख, चक्र-सुदर्शन चक्र और कौमुदी नामक गदा व शक्ति-त्रिशूल तथा नन्दक नाम के खड्ग को धारण करने वाले कृष्ण हैं (पवरुज्जल-सुकत विमल-कोथूभ-तिरीडधारी) उत्तम श्वेत तथा सुरचित-निर्मल कौस्तुभमणि और किरीट-मुकुट को धारण करने वाले (कुंडल-उज्जोवियाणणा) कुण्डल से उद्योतित मुख वाले (पुंडरीयणयणा) पुंडरीक-कमल-के समान नेत्र वाले (एगावली-कंट-रत्तियवच्छा) कण्ठ में पहनी हुई एकावली-सुवर्ण

माला से आह्लादक वक्षस्थल वाले ( सिरिवच्छ सुलंछणा, वरजसा ) श्रीवत्स के उत्तम लक्षण वाले व श्रेष्ठ कीर्ति वाले ( सव्वोउय सुरभि कुसुम–रइय–पलंब–सोहंत-वियसंत–चित्तवणमालरतिय—वच्छा) षड् ऋतुओं के सुगन्धित फूलों से गूंथी हुई, खूब लम्बी शोभायमान और विकाश युक्त, चित्र विचित्र वनमाला से प्रीतिप्रद वक्षस्थल वाले (अट्ठसय विभत्त—लक्खण—पसत्थ—सुंदर–विराइयंगमंगा ) स्वस्तिक आदि विभाग युक्त एक सौ आठ उत्तम लक्षणों से सुन्दर और विशेष शोभा युक्त अङ्गों-पाङ्ग वाले ( मत्त-गय वरिंद्—ललिय–विक्कम—विलसिय गई ) मदोन्मत्त गजेन्द्र के समान धीर-गम्भीर गतिवाले ( कडि-सुत्तग-नील-पीत-कोसिज्जवाससा ) कटि सूत्र, प्रधान नीले और पीले कौशेयक वस्त्र वाले ( पवर दित्ततेया ) बहुत दीप्ति युक्त तेज वाले ( सारय-णव-थणिय-महुर-गंभीर-निद्ध घोसा ) शरत् काल के नव जलधर के समान गम्भीर व स्निग्ध ध्वनि वाले ( नरसीहा सीह विक्कमगई ) मनुष्यों में सिंह, सिंह के समान पराक्रम और गमन वाले ( सोमा, बारवइ पुन्न चंदा ) सौम्य आकृति वाले, द्वारिका नगरी के पूर्णचन्द्र ( पुव्वकय-तवप्पभावा; निविट्ठ संचिय सुहा ) पूर्व-कृत तपस्या के प्रभाव से प्राप्त और संचित सुख वाले ( अणेगवाससयमायुवंतो ) अनेक सैकड़ों वर्षों की आयु वाले ऐसे 'बलदेव और वासुदेव रूप' ( अत्थमिया पवर-राय सीहा ) प्रधान राजसिंह, अस्त होगये ( भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं ) और देश की प्रधान स्त्रियों से ( लालियंता ) विलास करते हुए ( अतुलसद्द–फरिस–रस–रूव—गंधे अणुभवेत्ता ) अनुपम शब्द, स्पर्श, रस, और गन्धों का अनुभव करके ( कामाणं अवितत्ता ) काम भोगों में तृप्ति रहित ( तेवि मरण धम्मं उवणमंति ) वे बलदेव एवं वासुदेव भी मरण धर्म—मृत्यु—को प्राप्त कर जाते हैं। ४।१५॥

## अब मांडलिक राजा व युगलिकों का वर्णन करते हैं—

**मूल—"भुज्जो मंडलिय नरवरेंदा, सबला, सअंतेउरा सपरिसा, सपुरोहियाऽमच्चदंड नायक—सेणावति-मंत-नीति कुसला, नाणा-मणिरयण-विपुल-धण—धन्न—संचय निही, समिद्ध कोसा, रज्ज-सिरिं विपुल मणुभवित्ता विक्कोसंता; बलेण मत्ता, तेवि उवणमंति मरण धम्मं अवितत्ता कामाणं । भुज्जो उत्तर कुरु देवकुरु—वण-विवर—पाय चारिणो, नरगणा, भोगुत्तमा, भोग लक्खणधरा, भोग सस्सिरीया, पसत्थ-सोम-पडिपुण्ण रूव-दरिसणिज्जा, सुजात-**

सव्वंग-सुंदरंगा, रत्तुप्पल-पत्त-कंत-कर-चरण-कोमलतला, सुपइ-ट्ठिय-कुम्म-चारु-चलणा, अणुपुव्व-सुसंहय-ंगुलीया, उन्नय-तणु-तंब-निद्धनखा, संठिय सुसिलिट्ठ गूढ गोंफा, एणी-कुरुविंद-वत्त-वट्टाणु पुव्वि जंघा, समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू, [1]वर वारण-मत्त-तुल्ल-विक्कम विलासितगतो, वर तुरग-सुजाय गुज्झ देसा, आइन्न हयव्व-निरुवलेवा, पमुइय-वर तुरग-सीह-अतिरेग वट्टिय कडी, गंगावत्त-दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-बोहिय-विकोसा-यंत-पम्ह गंभीर-विगडनाभी, साहत-सोणंद-मुसल-दप्पण निगरिय-वर कणग-च्छरु सरिस-वर वइर-वलियमज्झा, उज्जुग-सम साहिय जच्च-तणु कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल-मउय रोमराई, झस-विहग-सुजात-पीणकुच्छी, झसोदरा, पम्ह-विगड नाभा, संनतपासा, संगयपासा, सुंदर पासा, सुजात-पासा, मित्त माइय-पीण-रइयपासा, अकरंडुय-कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय देहधारी, कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवइय विच्छिन्न-पिहुल वच्छा, जुयसंनिभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित-घण-थिर-सुबद्ध संधी, पुरवर-वरफलिह-वट्टियभुया, भुय-ईसर-विपुल भोग-आयाण-फलि उच्छूढ दीह बाहू, रत्ततलो-वतिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्द जालपाणी, पीवर-सुजाय-कोमल वरंगुली, तंब-तलिण-सुइ-रुइल-निद्ध नखा, निद्ध-पाणिलेहा,-चंद-पाणिलेहा, सूर-पाणिलेहा, संख-पाणिलेहा, दिसा सोवत्थिय-पाणिलेहा, रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसा सोव-त्थिय विभत्त-सुविरइय-पाणिलेहा, वर महिस-वराह-सीह-[2]सद्दूल-सीह-नाग-वर-पडिपुन्न-विउल खंधा, चउरंगुल सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसग्गीवा, अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्त मंसू, उवचिय-मंसल-पस-त्थ-सद्दूल-विपुल हणुया, ओयविय सिलप्प वाल-बिंबफल-

१क-गय-गमण सुजाय सन्निभोक्क वर-२ क-सद्दूल रिसह

संनिभा-धरोट्ठा, पंडुर-ससि-सकल-विमल संख-गोखीर फेण-कुंद-दगरय-मुणालिया-धवल दंतसेढी, अखंड दंता, अप्फुडियदंता, अविरलदंता, सुणिद्धदंता, सुजायदंता, एगदंत सेढिव्व अणेगदंता, हुयवह-निद्धंत-धोय तत्तत वणिज्ज-रत्ततला-तालुजीहा, गरुलायत उज्जुतुंग नासा, अवदालिय-पोंडरीय-नयणा, कोकासिय धवल-पत्तलच्छा, आणामिय-चाव-रुइल-किण्हब्भराजि-संठिय-संगयाययसुजाय भुमगा, अल्लीण-पमाण-जुत्त सवणा, सुसवणा, पीण-मंसल-कवोल देसभागा, अचिरुग्गय-बालचंद-संठिय-महानिडाला, उडुवतिरिव-पडिपुन्न-सोमवयणा,—छत्तागारुत्तमंगदेसा, घणनिचिय-सुबद्ध-लक्खणुन्नय-कूडागार-निभ-पिंडियग्गसिरा, हुयवह-निद्धंत-धोय तत्तत-वणिज्ज-रत्तकेसंत केसभूमी, सामली-पोंड-घणनिचिय-छोडिय मिउ विसत-पसत्थ-सुहुम-लक्खण सुगंधि सुंदर-भुयमोयग भिंग-नील-कज्जल-पहट्ठ-भमरगण-निद्ध निगुरुंब-निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त-मुद्ध सिरया, सुजात सुविभत्त संगयंगा, लक्खण वंजण गुणोववेया, पसत्थ-बत्तीस लक्खण धरा, हंसस्सरा, कुंचस्सरा, दुंदुभिस्सरा, सीह-स्सरा, ( [2]ओघ ) सरा, मेघसरा, सुस्सरा, सुस्सर, निग्घोसा; वज्जरिसह, नाराय, संघयणा, सम चउरंस, संठाण, संठिया, छाया उज्जोवियंगमंगा, पसत्थच्छवी, निरातंका, कंकग्गहणी, कवोत परिणामा, सगुणि पोस पिट्ठंत रोरुपरिणया, पउमुप्पल सरिस गंधुस्सास सुरभिवयण, अणुलोम वाउवेगा, अवदाय-निद्धकाला, विग्गहिय-उन्नय कुच्छी अमयरस-फलाहारा, तिगाऊयस मूसिया तिपलिओवमट्ठितिका, तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता ते वि उवणमंति मरण धम्मं, अवितत्ता कामाणं। पमया वि य तेसिं होंति सोम्मा सुजाय सव्वंग सुंदरीओ, पहाण महिला गुणेहिं जुत्ता, अतिकंत-विसप्पमाण-मउय-

१क—विकोसिय धवल २-क-उज्जसरा, आ० स०

सुकुमाल-कुम्म संठिय-सिलिट्ठ चरणा, उज्जु-मउय-पीवर सुसा-हतंगुलीओ, अब्भुन्नत—रतित-तलिण-तंब-सुइनिद्धनखा, रोम रहिय वट्ट-संठिअ-अजहन्न पसत्थ-लक्खण-अकोप्प-जंघजुयला, सुणिम्मित—सुनिगूढ जाणु, मंसल-पसत्थ—सुबद्ध-संधी, कयली—खंभातिरेक-संठिय—निव्वण-सुकुमाल-मउय-कोमल अविरल-सम सहित-सुजायवट्ट-पीवर-निरंतरोरू, अट्ठावय-वीइ-पट्ट-संठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिहुलसोणी, वयणायामप्पमाण-दुगुणिय-विसाल-मंसल-सुबद्ध-जहण-वर धारिणीओ, वज्जवि-राइय-पसत्थ-लक्खण निरोदरीओ, तिवलि-वलिय-तणु-नमिय-मज्झियाओ, उज्जुय-समसहिय-जच्चतणु-कसिण-निद्ध-आदेज्ज-लडह—सुकुमाल-मउय-सुविभत्त—रोमरातीओ, गंगा वत्तग-पदाहिणावत्त-तरंगभंग-रविकिरण-तरुण-बोधित-आकासायंत-पासा, सुजातपासा, संगतपासा, मियमाइय-पीण-रतितपासा, अकरंडुय—कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय—गायलट्ठी, कंचणकलस-पमाण-समसहिय-लट्ठ चूचुय-आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-पओहराओ, भुयंग-अणुपुव्व-तणुय-गोपुच्छ-वट्ट-समस-हिय-नमिय-आदेज्ज-लडहवाहा, तंबनहा, मंसलग्गहत्था, कोमल पीवर वरंगुलीया, निद्ध पाणिलेहा, ससि-सूर-संख-चक्क-वरसो-त्थिय-विभत्त—सुविरइय-पाणिलेहा, पीणुण्णय-कक्ख-वत्थिप्प-देस-पडिपुन्न-गलकवोला, चउरंगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा, मंसलसंठिय—पसत्थ-हणुया, दालिम—पुप्फ-प्पगास-पीवर-पलंब-कुंचित वराधरा, सुंदरोत्तरोट्ठा, दधि-दग-रय-कुंद-चंद-वासंति-मउल-अच्छिद्द—विमलदसणा, रत्तुप्पल-पउमपत्त-सुकु-माल-तालुजीहा, कणवीर-मउलऽकुडिलऽब्भुन्नय-उज्जु-तुंग-नासा, सारद-नवकमल-कुमुत-कुवलयदल-निगर-सरिस-लक्खण-पसत्थ-अजिम्हकंत नयणा, आनामिय-चाव-रुइल—किण्हब्भराइ-संगय-सुजाय-तणु-कसिण-निद्ध भुमगा, अल्लीण-पमाण जुत्त-सवणा,

सुस्सवणा, पीणमट्ठ गंडलेहा, चउरंगुल-विसाल-सम निडाला, कोमुदि-रयणिकर-विमल-पडिपुन्न-सोमवयणा, छत्तुन्नय-उत्तमंगा, अकविल-सुसिणिद्ध-दीहसिरया, छत्तज्झय-जूव-थूभ-दामिणि-कमंडलु-कलस-वावि-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-मकर-ज्झय-अंक-थाल-अंकुस-अट्ठावय-सुपइट्ठ-अमर-सिरिया-भिसेय-तोरण-मेइणि-उदधिवर-पवरभवण-गिरिवर-वरायंस-सललिय-गय-उसभ-सीह-चामर-पसत्थ-वत्तीस लक्खण-धरीओ, हंस [1]सरित्थ गतीओ, कोइल-महुर-गिराओ, कंता, सव्वस्स अणुमयाओ, ववगय-वलि-पलित-वंग-दुव्वन्न-वाधि-दोहग्ग-सोयमुक्काओ, उच्चतेण य नराण थोवूण मूसियाओ, सिंगारागार-चारुवेसाओ, सुंदर-थण-जहण-वयण-कर-चरण-णयणा, लावण्णरूव-जोव्वण-गुणोववेया, नंदणवण-विवर-चारिणीओव्व अच्छराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छराओ, अच्छेरग पेच्छणिज्जियाओ, तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता, ताओऽवि उवणमंति मरणधम्मं, अवितित्ता कामाणं ॥ सू० ५ । १५ ॥

छाया—"भूयो माण्डलिक-नरवरेन्द्राः, सबलाः, सान्तःपुराः, सपरिषदः,-सपुरोहिताऽमात्य-दण्डनायक-सेनापति-मन्त्र-नीति कुशलाः, नानामणि-रत्न-विपुल-धन-धान्य-सञ्चय-निधि-समृद्ध-कोशाः, राज्यश्रियं विपुल मनुभूय व्युत्-क्रोशन्तो बलेन-मत्तास्तेऽप्युपनमन्ति मरण धर्ममवितृप्ताः कामेषु । भूय-उत्तरकुरु-देवकुरु-वन-विवर-पाद चारिणो, नरगणाः, भोगोत्तमाः, भोग लक्षणधराः, भोगसश्रीकाः, प्रशस्तसौम्य परिपूर्ण—रूपदर्शनीयाः, सुजात—सर्वाङ्ग—सुन्दराङ्गा, रक्तोत्पलपत्र-कान्तकर-चरण-कोमल तलाः; सुप्रतिष्ठित—कूर्म-चारू-चलना, आनुपूर्व्य-सुसहताऽङ्गुलीकाः उन्नत-तनु-ताम्र—स्निग्धनखाः,-संस्थित-सुश्लिष्ट-गूढ-गुल्फाः, एणी-कुरुविन्द-वृत्त-वर्तानुपूर्विजंघाः, समुद्गक-निसर्ग गूढजानवो, वरवारण-मत्त-तुल्य-विक्रम-विलासित-गतयः, वरतुरग-सुजात गुह्यदेशा, आकीर्ण हयाइव-निरुपलेपाः,-प्रमुदित-वरतुरग-सिंहाऽतिरेक वर्तित-कटयो, गङ्गावर्त-दक्षिणाऽऽवर्त-तरङ्ग—भङ्गुर-रविकिरण बोधित—विकोशायमान पद्म गम्भीर-विकटनाभयः, संहित-सोणंद-( त्रिपादपीठिका ) मुशल-दर्प निगडित-वकनक-

१-क—सरिच्छ गतीओ

१सरु-सदृश-वरवज्र-वलित-मध्याः, ऋजुक-सम-सहित-जात्यतनुक-कृष्ण-स्निग्धादेय-लडह ( मनोज्ञ )-सुकुमार मृदुल-रोमराजयः, झष-विहग-सुजात-पीन कुक्षयः, झषोदराः,पद्म विकट-नाभयः; सन्नतपार्श्वाः, सङ्गत पार्श्वाः, सुन्दरपार्श्वाः, सुजातपार्श्वाः, मितमात्रिक-पीन-रत्तिदपार्श्वाः, अनस्थि [ अकरंडुक ] कनक -रुचक- निर्मल- सुजात निरुपहत-देह-धारिणः, कनकशिलातल- प्रशस्त-समतलोपचित- विच्छिन्न- पृथुल-विपुलवक्षसः, युग-सन्निभ-पीन-रतिद-पीवर-प्रकोष्ठ- संस्थित-सुश्लिष्ट-लष्ट-सुनिचित-घन-स्थिर सुबद्धसन्धयः, पुरवर वरपरिघ—वर्तितभुजाः,-भुजगेश्वर-विपुल भोगाऽऽदान-फलिकोच्छूढ-दीर्घ-बाहवः, रक्ततलोप चयिक- मृदुक-मांसल-सुजात—लक्षण-प्रशस्ताऽच्छिद्र—जाल-पाणयः, पीवर—सुजात-कोमल-वराङ्गुलयः, ताम्र-तलिन शुचि-रुचिर—स्निग्ध-नखाः, स्निग्ध-पाणिरेखाश्चन्द्र- पाणिरेखा, सूर्य—पाणिरेखाः, शङ्खपाणिरेखाश्चक्र—पाणिरेखा, दिक्स्वस्तिक—पाणिरेखा,-रवि-शशि—शङ्ख —वर चक्र —दिक् स्वस्तिक-विभक्त सुविरचित—पाणिरेखा, वरमहिष—वराह—सिंह—शार्दूल सिंह—नागवर-परिपूर्ण—विपुलस्कन्धाश्चतुरङ्गुल—सुप्रमाण - कम्बुवर - सदृशग्रीवा,-अवस्थित -सुवि-भक्त—चित्र [ शोभाद् भुत कूर्चकेशाः ] मश्रवः, उपचित-मांसल—प्रशस्त—शार्दूल-विपुलहनुकाः, परिकर्मित —शिल प्रवाल-बिम्बफल संनिभाऽधरोष्ठाः पाण्डुर—शशि-सकल--विमल शङ्ख -गोक्षीर--फेन-कुन्द--दकरजो- मृणालिका—धवल दन्त श्रेणयः, अखण्ड दन्ता, अस्फुटित दन्ता अविरल दन्ताः, स्निग्ध दन्ताः, सुजात दन्ता, एकदन्त श्रेणिरिव; अनेक दन्ताः, हुतवहनिर्ध्मात धौत-तप्त तपनीयरक्ततलास्तालुजिह्वा, गरुडा-यत-ऋजुतुङ्गनासिका अवदारित—पुण्डरीक नयनाः, विकसित-[ कोकासित ] धवल-पत्रल-पक्ष्माणः, [ पत्रलाक्षाः ] आनामित-चाप-रुचिर--कृष्णाभ्र--राजि-संस्थित-सङ्गता-यत-सुजातभ्रुवः, आलीन-प्रमाणयुक्त श्रवणाः,सुश्रवणाः,पीन-मांसल-कपोल देशभागाः, अचिरोद्गत बाल चन्द्र-संस्थित महाललाटाः, उडुपतिरिव परिपूर्ण सौम्यवदनाश्छत्रा-कारोत्तमाङ्गदेशाः,घननिचित सुबद्ध-लक्षणोन्नत कूटाकार- निभ-पिण्डिताग्रशिरस्काः,हुत वह-निर्ध्मात-धौत-तप्त तपनीयरक्त-केशान्त केशभूमयः,शाल्मली वृन्त फल-घन-निचित-च्छोटित-मृदुविशदप्रशस्त-सूक्ष्म-लक्षण-सुगन्धि सुन्दर -भुजमोचक भृङ्ग—नील—कज्जल-प्रहृष्ट भ्रमरगण-स्निग्ध-निकुरम्ब- निचित-कुञ्चित-प्रदक्षिणावर्त मूर्द्धशिरोजाः, सुजात-सुवि-भक्त-सङ्गताङ्गाः, लक्षण-व्यञ्जन- गुणोपपेताः, प्रशस्त-द्वात्रिंशल्लक्षणधराः, हंसस्वराः,क्रौ-ञ्चस्वराः, दुन्दुभिस्वराः, सिंहस्वराः, [ ओघ ] स्वराः, मेघस्वराः, सुस्वराः, सुस्वरनिर्घो-षाः, वज्रर्षभ-नाराच-संहननाः, समचतुरस्र-संस्थान-संस्थिताः, छायोद्योतिताङ्गोपाङ्गाः,

प्रशस्तच्छवयो, निरातङ्काः, कङ्कग्रहणोकाः, कपोत-परिणामाः, शकुनि-पोष-पृष्ठान्तरोरु-परिणताः, पद्मोत्पल-सदृश-गन्धोच्छ्वास-सुरभिवदनाः, अनुलोम-वायुवेगाः, अव-दात-स्निग्ध-कालाः, (कृष्णाः) वैग्रहिकोन्नत कुक्षयोऽमृतरस फलाहाराः त्रि गव्यूत्ति समुच्छ्रूताः, त्रिपल्योपमस्थितिकाः, त्राणि च पल्योपमानि परमायूंषि पालयित्वा तेऽप्युपनमन्ति मरणधर्ममवितृप्ताः कामेषु।

प्रमदा अपि च तेषां भवन्ति सौम्याः, सुजात—सर्वाङ्ग—सुन्दर्यः, प्रधान—महिला गुणैर्युक्ता—अतिकान्त---विसर्पन्मृदुल—सुकुमार—कूर्म-संस्थित-श्लिष्ट चरणाः, ऋजु-मृदुल—पीवर—सुसंहताऽङ्गुलीका, अभ्युन्नत---रतिद तलिन—ताम्र—सुस्निग्धनखा, रोमरहित—वृत्त संस्थित—प्रशस्त लक्षणाऽजघन्याऽकोप्य जङ्घा युगलाः, सुनिर्मित-सुनिगूढ—जानु मांसल—प्रशस्त—सुबद्ध सन्धयः, कदली—स्तम्भातिरेक—संस्थित-निर्व्रिणा—सुकुमार—मृदुल—कोमलाऽविरल—सम संहित—सुजात-वृत्त-पीवर-निरन्तरोरवः, अष्टापद—वीचि—पृष्ठ-संस्थित—प्रशस्त—विच्छिन्न पृथुल-श्रोणयः, वदनायाम—प्रमाण—द्विगुणित—विशाल—मांसल-सुबद्ध-जघनवर धारिण्यः, वज्र-विराजित—प्रशस्तलक्षण—निरुदर्यः, त्रिवली—वलित—तनु—नतमध्याः, ऋजुक-सम—संहित—जात्यतनु—कृष्ण—स्निग्धाऽऽदेय—लडह (ललित) सुकुमार मृदुल-सुविभक्त रोम राजयो, गंगावर्तक-प्रदक्षिणा वर्तक-तरङ्ग भङ्ग—रवि—किरण तरुणबोधित-विकसित—पद्म गम्भीर—विकटनाभयः, अनुद्भट—प्रशस्त—सुजात—पीनकुक्षयः, सन्नत पार्श्वाः, सुजात-पार्श्वाः सङ्गतपार्श्वा—मित-मृदुल-मात्रिक—पीन-रतिद पार्श्वाः, अकरंडुक—कनक—रुचक-निर्मल—सुजात निरुपहत—गात्रयष्टयः, काञ्चन-कलस-प्रमाण-सम संहित-लष्ट-चूचुकाऽमेलक यमल युगल-वर्तित-पयोधरा, भुजङ्गाऽनुपूर्व तनुक-गोपुच्छ-वृत्त-सम संहित-नमिताऽऽदेय-ललित बाहवः, ताम्रनखाः, मांसलाऽग्रहस्ताः, कोमल-पीवर-वराङ्गुलीकाः. स्निग्ध पाणिलेखाः, शशि—सूर्य—शङ्ख चक्र वर स्वस्तिक विभक्त—सुविरचित-पाणिलेखाः, पीनोन्नत-कक्ष-वस्ति-प्रदेश-परिपूर्ण-गल-कपोलाः, चतुरङ्गुल—सुप्रमाण-कम्बुवर-सदृश ग्रीवाः, मांसल-संस्थित--पशस्त--हनुकाः, दाडिम-पुष्प प्रकाश-पीवर-प्रलम्ब कुञ्चित वराऽधराः, सुन्दरोत्तरोष्ठाः, दधि-दक-रजः-कुन्द-चन्द्र--वासन्ती-मकुला-च्छिद्र-विमलदशनाः, रक्तोत्पल पद्मपत्र- सुकुमार-तालु जिह्वाः, करवीर-मुकुल-कुटिलाऽभ्युन्नत-ऋजुतुङ्ग नासिकाः शारद-नव-कमल-कुमुद-कुवलय-दल-निकर-सदृश-लक्षण-प्रशस्ताऽजिह्मकान्त नयना, आनामित-चाप-रुचिर-कृष्णा-भ्राजि-सङ्गत-सुजात-तनु-कृष्ण-स्निग्धभ्रुव,ः आलीन-प्रमाणयुक्त-श्रवणाः, सुश्रवणाः,

पोनमृष्ट-गण्डलेखाः, चतुरङ्गुल-विशाल-सम-ललाटाः, कौमुदी-रजनीकर-विमल-प्रतिपूर्ण-सौम्यवदनाः, छत्रोन्नतोत्तमाङ्गाः, अकपिल-सुस्निग्ध-दीर्घ शिरोजाः, छत्र-ध्वज-यूप-स्तूप-दामिनी-कमण्डलु-कलस-वापी-स्वस्तिक-पताका-यव-मत्स्य-कूर्म-रथवर-मकर-ध्वजाङ्क-स्थालाऽङ्कुशाऽष्टापद—सुप्रतिष्ठकाऽमर-श्रीकाऽभिषेक-तोरण-मेदिन्युदधिवर-प्रवर भवन-गिरिवर-वरादर्श-सललितगज-ऋषभ-सिंह-चामर-प्रशस्त द्वात्रिंशल्लक्षण धारिण्यो, हंससदृशगतयः कोकिल—मधुरगिरश्च, कान्ताः सर्वेषाम्, अनुमता, व्यपगत, वलीपलित—व्यङ्ग दुर्वर्ण—व्याधि दौर्भाग्य शोक मुक्ता, उच्चत्वेन नराणां स्तोकोन मुच्छ्रिताः, शृङ्गाराऽगारचारुवेषाः सुन्दर स्तन-जघन—वदन—कर-चरण नयनाः, लावण्य-रूप-यौवन-गुणोपपेताः, नन्दन वन—विवर चारिण्य इवाऽप्सरसः, उत्तरकुरु मानुष्याप्सरसः, आश्चर्य प्रेक्षणीयाः, त्रीणि पल्योपमानि परमायूंषि पालयित्वा ता अपि उपनमन्ति मरणधर्मं अवितृप्ताः कामेषु !! । सू० ५ । १५ ॥

अन्व०—( भुज्जो मंडलिय नर वरिंदा ) फिर मण्डलाधिपति राजा जो ( सबला सअंतेउरा सपरिसा ) सैन्य वाले अन्तः पुर तथा परिषद्—उत्तम सभा वाले ( सपुरोहिया ) पुरोहित सहित याने जिनके पास—शान्ति कर्म कराने वाले हैं, तथा—(अमच्च-दंडनायक-सेणावती-मंत नीति—कुसला ) अमात्य-प्रधान, दण्डनायक-कटक का नायक और सेनापति इन सब से युक्त, और जो गुप्त विचार एवं नीति में कुशल हैं ( नाणामणि रयण-विपुल-धण-धन्न-संचय-निही समिद्ध कोसा ) अनेक प्रकार के मणि रत्न तथा विस्तीर्ण धन धान्य के सञ्चय और निधियों से परिपूर्ण खजाने वाले वे ( रज्जसिरिं विपुलमणुभवित्ता ) विस्तार युक्त राज्य लक्ष्मी को भोगकर ( विक्कोसंता ) दूसरों को बुरा कहते हुए या कोप रहित हुए (बलेण मत्ता) अपने बल से मदोन्मत्त ( तेवि ) वे माण्डलिक नरेन्द्र भी ( कामाणं अवितत्ता ) काम भोगों के विषय में अतृप्त बने हुए ( मरण धम्म उवणमंति ) मरण धर्म को प्राप्त करते हैं। ( भुज्जो उत्तर कुरु-देवकुरु-वण-विवर—पाद—चारिणो नरगणा ) ऐसे ही फिर उत्तर कुरु-और देवकुरु—नामक क्षेत्र के वन प्रदेशों में पैदल फिरने वाले मनुष्य जो—युगलिक कहाते हैं। ( भोगुत्तमा भोग लक्खणधरा भोग सस्सिरीया ) भोगों से उत्तम भोग सूचक उत्तम लक्षणों का धारण करने वाले उत्तम भोगों से शोभायुक्त ( पसत्थ-सोम-पडिपुन्न-रूव-दरिसणिज्जा ) प्रशस्त, सौम्य और प्रतिपूर्ण रूप के कारण देखने योग्य हैं ( सुजात-सव्वंग-सुदरंगा ) सुजात सभी अंगों से सुन्दर शरीर वाले ( रत्तुप्पल-पत्तकत-कर-चरण—कोमलतला ) रक्त—लाल कमल पत्र की तरह-कान्त और कोमल

हाथ पैर के तल वाले (सुपइट्ठिय-कुम्म-चारु चलणा) अच्छी तरह बैठे हुए कच्छप के जैसे सुन्दर चरण वाले ऐसे (अणुपुव्व—सुसंहयंगुलीया) क्रम से बढती हुई व घटती हुई परस्पर मिली हुई अङ्गुली वाले (उन्नय-तणुतंब—निद्धनखा) ऊंचे, पतले और ताम्बे की तरह कुछ लाल वर्ण के चिकने नख वाले (संठित—सुसिलिट्ठ-गूढ—गोंफा) योग्य आकार वाले अच्छी तरह जुडे हुए और मांस से ढके हुए गुल्फ हैं जिनके (एणी—कुरु विंदावत्त-वट्टाणुपुव्वि-जंघा) हरिणी और कुरु विन्द नामक तृण के समान क्रम से गोल जंघा वाले (समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू) डब्बे की सन्धि के समान निसर्ग गूढ—मांस के कारण स्वभाव से छिपे जानु—घुटने हैं जिनके 'ऐसे' (वर-वारण-मत्त—तुल्ल-विक्कम-विलासितगति) मस्त गजेन्द्र के समान पराक्रम और विलास युक्त गति वाले (वरतुरग-सुजाय-गुज्झदेसा) उत्तम घोडे के समान सुजात गुह्य प्रदेश—मल द्वार—वाले (आइन्न-हयव्व—निरुवलेवा) जाति सम्पन्न घोडे की तरह जिन के मल द्वार के लेप से रहित होते हैं (पमुइय वर तुरग—सीह अतिरेग-वट्टियकडी) प्रमोद युक्त उत्तम घोडे व सिंह की कमर के समान अधिक गोल कटिभाग वाले (गंगावत्त दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रवि-किरण-बोहिय-विकोसायंत-पम्हगंभीर-विगडनाभी) गंगा के आवर्त की तरह दक्षिण की ओर घूमती हुई तरङ्ग युक्त, सूर्य की किरण से खिले हुए विकास शील कमल के समान, गम्भीर और विकट नाभिवाले (साहत-सोणंद-मुसल-दप्पण-निगरिय-वर—कणग-च्छरु-सरिस-वर वइर—वलियमज्झा) समेटी हुई त्रिपादिका, मुशल, दर्पण—दण्ड युक्त कांच और शुद्ध किये हुए उत्तम सुवर्ण के खड्ग की मूठ तथा उत्तम वज्र की तरह दुबला है मध्य भाग जिनका (उज्जुग—सम सहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल मउय—रोमराई) सरल-समान रूप से मिले हुए, स्वाभाविक पतले, काले, चिकने या मनोहर, सौभाग्य युक्त, सुन्दर एवं अतिशय कोमल और रमणीय रोम राजि वाले (झस-विहग-सुजात-पीण-कुच्छी झसोदरा) मत्स्य और पक्षी के समान उत्तम रचना युक्त कुक्षि वाले, अतएव—झषोदरा-मत्स्य जैसे पेटवाले (पम्ह-विगड-नाभा) कलस की तरह विकट नाभि वाले, (संनतपासा, संगयपासा, सुंदरपासा, सुजात पासा, मित-माइय-पीण-रइयपासा) अच्छी तरह नमे हुए, मिले हुए सुन्दर और सुजात-उत्तम रचना युक्त, परिमित एवं मात्रा से युक्त, पीन-मांस से पुष्ट और रमणीय पार्श्व वाले (अकरंडुय-कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय-देहधारी) मांस से पुष्ट होने के कारण सुजाल रहित एवं सोने की जैसी कान्ति वाले निर्मल, सुजात

और रोग रहित देह को धारण करने वाले ( कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिन्न पिहुल-वच्छा ) सुवर्णमय शिलातल के समान प्रशस्त, समतल-सब जगह बराबर, मांसयुक्त और अत्यन्त विस्तीर्ण बड़े वक्षस्थल वाले ( जुयसंनिभ-पीण-रइय पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ- विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित- घणथिर-सुबद्ध संधी ) गाडी के जुए के समान पुष्ट, रमणीय और बड़े कलांची तथा विशिष्ट स्थान वाली, अच्छी तरह मिली हुई, विशिष्ट-मनोहर, अत्यन्तभरी हुई, बहुत प्रदेश के कारण सघन, स्थिर और सुबद्ध-नसों से अच्छी तरह बंधी हुई सांधें-हड्डी की जोड़ है जिनकी ( पुरवर-वरफलिह-वट्टिय भुया ) बड़े नगर की श्रेष्ठ परिघा-आगल-के समान गोल भुजा वाले ( भुयईसर-विपुल भोग आयाण-फलिउच्छूढ-दीहबाहू ) बड़े सर्प के विस्तीर्ण शरीर के समान रमणीय तथा अपने स्थान से निकाली हुई परिघा के जैसे दीर्घ लम्बी बाहु वाले (रत्ततलोव-तिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ अच्छिद्द जालपाणी ) लाल तल वाले, मांस से उपचित-भरे हुए या योग्य, मृदु-कोमल, मांसयुक्त, सुजात, प्रशस्त-शुभ-लक्षण वाले और मिली हुई अँगुलिओं के कारण छिद्र रहित हाथ वाले ( पीवर-सुजाय-कोमल-वरंगुली ) मांस से पुष्ट, सुन्दर और कोमल श्रेष्ठ अँगुली वाले ( तंब-तलिण-सुइ-रुइल-निद्धनखा ) ताम्र, पतले, पवित्र, कान्तियुक्त और चिकने नख वाले, ( निद्ध पाणि लेहा, चंदपाणि लेहा, सूरपाणिलेहा, संखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा,) चिकनी रेखा वाले, चन्द्र-सूर्य-शङ्ख और चक्र-की तरह हाथ की रेखा वाले ( दिसा सोवत्थियपाणिलेहा ) दिशा स्वस्तिक जैसी दक्षिणावर्त हस्त रेखा वाले ( रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसासोवत्थिय विभत्त सुविरइय पाणिलेहा ) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, श्रेष्ठचक्र और दिक्स्वस्तिक के विभागयुक्त अच्छी हस्तरेखा वाले ( वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-सिंह नागवर पडिपुन्न-विउलखंधा ) श्रेष्ठ भैंसा, अच्छा वराह-सूकर,-सिंह,-शार्दूलसिंह, या वृषभ और उत्तम हाथी के जैसे प्रतिपूर्ण और विस्तीर्ण खंधे वाले, ( चउरंगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा ) चार अँगुल प्रमाण प्रधान शङ्ख के समान शुभ ग्रीवा वाले ( अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्तमंसू ) अवस्थित-घट बढ रहित, खूब शुद्ध और विभागवाली शोभा से अद्भुत श्मश्रु-दाढ़ी वाले ( उवचिय-मंसल-पसत्थ-सद्दूल-विपुल हणुया ) मांस से पुष्ट-भरी हुई, प्रशस्त शार्दूलसिंह के समान हणु-चिबुक-दाढी वाले ( ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफलसंनिभाधरोट्ठा ) साफ किये हुए,-शिल

प्रवाल-मूंगे तथा बिंबफल के समान लाल नीचे के होठ वाले ( पंडुरससिसकल-विमल-संख-गोखीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणालिया-धवल दंत सेढी ) श्वेत चन्द्र खण्ड की तरह निर्मल शङ्ख, गोक्षीर-गौकादूध, फेन-पानी ऊपर के झाग, कुंद का फूल, पानी के कण, और मृणालिका-पद्मिनी के नालगत तन्तु के जैसे धवल-सफेद दांत की श्रेणि वाले ( अखंडदंता, अप्फुडियदंता, अविरलदंता, सुणिद्धदंता, सुजायदंता, एगदंतसेढिव्व अणेगदंता ) अखण्ड दांत वाले, बिना फूटे दांत वाले, मिले हुए दांत वाले, खूब चिकने-चमक युक्त दांत वाले, अच्छे बने हुए दांत वाले, अनेक दांत भी जिनके एक दांत की पंक्ति के जैसे हैं ( हुयवह-निद्धंत-धोय-तत्त तवणिज्ज-रत्ततला-तालुजीहा ) अग्नि से जलकर धुल गया है मल जिसका ऐसे तपनीय लाल सुवर्ण के समान लाल तल युक्त तालु और जीभ वाले, ( गरुलायत-उज्जु-तुंग नासा ) गरुड़ के समान लम्बी, सरल और ऊँची नासिका-नाक वाले, ( अवदालिय पोंडरीयनयणा ) खिले हुए कमल के समान नेत्र वाले ( कोकासिय-धवल-पत्तलच्छा ) विकसित धौले और पदम युक्त आंख वाले ( आणामिय-चाव-रुइल-किण्हब्भराजि-संठिय-संगयाययसुजायभूमगा ) थोड़े नमे हुए धनुष के समान सुन्दर, काले मेघ की रेखा के आकार वाले, योग्य, लम्बे तथा सुनिष्पन्नभ्रू हैं जिनके ( अल्लीण-पमाणजुत्तसवणा ) मर्यादा से लीन और प्रमाणयुक्त श्रवण-कान वाले ( सुसवणा ) अच्छे कान वाले ( पीण-मंसल-कवोल-देसभागा ) मोटे, मांस युक्त कपोल भाग-गाल वाले, ( अचिरुग्गय-बालचंद-संठिय-महानिडाला ) तत्काल उदय पाये हुए बाल चन्द्र के समान आकार के बड़े ललाट-भाल-वाले ( उडुवति-पडिपुन्न-सोमवयणा ) चन्द्र के समान प्रतिपूर्ण व सौम्य मुख वाले, ( छत्तागारुत्तमंगदेसा ) छत्र के समान आकार युक्त उत्तमाङ्ग-मस्तक के भाग वाले ( घण-निचिय-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-कूडागारनिभ-पिंडियग्गसिरा ) लोह मुद्गर के जैसे निविड-ठोस,-अच्छी तरह स्नायु से बंधा हुआ, लक्षण से ऊँचा और शिखर युक्त भवन के समान गोल पिण्ड सहित मस्तक के अग्रभाग वाले ( हुयवह-निद्धंत-धोततत्त-तवणिज्ज-रत्त केसंत-केसभूमी ) अग्नि में जलाकर धोये हुए और तपाये हुए तपनीय के समान लाल है केश का अन्त और मस्तक की त्वचा जिनकी ऐसे ( सामलि-पोंड-घण-निचित-छोड़िय-मिउविसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-सुगंधि-सुंदरभुयमोयग-भिंग-नीलकज्जल-पहट्ठ भमरगण-निद्ध निकुरंब-

निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त मुद्धसिरया ) शाल्मली वृक्ष के अत्यन्त निविड और छोटित-मिले हुए, फूल के समान कोमल, विशद-स्पष्ट, प्रशस्त-मङ्गल कारक, सूक्ष्म-चिकने ( पतले ) लक्षण सम्पन्न, सुगन्धि वाले सुन्दर और भुज मोचक रत्न व भृङ्ग भँवरा नील-रत्न, कज्जल और प्रसन्न भँवरों के समूह की तरह स्निग्ध-चिकने समूह रूप से मिले हुए, कुंचित-टेढ़े नमे हुए और प्रदक्षिणावर्त मस्तक के केशवाले ( सुजाय-सुविभत्त-संगयंगा, लक्खण वंजण गुणोववेया ) सुजात, सुविभक्त-अच्छी तरह विभागयुक्त और योग्य अङ्ग वाले लक्षण, व्यञ्जन-मशा- तिल आदि एवं अन्य गुणों से युक्त हैं ( पसत्थ बत्तीस लक्खण धरा ) उत्तम बत्तीस लक्षणों को धारण करने वाले ( हंसस्सरा, कुंचस्सरा दुंदुहिस्सरा, सीहस्सरा, ओघस्सरा, मेघस्सरा,सुस्सरा ) हंस के जैसे स्वर वाले, क्रौंच पक्षी के समान स्वर वाले, दुंदुभि के जैसे स्वर वाले, सिंह के समान स्वर वाले, अविच्छेद से अभंगस्वर वाले, मेघ जैसे गम्भीर स्वर वाले और सुस्वर-सुन्दर स्वर वाले ( सुस्सर निग्घोसा ) सुस्वर-ध्वनि वाले ( वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणा ) वज्र-ऋषभ नाराच-संहनन वाले ( समचउरंस-संठाण-संठिया ) समचतुरस्र संस्थान के आकार वाले ( छाया उज्जोवियंगमंगा ) कान्ति से प्रकाशयुक्त अङ्गोपाङ्ग वाले ( पसत्थच्छवी निरातंका ) प्रशस्त त्वचा वाले, व रोगरहित ( कंकग्गहणी, कवोत परिणामा ) कंकपक्षी के समान नीरोग गुदाशय वाले, कपोत के जैसे आहार की परिणति वाले याने प्रबल पाचन शक्ति वाले ( सगुणि-पोस-पिट्ठंतरोरु परिणया ) पक्षी की तरह मलोत्सर्ग में लेपरहित गुदा वाले, तथा पृष्ठ, पार्श्व और उरु-जंघा के योग्य परिणाम वाले ( पउमुप्पलसरिस-गंधुस्सास-सुरभिवयणा ) पद्म-कमल और उत्पल कमल के समान सुगन्धयुक्त श्वास से सुगन्धित मुखवाले ( अणुलोमवाउवेगा ) अनुकूल वायुवेग वाले ( अवदायनिद्धकाला ) गौरवर्ण के समान स्वच्छ स्निग्ध-चिकने श्यामरङ्ग वाले, (विग्गहिय उन्नय कुच्छी ) शरीर के अनुरुप ऊँचे कुक्षि-उदर वाले ( अमयरसफलाहारा ) अमृत के जैसे रसपूर्ण फलों का आहार करने वाले ( तिगाउय समूसिया ) तीन कोशकी उंचाई वाले ( तिपलिओवमट्ठितिका ) तीन पल्योपम की स्थिति वाले, ( तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता ) तीन पल्योपम की परमायु को पालकर ( ते वि ) वेयुगलिक मनुष्य भी ( अवितत्ता कामाणं ) काम भोगों में अतृप्त हुए ( मरण धम्मं उवणमंति ) मरणधर्म-मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।

( पमया वि य ते सिं ) और उनकी स्त्रियां भी ( सोम्मा ) सौम्य गुणवती ( सुजाय-सव्वंग सुंदरीओ ) उत्तम रीति से उत्पन्न हुए सर्वांगों से सुन्दर ( पहाण महिलागुणेहिंजुत्ता ) महिलाओं के प्रधान गुणों से युक्त ( होंति ) होती हैं, फिर ( अतिकंत-विसप्पमाण-मउय-सुकुमाल-कुम्म संठिय-सिलिट्ठ चलणा ) अत्यन्त मनोहर, चलते हुए भी बहुत कोमल, काछवे के आकार के सुन्दर पांववाली ( उज्जु मउय-पीवर-सुसंहतांगुलीओ ) सरल, कोमल, मांसयुक्त और अच्छी तरह अन्तर रहित-अंगुली वाली ( अब्भुन्नतरतिद-तलिण-तंब-सुइनद्धनखा ) ऊंचे, सुखदायी, पतले, ताम्रवर्ण के और स्वच्छ तथा चिकने नखवाली ( रोमरहिय-वट्ट-संठिय-अज एण-पसत्थ-लक्खण अकोप्पजंघजुयला ) रोमरहित, गोल संस्थान वाली, बहुत शुभ लक्षणों से युक्त और रमणीय जंघा युगल वाली ( सुणिम्मितसुनिगूढ जाणू मंसलपसत्थ सुबद्ध संधी ) अच्छी तरह बने हुए बहुत गूढ़-दृष्टि में नहीं आने योग्य जानु-घुटनों के मांसयुक्त प्रशस्त और नसों से अच्छी तरह बंधी हुई संधि-जोडवाली ( कयली खंभातिरेक संठिय-निव्वण-सुकुमाल-मउय-कोमल-अविरल समसहित-सुजाय-वट्ट-पीवर-निरंतरोरू ] कदली के स्तम्भ की उत्तम आकृति युक्त, व्रणरहित अत्यन्त कोमल, परस्पर नजदीक में रही हुई, सम-प्रमाणसे बराबर, लक्षणों से युक्त, सुनिष्पन्न, गोल, मांसयुक्त और परस्पर समान उरू साथलवाली ( अट्ठावय वीइ-पट्ठ-संठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिहुल सोणी) अष्टापद-जूआ खेलनेका एक प्रकार का पाशा-उसकी या तरङ्ग के आकार की रेखावाले पृष्ठ के समान संस्थान वाली शुभ और अत्यन्त विस्तीर्ण श्रोणि-कटि याने कमर है जिनकी 'ऐसी' ( वयणायामप्प माण-दुगुणिय-विसाल-मंसलसुबद्ध-जहणवर-धारिणीओ ) मुंह की लंबाई के प्रमाण से द्विगुण याने २४ अँगुल की विशाल मांस युक्त और अच्छी तरह बंधे हुए प्रधान जघन कटिके पूर्व भाग वाली ( वज्जविराइय-पसत्थलक्खण निरोदरीओ ) मध्य में पतली होने से वज्र की तरह विराजमान प्रशस्त लक्षण वाली और कृश उदर वाली हैं ( तिवलि-वलिय-तणु नमिय-मज्झियाओ ) तीन रेखाओं से वल युक्त दुबले और नमे हुए मध्य भागवाली ( उज्जुयसम-सहिय-जच्च-तणु-कसिण-निद्ध-आदेज्ज-लडह-सुकुमाल-मउय सुविभत्त-रोम राईओ ) सरल, समान, लक्षणों से युक्त, स्वभाव से उत्पन्न, सूक्ष्म, कृष्ण-काले, स्निग्ध-चिकने, रमणीय, ललित, अत्यन्त कोमल और अच्छी तरह विभागयुक्त रोमराजि वाली ( गंगावत्तग-पदा

हिणावत्त-तरंग-भंग-रवि-किरण-तरुण-बोधित-आकोसायंत-पउम-गंभीर वि-गडनाभा ) गंगावर्त की तरह प्रदक्षिणावर्त, तरङ्ग के जैसे भङ्गयुक्त, तरुण सूर्य की किरणों से प्रबोधित-विकासयुक्त पद्म के समान गम्भीर तथा विकट नाभि वाली (अणुब्भड-पसत्थ-सुजात-पीण-कुच्छी) [illegible], प्रशस्त, सुजात और मांसल -कुक्षिवाली (सन्नत पासा, सुजात पासा, संगत पासा, मितमाइत पीण रइयपासा) अच्छे बने हुए पार्श्व वाली, सुजात पार्श्व वाली, [illegible] पार्श्व वाली, [illegible] मांसल और प्रसन्नता कारक पार्श्व वाली। [illegible] निरुवहय-गायलट्ठी। [illegible] कान्ति के समान निर्मल [illegible] कलस-पमाण-समसंहिय-[illegible] सुवर्ण कलश के जैसे प्रमाण से, [illegible] समश्रेणि में दो गोलाकार [illegible] सहिय-तलिय-आमेल-[illegible] ) [illegible] के जैसे गोल, समान, [illegible] और [illegible] (तंब नहा) ताम्रवर्ण के नखवाली ( [illegible] ) [illegible] हाथ के अग्र भाग वाली ( कोमल-पीवर-वरंगुलीया ) कोमल और स्थूल श्रेष्ठ अंगुली वाली; ( निद्धपाणिलेहा, ससि-सूर-संख-चक्क-वरसोत्थिय-विभत्त-सविरइय-पाणिलेहा ) स्निग्ध हाथ की रेखावाली, चन्द्र, सूर्य, शङ्ख, प्रधानचक्र और [illegible] [illegible] हाथ में रेखावाली ( [illegible]

मधुर गम्भीर होते हैं: १४ रत्न और ६ निधान इनकी सन्निधि में रहते हैं। १४ रत्नों के नाम-१ सेनापति रूपरत्न, २ गाथापतिरत्न, ३ पुरोहितरत्न, ४ अश्वरत्न, ५ वर्द्धकी रत्न, ६ गजरत्न, ७ स्त्री रत्न, रूप सात प्राणिरत्न, सात प्राणिभिन्न रत्न जैसे ८ चक्ररत्न, ६ छत्र रत्न १० चर्मरत्न, ११ मणिरत्न, १२ कागणिरत्न, १३ खड्गरत्न, और १४ दण्ड रत्न ये एकेन्द्रियरत्न होते हैं। हाथी घोड़े रथ और पदाति रूप चार प्रकार की सेनाओं के स्वामी, उत्तमकुल व विस्तीर्ण कीर्ति वाले वे समस्त भारत भूमि के साथ पूर्वकृत सुकृत से प्राप्त सुखों को सैकड़ों वर्षों तक भोगते हैं, सैकड़ों वर्षों तक उत्तम स्त्रियों के साथ विलास करते हुए भी उन शब्द स्पर्शादि सुखों से बिना तृप्ति के ही वे मरण प्राप्तकर जाते हैं। ऐसे बलदेव वासुदेव आदि महापुरुष भी जो अतिशय बल सम्पन्न, धनुर्द्धारी तथा दुर्द्धर व शक्ति के सागर होते हैं। वर्तमान के बलदेव वासुदेव का वर्णन करते हैं-"राम केशव कहाने वाले बलदेव वासुदेव रूप दोनों भाई परिषद् युक्त तथा वसुदेव समुद्र विजय आदि दश दशारों के जो प्यारे हैं ( थे ) अनेक यादव व प्रद्युम्न कुमार, शंबकुमार आदि साढे तीन कोटि कुमारों के हृदय वल्लभ थे। बलदेव की माता रोहिणी और वासुदेव-कृष्ण की माता देवकी के हृदय को प्रसन्न करने वाले थे। सोलह हजार राजा जिनके पीछे रहते थे। और जिनकी सोलह हजार रानियां थीं। मणि, रत्न, और सुवर्ण आदि धन धान्य से इनके भण्डार पूर्ण-भरे रहते, तथा हजारों हाथी घोड़े और ... के वे अधिपति थे। ग्राम नगर आदि हजारों बसतियों से युक्त एवं पर्वतादि

अनुकूल केश पकना आदि विरूपता से रहित, तथा दुर्वर्ण-खराब रंग, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से मुक्त रहने वाली ( उच्चत्तेणय नराण थोवूण मूसियाओ ) और ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम ऊँची होती हैं ( सिंगारागार-चारुवेसाओ ) शृङ्गार के घर के समान सुन्दर वेषवाली ( सुन्दर-थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयणा ) सुन्दर स्तन, जघन, मुख, तथा हाथ पैर व आँखवाली ( लावण्ण रूव जोव्वण गुणोववेया ) लावण्य, सौन्दर्य, व यौवन तथा अङ्गना समुचित गुणों से शोभित रहने वाली ( नंदण-वण विवर-चारिणीओव्व अच्छराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छराओ ) नन्दन वन की कन्दराओं में विहार करने वाली अप्सराओं की जैसी वे उत्तर कुरु प्रदेश की मनुष्य अप्सरायें ( अच्छेरगपेच्छणिज्जियाओ ) जो आश्चर्य के साथ देखने योग्य हैं ( तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता ) तीन पल्योपम जितनी परम आयु को पालकर ( ताओऽवि ) ऐसी पूर्व कही गई वे अप्स-रायें भी ( कामाणं-अवितत्ता ) कामों के विषय में तृप्त नहीं होती हुई ( मरणधम्मं उवणमंति ) मरण धर्म को प्राप्त करती हैं ॥ ५ ॥ १५ ॥

भावार्थ-"इस मैथुनके मोह से व्याकुल हुए अप्सरा सहित देवगण इसका सेवन करते हैं। वे देव इस प्रकारके हैं-असुरकुमार आदि दश भवन पतिदेव, अण पन्निक, पण पन्निक और पिशाच आदि सोलह जाति के व्यन्तर देव। तिरछे लोक में रहने वाले ज्योतिष्क देव और ऊर्ध्वलोक के विमानवासी देव, ये सब देवगण तथा मनुष्य व जलचर आदि पशुगण, काम भोग की तृषा वाले बड़ी इच्छा से व्याकुल और इसी में आसक्त बने हुए जीवगण विषय का सेवन करते हैं। ऐसी तामसी भावना के कारण ये सब अपनी आत्मा के लिये दर्शन मोह और चारित्र मोह का पिंजरासा बना लेते हैं। विशेष रूप से मर्त्यलोक के काम प्रधान नर नारियों का परिचय देते हैं-"चक्रवर्ती देव, दानव तथा साधारण मनुष्यों के भोग में रति का अनुभव करने वाले, देव लोक में इन्द्र की तरह नरेन्द्र और देवेन्द्र से सत्कार पाने वाले हैं। भरतक्षेत्र के हजारों ग्राम नगर आदि क्षेत्रों में सागर पर्यन्त छः खण्ड से विभक्त ऐसी पृथ्वी के राज्य को भोगकर वे भी काम भोग में अतृप्त हुए मरते हैं, जो सूर्य चन्द्र आदि अनेक उत्तम लक्षणों को धारण करने वाले, बत्तीस हजार राजाओं से घिरे हुए और ६४ चौंसठ हजार प्रधान स्त्रियों के स्वामी हैं। रूप लावण्य और कान्ति से सर्वाङ्ग सुन्दर तथा वस्त्रालङ्कारों से सुशोभित होते हैं। शब्द भी उनके

मधुर गम्भीर होते हैं: १४ रत्न और ६ निधान इनकी सन्निधि में रहते हैं। १४ रत्नों के नाम-१ सेनापति रूपरत्न, २ गाथापतिरत्न, ३ पुरोहितरत्न, ४ अश्वरत्न, ५ वर्द्धकी रत्न, ६ गजरत्न, ७ स्त्री रत्न, रूप सात प्राणिरत्न, सात प्राणिभिन्न रत्न जैसे ८ चक्ररत्न, ६ छत्र रत्न १० चर्मरत्न, ११ मणिरत्न, १२ कागणिरत्न, १३ खड्गरत्न, और १४ दण्ड रत्न ये एकेन्द्रियरत्न होते हैं। हाथी घोड़े रथ और पदाति रूप चार प्रकार की सेनाओं के स्वामी, उत्तमकुल व विस्तीर्ण कीर्ति वाले वे समस्त भारत भूमि के साथ पूर्वकृत सुकृत से प्राप्त सुखों को सैकड़ों वर्षों तक भोगते हैं, सैकड़ों वर्षों तक उत्तम स्त्रियों के साथ विलास करते हुए भी उन शब्द स्पर्शादि सुखों से बिना तृप्ति के ही वे मरण प्राप्तकर जाते हैं। ऐसे बलदेव वासुदेव आदि महापुरुष भी जो अतिशय बल सम्पन्न, धनुर्द्धारी तथा दुर्द्धर व शक्ति के सागर होते हैं। वर्तमान के बलदेव वासुदेव का वर्णन करते हैं-"राम केशव कहाने वाले बलदेव वासुदेव रूप दोनों भाई परिषद् युक्त तथा वसुदेव समुद्र विजय आदि दश दशार्हों के जो प्यारे हैं ( थे ) अनेक यादव व प्रद्युम्न कुमार, शंबकुमार आदि साढे तीन कोटि कुमारों के हृदय वल्लभ थे। बलदेव की माता रोहिणी और वासुदेव-कृष्ण की माता देवकी के हृदय को प्रसन्न करने वाले थे। सोलह हजार राजा जिनके पीछे चलते थे। और जिनकी सोलह हजार रानियां थीं। मणि, रत्न, और सुवर्ण आदि धन धान्य से इनके भण्डार पूर्ण-भरे रहते, तथा हजारों हाथी घोड़े और रथों के ये अधिपति थे। ग्राम नगर आदि हजारों वसतियों से युक्त एवं पर्वतादि से मनोरम दक्षिण भरतार्द्ध के शासन करने वाले थे। ये धीरयशस्वी अतिशय शक्तिशाली और हजारों शत्रुओं के मान मथन करने वाले, तथा परम दयालु थे।

और जरासंध के मानका मथन करने वाले हैं, अनेक विशेषणयुक्त छत्र तथा हंस जोड़े के जैसे समुज्ज्वल चामर से विराजमान थे। हल मूशल वाण रूप अस्त्रधारी बलराम थे, और पाञ्चजन्य नामक शङ्ख, सुदर्शन नामक चक्र और कौमोद की नामक गदा एवं शक्ति व नन्दक नामक खड्ग को धारण करने वाले श्रीकृष्ण थे। शरीर शोभा के अलङ्करणों का वर्णन सहज है। अतः अन्वयार्थ से समझें। यावत् द्वारवती नगरी के लिये पूर्णचन्द्र के जैसे विराजमान वे बलदेव वासुदेव भी कामोपभोग में अतृप्त ही चले गये। ऐसे माण्डलिक राजा भी बल, वाहन, सभा, अन्तःपुर-स्त्री वर्ग खजाना और विस्तीर्ण राज्य लक्ष्मी को अत्यधिक भोगकर बलवीर्य से मदोद्धत दूसरे को बुरा कहते हुए कामोपभोग में अतृप्त ही संसार से चल बसे। इसी प्रकार देवकुरु, उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों के युगलिक मनुष्य, जो भोग प्रधान जीवन वाले हैं, अन्य विशेषण तथा नख शिख पूर्ण शरीराकृति का वर्णन सहज होने से अन्वयार्थ पर से ही समझें। यावत् सुजात अच्छी तरह विभागयुक्त और उत्तम शरीर वाले होते हैं। लक्षण आदि से युक्त, ३२ लक्षणों के धारक और हंस आदि के समान गम्भीर व मधुर स्वर वाले होते हैं। उनकी शारीरिक रचना सर्व श्रेष्ठ होती है। उनके शरीर कान्तियुक्त तथा रुजा रहित होते हैं। मलस्थान भी उनके पक्षिवत् मल लेप रहित एवं निर्मल होते हैं। उनकी जाठराग्नि कबूतर सी प्रदीप्त रहती है (शेष सुगम है)। वे भी काम भोगों में अतृप्त ही संसार से विदा होते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी सौम्या व सर्वाङ्गसुन्दरियाँ तथा प्रधान स्त्री गुणों से शोभा युक्त होती हैं। इनका भी नख शिख वर्णन युगलिक पुरुषों के समान है, अतएव अन्वयार्थ से ही समझ लेवें। छत्र ध्वज आदि ३२ लक्षणों को धारण करने वाली, हंस जैसी गति वाली और कोकिला के समान मधुर स्वरवाली, अनिन्द्य सुन्दरी और सभी के लिये प्रिय दर्शना होती हैं। यावत् नन्दनवन विहारिणी अप्सराओं के समान उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों की ये, मनुष्याप्सरायें होती हैं। तीन पल्य के उत्कृष्ट आयु को भोगकर भोगों में अतृप्त ही ये भी संसार से चल बसती हैं। सू० ५ । १५ ॥

अब मैथुन जिस प्रकार सेवन किया जाता और जो फल देता है इसको साथ ही कहते हैं-"

**मूल-"मेहुणसन्नासंपगिद्धा य मोहभरिया, सत्थेहिं हणंति एक्कमेक्कं विसयविसउदीरएसु, अवरे परदारेहिं हम्मंति, विसुणिया धणनासं सयण-**

विप्पणासं च पाउणंति, परस्सदाराओ जे अविरया, मेहुणसन्न संपगिद्धा य मोहभरिया अस्सा हत्थी गवा य महिसा, मिगा य मारेंति एक्केक्कं। मणुयगणा वानरा य पक्खीय विरुज्झंति, मित्ताणि खिप्पं भवंति सत्तू, समये धम्मेगणे य भिंदंति पारदारी। धम्मगुणरया य बंभयारी, खणेण उल्लोट्टए चरित्ताओ। जसमंतो सुव्वया य पावेंति अयसकित्तिं। रोगत्ता वाहिया पविड्ढंति रोयवाही। दुवे य लोया दुआराहगा भवंति-इह लोए चेव परलोए, परस्सदाराओ जे अविरया। तहेव केइ परस्सदारं गवेसमाणा, गहिया हया य बद्धरुद्धा य एवं जाव गच्छंति विपुलमोहाभिभूयसन्ना।

छाया-"मैथुन संज्ञा संप्रगृद्धाश्च मोहभरिताः, शस्त्रैर्घ्नन्ति-एकैकं, विषय-विषेभू-पीरकेषु, केचनाऽपरे परदारैश्चहन्यन्ते, विश्रुता धननाशं, स्वजन-विप्रणाशश्च प्राप्नुवन्ति, परस्य दारेभ्यो येऽविरताः, मैथुनसंज्ञासम्प्रगृद्धाश्च मोहभृता-अश्वा, हस्तिनो गावश्च, महिषा मृगाश्च मारयन्ति, परस्परमेकैकं,-मनुजगणा वानराश्च पक्षि-णश्च विरुन्धन्ति, मित्राणि क्षिप्रं भवन्ति शत्रवः, समयान् धर्मान् गणांश्च भिन्दन्ति पारदारिकाः, धर्मगुणरताश्च ब्रह्मचारिणः क्षणेन परावर्तन्ते च चरित्रात्-,यशस्विनः सुव्रताश्च प्राप्नुवन्ति-अयशस्कीर्तिम्, रोगार्ता व्याधिताः प्रवर्द्धयन्ते रोगव्याधीन्, द्वयोर्लोकयोर्दुराराधका भवन्ति ( द्वौलोकौ दुराराध्यौ भवतः ), इह लोके चैव पर-लोके चैव, परस्य दारेभ्यो येऽविरताः, तथैव केऽपि परस्य दारानगवेषयन्तो गृहीता हताश्च बद्धरुद्धाश्च। एवं यावद्गच्छन्ति विपुल मोहाभिभूतसंज्ञाः।

विरुज्झंति ) और पत्ती परस्पर लड़ते हैं, ( मित्ताणि खिप्पं भवंति सत्तू ) मैथुन कर्म से मित्र शीघ्र ही शत्रु हो जाते हैं ( समये धम्मेगणे य भिंदंति पारदारी ) समय-सिद्धान्त के अर्थ, धर्म और गणों जाति मर्यादा को परदार लम्पट भङ्ग करते याने सन्तोग करते हैं, ( धम्मगुण रया य बंभयारी खणेण उल्लोट्टए चरित्ताओ ) और धर्म गुण में रमण करने वाले ब्रह्मचारी क्षण भरमें चारित्र से लौट पड़ते हैं, ( जसमंतो सुव्वयाय) कीर्तिमान् और सुव्रती भी ( पावेंति अयसकित्ति ) अयश-अकीर्ति को पाते हैं ( रोगत्ता वाहिया ) ज्वर आदि के रोगी तथा कुष्ठ आदि व्याधि से ग्रस्त ( रोयवाही पवड्ढंति ) अपने रोग व व्याधि को बढाते हैं ( दुवे य लोया दुआराहगा भवंति ) और दोनों लोक कठिन से आराधने योग्य ( वाले ) होते हैं जैसे-( इह लोए चेव परलोए ) इस लोक और ऐसे परलोक-दोनों का आराधन उनको कठिन होता है ( परस्स दाराओ जे अविरया ) जो परस्त्री से विरत नहीं होते हैं, ( तहेव केइ परस्स दारं गवेसमाणा ) इसी प्रकार कई पर स्त्री की गवेषणा-खोज करते हुए-( गहिया, हया य बद्धरुद्धा य ) पकड़े गये और मारे गये तथा बांधकर रोके गये हैं ( एवं जाव गच्छंति विपुल मोहाभिभूयसन्ना ) इस प्रकार यावत् विस्तीर्ण मोहसे दबे हुए ज्ञान वाले 'नरक में' जाते हैं।

मू०-"मेहुणमूलंच सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा,-सीयाए दोवईए कए, रुप्पिणीए, पउमावईए, ताराए, कंचणाए, रत्तसुभद्दाए, अहिल्लियाए, सुवन्नगुलियाए, किन्नरीए, सुरूवविज्जुमतीए, रोहणीए य। अन्नेसु य एवमादिएसु बहवो महिलाकएसु सुव्वंति अइकंता संगामा, गामधम्ममूला इहलोए तावनट्ठा परलोए वियनट्ठा, महया मोह तिमिसंधकारे घोरे तसथावर सुहुमबादरेसु पज्जत्तमपज्जत्त साहारणसरीर पत्तेयसरीरेसु य, अंडज-पोतज-जराउय-रसज-संसेइम-संमुच्छिम-उब्भिय-उववादिएसु य नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु, जरा-मरण-रोग-सोग-बहुले, पलिओवम सागरोवमाइं अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसार कंतारं अणुपरियट्टंति जीवा मोहवससन्निविट्ठा। एसोसो अबंभस्स फल विवागो इहलोइओ पारलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वास सहस्सेहिं मुच्चती, नय अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणोउ वीरवरनामधेज्जो,

कहेसीय अबंभस्स फलविवागं, एयंतं अबंभंपि चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्जं, एवं चिरपरिचियमणुगतंदुरंतं, चउत्थं अधम्मदारं समत्तं त्तिवेमि ॥ ४ ॥ सूत्र ६ । १६ ॥

छाया–"मैथुन मूलं च श्रूयन्ते तत्र तत्र वृत्तपूर्वाः संग्रामा जनक्षयकराः, सीताया-द्रौपद्याः कृते, रुक्मिण्याः, पद्मावत्यास्तारायाः, काञ्चनाया, रक्त सुभद्राया, अहिल्यायाः, सुवर्णगुलिकायाः, किन्नर्याः, सुरूपविद्युन्मत्या, रोहिण्याश्च । अन्यासु चैव मादिषु बह्वयोमहिलाकृतेषु श्रूयन्तेऽतिक्रान्ताः संग्रामा ग्रामधर्ममूलाः ।

इह लोके तावन्नष्टाः,परलोकेऽपिचनष्टा,महति मोहतमिस्रान्धकारे घोरे त्रसस्थावर-सूक्ष्मबादरेषु पर्याप्ताऽपर्याप्त-साधारण-शरीर-प्रत्येकशरीरेषुच अण्डज-पोतज-जरायुज-रसज–संस्वेदिम–संमूर्च्छिमोद्भिज्जौपपातिकेषुच, नरक तिर्यग्देव मनुष्येषु, जरा मरण रोग शोक बहुले, पल्योपम सागरोपमानि अनादिकमनवदग्रं दीर्घमध्वानं चतुरन्त संसारकान्तारमनुपरिवर्तन्ते जीवा मोहवश संनिविष्टाः । एषस अब्रह्मणः फल विपाकः ऐहलौकिकः पारलौकिकश्चाल्पसुखो बहुदुःखो, महाभयो बहुरजः प्रगाढो दारुणः, कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते, न च अवेदयित्वा अस्तिमोक्ष इति, एवमा-ख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेयः, कथयिष्यतिच अब्रह्मणः फलविपाकम्, एतत्तदब्रह्मापि चतुर्थं सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयम् एवं चिरपरिचितमनुगतं दुरन्तं । चतुर्थमधर्मद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ ४ ॥ ६ । १६ ॥

अन्व०–"( मेहुणमूलंच ) और मैथुन मूलक (तत्थतत्थ वत्त पुव्वासंगामा सुव्वए) इन शास्त्रों में पहले हुएभये संग्राम सुने जाते हैं ( जणक्खयकरा ) जो युद्ध नर संहार करने वाले हैं , जैसे–( सीयाए, दोवईएकए ) सीता और द्रौपदी के लिये-राम रावणका और पद्मनाभ व पाण्डवों का युद्ध हुआ ( रुप्पिणीए ) रुक्मिणी के लिये कृष्ण और शिशुपालका युद्ध हुआ ( पउमावईए ) पद्मावती के लिये–कृष्ण का अनेक राजाओंसे युद्ध हुआ ( ताराए ) तारा के वास्ते–साहसमति व सुग्रीव का युद्ध हुआ ( कंचणाए ) कञ्चना के लिये युद्ध हुआ (रत्तसुभद्दाए ) रक्तसुभद्रा के लिये कृष्ण और अर्जुन का युद्ध ( अहिल्लियाए ) अहल्या या अहिन्निका के लिये हुआ अप्रसिद्ध युद्ध ( सुवन्नगुलियाए) सुवर्णगुलिका के लिये उदायन और चण्डप्रद्योतन का युद्ध (किन्नरीए ) किन्नरी और ( सुरूवविज्जुमतीए ) सुरूपविद्युन्मती के लिये ( रोहि-

णीए य ) और रोहिणी के लिये वसुदेवका युद्ध ( अन्नेसु य एवमादिएसु ) और इत्यादि अन्य ( बहवो ) बहुत से ( महिलाकएसु ) स्त्रियों के प्रयोजनसे ( अइकंता संगामा सुव्वंति ) भुत पूर्व संग्राम सुने जाते हैं, ( गामधम्ममूला ) जिनका विषयोपभोगही मूल कारण है, विषय सेवन करने वाले-( इहलोएतावनट्ठा ) इस लोक में तो अकीर्तिके कारण नष्ट होते हैं ( परलोए वियणट्ठा ) और परलोक में भी नष्ट होते हैं-(महया मोह तिमिसंधकारे) महामोहरूप अत्यन्त अन्धकार वाले (घोरे)घोर-परलोक में (तसथावर सुहुमबादरेसु) त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म और बादर नाम कर्मवाले (पज्जत्तम पज्जत्त साहारणसरीर पत्तेय सरीरेसु य) और पर्याप्त व अपर्याप्त तथा साधारण शरीर नाम कर्मवाले और प्रत्येक शरीरीपन में ( अंडज-पोतज-जराउय-रसज-संसेइम संमुच्छिम उब्भिय -उववादिएसुय ) अण्डज, पोतज, जरायुज क्रमसे अण्डा से पैदा होने वाला अण्डज- पक्षी, पोतज हाथी आदि और जड़ के साथ उत्पन्न होने वाले जरायुज, रसमें पैदा होने वाले रसज, स्वेद-पसीने से पैदा होने वाले संस्वेदिम, बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाले संमूर्च्छिम , और भूमि को फोडकर पैदा होने वाले उद्भिज्ज तथा उपपात-एकाएक अन्यस्थानसे दूसरेस्थान में जाने वाले सहसाशय्या में पैदा होने वाले जीव औपपातिक-देव तथा नारक आदि, इन जीवों को संक्षेपमें कहें तो ( नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु ) नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य रूप योनिओंमें 'पर्यटन करते हुए जीव,' ( जरा मरण रोग सोग बहुले ) जरा मरण, रोग और शोक की प्रधानता वाले 'संसार में' नष्ट होते हैं, ( पलिओवम-सागरोवमाइं ) अनेक पल्योपम व सागरोपम तक ( मोहवस संनिविट्ठा जीवा ) मोहके कारण अब्रह्मके सेवन में लगे हुए जीव ( अणादीयं अणवदग्गं ) आदि अन्त रहित-और ( दीहमद्धंचाउरंत संसार कंतारं ) दीर्घ-लम्बे मार्गवाले-चार गतिओं से युक्त इस संसार रूप अटवी में ( अणुपरियट्टंति ) भटकते रहते हैं ।

उपसंहार-"( एसोसो अबंभस्स फलविवागो ) इस प्रकार यह अब्रह्म सेवन का फलरूप विपाक-आखीरी परिणाम ( इहलोइओ पारलोइओ य ) इस लोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी ( अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ ) अल्प सुख वाला, बहुत दुःखवाला-तथा महाभयङ्कर है, ( बहुरयप्पगाढो, दारुणो, कक्कसो, असाओ ) कर्मरज की अधिकता से प्रगाढ़, भयङ्कर और कठोर, असाता रूप है ( वाससहस्सेहिं मुच्चती ) हजारों वर्षों से छूटता है ( न य अवेदयित्ता अत्थिहुमोक्खोति ) बिनाभोगे

कहेसीय अबंभस्स फलविवागं, एयंतं अबंभंपि चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोगस्स पथणिज्जं, एवं चिरपरिचियमणुगतंदुरंतं, चउत्थं अधम्मदारं समत्तं त्तिवेमि ॥ ४ ॥ सूत्र ६ । १६ ॥

छाया-"मैथुन मूलं च श्रूयन्ते तत्र तत्र वृत्तपूर्वाः संग्रामा जनक्षयकराः, सीतायाः द्रौपद्याः कृते, रुक्मिण्याः, पद्मावत्यास्तारायाः, काञ्चनायाः, रक्त सुभद्रायाः, अहिल्यायाः, सुवर्णगुलिकायाः, किन्नर्याः, सुरूपविद्युन्मत्याः, रोहिण्याश्च । अन्यासु चैव मादिषु वह्वोमहिलाकृतेषु श्रूयन्तेऽतिक्रान्ताः संग्रामा ग्रामधर्ममूलाः ।

इह लोके तावन्नष्टाः,परलोकेऽपिचनष्टा,महति मोहतमिस्रान्धकारे घोरे त्रसस्थावर-सूक्ष्मवादरेषु पर्याप्ताऽपर्याप्त-साधारण-शरीर-प्रत्येकशरीरेषुच अण्डज-पोतज-जरायुज-रसज-संस्वेदिम-संमूर्च्छिमोद्भिज्जौपपातिकेषुच, नरक तिर्यग्देव मनुष्येषु, जरा मरण रोग शोक बहुले, पल्योपम सागरोपमानि अनादिकमनवदग्रं दीर्घमध्वानं चतुरन्त संसारकान्तारमनुपरिवर्तन्ते जीवा मोहवश संनिविष्टाः । एषस अब्रह्मणः फल विपाकः ऐहलौकिकः पारलौकिकश्चाल्पसुखो बहुदुःखो, महाभयो बहुरजः प्रगाढो दारुणः, कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते, न च अवेदयित्वा अस्तिमोक्ष इति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेयः, कथयिष्यतिच अब्रह्मणः फलविपाकम्, एतत्तदब्रह्मापि चतुर्थं सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयम् एवं चिरपरिचितमनुगतं दुरन्तं । चतुर्थमधर्मद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ ४ ॥ ६ । १६ ॥

अन्व०-"(मेहुणमूलंच) और मैथुन मूलक (तत्थतत्थ वत्त पुव्वासंगामा सुव्वए) इन शास्त्रों में पहले हुएभये संग्राम सुने जाते हैं (जणक्खयकरा) जो युद्ध नर संहार करने वाले हैं, जैसे-( सीयाए, दोवईएकए ) सीता और द्रौपदी के लिये-राम रावणका और पद्मनाभ व पाण्डवों का युद्ध हुआ ( रुप्पिणीए ) रुक्मिणी के लिये कृष्ण और शिशुपालका युद्ध हुआ ( पउमावईए ) पद्मावती के लिये-कृष्ण का अनेक राजाओंसे युद्ध हुआ ( ताराए ) तारा के वास्ते-साहसमति व सुग्रीव का युद्ध हुआ ( कंचणाए ) कञ्चना के लिये युद्ध हुआ (रत्तसुभद्दाए) रक्तसुभद्रा के लिये कृष्ण और अर्जुन का युद्ध ( अहिल्लियाए ) अहल्या या अहिन्निका के लिये हुआ अप्रसिद्ध युद्ध ( सुवन्नगुलियाए) सुवर्णगुलिका के लिये उदायन और चण्डप्रद्योतन का युद्ध (किन्नरीए ) किन्नरी और ( सुरूवविज्जुमतीए ) सुरूपविद्युन्मती के लिये ( रोहि-

णीए य ) और रोहिणी के लिये वसुदेवका युद्ध ( अन्नेसु य एवमादिएसु ) और इत्यादि अन्य ( बहवो ) बहुत से ( महिलाकएसु ) स्त्रियों के प्रयोजनसे ( अइक्कंता संगामा सुव्वंति ) भुत पूर्व संग्राम सुने जाते हैं, ( गामधम्ममूला ) जिनका विपयोप भोगही मूल करण है, विषय सेवन करने वाले-( इहलोएतावनट्ठा ) इस लोक में तो अकीर्तिके कारण नष्ट होते हैं ( परलोए वियणट्ठा ) और परलोक में भी नष्ट होते हैं- -(महया मोह तिमिसंधकारे) महामोहरूप अत्यन्त अन्धकार वाले (घोरे)घोर-परलोक में (तसथावर सुहुमबादरेसु) त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म और वादर नाम कर्मवाले (पज्जत्तम पज्जत्त साहारणसरीर पत्तेय सरीरेसु य) और पर्याप्त व अपर्याप्त तथा साधारण शरीर नाम कर्मवाले और प्रत्येक शरीरीपन में ( अंडज-पोतज-जराउय-रसज-संसेइम संमुच्छिम उब्भिय -उववादिएसुय ) अण्डज, पोतज, जरायुज क्रमसे अण्डा से पैदा होने वाला अण्डज- पत्ती, पोतज हाथी आदि और जड़ के साथ उत्पन्न होने वाले जरायुज, रसमें पैदा होने वाले रसज, स्वेद-पसीने से पैदा होने वाले संस्वेदिम, विना गर्भ के उत्पन्न होने वाले संमूर्च्छिम , और भूमि को फोडकर पैदा होने वाले उद्भिज्ज तथा उपपात-एकाएक अन्यस्थानसे दूसरेस्थान में जाने वाले सहसाशय्या में पैदा होने वाले जीव औपपातिक-देव तथा नारक आदि, इन जीवों को संक्षेपमें कहें तो ( नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु ) नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य रूप योनि-ओंमें 'पर्यटन करते हुए जीव,' ( जरा मरण रोग सोग बहुले ) जरा मरण, रोग और शोक की प्रधानता वाले 'संसार में' नष्ट होते हैं, ( पलिओवम-सागरोवमाइं ) अनेक पल्योपम व सागरोपम तक ( मोहवस संनिविट्ठा जीवा ) मोहके कारण अब्र ह्मके सेवन में लगे हुए जीव ( अणादीयं अणवदग्गं ) आदि अन्त रहित-और ( दीह मद्धंचाउरंत संसार कंतारं ) दीर्घ-लम्बे मार्गवाले-चार गतिओं से युक्त इस संसार रूप अटवी में ( अणुपरियट्टंति ) भटकते रहते हैं।

उपसंहार-"( एसोसो अबंभस्स फलविवागो ) इस प्रकार यह अब्रह्म सेवन का फलरूप विपाक-आखीरी परिणाम ( इहलोइओ पारलोइओ य ) इस लोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी ( अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ ) अल्प सुख वाला, बहुत दुःखवाला-तथा महाभयङ्कर है, ( बहुरयप्पगाढो, दारुणो, कक्कसो, असाओ ) कर्मरज की अधिकता से प्रगाढ, भयङ्कर और कठोर, असाता रूप है ( वाससहस्सेहिं मुच्चती ) हजारों वर्षों से छूटता है ( न य अवेदयित्ता अत्थिहुमोक्खोति ) विनाभोगे

इस कर्म विपाक से मोक्ष–छुटकारा–नहीं होता है, ( एवमाहंसु नायकुल नंदनो महप्पा ) ज्ञातकुल नन्दन महात्माने इसप्रकार कहा है, ( जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो ) महावीर नामके जिनेन्द्र ने ( कहेसीय अबंभस्स फलविवागं ) और अब्रह्म के फलविपाकको कहा है ( इंगे ) ( ए यं तं अबंभंपिचउत्थं ) यह अब्रह्म नामक यह चौथा अधर्मद्वार भी हुआ, ( सदेवमणुजासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्जं, एवं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं चउत्थं अधम्मद्वारं समत्तं त्तिवेमि ) जो देव, मनुष्य और असुर सहित लोक–संसार का प्रार्थनीय है, इस प्रकार यावत् अधिक कालका परिचित, साथी और दुःख से अन्तवाला है। ऐसा चौथा अधर्मद्वार समाप्त हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ। सू० ६। १६।

भावार्थ–"इस सूत्र में बताया गया है कि मैथुन संज्ञा के वशीभूत जीव एक दूसरे को मारते हैं। कई जीव विषय के व्यासङ्ग में लग्न हुए मारे जाते हैं। कुकर्म से प्रख्यात हुए कई धन जन व प्राणों की क्षति उठाते हैं। मैथुन से निवृत्त नहीं होने वालों की यह दशा है। विषय में आसक्त हुए भए घोड़े, हाथी आदि पशु परस्पर–एक दूसरे को मारते हैं और नर, वानर पक्षी भी इस कारण से लड़ते हैं। मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। और दुराचारी लोग सम्प्रदाय सिद्धान्त एवं धर्ममर्यादा को भी भंग करते हैं। इस कृष्णकृत्य के उपासक लोग सदाचारी रहकर झट नीचे गिरजाते हैं। और कीर्तिमान् भी अकीर्तियुक्त हो जाते हैं। इस व्यभिचार से जीव रोगी बनते और फिर उस रोग को बढाते रहते हैं। संक्षेप में कहना चाहिए कि दुराचारिओं के लिये दोनों लोक दुराराध्य–अर्थात् विफल हो जाते हैं। क्योंकि इस लोक में पकड़े जाने पर वध वन्धन आदि दुःख सहने पड़ते हैं और परलोक में भी नरकगामी बनते हैं। इस मैथुन के चलते गत काल में कई जनसंहारी संग्राम हुए हैं, जिनका विशदवर्णन शास्त्रों में सुन पड़ता है। जैसे–सीता के लिये राम रावण का, द्रौपदी के लिये कौरव पाण्डवों का, तथा तारा के लिये साहसमति व सुग्रीव का, इत्यादि सैकड़ों युद्ध प्रसिद्ध हैं। विषयी लोग–उभयलोक को अपने हाथ से नष्ट करते हैं। आखीर त्रसस्थावर पर्यायों में भटकते हुए चतुर्गतिक संसार में पल्योपम सागरोपम कालतक पर्यटन करते रहते हैं। उपसंहार स्पष्ट ही है। सू० ६। १६।

# अथ "पञ्चम आस्रव" प्रारभ्यते

सम्बन्ध-"पूर्व अध्ययन में अब्रह्म का स्वरूप कहा गया, वह परिग्रह के होने पर ही होता है, इसलिये इस अध्ययन में परिग्रह को पांच द्वारों से कहेंगे,-प्रथम परिग्रह का स्वरूप बताते हुए श्री सुधर्म स्वामी महाराज फरमाते हैं-

मूल-"जंबू ! इत्तो परिग्गहो पंचमो उ नियमा णाणामणि-रयण-कणग-महरिह-परिमल-सपुत्त-दार-परिजण-दासीदास- भयग-पेस-हय-गय-गोमहिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग-सीया-सगड-रह-जाण-जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धणधन्न- पाण- भोयणाच्छायण- गंध- मल्ल-भायण भवण विहिं चेव बहुविहीयं, भरहं णग-णगर-णियम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संवाह-पट्टणसहस्स परिमंडियं, थिमियमेइणीयं, एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं, अपरिमिय मणंत तण्ह-मणुगय-महिच्छसार-निरयमूलो, लोभकलिकसाय-महक्खंधो, चिंतासय निचिय विपुलसालो, गारव पविरल्लियग्ग विडवो, नियडि तया पत्त पल्लव धरो, पुप्फफलं जस्स कामभोगा, आयास विसूरणा, कलह पंकपियग्ग सिहरो, नरवतिसंपूजितो, बहुजणस्स हियय दइओ इमस्स मोक्खवर-मोत्ति मग्गस्स-फलिहभूओ चरिमं अहम्मदारं । १ । १७ ।

छाया-"हेजम्बूः ! इतः परिग्रहः पञ्चमस्तु नियमात्-नाना-मणि-कनक रत्न-महार्ह-परिमल-सपुत्रदार-परिजन-दासीदास-भृतक-प्रेष्य-हय गज गो-महिषोष्ट्र-खराऽज-गवेलक-शिविका-शकट-रथ यान-युग्य-स्यन्दन शयनाऽऽसन-वाहन-कुप्य-धन धान्य पान-भोजनाच्छादनगन्धमाल्य भवनविधिम्, चैवं बहुविधं, भारतं [ नाम ] नग-नगर-निगम-जनपद-पुरवर-द्रोणमुख-खेट-कर्बट-मडम्ब-संवाह-पट्टणसहस्रपरिमण्डितम्, स्तिमित मेदिनीकमेकच्छत्रं ससागरं भुक्त्वा

वसुधामपरिमिताऽनन्ततृष्णानुगत-महेच्छासार निरयमूलो, लोभ कलिकषाय महास्कन्धः, चिन्ताऽऽयास निचित विपुलशालो, गौरवपल्लविताग्र विटपो, निकृति-त्वचा पत्र-पल्लव धरः, पुष्पफलं, यस्य काम भोगाः, आयास विसूरणा कलह प्रकम्पि-ताऽऽग्रशिराः,नरपतिसम्पूजितो बहुजनस्य हृदयदयितः।अस्य मोक्षवर मुक्ति मार्गस्य परिघी भूतं ( तः ) चरममधर्मद्वारम् । सूत्र १ । १७ ॥

अन्व०-"( जंबू ! इत्तो ) हे जम्बू ! इस चौथे आस्रव के बाद ( परिग्गहो पंचमो-उ ) परिग्रह-पांचवां आस्रव ( नियमा ) निश्चय से होता है, यह कैसा है ?-( णा-णामणि-कणग-रयण-महरिह-परिमल-सपुत्तदार-परिजण-दासीदास-भयग-पेस-हय-गय-गो-महिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग- सीया-सगड—रहजाण-जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धण धन्न-पाण भोयणाच्छायण-गंधमल्ल-भायण-भवण विहिं चेव बहुविहीयं ) अनेक प्रकार के मणि, कनक-सोना, रत्न-कर्केतन आदि, वेशकीमती सुगन्धि द्रव्य पुत्र और स्त्री सहित परिवार, दासीदास और काम करने वाले भृतक, तथा खास काम पर भेजने योग्य-प्रैष्य, घोड़े, हाथी, गाय, भैंस, ऊंट, गधा, बकरे की जाति और गवेलक व शिबिका-पालकी, शकट-गाडी तथा रथ, यान व युग्य-वाहन विशेष तथा स्यन्दन-क्रीडारथ, शयन, आसन और वाहन व कुप्य-घर के उपयोगी सामान, धन, धान्य, भक्ष्य खाने के पदार्थ और पेय, आच्छा दन-शरीर ढकने का वस्त्र, गंध-कपूर आदि, माल्य-पुष्पमाला, भाजन और भवन के अनेक प्रकार के विधान को ( णग-णगर-नियम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड कब्बड मडंब-संवाह-पट्टण-सहस्स परिमंडियं ) तथा नग-पर्वत, नगर-शहर, निगम-वणिग् लोगों का निवास स्थान-मंडी, जनपद-देश, पुरवर-प्रधान शहर, द्रोणमुख-जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनों से जाने योग्य नगर, खेड, कर्वट, मडम्ब, संवाह और हजारों पत्तनों से मंडित ( भरहं ) भरत क्षेत्र को ( थिमिय मेइणीयं ) निर्भयजनयुक्त मेदिनी वाली ( ससागरं वसुहं ) समुद्र सहित पृथ्वी को ( एगच्छत्र ) एकच्छत्र-अखंड राज्य से ( भुंजिऊण ) भोगकर, अब परिग्रह का वृक्षरूप से वर्णन करते हैं-( अपरिमिय मणंततण्ह मणुगय महिच्छसार-निरयमूलो ) अपरिमित अनन्त तृष्णा के साथ रहने वाली बड़ी इच्छा ही अक्षय्य और अशुभफल वाले जिसके मूल हैं, ( लोभ-कलि-कसाय-महक्खंधो ) लोभ, कलि-कलह, और कषाय-क्रोध मान आदि

जिचिय विपुल सालो ) चिन्ता और मनस्ताप आदि की अधिकता से या निरन्तर सैकड़ों चिन्ताओं से विस्तीर्ण शाखावाला ( गारव पविरल्लियग्ग धिडओ ) ऋद्धि आदि के गौरव ही विस्तारयुक्त शाखा के अग्रभाग है जिसमें ( नियडि-तयापत्त-पल्लवधरो ) दूसरे को ठगने के लिये किये गये वंचनाप्रकार या कपट रूप त्वचा पत्र और फूल को जो धारण करने वाला है, (पुप्फफलं जस्स कामभोगा ) तथा काम भोगही जिस वृक्ष के फूल व फल हैं ( आयास विसूरणा कलह पकं पियग्ग सिहरो ) शरीर और मन का खेद, तथा कलह ये ही जिस वृक्ष के कम्पमान होने वाले अग्र शिखर हैं ( नरवतिसंपूजितो ) राजाओं से पूजित ( वहुजणस्सहियय दइओ ) बहुत लोकों का हृदयवल्लभ ( इमस्स मोक्खवर मोत्ति मग्गस्स ) इस-प्रत्यक्ष-विद्यमान मोक्ष-कर्म मोक्ष-के निर्लोभितारूप मार्ग का ( फलिहभूओ ) यह परिग्रह आगल के समान रोध करने वाला है ( चरिमं अहम्मदारं ) यह अन्तिम अधर्मद्वार हैं ।१।१७।

भावार्थ-"सुधर्मस्वामी महाराज जम्बू नामक अपने शिष्य से फरमाते हैं कि अब्रह्म के बाद पांचवा अधर्म द्वार परिग्रह है। अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण आदि जङ्गम तथा स्थावर सचेतन और अचेतन रूप बहुत प्रकार के साधनों को तथा गिरि नगर आदि हजारों वसतिओं से मण्डित भरत क्षेत्रको और समुद्र सहित पृथ्वीके एक-च्छत्र राज्य को भोगने पर भी जो तृप्ति रहित हैं। इसकी वृक्ष के साथ तुलना करते हैं -अपरिमित अनन्त तृष्णारूप बडी इच्छा व अशुभफलही इसका मूल है, लोभ कलह और कषाय इसके बडे स्कन्ध हैं, सैकडों प्रकार की चिन्तायें इसकी विशाल शाखायें और अहङ्कार ही विस्तारयुक्त इसका शिखर है। अनेक प्रकार के छल कपट ही, जिसकी त्वचा पत्र व फूल हैं, कामभोग ही इसके फल फूल हैं। इसी प्रकार अन्य तुलना समझें यावत् निर्लोभितारूप मोक्षमार्ग का यह आगल के समान रोध करने वाला पंचम अधर्म द्वार है॥ १।१७॥

अब परिग्रह के नाम कहते हैं-

मूल-"तस्स य नामाणि इमाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा-परिग्गहो १, संचयो २ चयो ३, उवचओ ४, निहाणं ५, संभारो ६, संकरो ७, [1]आयरो ८, पिंडो ९, दव्वसारो १०, तहामहिच्छा ११, पडिबंधो १२, लोहप्पा १३, महद्दी[2] १४, उवकरणं १५, संरक्खणाय १६,

१ क. एवं आयारो, २ क. महिद्दी।

मारो १७, संपाउप्पायको १८, कलिकरंडो १६, पवित्थरो २०, अणत्थो-२१, संथवो २२, अगुत्ती २३, आयासो २४, अविओगो २५ अमुत्ती-२६, तण्हा २७ अणत्थको २८, आसत्ती २६, असंतोसोत्तिविय ३०, तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं । २ । १८ ।

छाया-"तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्, तानि यथा-'परिग्रहः १, सञ्चयः २, चयः ३, उपचयः ४, निधानम् ५, सम्भारः ६, सङ्करः ७, आदरः ८, पिण्डः ६, द्रव्यसारः १०, तथा महेच्छा ११, प्रतिबन्धः ( अभिष्वङ्गः ) १२, लोभात्मा ( लोभ स्वभावः ) १३, महर्द्धिः १४, उपकरणम् १५, संरक्षणा च १६, भारः १७, सम्पातोत्पादकः १८, कलिकरण्डः १६, प्रविस्तारः २०, अनर्थः २१, संस्तवः २२, अगुप्तिः २३, आयासः २४, अवियोगः २५, अमुक्तिः २६, तृष्णा २७, अनर्थकः २८, आसक्तिः ( आसङ्गः ) २६, असन्तोषः ३०, इत्यपिच, तस्यैतानि-एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सू० २ । १८ ॥

अन्व०- " ( तस्स य ) फिरस्वरूप के बाद उस परिग्रह के ( इमाणि ) ये आगे कहे गये ( गोण्णाणि ) गुणनिष्पन्न ( तीसं ) तीस (नामाणि) नाम ( हुंति) होते हैं ( तंजहा ) जैसे कि वे इस प्रकार हैं-( परिग्गहो ) परिग्रह-शरीर आदि का अच्छी तरह ग्रहण करना , ( संचयो ) सञ्चय-अधिक मात्रा में संग्रह करना ( चयो ) चय-वस्तुओं को जुटाना, ( उवचओ ) उपचय ( निहाणं ) निधान ( संभारो ) संभार जो अच्छी तरह से धारण किया जाय ( संकरो ) सङ्कर-वस्तुओं को एक दूसरे से मिलाना (आयरो) आदर-वस्तुओं में आदर बुद्धि करना (पिंडो) पिण्ड (दव्वसारो ) द्रव्यरूप सार वाला (तहा महिच्छा)वैसेही महेच्छा-तीव्र इच्छा (पडिबंधो) प्रतिबन्ध-बाह्यपदार्थमें स्नेहवन्ध होना ( लोहप्पा ) लोभात्मा-लोभमय आत्मा वाला, ( महद्दि) महार्द्धि -अपरिमित याचनावाला ( उवकरणं ) उपकरण (संरक्खणा य) और संरक्षणा-मोह वश-शरीर आदि की विशेष रक्षा करना ( भारो ) भार-आत्मा को विशेषभारी करने वाला ( संपाउप्पायको ) संपातोत्पादक-झूठ आदि पातकों को पैदा करने वाला ( कलिकरंडो ) कलहोंकी पेटी ( पवित्थरो ) प्रविस्तर-धनधान्य आदि का विस्तार ( अणत्थो ) अनर्थ-अनर्थों का हेतु (संथवो) संस्तव-बाह्यपदार्थों का अधिक परिचय (अगुत्ती) अगुप्ति-इच्छा के संगोपन से हीन ( आयासो ) आयास-खेदका कारण ( अविओगो ) अवियोग-धन आदिको नहीं छोडना (अमुत्ती) अमुक्ति मलोभ-

दशा, (तण्हा) तृष्णा (अणत्थको) अनर्थक-परमार्थसे निरर्थक अनर्थ को करनेवाला (आसत्ती) आसक्ति-अधिकमोह (असंतोसोत्तिविय) इसप्रकार असन्तोष यहभी तस्स) उस परिग्रहके (एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि तीसंहोंति) ये कहे गये तीस और इसीतरह के दूसरे नाम होवे हैं ॥ २ ॥ १८ ॥

भावार्थ-इससूत्र में परिग्रह के तीस नाम कहे गये हैं जैसे-"परिग्रह १ सञ्चय २ चय ३ उवचय ४ निधान ५ सम्भार ६ सङ्कर ७ आदर ८ पिण्ड ९ द्रव्यसार १० महेच्छा ११ प्रतिबन्ध १२ लोभात्मा १३ महार्हि १४ उपकरण १५ और संरक्षण १६ भार १७ सम्पातोत्पादक १८ कलिकरण्ड १९ प्रविस्तर २० अनर्थ २१ संस्तव २२ अगुप्ति २३ आयास २४ अवियोग २५ अमुक्ति २६ तृष्णा २७ अनर्थक २८ आसक्ति २९ और असन्तोष ३० इसप्रकार परिग्रह के ये तीसनाम अन्वर्थक-सार्थक होते हैं । २ । १८ ॥

मूल-"तंच पुण परिग्गहं ममायंति लोभघत्था, भवनवर विमाणवासिणो परिग्गहरुती, परिग्गहे विविह करणबुद्धी, देव-निकायाय, असुर-भुयग-गरुल-विज्जुज्जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण-थणिय, अणवंनिय-पणवंनिय-इसिवातिय- भूतवाइय- कंदिय- महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा, पिसाय-भूय-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा य, तिरियवासी पंचविहा जोइसिया य देवा, बहस्सती, चंद-सूर-सुक्क-सनिच्छरा, राहु-धूमकेउ बुधाय, अंगारकाय, तत्ततवणिज्ज कणयवण्णा, जे य गहा जोइसम्मि[1] चारं चरंति, केऊ य गतिरतीया, अट्ठावीस तिविहा य नक्खत्त-देवगणा, नाणा संठाण संठियाओय तारगाओ, ठियलेस्सा-चारिणो य अविस्साम मंडलगती उवरिचरा, उड्ढलोगवासी दुविहा-वेमाणिया य देवा, सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग- लंतक-महासुक्क- सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर विमाणवासिणो, सुरगणा, गेवेज्जा, अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी, महिड्ढिका उत्तमा सुरवरा एवं च ते चउव्विहा सपरिसाविदेवा ममायंति, भवण वाहण जाण विमाण सयणासणाणि य नाणा विहवत्थभूसणा[2] पवर पहरणाणि य नानामणि-पंचवन्नदिव्वं च भायणविहिं, नाणाविह कामरूवे, वे उव्वित

1 क. जोइसियम्मि, 2 क. भूसणाणि य,

अच्छर गणसंघाते, दीवसमुद्दे, दिसाओ, विदिसाओ, चेतियाणि, वणसंडे, पव्वते गामनगराणि य, आरामुज्जाण काणणाणिय, कूव-सर-तलाग वावि-दीहिय देवकुल-सभ-प्पव-वसहि माइयाइं बहुकाइं, कित्तणाणि य परिगेण्हित्ता परिग्गहं विपुलदव्वसारं देवावि सइंदगा न तित्तिं न तुट्ठिं उवलभंति।

छाया-"तं च पुनः परिग्रहं ममायन्ते लोभग्रस्ता भवनवर विमान वासिनः, परिग्रह रुचयः परिग्रहे विविध करणबुद्धयो देवनिकायाश्चाऽसुरभुजग-गरुड-विद्युज्ज्वलन-द्वीपोदधि-दिक्-पवन-स्तनिताऽणपन्निक-पणपन्निक-इषि ऋद्धिवादिक-भूतवादिक-क्रन्दित-महाक्रन्दित-कूष्माण्ड-पतङ्गा देवाः, पिशाच-भूत-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्वाश्च, तिर्यग् वासिनः पञ्चविधा ज्यौतिष्काश्च देवाः, बृहस्पति चन्द्र सूर्य शुक्र शनिश्चराः, राहु धूमकेतु बुधाश्चाङ्गारकाश्च तप्ततपनीय कनक वर्णा, ये च ग्रहा ज्योतिष्केषु चारं चरन्ति, केतवश्च गतिरतयः, अष्टाविंशति विधाश्च नक्षत्र देवगणाः, नाना संस्थानसंस्थिताश्च तारकाः, स्थितलेश्याश्चारिणश्चाऽविश्रामसंडल गतयः, उपरिचरा ऊद्धर्वलोकवासिनो द्विविधा वैमानिकाश्च देवाः, सौधर्मेशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक- लान्तक- महाशुक्र- सहस्राराऽऽणत-प्राणताऽऽरणकाऽच्युताः कल्पवर विमान वासिनः सुरगणाः, ग्रैवेयका अनुत्तरा द्विविधाः कल्पातीता विमानवासिनो महर्द्धिका उत्तमाः सुरवराः। एवञ्चते चतुर्विधाः सपरिषदोऽपि देवा ममायन्ते, भवन-वाहन-यान-विमानशयनाऽऽसनानिच, नानाविध वस्त्रभूषणानि प्रवरप्रहरणानिच, नानामणि पञ्चवर्ण-दिव्यञ्च भाजनविधिं, नानाविध कामरूपा विकुर्विताऽप्सरो गण संघातान्, द्वीपसमुद्रान्, दिशो, विदिशश्चैत्यानि, वनखण्डान् पर्वतांश्च, ग्रामनगराणिच, आरामोद्यानकाननानिच, कूपसरस्तटाक-वापी-दीर्घिका देवकुल-सभाप्रपा-वसत्यादीनिबहुकानि, कीर्तनानि च परिगृह्य परिग्रहं विपुल द्रव्य सारं देवा अपि सेन्द्रका न तृप्तिं न तुष्टिमुपलभन्ते।

अन्वयार्थ-"( तं च पुण परिग्गहं ) और फिर उस परिग्रह को ( ममायंति ) स्वीकार करते हैं ( लोभघत्था भवणवरविमाणवासिणो ) लोभग्रस्त प्रधान भवन और विमानवासी देव ( परिग्गहरुती, परिग्गहे विविह करणबुद्धी ) जो परिग्रह की रुचि वाले हैं, तथा परिग्रह में वृद्धि करने की बुद्धि वाले हैं, ( देव निकाया य ) और देवसमूह (असुर-भुयग-गरुल विज्जुज्जलण-दीव-उदहि दिसि-पवण-थणिय-

अणवन्निय-पणवन्निय-इसिवातिय-भूतवाइय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा ) जैसे-असुर कुमार १, नागकुमार २, गरुड-सुपर्णकुमार ३, विद्युत्कुमार ४, अग्नि-कुमार ५, द्वीपकुमार ६, उदधिकुमार ७, दिक्कुमार ८, पवनकुमार ९, और स्तनित कुमार १०, ये दश भवनपति, अणपन्निक १, पणपन्निक २, इषिवादिक ३, भूतवादिक ४, क्रन्दित ५, महाक्रन्दित ६, कूष्माण्ड ७, और पतङ्गदेव ८, ये आठ व्यन्तर जाति के देव, ( पिसाय-भूय-जक्खरक्खस-किंनर किंपुरिस महोरग-गन्धव्वाय ) और पिशाच १, भूत २, यक्ष ३, राक्षस ४, किंनर ५, किम्पुरुष ६, महोरग ७, तथा गन्धर्व ८ ये आठ व्यन्तर विशेष [ कुल १६ जाति के व्यन्तर देव ] ( तिरियवासी पंचविहा जोइसिया य देवा ) और तिर्यग् लोक में रहने वाले पांच प्रकार के ज्योतिष्कदेव ( बहस्सती, चंद-सूर-सुक्क-सनिच्छरा ) बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र व शनैश्चर ( राहु-धूम-केउ-बुधा य, अंगारका य, तत्त-तवणिज्ज-कणयवण्णा ) राहु, धूमकेतु और बुध तथा तपाये हुए लाल सुवर्ण के समान वर्ण वाले अङ्गारक-मङ्गल ग्रहविशेष ( जे य गहा जोइसंमि चारं चरंति ) और जो दूसरेग्रह ज्योतिश्चक्र में संचार करते हैं ( केउ य गतिरतीया ) और केतु, गतिमें प्रसन्नता का अनुभव करने वाले ( अट्ठावीसतिविहा य नक्खत्त देवगणा ) और अट्ठाईस प्रकारके नक्षत्र देवोंका समूह ( णाणा-संठाण संठियाओ य तारगाओ ) फिर अनेक प्रकार के संस्थान-आकारवाले तारक-तारागण ( ठियलेस्सा चारिणो य अविस्साम मंडलगई उवरिचरा ) स्थिर कान्ति वाले-मनुष्य क्षेत्र से बाहर के ज्योतिष्क, और मनुष्य क्षेत्र के भीतर संचार करने वाले जो तिर्यग् लोक के ऊपरी भाग में वर्तमान तथा अविश्रान्त मंडल-वर्तुलाकार-गति से चलने वाले हैं, ( उड्ढलोगवासी दुविहा वेमाणिया य देवा ) और उर्द्ध्वलोक में बसने वाले दो प्रकार के-कल्पोपपन्न, तथा कल्पातीत-वैमानिक देव हैं। 'कल्पोपपन्न देवों को कहते हैं'-( सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद बंभलोग-लंतक-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर विमाण वासिणो सुरगणा ) सौधर्म १, ईशान २, सनत्कुमार ३, माहेन्द्र ४, ब्रह्मलोक ५, लान्तक ६, महाशुक्र ७ सहस्रार ८, आणत ९, प्राणत १०, आरण ११ और अच्युतकल्प १२ के प्रधान विमानों में रहने वाले देव समूह ( गेवेज्जा अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी ) ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी ये दो प्रकार के कल्पातीत 'कल्प-मर्यादा के बन्धनों से रहित' ( महिड्ढिका उत्तमा सुरवरा )

महर्द्धिक, उत्तम और प्रधान देव हैं ( एवं च ते ) और इस प्रकार वे ( चउव्विहा सपरिसाविदेवा ) चार प्रकार के परिषत् सहित भी देव ( भवण-वाहण-जाण विमाण-सयणासणाणिय ) भवन, वाहन-हाथी आदि, यान-रथ आदि अथवा घूमने के विमान और विमान-पुष्पक आदि तथा शय्या और आसन-भद्रासन सिंहासन आदि, ( नाणा विहवत्थ भूसणा-पवर-पहरणाणिय ) और अनेक प्रकार के वस्त्र, भूषण तथा उत्तम प्रहरण-शस्त्रास्त्रों को ( नाणामणि-पंचवन्न-दिव्वं च भायणविहिं ) और नाना भांति की मणिओं के पांच वर्ण के दिव्य भाजन जाति को तथा ( नाणाविह-कामरूवे, वेउव्वित-अच्छरगण-संघाते ) इच्छानुसार अनेक प्रकार के रूपवाले, वस्त्र आदि से विशेषशोभावाली अप्सरा समूह को ( दीव-समुद्दे, दिसाओ, विदिसाओ, चेतियाणि, वणसंडे पव्वते य ) द्वीपसमुद्र, दिशा-पूर्व आदि दिशायें, ईशान आदि विदिशायें चैत्य-माणवक चैत्य या ऐसे चैत्य स्तूप आदि, वनखण्ड और पर्वतों को ( गाम नगराणि य ) ग्राम, नगर और ( आरामुज्जाण काणणाणिय ) आराम उद्यान-बगीचा व कानन-जंगलों को और ( कूव-सर-तलाग-वाविदीहिय-देवकुल सभ-प्पव-वसहि माइयाइं ) कूप, सर-सरोवर तालाब, वापी-बावडी, दीर्घिका-लम्बीवापी, देवकुल-देवल सभा, प्रपा-प्याऊ और वसति इत्यादि ( बहुकाइं कित्तणाणि य ) और कीर्तनीय-स्तुतिके लायक धर्मस्थानों को ( ममायंति ) ममत्व भावसे स्वीकार करते हैं ( विपुल दव्वसारं परिग्गहं ) विपुल द्रव्य वाले परिग्रह को ( परिगेण्हित्ता ) ग्रहण करके ( सइंदगा देवावि ) इन्द्र सहित सब देव भी ( न तित्तिं नतुट्ठिं उवलभंति ) न तृप्ति और न सन्तोष को ही प्राप्त करते हैं।

मूल—"अच्चंत विपुल लोभाभिभूत[1] सत्ता, वासहर-इक्खुगार-वट्ट पव्वय-कुंडल-रुचगवर-माणुसोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-दहपति-रतिकर-अंजणकसेल दहिमुहऽवपातुप्पाय[2]-कंचणक-चित्त विचित्त-जम-कवर-सिहर कूडवासी, वक्खार अकम्मभूमिसु, सुविभत्त-भागदेसासु, कम्मभूमिसु जेऽवियनरा चाउरंत चक्कवट्टी, वासुदेवा, बलदेवा, मंडलीया, इस्सरा, तलवरा, सेणावती, इब्भा, सेट्ठी, रट्ठिया, पुरोहिया, कुमारा,

१ क.- लोभाभिभूयासत्ता, २ क. उवउप्पाय.

दंडणायगा, माडंबिया, सत्थवाहा, कोडुंबिया, अमच्चा, एए अन्ने य एव-मादी परिग्गहं संचिणंति, अणंतं असरणं दुरंतं, अधुवमणिच्चं, असासयं पावकम्मनेम्मं, अवकिरियव्वं, विणासमूलं, वहबंध-परिकिलेस बहुलं, अणंत संकिलेस कारणं, ते तं धण-कणग-रयण-निचयं पिंडिता चेव लोभघत्था संसारं अतिवयंति सव्वदुक्ख संनिलयणं । सू० । ३ । १८ ।

छाया-" अत्यन्त विपुल लोभाभिभूत सत्त्वा, वर्षधरेषुकार-वृत्त पर्वत-कुण्डल रुचकवर-मानुषोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-ह्रदपति-रतिकराऽञ्जनक शैल-दधिमुखावपातोत्पात-काञ्चन-चित्र-विचित्र-यमक-वर शिखर-कूट वासिनः, वक्षस्काराऽकर्मभूमिषु सुविभक्तभागदेशासु, कर्मभूमिषु येऽपिचनराश्चातुरन्त चक्रवर्तिनो वासुदेवाः, बलदेवाः, माण्डलिकाः, ईश्वरास्तलवराः, सेनापतयः, इभ्याः, श्रेष्ठिनो, रथिकाः, [ राष्ट्रिकाः ] पुरोहिताः, कुमाराः, दण्डनायकाः, माडम्बिकाः, सार्थवाहाः कौटुम्बिका, अमात्याः, एतेऽन्ये चैवमादयः परिग्रहं संचिन्वन्ति-अनन्तमशरणं दुरन्तमनित्यमशाश्वतं पापकर्मनेमिकम्, अपकरणीयं, विनाशमूलं वधबन्ध परिक्लेशबहुलम्, अनन्त संक्लेशकारणम्, ते तं धन-कनक-रत्ननिचयं-पिण्डयन्तश्चैव लोभग्रस्ताः संसारमति पतन्ति सर्व दुःखसंनिलयनम् । ३ । १८ ॥

अन्व०-"( अच्चंत विपुल लोभाभिभूत सत्ता ) अत्यन्त विशाल लोभ से घिरी-हुई बुद्धि वाले हैं, तथा ( वासहर-इक्खुगार-वट्ट पव्वय-कुंडल रुचगवर माणुसोत्तर कालोदधि-लवणसलिल-दहपति-रतिकर अंजणक-सेल-दहिमुह-वपा-तुप्पाय-कंचणक-चित्त-विचित्त-जमकवर-सिहर कूडवासो ) वर्षधर-हिमवान् आदि वर्षधर पर्वत, इषुकार,-धातकी खंड और पुष्करवर द्वीप के अर्द्धभाग करने वाले दक्षिण उत्तर लम्बे पर्वत विशेष, वृत्तपर्वत-शब्दापाति आदि गोलाकार पर्वत, कुंडल-जम्बुद्वीप से इग्यारहवें कुण्डलनामक द्वीप में कुण्डलाकार के पर्वत, रुचकवर-तेरहवें रुचक द्वीप के भीतर मण्डलाकार रुचकवर पर्वत, मानुषोत्तर-मनुष्यक्षेत्र की सीमा बनाने वाले मानुषोत्तर पर्वत, कालोदधिसमुद्र, लवण समुद्र, सलिला-गंगा आदि महानदियाँ ह्रदपति-पद्मह्रद आदि महाह्रद,तथा रतिकर पर्वत-आठवें नन्दीश्वर नामक द्वीप के कोण में रहे हुए चार झल्लरी के संस्थान के पर्वत, अञ्जनक पर्वत नन्दीश्वर के चक्रवाल में रहे हुए कृष्णवर्ण के पर्वत विशेष, दधिमुख-अंजनक पर्वतों के पासकी सोलह पुष्करिणी में रहे हुए १६ पर्वत, अवपात पर्वत-जिनपर वैमानिक

देव आकर मनुष्यक्षेत्र के लिए उतरते हैं, उत्पात पर्वत-भवनपति देव जिन स्थानों से ऊपर उठकर मनुष्यक्षेत्र में आते हैं, वैसे तिगिच्छ कूट आदि, काञ्चनक-उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्र में रहे हुए सुवर्णमय पर्वत, चित्र विचित्र-निषधपर्वत के पासकी शीतोदा नदी के किनारे चित्रकूट व विचित्रकूट नामके पर्वत, यमकवर-नीलवान् वर्षधर के समीप की शीतानदीके तटपर रहे हुए २ यमकवर पर्वत, शिखर समुद्रमें रहे हुए गोस्तूप आदि पर्वत और कूट-नन्दन वनके कूट आदि इनपर रहने वाले 'ऐसे देव भी तृप्ति नहीं पाते, फिर अन्य प्राणिओं की तो बात ही क्या' ? ( वक्खार अकम्म-भूमिसु सुविभत्त भागदेसासु कम्मभूमिसु ) वक्षस्कार-विजय के विभाग करने वाले चित्रकूट आदि, तथा अकर्मभूमि-हैमवत आदि भोग्य भूमि के क्षेत्रों में तथा अच्छी तरह विभागयुक्त देशवाली-कर्मभूमि-भरत आदि पन्द्रह भूमिओं में ( जेऽवियनरा ) और जो भी मनुष्य देवों की तरह रहते हैं 'उन मनुष्यों का विशेष प्रकार-( चाउरंत चक्कवट्टी, वासुदेवा, बलदेवा ) चारों ओर अन्त वाले षट् खण्ड भूमि के स्वामी-चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव ( मंडलीया ) माण्डलिक-मण्डलके अधिपति-महाराजा ( इस्सरा, तलवरा, सेणावती, इब्भा, सेट्ठी, रट्ठिया ) ईश्वर-युवराज आदि या भोगिक, तलवर-शिरपर सुवर्णपट्ट को बांधे हुए राजस्थानीय, सेनापति-सैन्य के नायक, इभ्य-हाथी को ढक देने जितने विशाल धन राशि के स्वामी, श्रेष्ठी-श्रीदेवता से अलंकृत चिह्न को मस्तक पर धारण करने वाले श्रेष्ठी-सेठ-राष्ट्रिक-राष्ट्र-देशकी चिन्ता करने वाले अर्थात् राष्ट्र की उन्नति और अवनति के विचार में नियुक्त अधिकारी विशेष ( पुरोहिया, कुमारा, दंडणायगा, माडंबिया, सत्थवाहा, कोडुंबिया, अमच्चा ) पुरोहित-शान्तिकर्म आदि करने वाले, कुमार-युवराज, दण्ड नायक-कोतवाल आदि, माडंबिक-छोटे राजा, सार्थवाह-बहुत से लोगों को साथ लेकर चलने वाले व्यापारी, कौटुम्बिक-ग्राम के मुख्य होकर जो सेवक हैं, अर्थात् राज्याश्रित मुख्य पुरुष, अमात्य-प्रधान ( ए ए अन्ने य एवमादी ) ये पूर्व कहे हुए विशिष्टलोक और इस प्रकार के दूसरे-इत्यादि मनुष्य ( परिग्गहं संचिणंति ) परिग्रह का सञ्चय करते हैं ( अणंतं असरणं दुरंतं अधुवमणिच्चं असासयं ) जो परिग्रह अनन्त-परिणाम रहित, अशरण-दुःखसे बचाने में असमर्थ, दुरन्त-दुःखमय अन्तवाला, अध्रुव-निश्चलता रहित अनित्य-अस्थिर और प्रतिक्षण विनाश होने से अशाश्वत है (पावकम्म नेम्मं अवकिरियव्वं, विणास (विसाल) मूलं, वह बंध परिकिलेस

बहुलं, अणंत संकिलेसकारणं ) पाप कर्म का मूल, ज्ञानिओं के लिये त्यागने योग्य, विशाल बहुत गम्भीर या विनाश के मूल वाला, परजीवों के मारने बांधने और क्लेश देने की प्रधानता वाला याने परिग्रह के कारण परजीवों को अधिक मात्रा में वध बन्धन और परिताप होता है, चित्त के अपरिमित क्लेश का कारण है ( ते तं धण-कणग-रयण-निचयं ) इस प्रकार के उस धन-सुवर्ण तथा रत्न के समूह को वे देव आदि ( पिंडिता चेव लोभघत्था ) सञ्चय करते हुए ही लोभ से ग्रसे गये ( सव्वदुक्ख संनिलयणं संसारं अतिवयंति ) सब प्रकार के दुःखों के घररूप संसार में जा पड़ते हैं।

भावार्थ-पूर्वोक्त परिग्रह को लोभ के वशीभूत भवनपति आदि देव स्वीकार करते हैं। देवों के विविध प्रकार और परिग्रह में आने वाले पदार्थों का वर्णन सहज है। अकर्मभूमि और कर्मभूमि के निवासी मानवों में कर्मभूमि के मनुष्य ही अधिक परिग्रह वाले हैं। इसलिए उनका विशेष वर्णन करते हैं-चक्रवर्त्ती आदि परिग्रह का सञ्चय करते हैं। यह परिग्रह अनन्त अशरण यावत् अनन्त दुःखों का कारण है। लोभ के अधीन वे देव आदि इसका सञ्चय करते हुए ही दुःखमय संसार में गिर जाते हैं। सू० ३। १८।

परिग्रह का सञ्चय जिस प्रकार किया जाता है उसका वर्णन करते हैं—

मूल—"परिग्गहस्स य अट्ठाए सिप्पसयं सिक्खए बहुजणो, कलाओ य बावत्तरिं सुनिउणाओ लेहाइयाओ सउण 'रुयावसाणाओ, चउसट्ठिं च महिलागुणे रतिजणणे, सिप्पसेवं, असि मसि किसि वाणिज्जं, ववहारं अत्थ-सत्थ-इसत्थ²-च्छरुगयं, विविहाओ य जोग जुंजणाओ, अन्नेसु एवमादिएसु बहुसु कारणसएसु जावज्जीवं नडिज्जए, संचिणंति मंदबुद्धी परिग्गहस्सेव य अट्ठाए करंति पाणाण वहकरणं, अलिय नियडि साइ संपओगे, परदव्व अभिज्जा, सपरदार³ अभिगमणा सेवणाए आयास विसूरणं कलह भंडण वेराणि य, अवमाणण विमाणणाओ, इच्छा महिच्छ-प्पिवास सततितिसिया, तण्हगेहिलोभवत्था, अत्ताणा, अणिग्गहिया करेंति कोहमाण मायालोभे, अकित्तणिज्जे परिग्गहे, चेव होंति नियमा सल्ला, दंडा, य गारवा य, कसाया, सन्ना य, कामगुण, अण्हगा य, इंदियलेसा-

१ क. गणियप्पहाणाओ, २ क. इसुसत्थे, ३ क. सपरदार:,

ओ, सयण संपओगा, सचित्ताचित्तमीसगाइं दव्वाइं अणंतकाइं इच्छंति परिघेत्तुं, सदेवमणुयासुरंमिलोए लोभपरिग्गहो जिणवरेहिं भणिओ, नत्थिएरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए। सू० ४।१६॥

छाया—"परिग्रहस्य चार्थाय शिल्पशतं शिक्षतेबहुजनः, कलाश्च द्वासप्तती: सुनिपुणा लेखादिकाः शकुनरुतावसाना (गणित प्रधानाः) चतुःषष्टीश्च महिलागुणान् रतिजनकान्, शिल्पसेवाम, असिमषिकृषिवाणिज्यं, व्यवहारमर्थशास्त्रेषुशास्त्रत्सरु, प्रगतं, विविधाश्च योगयोजनाः अन्येष्वेवमादिषु बहुषु कारणशतेषु यावज्जीवनं नटयन्ति (त्यन्ते) सञ्चिन्वन्ति मन्दबुद्धयः परिग्रहस्यैवार्थायकुर्वन्ति प्राणिनां वधकरणम्, अलीक-निकृति-साति सम्प्रयोगे परद्रव्याऽभिज्ञाः सपरदाराभिगमनाऽऽसेवनया आयासविसूरणाः कलह भाण्डनवैराणिच, अवमानन विमानना इच्छा महेच्छा पिपासा सततत्तृषिताः, तृष्णागृद्धिलोभग्रस्ताः, अत्राणा, अनिगृहीताः कुर्वन्ति क्रोधमान मायालोभान् अकीर्तनीयान्, परिग्रहे चैव भवन्ति नियमाः (त्), शल्यानि, दण्डाश्च, गौरवानिच, कषायाः, संज्ञाश्च, कामगुणा आस्रवाश्च, इद्रियलेश्याः, शयनसम्प्रयोगाः, सचिताऽचित्त-मिश्रकादीनि द्रव्याणि, अनन्तकानीच्छन्ति परिग्रहीतुं सदेवमनुजाऽसुरे लोके, लोभपरिग्रहो जिनवरैर्भणितो, नाऽस्तीदृशः पाशः प्रतिबन्धोऽस्ति सर्वजीवानां सर्वलोके ॥ सू० ४।१६ ॥

अन्व०—"(परिग्गहस्स य अट्ठाए) और परिग्रह के लिये (बहुजणोसिप्प सयं सिक्खए) बहुत से लोग सैकड़ों शिल्प सीखते हैं (कलाओ य बावत्तरिं सुनिपुणाओ लेहाइयाओ सउणरुयावसाणाओ गणियप्पहाणाओ) और अतिशय निपुण बहत्तर कलायें जिनमें लेखनकला आदि-प्रारम्भिक है, शकुनरुत-पक्षियों के शब्दज्ञान-जहां अन्तिम और गणित कला जहां प्रधान है ऐसी (चउसट्ठिंच महिला गुणे रतिजणणे) और स्त्री के चौंसठ गुण या कलायें जो रति-अनुराग पैदा करने वाले हैं, उन्हें सीखते हैं (सिप्पसेवं) शिल्प पूर्वक सेवा (असि मसि किसि वाणिज्जं, ववहारं, अत्थ सत्थ ईसत्थ च्छरुप्पगयं) असि-खड्गादिशस्त्राभ्यास, मषी-लिपि विज्ञान कृषि-खेती का कर्म और वाणिज्य तथा व्यवहार को, अर्थशास्त्र-राजनीति आदि इषु-अस्त्र-धनुर्वेद शास्त्र छुरिका आदि मुष्टि में ग्रहण करने का उपाय (विविहाओ य जोग जुंजणाओ) और अनेक प्रकार के वशीकरण आदि योग रचना को परिग्रह के लिये लोक सीखते हैं, (अन्नेसु एवमादिएसु बहुसु कारणसएसु जावज्जीवं-

नडिज्जए ) इस प्रकार के अन्य इत्यादि बहुत से-कारणशत-परिग्रह के सैकड़ोंहेतु-ओं-में प्रवृत्ति करते हुए जीवन पर्यन्त लोक नृत्य करते हैं ( संचिणंति मंदबुद्धी ) मन्दबुद्धि लोक परिग्रह का सञ्चय करते हैं ( परिग्गहस्सेव य अट्ठाए ) और परिग्रह के मतलब से ही ( पाणाण वहकरणं करेंति ) जीवों की हिंसा के कार्य करते हैं ( अलिय नियडि साइसंपओगे परदव्व अभिज्जा ) झूठ, आदरपूर्वक दूसरे को ठगना, और वस्तु में मिलावट करके उसको उत्कृष्ट बताना, तथा परद्रव्य में लोभ करना ( सपरदार अभिगमणा सेवणाए आयासविसूरणं ) स्वदार गमन में शरीर और मनके खेद को तथा पर स्त्री के सेवन में मानसिक पीडा को प्राप्त करते हैं ( कलह भंडण वेराणि य अवमाणणविमाणणाओ ) वचन से कलह, शरीर से भांडन-लड़ाई तथा वैर और अपमान-विनय भङ्ग एवं कदर्थनाओं को ( इच्छा महिच्छप्पिवास सतत तिसिया तण्हगेहि लोभघत्था ) सामान्य इच्छा और चक्र-वर्ती के समान बड़ी इच्छा रूप पिपासा-प्यास से निरन्तर तृषा वाले, तथा तृष्णा गृद्धि अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा और लोभ से ग्रसे गये ( अत्ताणा, अणिग्गहिया करेंति कोहमाण माया लोभे ) त्राण रहित और इन्द्रिय आदिपर निग्रह नहीं रखने वाले क्रोध मान माया एवं लोभरूप दुर्भाव को करते हैं ( अकित्तणिज्जे ) जो दुर्भाव निन्दा के कारण हैं ( परिग्गहे चेव नियमा सल्ला दंडा य गारवा य ) और परिग्रह में भी ( ही ) निश्चय से शल्य मायाशल्य आदि और दंड-मनोदंड आदि और गारव-ऋद्धि,रस तथा सातारूप तीन गारव और ( कसाया सन्ना य काम गुण अण्हगाय इंदियलेसाओ होंति ) क्रोध आदि चार कषाय, आहारसंज्ञा आदि चार संज्ञायें और शब्दरूप आदि पांच काम गुण, तथा पांच आस्रव, श्रोत्र आदि पांच असंयत इन्द्रियाँ, कृष्ण आदि अशुभ लेश्यायें होती हैं ( सयण संपओगा ) स्वजनों के संयोग तथा ( सचित्ताचित्तमीसगाइं अणंतकाइं दव्वाइं परिघेतुं इच्छंति ) सचित्त अचित्त और मिश्र ऐसे अनन्त द्रव्यों को ग्रहण करना चाहते हैं ( सदेव मणुया सुरंमिलोए ) देव-वैमानिक देवता मनुष्य तथा असुर सहित लोक-संसार में ( लोभ परिग्गहो जिणवरेहिं भणिओ ) लोभ से परिग्रह या लोभरूप परिग्रह तीर्थङ्करों ने कहा है ( नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो ) ऐसा पाश अन्य नहीं है ( पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए ) सब जीवों के लिये यह परिग्रह देवमनुष्य आदि सब लोक में मोहबन्ध का प्रमुख स्थान है । ४ । १६ ॥

भावार्थ–"परिग्रह के लिए ही बहुत से आदमी सैकड़ों प्रकार की शिल्पशिक्षा ग्रहण करते हैं तथा ७२ बहत्तर प्रकार की कलाएं जिनमें सुन्दर लेखन आदि मिश्रित हैं, पक्षिओं के शब्द ज्ञान और गणित कला एवं चौंसठ प्रकार के महिलागुण जो अनुरागोत्पादक हैं उनको सीखते हैं। तलवार, लेखन, खेती, व्यापार, लोकव्यवहार अर्थशास्त्र याने राजनीति, धनुर्वेद, वशीकरण आदि योग रचना को भी लोग परिग्रह के लिए ही सीखते तथा यावज्जीवन उसीमें रमते रहते हैं।

परिग्रह के लिए ही जीवहिंसा, झूठ, परवंचन, सम्मिश्रण, परद्रव्य में लोभ आदि घृणित कार्यों में उलझे रहते हैं। परिग्रही को स्व और परदार में भी शान्ति नहीं मिलती। वह वचन से कलह, शरीर से लड़ाई, तथा निरर्थक वैर और परापमान की इच्छा को बनाये रखता है। साधारण धनी से लेकर चक्रवर्तीपन की इच्छा से वह सतत सन्तप्त रहता है तथा अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा उसके दिल में जगी रहती है। इस तरह अवशेन्द्रिय बनकर वह क्रोध, मान, माया, एवं लोभरूप दुर्भावनाओं का शिकार बना रहता है जो निन्दनीय है। परिग्रह में ही शल्य और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, ऋद्धि, रस तथा सुखानुभवरूप गारव ( गौरव ) क्रोध आदि चार कषाय, आहार आदि चार संज्ञाएं और शब्दरूप आदि पांच काम गुण तथा पांच आस्रव, श्रोत्र आदि पांच असंयत इन्द्रियां तथा कृष्ण आदि अशुभ लेश्याएं होती हैं। परिग्रही, सचित्त, अचित्त और मिश्र रूप से अनन्त द्रव्यों को सदा ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं। सब जीवों के लिए मनुष्य तथा असुर लोक में लोभ परिग्रह के समान दूसरा कोई बन्धन नहीं है यही मोह बन्ध का प्रमुख स्थान है–ऐसा जिनवरों ने कहा है। ४। १६॥

मूल—"परलोगम्मि य नट्ठा, तमंपविट्ठा, महया मोह मोहियमती, तिमिसंधकारे तसथावर सुहुमबादरेसु, पज्जत्तमपज्जत्तग एवं जाव परियट्टंति, दीहमद्धं जीवा लोभवससंनिविट्ठा। एसोसो परिग्गहस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो, महब्भओ, बहुरयप्पगाढो, दारुणो कक्कसो, असाओ वाससहस्सेहिं मुचइ, नयअवेतित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एव माहंसु नायकुलनंदणो महप्पाजिणोउ वीरवर नाम धेज्जो, कहेसी य परिग्गहस्स फल विवागं। एसोसो परिग्गहो पंचमोउ नियमा नाणामणि-

कणग रयणमहरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिहभूयो। चरिमं अधम्मदारं समत्तं। सू० ५।२०॥

छाया—"परलोके च नष्टास्तमः प्रविष्टाः, महामोह मोहितमतयस्तमिस्रान्धकारे त्रसस्थावर सूक्ष्मवादरेषु पर्याप्ताऽपर्याप्तकेषु, एवंयावत्परिवर्तन्ते [ पर्यटन्ति ] दीर्घमध्वानं जीवा लोभवशसंनिविष्टाः। एषस परिग्रहस्यफलविपाक ऐहिलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो बहुरजः प्रगाढो, दारुणः कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैमुच्यते नाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्षइति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवर नामधेयः,कथयिष्यतिच परिग्रहस्य फलविपाकम्। एषस-परिग्रहः पञ्चमस्तु नियमेन ( मात्) नानामणि कनकरत्न महार्हः, एवंयावदस्य मोक्षवर मौक्तिक मार्गस्य परिघभूतं चरममधर्मद्वारं समाप्तम्॥ सू० ५।२०॥

अन्व-"(परलोगंमि य नट्ठातमंपविट्ठा) परलोक और इसलोक में सन्मार्ग से च्युत होने के कारण नष्ट तथा अज्ञानरूप अन्धकार में निमग्न हैं (महयामोह मोहियमती) अतिशय मोह से मोहित मतिवाले जीव (तिमिसंधकारे तसथावर सुहुमवादरेसु पज्जत्तमपज्जत्तग एवं जाव रात्रि की तरह अज्ञानरूप अन्धकार में त्रस, स्थावर, सूक्ष्म और बादर स्थानों में पर्याप्त तथा अपर्याप्त रूप से इस प्रकार यावत् लोभवस संनिविट्ठा जीवा दीहमद्धं परियट्टंति, लोभ के कारण परिग्रह में लगे हुए जीव दीर्घ-लम्बे मार्ग वाले संसार में परिभ्रमण करते हैं (ऐसोसो परिग्गहस्स फलविवागो) यह वह परिग्रह का फलस्वरूप विपाक (इहलोइओ, परलोइओ, अप्पसुहो, बहुदुक्खो, महब्भओ, बहुरयप्पगाढो, दारुणो, कक्कसो) इसलोक सम्बन्धी, तथा परलोक सम्बन्धी अल्पसुख और बहुत दुःख वाला, महाभय को उत्पन्न करने वाला, कर्मरज की अधिकता से अत्यन्त गाढ, दारुण और कर्कश—कठोर है (असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ) दुःखरूप वह परिणाम हजारों वर्षों से छूटता है (न अवेतित्ता अत्थिहुमोक्खोति) बिना भोगे उस कटु फल से मोक्ष नहीं होता है (एवमाहंसु नायकुल नंदणो महप्पा जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात कुल नन्दन महात्मा महावीर नाम के तीर्थङ्कर ने कहा है (कहेसी य परिग्गहस्सफल विवागं) और परिग्रह के फलरूप विपाक को कहेगा। (एसोसो परिग्गहो पंचमो उ नियमा) वह [वैसा] यह परिग्रह पांचवां निश्चयसे अधर्मद्वार है (नाणा मणि कणग रयण महरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिह भूयो) अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न

मू०—पंचेव य उज्झिऊणं, पंचेव य रक्खिऊण भावेण।
कम्मरय विप्पमुक्का, सिद्धिवर मणुत्तरं जंति ( त्तिबेमि ) ॥ ५ ॥

छाया—पञ्चैव चोज्झित्वा, पञ्चैव च रक्षित्वा भावेन।
कर्मरजो विप्रमुक्ताः सिद्धिवर मनुत्तरं यान्ति ॥ ५ ॥ इति ब्रवीमि ॥

* इति पंचासवदारा समत्ता *

अन्वयार्थ-"( एएहिं पंचहिं असंवरेहिं ) पूर्वोक्त इन पांच असंवर-आस्रवों से ( अणुसमयं ) प्रति समय ( रयमादिणितु ) जीवस्वरूप को रंगने के कारण ज्ञानावरण आदि कर्मरज का सञ्चय करके ( चउव्विहगतिपेरंतं संसारं ) चार प्रकार की गति रूप अन्त वाले संसार में ( अणुपरियट्टंति ) पर्यटन करते हैं। १।

( अकयपुण्णाजे ) पुण्य से हीन जो प्राणी हैं 'वे' ( अणंतए ) अनन्त ( सव्वगई ) पक्खंदे ) देव आदि सब गतियों के अनन्त गमनों को ( काहेंति ) करेंगे, कौन ? ( जे य ण सुणंति धम्मं ) जो लोग धर्मको नहीं सुनते और ( जे य ) जोभी ( सोऊण ) सुनकर ( पमायंति ) आचरण में प्रमाद करते हैं ॥ २ ॥

( मिच्छादिट्ठीअबुद्धीयानरा ) मिथ्या दृष्टिवाले अज्ञानी नर ( बद्धनिकाइयकम्मा ) आत्मप्रदेश में निकाचित कर्मों को बांधने वाले ( अणुसिट्ठं पि बहुविहं ) गुरुजनों से उपदिष्ट बहुत प्रकार के ( धम्मं ) धर्म को ( सुणेंति न य करेंति ) सुनते हैं परन्तु उसका आचरण नहीं करते हैं ॥ ३ ॥

( मुहा ) निस्स्वार्थबुद्धि से दिये गये ( जिणवयणं ओसहं ) जिनवचन रूप औषध को ( जं णेच्छह पाउं ) जिसलिये तुम पीना नहीं चाहते हो इसलिये ( गुणमहुरं ) मूलोत्तर गुण से मधुर तथा ( सव्वदुक्खाणं विरेयणं ) सब दुःखों का विरेचन यह जिनवचन रूप औषध ( किं सक्का काउं जे ) क्या कर सकता है ? ॥४॥

( पंचेवयउज्झिऊणं ) हिंसा आदि पांच आस्रवों को छोड़कर और ( पंचेवभावेण रक्खिऊण ) अहिंसा आदि पांचो संवरों का भाव से पालन करके ( क[illegible]

मुक्ता ) कर्मरज से सर्वथा मुक्त हुए जीव ( सिद्धिवरमणुत्तरंजंति ) सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से मिलने योग्य उत्तम और सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ सर्वथा कर्मों से मुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं।

भावार्थ—"इन पांच गाथाओं का सार इसप्रकार है–इन वर्णितरूप वाले पांच आस्रवों से प्रतिसमय कर्म परमाणुओं का सञ्चय करके जीव संसार में पर्यटन करते हैं। जो पुण्यहीनप्राणी धर्म को नहीं सुनते, अथवा सुनकर धर्ममें प्रमाद करते हैं आचरण में नहीं लाते, वे देव आदि गतिओं में अनन्त बार जन्म ग्रहण करते हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानीजीव प्राक्तन गाढ अशुभ कर्म के उदय से गुरु के उपदेश किये गये बहुत प्रकार के धर्म को श्रवण करके भी आचरण में नहीं लाते हैं ॥ ३ ॥ निस्पृह भाव से दिये गये जिन वचन रूप औषध को जो तुम पीना भी नहीं चाहते, तो सब दुःखों का नाश करने वाला और गुणों से मधुर वह औषध क्या कर सकता है ? हिंसा आदि पांच आस्रवों का त्याग कर और अहिंसा सत्य आदि संवरों का पालन करके सर्वथा कर्मों से विमुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं ॥ १–५ ॥

## ❀ इति अधर्मद्वार सम्पूर्ण हुए ❀

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

# उत्तर-खण्डम्

## पंच संवर द्वाराणि

# *उत्तर खण्ड*

## प्रथम संवर द्वार



सम्बन्ध-"पूर्व खण्ड में कर्मबन्ध के कारण भूत हिंसा, झूठ आदि पांच आस्रवों का वर्णन किया। यहां उनके विपरीत अहिंसा, सत्य आदि पांच संवर जो कर्म प्रवाह को रोकने के कारण हैं, उनका वर्णन किया जायगा।

संवराध्ययन का उपक्रम करते हुए सर्व प्रथम सूत्रकार संग्रहणी गाथाओं से प्रतिज्ञा प्रकट करते हैं, जो इस प्रकार है—

मू०—"जंबू !—एत्तो संवरदाराइं—पंच वोच्छामि आणुपुव्वीए।
जह भणियाणि भगवया, सव्वदुहविमोक्खणट्ठाए ॥ १ ॥
पढमं होइ अहिंसा, बितियं सच्चवयणंतिपन्नत्तं।
दत्तमणुन्नाय संवरो य, बंभचेरमपरिग्गहत्तं च ॥ २ ॥
तत्थ पढमं अहिंसा, तसथावर सव्वभूयखेमकरी।
तीसे सभावणाओ (ए) किंचीवोच्छंगुणुद्देसं ॥ ३ ॥

छाया-'हे जम्बूः ! इतः संवरद्वाराणि पञ्चवक्ष्यामि आनुपूर्व्या।
यथा भणितानि भगवता सर्वदुःख विमोक्षणार्थाय ॥ १ ॥
प्रथमं भवत्यहिंसा, द्वितीयं सत्यवचनमितिप्रज्ञप्तम्।
दत्त मनुज्ञातं संवरश्च, ब्रह्मचर्यमपरिग्रहत्वञ्च ॥ २ ॥
तत्र प्रथमाऽहिंसा, त्रसस्थावर सर्वभूत क्षेमकरी।
तस्याः सभावनायाः किञ्चिद्वक्ष्यामि गुणोद्देश्यम् ॥ ३ ॥

१ प्रथम संवराध्ययन का प्रतिज्ञासूत्र-

अन्वयार्थ—"( जंबू ) हे जंबू ( एत्तो ) आस्रवद्वार के बाद अब यहां से ( आणु पुव्वीए पंच संवरदाराइं वोच्छामि ) पहले दूसरे आदि क्रम से पांच संवरद्वारों-अर्थात् कर्म निरोध के उपायों-को कहूंगा ( भगवया जह भणियाणि ) भगवान् ने जैसे उन संवराध्ययनों को कहे हैं ( सव्वदुह विमोक्खणट्ठाए ) सब दुःखों से छुटकारा पाने के लिये, मैं इनको कहूंगा, पांचों के नाम-( पढमं ) प्रथम ( अहिंसा ) अहिंसारूप संवर ( होइ ) होता है ( बितियं ) दूसरा ( सच्चवयणंति ) सत्य वचनरूप ( दत्तमणुन्नाय संवरो य ) और दाता से दिया गया व आज्ञा प्राप्त अशन आदि का ग्रहण तीसरा संवर ( पन्नत्तं ) कहा गया है ( बंभचेरमपरिग्गहत्तं च ) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह चतुर्थ तथा पञ्चम संवर है।

( तत्थ ) अहिंसा आदि उन पांच संवरों में ( पढमं अहिंसा ) प्रथम संवर अहिंसा है, जो-( तसथावर सव्व भूय खेमकरी ) त्रसस्थावररूप सब प्राणिओं का क्षेम करने वाली है (सभावणाओतीसे ) पांच भावनाओं से युक्त उस अहिंसा के ( किंची गुणुद्देसं वोच्छं ) कुछ-अल्पमात्र-गुण वर्णन या गुण भाग को कहूँगा।

भाव-" 'प्रथम गाथा में'-आस्रवों के बाद भगवान् के कथनानुसार सर्व दुःखों के विनाशार्थ मैं संवर द्वारों को कहूंगा। इस प्रतिज्ञा वाक्य से आस्रव संवर का सम्बन्ध और संवरों का कथनरूप अभिधेय तथा दुःखनाशरूप हेतु बताया गया है। जिससे सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन की स्पष्टता हो जाती है।

दूसरी गाथा में-अहिंसा १ सत्य २ दत्तानुज्ञात ३ ब्रह्मचर्य ४ और अपरिग्रह ५ ऐसे पांचों संवरों का नाम रूपसे परिचय दिया गया है।

तीसरी गाथा में-कहा गया है कि त्रस स्थावररूप जीवमात्र का क्षेमविधान करने वाली अहिंसा प्रथम संवर है। भावनायुक्त उस अहिंसा के कुछ गुण भाग का कथन करूंगा।

अध्ययन के प्रारम्भ में शास्त्रकार पांचों संवरों के उत्कीर्तन पूर्वक अहिंसा का स्वरूप कहते हैं-

मूल-"ताणि उ इमाणि सुव्वय! महव्वयाइं, [1]लोकहिय सव्वयाइं, सुयसागर देसियाइं, तव संजम महव्वयाइं, सीलगुणवरव्वयाइं, सच्चज्जव-

१ लोएधिइअ व्वयाइं ( पा० )

व्वयाइं नरगतिरिय मणुय देवगति–विवज्जकाइं, सव्वजिणसासणगाइं, कम्मरयविदारगाइं, भवसयविणासणकाइं, दुहसय विमोयणकाइं, सुहसय पवत्तणकाइं, कापुरिस दुरुत्तराइं, सप्पुरिस निसेवियाइं, निव्वाण गमण मग्ग सग्गपणायगाइं, संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया।

छाया–"तानित्विमानि सुव्रत ! महाव्रतानि, लोकहितसद्व्रतानि, श्रुतसागर देशितानि, तपः संयमसहाव्रतानि, शीलगुणवरव्रतानि, नारकतिर्यङ्‌ मनुजदेवगति विवर्जकानि, सर्वजिन शासनकानि, कर्मरजो विदारकाणि, भवशत विनाशकानि, दुःखशतविमोचकानि, सुखशतप्रवर्तकानि, कापुरुष दुरुत्तरकाणि, सत्पुरुष निषेवितानि, निर्वाणगमनमार्गस्वर्गप्रणायकानि, संवरद्वाराणि पञ्च कथितानि तु भगवता।

अन्व०–"( सुव्वय ! ) हे सुव्रतमुने ! ( ताणि उ इमाणि महव्वयाणि ) पूर्व कहे गये वे अहिंसा आदि, ये महाव्रत–हैं ( लोकहिय सव्वयाइं सुयसागर देसियाइं ) संसार में धैर्य देने वाले या चित्त की शान्ति रखने वाले सद्व्रत शास्त्र सागर में दिखाये गये हैं, ( तव संजम महव्वयाइं ) अनशन आदि महातप और संयम जिनमें नष्ट नहीं होते अर्थात् तप व संयम के रक्षण करने वाले ( सीलगुण वरव्वयाइं ) शील और उत्तमगुणों के समूह वाले ( सच्चज्जवव्वयाइं ) सत्य एवं सरलता प्रधान व्रत ( नरग–तिरिय मणुय–देवगति–विवज्जकाइं ) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप संसार का विवर्जन–उच्छेद–करने वाले ( सव्वजिण सासणगाइं ) सब तीर्थङ्करों से कहे गये होने से शासनरूप ( कम्मरय–विदारगाइं ) कर्मरज के विदारण करने वाले ( भवसय विणासणकाइं, दुहसय विमोयणकाइं ) सैकड़ों भवों को मिटाने वाले इसीलिये–सैकड़ों दुःखों से छुडाने वाले ( सुहसय–पवत्तणकाइं ) और सैकड़ों सुखों को मिलाने वाले हैं–( कापुरिसदुरुत्तराइं, सप्पुरिसनिसेवियाइं ) कायर पुरुषों के द्वारा दुःख से पार करने योग्य और सत्पुरुषों से सेवन किये गये हैं ( णिव्वाणगमणमग्ग सग्गपणायगाइं ) निर्वाण गमन में मार्ग के समान तथा स्वर्ग में ले जाने वाले ( संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया ) ऐसे पांच संवर द्वारों को भगवान ने कहे हैं।

मूल–"तत्थ पढमं अहिंसा जासा सदेवमणुयासुररसलोगस्स भवति दीवो, ताणं, सरणं, गती पइट्ठा १ निव्वाणं २ निव्वुई ३ समाही ४ [1]सत्ती

१ क. संती।

५ कित्ती ६ कंती, ७ रती य ८ विरती य ६ सुयंग १० तित्ती ११ दया १२ विमुत्ती १३ खंती १४ सम्मत्ताराहणा १५ महंती १६ बोही १७ बुद्धी १८ धिती १६ समिद्धी २० रिद्धी २१ विद्धी २२ ठिती २३ पुट्ठी २४ नंदा २५ भद्दा २६ विसुद्धी २७ लद्धी २८ विसिट्ठदिट्ठी २६ कल्लाणं ३० मंगलं ३१ पमोओ ३२ विभूती ३३ रक्खा ३४ सिद्धावासो ३५ अणासवो ३६ केवलीणट्ठाणं ३७ सिवं ३८ समिई ३६ सील(लं) ४० संजमो ४१ त्तिय सील [1]परिघरो ४२ संवरो ४३ य गुत्ती ४४ ववसाओ ४५ उस्सओ ४६ जन्नो ४७ आयतणं ४८ जतण ४६ मप्पमातो ५० अस्सासो ५१ वीसासो ५२ अभओ ५३ सव्वस्सवि अमाघाओ ५४ चोक्खपवित्ता ५५ सूती ५६ पूया ५७ विमल ५८ पभासा ५६ य निम्मलतर ६० त्ति, एवमादीणि नियय गुण निम्मियाइं पज्जवनामाणि होंति अहिंसाए भगवतीए। सूत्रम् १। २१ ॥

छाया–"तत्र प्रथमं अहिंसा यासा सदेव मनुजाऽसुरस्य लोकस्य भवति द्वीपः, त्राणं, शरणं, गतिः, प्रतिष्ठा–१ निर्वाणम् २ निर्वृत्तिः ३ समाधिः ४ शक्तिः ५ कीर्तिः ६ कान्तिः ७, रतिश्च ८ विरतिश्च ६ श्रुताङ्ग तृप्तिः १० ११, दया १२ विमुक्तिः १३ क्षान्तिः १४, सम्यक्त्वाऽऽराधना १५, महत्ता १६, बोधिः १७, बुद्धिः १८ धृतिः १६, समृद्धिः २०, ऋद्धिः २१, वृद्धिः २२, स्थितिः २३, पुष्टिः २४, नन्दा २५ भद्रा २६, विशुद्धिः २७, लब्धिः २८, विशिष्ट दृष्टिः २६, कल्याणम् ३०, मङ्गलम् ३१ प्रमोदः ३२, विभूतिः ३३, रक्षा ३४, सिद्धावासः ३५, अनास्रवः ३६, केवलिनां स्थानम् ३७, शिवम् ३८, समितिः ३६, शीलम् ४०, संयमः ४१ इति च, शीलपरिगृहं ४२, संवरः ४३, च गुप्तिः ४४, व्यवसायः ४५, उच्छ्रयः ४६ यज्ञः[2] ४७, आयतनम् ४८, यतना ४६ अप्रमादः ५० आश्वासः ५१, विश्वासः ५२, अभयः ५३, सर्वस्याप्यमाघातः–अमारिः ५४, चोक्ष पवित्रा ५५, शुचिः ५६, पूता–पूजा ५७, विमला ५८, प्रभासा ५६, च निर्मलतरा ६०। इत्येवमादीनि नियतगुणनिर्मितानि पर्यायनामानि भवन्ति–अहिंसाया भगवत्याः ॥सू० १। २१ ॥

अन्व०–"प्रथम संवर का स्वरूप कहते हैं–( तत्थपढमं अहिंसा ) उन पांच संवरों में अहिंसा प्रथम संवर है ( जा सा ) जो वह अहिंसा ( सदेव-मणुया-सुरस्स लोगस्स दीवो ताणं भवति ) देवता मनुष्य तथा असुर सहित लोक के लिये संसार

---

१ क. सीलघरो। २ यत्न इति वा।

समुद्र में डूबते हुए को द्वीप के समान आश्रयदाता या दीपक की तरह मार्ग दर्शक है इसलिये त्राण-विपत्ति से रक्षण करने वाली होती है, 'फिर यह अहिंसा'-( सरणं गई ) शरण-सम्पत्तिदायक या घरके समान रक्षक तथा गति याने कल्याणार्थिओं के आश्रयण करने योग्य है। अब अहिंसा के नाम कहते है-( पइट्ठा ) सब गुण तथा सुख इसमें रहते हैं इसलिये इसे 'प्रतिष्ठा' कहते हैं ( निव्वाणं निव्वुई ) मोक्ष का हेतु तथा चित्त शान्ति का कारण होने से यह 'निर्वाण' तथा निर्वृति कहाती है, ( समाही ) समता का कारण होने से 'समाधि' ( सत्ती ) आत्मबल का कारण होने से यह 'शक्ति' अथवा शान्ति है ( कित्ती ) सुयश के कारण होने से कीर्ति ( कंती ) कान्ति-कमनीयता का कारण ( रती य ) और रति-सन्तोष का कारण ( विरतीय ) और विरति-हिंसा रूप पाप से निवृत्ति वाली ( सुयंगतित्ती ) श्रुताङ्ग-श्रुतज्ञान इसका कारण है, और तृप्ति-आत्मसन्तोष का कारण होने से यह तृप्ति है ( दया ) दया-प्राणिओं की रक्षा ( विमुत्ती ) विमुक्ति-बन्धमुक्ति का कारण (खंती) क्षान्ति-क्रोध निग्रहरूप ( सम्मत्ताराहणा ) सम्यक्त्वाराधना-सम्यक्त्वधर्म की आराधना करने वाली ( महंती ) महती-सभी धार्मिक अनुष्ठानों का इसमें समावेश होने से यह बृहती है ( बोही ) सद्धर्म की प्राप्ति अहिंसारूप है, अतः अहिंसा को 'बोधि' कहते हैं अथवा सम्यक्त्व का कारण होने से अहिंसा 'बोधि' कहाती है ( बुद्धी ) बुद्धि-बुद्धि की सफलता का कारण ( धिती ) धृति-चित्त की स्थिरता से पालने योग्य ( समिद्धी रिद्धी ) ऋद्धि समृद्धि का कारण होने से अहिंसा भी 'समृद्धि ऋद्धि' नामवाली है ( विद्धी ) वृद्धि ( ठिती ) अनादि अनन्त मोक्ष स्थिति का कारण होने से 'स्थिति' ( पुट्ठी ) पुष्टि-पुण्यवृद्धि का कारण, ( नंदा ) नन्दा-समृद्धि दायक ( भद्दा ) भद्रा-कल्याण करने वाली ( विसुद्धी ) विशुद्धि-आत्मशुद्धि का कारण ( लद्धी ) लब्धि-विशिष्टलब्धिओं का हेतु ( विसिट्ठदिट्ठी ) उत्तम दृष्टि रूप होने से विशिष्ट दृष्टि ( कल्लाणं मंगलं ) कल्याण और विघ्न विनाशक होने से इसको मङ्गल भी कहते हैं ( पमोओ ) प्रमोद-हर्षोत्पादक ( विभूती ) सर्व वैभव का कारण होने से विभूति ( रक्खा ) रक्षा ( सिद्धावासो ) सिद्धयावास-मोक्षवास-का कारण ( अणासवो ) अनास्रव-कर्मबन्ध के निरोध का उपाय ( केवलीणठाणं ) केवलिओं का स्थान ( सिवं ) उपद्रव रहित होने से शिव ( समिई ) समिति-सम्यक् प्रवृत्ति ( सील ) पवित्र आचार रूप होने से शील ( संजमोत्ति य ) और यतना प्रधान होने

मङ्गल ३१ प्रमोद ३२ विभूति ३३ रक्षा ३४ सिद्ध्यावास ३५ अनास्रव ३६ केवलिस्थान ३७ शिव ३८ समिति ३९ शील ४० संयम ४१ और शील परिगृह ४२ संवर ४३ गुप्ति ४४ व्यवसाय ४५ उच्छ्रय ४६ यज्ञ ४७ आयतन ४८ यजन या यतन ४९ अप्रमाद ५० आश्वास ५१ विश्वास ५२ अभय ५३ असाघात-अमारि ५४ चोक्ष पवित्रा ५५ शुचि ५६ पूता अथवा पूजा ५७ विमल ५८ प्रभासा ५९ और निर्मलतरा ६० इत्यादि नियतगुणों से निष्पन्न भगवती अहिंसा के 'पर्यायनाम' होते हैं। मतलब यह है कि अहिंसा के भीतर छिपे-जो जो गुण हैं, तावन्मात्र के प्रकाशक ये ६० नाम हैं। इनके वाचक नाम तो सहस्रों हो सकते हैं। सूत्र १। २१॥

मूल-"एसा सा भगवती अहिंसा, जा सा भीयाण विव सरणं, पक्खीणं पिव [1]गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं, समुद्दमज्झेव पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्ठियाणं च (व) ओसहिवलं, अडवीमज्झे विसत्थगमणं, एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा जासा पुढविजल अगणि मारुय वणस्सइ बीज हरित जलचर थलचर खहचर तसथावर सव्वभूय खेमकरी। एसा भगवती अहिंसा जासा अपरिमियनाण दंसण धरेहिं, सीलगुण विणय तव संजम नायकेहिं, तित्थंकरेहिं, सव्वजगजीव वच्छलेहिं, तिलोगमहिएहिं, जिणचंदेहिं, सुट्ठुदिट्ठा, ओहिजिणेहिं विण्णाया, उज्जुमतीहिं विदिट्ठा, विपुलमतीहिं विविदिता, पुव्वधरेहिं अधीता, वेउव्वीहिं पतिन्ना, आभिणिबोहियनाणीहिं, सुयनाणीहिं, मणपज्जवनाणीहिं, केवलनाणीहिं, आमोसहिपत्तेहिं, खेलोसहिपत्तेहिं, जल्लोसहिपत्तेहिं, विप्पोसहिपत्तेहिं, सव्वोसहिपत्तेहिं, बीजबुद्धीहिं, कुट्ठबुद्धीहिं, पदाणुसारीहिं, संभिन्नसोतेहिं, सुयधरेहिं, मणबलिएहिं, वयबलिएहिं, कायबलिएहिं, नाणबलिएहिं, दंसणबलिएहिं, चरित्तबलिएहिं, खीरासवेहिं, महुआसवेहिं, सप्पियासवेहिं, अक्खीणमहाणसिएहिं, चारणेहिं, विज्जाहरेहिं, चउत्थभत्तिएहिं,[2] एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं, उक्खित्तचरएहिं, निक्खित्तचरएहिं, अंतरचरएहिं, पंतचरएहिं, लूहचरएहिं, समुदाणचरएहिं, अन्नइलाएहिं, मोणचरएहिं, संसट्ठकप्पिएहिं, तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं, उवनिहिएहिं, सुद्धेसणिएहिं, संखादत्तिएहिं, दिट्ठलाभिएहिं, अदिट्ठलाभिएहिं, पुट्ठलाभिएहिं, आ-

१ गगणं-इति सगतम्। २ क. फासु ओवणीयं।

पुरिमार्द्धिकैरेकाशनिकै, निर्विकृतिकैर्भिन्नपिण्डपातिकैः, परिमित पिण्डपातिकैरन्ता-ऽऽहारैः, प्रान्ताऽऽहारैरसाऽऽहारैर्विरसाऽऽहारै, रुक्षाऽऽहारैस्तुच्छाऽऽहारैरन्त-जीविभिः, प्रान्तजीविभी, रूक्षजीविभिः तुच्छजीविभि रुपशान्त जीविभिः प्रशान्त-जीविभिर्विविक्तजीविभिरक्षीरमधुसर्पिष्कैरमद्यमांसाशिभिः, स्थानायितैः ( स्थानाभि-ग्राहकैः ) प्रतिमास्थायिभिः, स्थानोत्कटुकैः, वीरासनकैर्नैषधिकै,-र्दण्डायतिकै,-र्लगण्डशायिभिरेकपार्श्विकैरातापनैरप्रावृतै, रनिष्ठीवकैरकण्डूयकै,-र्धूतकेशश्मश्रुरोम नखैः, सर्वगात्र प्रतिकर्मविप्रमुक्तैः समनुचीर्णा, श्रुतधरविदितार्थकायबुद्धिभिर्धीरमति बुद्धयश्च ये, ते-आशीर्विषोग्रतेजःकल्पा निश्चय व्यवसाय पर्याप्तकृतमतिका नित्यं स्वाध्यायध्यानाऽनुबद्ध धर्मध्यानाः, पञ्चमहाव्रत चरित्रयुक्ताः, समिताः समितिषु, शमितपापाः, षड्विधजगद्वत्सला, नित्यमप्रमत्ताः एतैरन्यैश्च या साऽनुपालिता भगवती ।

अन्व०-" ( एसा सा भगवती अहिंसा ) यह वह भगवती अहिंसा ( जासा ) जो यह ( भीयाण विव सरणं ) भीतों-डरे हुए-के लिये रक्षक के समान रक्षा करने वालीसी ( पक्खीणं पिव गमणं ) पक्षिओं के लिये आकाश-गमन-की तरह हित कारी ( तिसियाणं पिव सलिलं ) प्यासों के लिये पानी के समान और ( खुहियाणं पिव असणं ) भूखों के लिये भोजन की तरह ( समुदमज्झेव पोतवहणं ) समुद्र के मध्यमें जहाज की तरह ( चउप्पयाणं च आसम पयं ) चौपाये जीवों के लिये आश्रम स्थान-बाड़े-की तरह ( दुहट्ठियाणं च ओसहिबलं ) और रोगिओं के लिये औषधी की तरह तथा ( अडवीमज्झे विसत्थगमणं ) अटवी में भूले हुए को जैसे सार्थ-जन-समूह का मिलना हितकर होता है ( एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा ) इन सबसे अतिशय विशिष्ट अहिंसा प्राणिओं के लिये हितकारिणी है ( जासा ) जोकि वह ( पुढविजल-अगणि-मारुय-वणस्सइ-बीज हरित-जलचर-जथलर-खहचर-तस-थावर-सव्वभूय खेमकरी ) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक तथा बीज व हरित एवं जलचर, स्थलचर, खेचर रूप त्रस स्थावर जीवमात्रके लिये क्षेम करने वाली ( एसा भगवती अहिंसा ) यह भगवती अहिंसा है, ( जासा ) जो कि ( अपरिमिय नाणदंसणधरेहिं ) अपरिमित ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले ( सीलगुण-विणय-तव-संजमनायकेहिं ) शील रूप गुण और तप संयम व विनय इनके नायक ( सव्वजगजीववच्छलेहिं ) सभी जगज्जीवोंके वत्सल ( तिलोगमहि-

पुरिमार्द्धिकैरेकाशनिकै, निर्विकृतिकैर्भिन्नपिण्डपातिकैः, परिमित पिण्डपातिकैरन्ता-ऽऽहारैः, प्रान्ताऽऽहारैररसाऽऽहारैर्विरसाऽऽहारै, रूक्षाऽऽहारैस्तुच्छाऽऽहारैरन्त-जीविभिः, प्रान्तजीविभी, रूक्षजीविभिः तुच्छजीविभि रुपशान्त जीविभिः प्रशान्त-जीविभिर्विविक्तजीविभिरक्षीरमधुसर्पिष्कैरमद्यमांसाशिभिः, स्थानायितैः ( स्थानाभि-ग्राहकैः ) प्रतिमास्थायिभिः, स्थानोत्कटुकैः, वीरासनकैर्नैषद्यिकै,-र्दण्डायतिकै,-र्लगण्डशायिभिरेकपार्श्विकैरातापनैरप्रावृतै, रनिष्ठीवकैरकण्डूयकै,-र्धूतकेशश्मश्रुरोम नखैः, सर्वगात्र प्रतिकर्मविप्रमुक्तैः समनुचीर्णा, श्रुतधरविदितार्थकायबुद्धिभिर्धीरमति बुद्धयश्च ये, ते-आशीर्विषोग्रतेजःकल्पा निश्चय व्यवसाय पर्याप्तकृतमतिका नित्यं स्वाध्यायध्यानाऽनुबद्ध धर्मध्यानाः, पञ्चमहाव्रत चरित्रयुक्ताः, समिताः समितिषु, शमितपापाः, षड्विधजगद्वत्सला, नित्यमप्रमत्ताः एतैरन्यैश्च या साऽनुपालिता भगवती ।

अन्व०-" ( एसा सा भगवती अहिंसा ) यह वह भगवती अहिंसा ( जासा ) जो यह ( भीयाण विव सरणं ) भीतों-डरे हुए-के लिये रक्षक के समान रक्षा करने वालीसी ( पक्खीणं पिव गमणं ) पक्षिओं के लिये आकाश-गमन-की तरह हित कारी ( तिसियाणं पिव सलिलं ) प्यासों के लिये पानी के समान और ( खुहियाणं पिव असणं ) भूखों के लिये भोजन की तरह ( समुद्दमज्झेव पोतवहणं ) समुद्र के मध्यमें जहाज की तरह ( चउप्पयाणं च आसम पयं ) चौपाये जीवों के लिये आश्रम स्थान-वाड़े-की तरह ( दुहट्ठियाणं च ओसहिवलं ) और रोगिओं के लिये औषधी की तरह तथा ( अडवीमज्झे विसत्थगमणं ) अटवी में भूले हुए को जैसे सार्थ-जन-समूह का मिलना हितकर होता है ( एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा ) इन सबसे अतिशय विशिष्ट अहिंसा प्राणिओं के लिये हितकारिणी है ( जासा ) जोकि वह ( पुढविजल-अगणि-मारुय-वणस्सइ-बीज हरित-जलचर-थलचर-खहचर-तस-थावर-सव्वभूय खेमकरी ) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक तथा बीज व हरित एवं जलचर, स्थलचर, खेचर रूप त्रस स्थावर जीवमात्रके लिये क्षेम करने वाली ( एसा भगवती अहिंसा ) यह भगवती अहिंसा है, ( जासा ) जो कि ( अपरिमिय नाणदंसणधरेहिं ) अपरिमित ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले ( सीलगुण-विणय-तव-संजमनायकेहिं ) शील रूप गुण और तप संयम व विनय इनके नायक ( सव्वजगजीववच्छलेहिं ) सभी जगज्जीवोंके वत्सल ( तिलोगमहि-

यंबिलिएहिं, पुरिमड्ढिएहिं, एक्कासणिएहिं, निव्वितिएहिं, भिन्नपिंडवाइएहिं, परिमियपिंडवाइएहिं, अंताहारेहिं, पंताहारेहिं, अरसाहारेहिं, विरसाहारेहिं, लूहाहारेहिं, तुच्छाहारेहिं, अंतजीविहिं, पंतजीविहिं, लूहजीविहिं, तुच्छजीविहिं, उवसंतजीविहिं, पसंतजीविहिं, विवित्तजीविहिं, अखीर महुसप्पिएहिं, अमज्जमंसासिएहिं, ठाणाइएहिं, पडिमंठाईहिं, ठाणुक्कडिएहिं, वीरासणिएहिं, णेसज्जिएहिं, डंडाइएहिं, लगंडसाईहिं, एगपासगेहिं, आयावएहिं, अप्पावएहिं, अणिट्ठुवएहिं, अकंडूयएहिं, धुतकेसमंसुलोमनखेहिं, सव्वगाय पडिकम्मविप्पमुक्केहिं, समणुचिन्ना, सुयधर-विदितत्थकायबुद्धीहिं, धीरमतिबुद्धिणो य जेते आसीविस उग्गते य कप्पा, निच्छयववसाय पज्जत्तक य मतीया, णिच्चं सज्झायज्झाण-अणुबद्ध धम्मज्झाणा, पंचमहव्वय-चरित्तजुत्ता, समितासमितिसु समित पावा, छव्विहजगवच्छला निच्चमप्पमत्ता, एएहिं, अन्नेहि य जासा अणुपालिया भगवती।

छाया-"एषा सा भगवती अहिंसा, या सा भीतानामिव शरणम्, पक्षिणामिव गम(ग)नं, तृषितानामिव सलिलम्, क्षुधितानामिवाऽशनम्, समुद्रमध्येव पोतवहनम्, चतुष्पदानां वाऽऽश्रमपदम्, दुःखस्थितानाञ्चौषधीबलम्, अटवीमध्ये 'विश्वस्त'(सार्थ) गमनम्, इतोविशिष्टतरिकाऽहिंसा, या सा पृथवीजलाऽग्नि मारुत वनस्पति बीज हरित जलचर स्थलचर खेचर त्रसस्थावर सर्वभूत क्षेमकरी। एषा भगवती-अहिंसा यासाऽपरिमितज्ञान दर्शनधरैः, शीलगुणविनयतपःसंयमनायकैस्तीर्थङ्करैः, सर्व जगज्जीववत्सलैः, त्रिलोकीमहितैर्जिनचन्द्रैः सुष्ठुदृष्टा, अवधिजिनैर्विज्ञाता, ऋजुमतिभिर्विदृष्टा, विपुलमतिभिर्विविदिता, पूर्वधरैरधीतावैकुर्विकैः प्रतीर्णा, आभिनिबोधिकज्ञानिभिः श्रुतज्ञानिभिः मनः पर्यज्ञानिभिः, केवलज्ञानिभिः, आमर्षौषधिप्राप्तैः खेलौषधिप्राप्तैर्जल्लौषधिप्राप्तै, र्विप्रौषधिप्राप्तैः, सर्वौषधिप्राप्तैः, बीजबुद्धिभिः, कुष्ठबुद्धिभिः, पदानुसारिभिः, संभिन्नस्रोतोभिः श्रुतधरैर्मनोबलिकै, र्वचनबलिकैः, कायबलिकैः,-ज्ञानबलिकैर्दर्शनबलिकैश्चरित्रबलिकैः, क्षीरास्रवैर्मध्वास्रवैः, सर्पिरास्रवै रक्षीणमहानसिकैश्चारणैर्विद्याधरैश्चतुर्थभक्तकै, रेवं यावत् षण्मासभक्तकै, रुक्षिप्तचरकै र्निक्षिप्तचरकै रन्तचरकैः प्रान्तचरकै रूक्षचरकैः, समुदानचरकै, रन्नग्लानै-र्दीपाऽन्नभोजिभिः,-मौनचरकैः संसृष्टकल्पिकै, स्तज्जातसंसृष्टकल्पिकैरौपनिधिकैः शुद्धैषणिकैः, संख्यादत्तिकै, र्दृष्टलाभिकैः, रदृष्टलाभिकैः, पृष्टलाभिकैराचाम्लिकैः, ( आयम्बिलिकैः ),

धिया चारण ऐसे दो प्रकार के हैं ( विज्जाहरेहिं ) विद्याधर-विशिष्ट विद्या वाले ( चउत्थभत्तिएहिं एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं ) चतुर्थ भक्तिक-उपवास व्रत वाले ऐसे षष्ट अष्टम आदि यावत् षण्मास भक्त-छ मास के तप करने वाले, ( उक्खित्त चरएहिं निक्खित्तचरएहिं ) उत्क्षिप्त चरक-पकाने के भाजन से बाहर निकाले गये आहार का ही गवेषण करने वाले, निक्षिप्त चरक-थाली आदि में रक्खे हुए आहार की गवेषणा करने वाले ( अंतचरएहिं पंतचरएहिं लूहचरएहिं ) अन्तचरक-सेके हुए चने आदि की गवेषणा करने वाले, प्रान्त चरक-खाने से बचे हुए चने आदि तथा बासी पदार्थ की गवेषणा करने वाले, रुक्ष आहार की गवेषणा करने वाले ( समुदाण चरएहिं ) सामूहिक भिक्षा के लिये भ्रमण करने वाले ( अन्नइलाएहिं ) रात्रि के अन्न को खाने वाले ( मोणचरएहिं ) मौनचर्या वाले ( संसट्ठकप्पिएहिं तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं ) संसृष्ट-भरे हुए हाथ या पात्र से आहार लेने के कल्प वाले, जो पदार्थ ग्रहण करने के हैं उसीसे भरे हुए हाथ आदि से भिक्षा लेने के कल्प वाले, ( उवनिहिएहिं ) समीप में भिक्षा के लिये जाने वाले या पास में रहे हुए पदार्थ को ही लेने वाले ( सुद्धेसणिएहिं ) शुद्ध-दोष रहित एषणा वाले ( संखादत्तिएहिं ) ५।६ आदि संख्या प्रधान दत्ति वाले ( दिट्ठलाभिएहिं अदिट्ठलाभिएहिं ) दृष्ट स्थान से मिली हुई या दृष्ट पदार्थ के भागयुक्त भिक्षा लेने वाले, अदृष्टदाता से अथवा अदृष्ट वस्तु के ग्रहण वाले (पुट्ठलाभिएहिं) महाराज ? यह पदार्थ ले सकते हैं क्या ? इस प्रकार प्रश्न पूर्वक मिले हुए आहार को ग्रहण करने वाले ( आयंबिलिएहिं ) आयंबिल तप वाले (पुरिमड्ढिएहिं) पुरिमार्द्ध-दोपौरुषीके व्रत वाले (एकासणिएहिं) एकाशन करने वाले (निव्वितिएहिं) विगय घी, दही, दूध, आदि रस रहित भोजन करने वाले ( भिन्नपिंडवाइएहिं ) फूटे बिखरे हुए ओदनादि-पिण्ड को ही ग्रहण करने वाले (परिमियपिंड वाइएहिं) घर व भोजन के परिमाणयुक्त पिण्ड-आहार को ग्रहण करने वाले ( अंताहारेहिं ) सेके चने आदि का आहार करने वाले, ( पंताहारेहिं ) प्रान्त आहारी ( अरसाहारेहिं ) हिंग आदि के संस्कार रहित अरस आहार करने वाले ( विरसाहारेहिं ) रस रहित-पुराने पदार्थ का आहार करने वाले ( लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं ) रुक्ष आहारी तथा तुच्छ-अल्प आहार करने वाले ( अंत जीविहिं पंत जीविहिं लूह जीविहिं तुच्छ जीविहिं ) अन्त जीवी, प्रान्त जीवी, रुक्ष जीवी और तुच्छ जीवी (उवसंत जीविहिं पसंत

णहिं ) त्रिलोकके पूजित ( जिणचंदेहिं ) जिनसामान्यमेंचन्द्र के समान ऐसे ( तित्थंकरेहिं ) तीर्थङ्करों से ( सुट्ठुदिट्ठा ) अच्छी तरह-केवल ज्ञानरूप प्रत्यक्षके द्वारा-देखी गई है ( ओहिजिणेहिं विण्णाया ) अवधिज्ञानिओं से सम्यग् जानी गई ( उज्जुमतीहिंविदिट्ठा ) ऋजुमतिओंसे विशेष रूपसे देखीगई ( विपुलमतीहिंविविदिता ) विशेष ग्राहिणीबुद्धि वाले मनःपर्ययज्ञानिओंसे अच्छी तरह जानी हुई ( पुव्वधरेहिं अधीता ) पूर्वधरोंसे श्रुतरूप में पढी गई ( वेउव्वीहिं पतिन्ना ) वैक्रियलब्धिधारी मुनियोंसे आजीवन पाली गई है ( आभिणिबोहियनाणीहिं सुयनाणीहिं मणपज्जवनाणीहिं ) आभिनिबोधिक-मतिज्ञान वाले, श्रुतज्ञान वाले और मनःपर्ययज्ञान वाले ( केवलनाणीहिं ) केवलज्ञानी ( आमोसहिपत्तेहिं खेलोसहिपत्तेहिं जल्लोसहिपत्तेहिं ) जिनका-आमर्ष अङ्ग स्पर्शही औषधिरूप है ऐसे आमर्षौषधि प्राप्त, वे श्लेष्मौषधि और जल्लौषधि लब्धिवाले और-जिनके श्लेष्म मेलही औषधि जैसे बने होते हैं (विप्पोसहिपत्तेहिं सव्वोसहिपत्तेहिं ) जिनके मलमूत्र औषधिरूप हों वैसी लब्धि वालेमुनि-विप्रौषधिप्राप्त और जिनके स्पर्श आदि-सब औषधिका कार्य करते हों वे सर्वौषधिप्राप्त कहाते हैं ( बीजबुद्धीहिं कुट्ठबुद्धीहिं पदाणुसारीहिं ) बीज की तरह अर्थमात्र को पाकर अनेक पदार्थों का ज्ञान करने वाली-बीजबुद्धिवाले, कोष्ठबुद्धि-कोठे की तरह एक बार जाने हुए विषयों को सदास्मृति में रखने वाले, पदानुसारी-एक पद से सैकड़ों पदों का अनुसरण करने की बुद्धि वाले, ( संभिन्न सोतेहिं ) संभिन्न श्रोत्र-शरीर के सब अवयवों से श्रवण करने की लब्धि वाले अथवा प्रत्येक इन्द्रियों से श्रवण दर्शन आदि इन्द्रियविषयों का ज्ञान करने वाले ( सुयधरेहिं ) विशिष्ट श्रुत को धारण करने वाले ( मणबलिएहिं वयबलिएहिं कायबलिएहिं ) मनोबली-निश्चलचित्त वाले, वाग्-बली-दृढ प्रतिज्ञावाले और कायबली-परिषहों में स्थिर शरीर वाले, ( नाणबलिएहिं दंसणबलिएहिं चरित्तबलिएहिं ) ज्ञानबली, दर्शनबली-स्थिर श्रद्धावाले, चरित्रबली-निर्मल चरित्र वाले। ( खीरासवेहिं महुआसवेहिं सप्पिआसवेहिं ) क्षीरास्रव-क्षीर की तरह मधुर वचन वाले, मधु आस्रव-जिसमें मधु के समान वचन में माधुर्य हो वैसी लब्धिवाले, सर्पिरास्रव-घृत की तरह-स्निग्ध वचन रूप लब्धि वाले (अक्खीण महाणसिएहिं ) अक्षीण महानसिक-अपने लिये लाये भोजन से लाख मनुष्यों को खिलाने पर भी जबतक स्वयं न भोजन करले तबतक जो भोजन बना रहे, वैसी लब्धि वाले ( चारणेहिं ) आकाश गमन की लब्धि वाले चारण-जंघाचारण और

विद्या चारण ऐसे दो प्रकार के हैं (विज्जाहरेहिं) विद्याधर-विशिष्ट विद्या वाले (चउत्थभत्तिएहिं एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं) चतुर्थ भक्तिक-उपवास व्रत वाले ऐसे षष्ट अष्टम आदि यावत् षण्मास भक्त-छः मास के तप करने वाले, (उक्खित्त चरएहिं निक्खित्तचरएहिं) उत्क्षिप्त चरक-पकाने के भाजन से बाहर निकाले गये आहार का ही गवेषण करने वाले, निक्षिप्त चरक-थाली आदि में रक्खे हुए आहार की गवेषणा करने वाले (अंतचरएहिं पंतचरएहिं लूहचरएहिं) अन्तचरक-सेके हुए चने आदि की गवेषणा करने वाले, प्रान्त चरक-खाने से बचे हुए चने आदि तथा बासी पदार्थ की गवेषणा करने वाले, रुक्ष आहार की गवेषणा करने वाले (समुदाण चरएहिं) सामूहिक भिक्षा के लिये भ्रमण करने वाले (अन्नइलाएहिं) रात्रि के अन्न को खाने वाले (मोणचरएहिं) मौनचर्या वाले (संसट्ठकप्पिएहिं तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं) संसृष्ट-भरे हुए हाथ या पात्र से आहार लेने के कल्प वाले, जो पदार्थ ग्रहण करने के हैं उसीसे भरे हुए हाथ आदि से भिक्षा लेने के कल्प वाले, (उवनिहिएहिं) समीप में भिक्षा के लिये जाने वाले या पास में रहे हुए पदार्थ को ही लेने वाले (सुद्धेसणिएहिं) शुद्ध-दोष रहित एषणा वाले (संखादत्तिएहिं) ५।६ आदि संख्या प्रधान दत्ति वाले (दिट्ठलाभिएहिं अदिट्ठलाभिएहिं) दृष्ट स्थान से मिली हुई या दृष्ट पदार्थ के भागयुक्त भिक्षा लेने वाले, अदृष्टदाता से अथवा अदृष्ट वस्तु के ग्रहण वाले (पुट्ठलाभिएहिं) महाराज ? यह पदार्थ ले सकते हैं क्या ? इस प्रकार प्रश्न पूर्वक मिले हुए आहार को ग्रहण करने वाले (आयंबिलिएहिं) आयंबिल तप वाले (पुरिमड्ढिएहिं) पुरिमार्द्ध-दोपौरुषीके व्रत वाले (एक्कासणिएहिं) एकाशन करने वाले (निव्वितिएहिं) विगय घी, दही, दूध, आदि रस रहित भोजन करने वाले (भिन्नपिंडवाइएहिं) फूटे बिखरे हुए ओदनादि-पिण्ड को ही ग्रहण करने वाले (परिमियपिंड वाइएहिं) घर व भोजन के परिमाणयुक्त पिण्ड-आहार को ग्रहण करने वाले (अंताहारेहिं) सेके चने आदि का आहार करने वाले, (पंताहारेहिं) प्रान्त आहारी (अरसाहारेहिं) हिंग आदि के संस्कार रहित अरस आहार करने वाले (विरसाहारेहिं) रस रहित-पुराने पदार्थ का आहार करने वाले (लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं) रुक्ष आहारी तथा तुच्छ-अल्प आहार करने वाले (अंत जीविहिं पंत जीविहिं लूह जीविहिं तुच्छ जीविहिं) अन्त जीवी, प्रान्त जीवी, रुक्ष जीवी और तुच्छ जीवी (उवसंत जीविहिं पसंत

एहिं ) त्रिलोकके पूजित ( जिणचंदेहिं ) जिनसामान्यमेंचन्द्र के समान ऐसे ( तित्थं करेहिं ) तीर्थङ्करों से ( सुदिट्ठा ) अच्छी तरह-केवल ज्ञानरूप प्रत्यक्षके द्वारा-देखी गई है ( ओहिजिणेहिं विण्णाया ) अवधिज्ञानिओं से सम्यग् जानी गई ( उज्जु मतीहिंविदिट्ठा ) ऋजुमतिओंसे विशेष रूपसे देखीगई ( विपुलमतीहिंविविदिता ) विशेष ग्राहिणीबुद्धि वाले मनःपर्ययज्ञानिओंसे अच्छी तरह जानी हुई ( पुव्वधरेहिं अधीता ) पूर्वधरोंसे श्रुतरूप में पढी गई ( वेउव्वीहिं पतिन्ना ) वैक्रियलब्धिधारी मुनिओंसे आजीवन पाली गई है ( आभिणिवोहियनाणीहिं सुयनाणीहिं मणपज्जव-नाणीहिं ) आभिनिवोधिक-मतिज्ञान वाले, श्रुतज्ञान वाले और मनःपर्यवज्ञान वाले ( केवलनाणीहिं ) केवलज्ञानी ( आमोसहिपत्तेहिं खेलोसहिपत्तेहिं जल्लोसहिपत्तेहिं ) जिनका-आमर्ष अङ्ग स्पर्शही औषधिरूप है ऐसे आमर्षौषधि प्राप्त, वे श्लेष्मौषधि और जल्लौषधि लब्धिवाले और-जिनके श्लेष्म मेलही औषधि जैसे बने होते हैं (विप्पो सहिपत्तेहिं सव्वोसहिपत्तेहिं ) जिनके मलमूत्र औषधिरूप हों वैसी लब्धि वालेमुनि-विप्रौषधिप्राप्त और जिनके स्पर्श आदि-सब औषधिका कार्य करते हों वे सर्वौषधिप्राप्त कहाते हैं ( बीजबुद्धीहिं कुट्ठबुद्धीहिं पदाणुसारीहिं ) बीज की तरह अर्थमात्र को पाकर अनेक पदार्थों का ज्ञान करने वाली-बीजबुद्धिवाले, कोष्ठबुद्धि-कोठे की तरह एक बार जाने हुए विषयों को सदास्मृति में रखने वाले, पदानुसारी-एक पद से सैकड़ों पदों का अनुसरण करने की बुद्धि वाले, ( संभिन्न सोतेहिं ) संभिन्न श्रोत्र-शरीर के सब अवयवों से श्रवण करने की लब्धि वाले अथवा प्रत्येक इन्द्रियों से श्रवण दर्शन आदि इन्द्रियविषयों का ज्ञान करने वाले ( सुयधरेहिं ) विशिष्ट श्रुत को धारण करने वाले ( मणवलिएहिं वयवलिएहिं कायवलिएहिं ) मनोबली-निश्चलचित्त वाले, वाग्-बली-दृढ प्रतिज्ञावाले और कायबली-परिषहों में स्थिर शरीर वाले, ( नाणवलिएहिं दंसणवलिएहिं चरित्तवलिएहिं ) ज्ञानबली, दर्शनबली-स्थिर श्रद्धावाले, चरित्रबली-निर्मल चरित्र वाले। ( खीरासवेहिं महुआसवेहिं सप्पिआसवेहिं ) क्षीरास्रव-क्षीर की तरह मधुर वचन वाले, मधु आस्रव-जिसमें मधु के समान वचन में माधुर्य हो वैसी लब्धिवाले, सर्पिरास्रव-घृत की तरह-स्निग्ध वचन रूप लब्धि वाले (अक्खीण महाणसिएहिं ) अक्षीण महानसिक-अपने लिये लाये भोजन से लाख मनुष्यों को खिलाने पर भी जबतक स्वयं न भोजन करले तबतक जो भोजन बना रहे, वैसी लब्धि वाले ( चारणेहिं ) आकाश गमन की लब्धि वाले चारण-जंघाचारण और

एहिं ) त्रिलोकके पूजित ( जिणचंदेहिं ) जिनसामान्यमेंचन्द्र के समान ऐसे ( तित्थं करेहिं ) तीर्थङ्करों से ( सुट्ठुदिट्ठा ) अच्छी तरह-केवल ज्ञानरूप प्रत्यक्षके द्वारा-देखी गई है ( ओहिजिणेहिं विण्णाया ) अवधिज्ञानिओं से सम्यग् जानी गई ( उज्जु मतीहिंविदिट्ठा ) ऋजुमतिओंसे विशेष रूपसे देखीगई ( विपुलमतीहिंविविदिता ) विशेष ग्राहिणीबुद्धि वाले मनःपर्ययज्ञानिओंसे अच्छी तरह जानी हुई ( पुव्वधरेहिं अधीता ) पूर्वधरोंसे श्रुतरूप में पढी गई ( वेउव्वीहिं पतिन्ना ) वैक्रियलब्धिधारी मुनिओंसे आजीवन पाली गई है ( आभिणिबोहियनाणीहिं सुयनाणीहिं मणपज्जव-नाणीहिं ) आभिनिबोधिक-मतिज्ञान वाले, श्रुतज्ञान वाले और मनःपर्यवज्ञान वाले ( केवलनाणीहिं ) केवलज्ञानी ( आमोसहिपत्तेहिं खेलोसहिपत्तेहिं जल्लोसहिपत्तेहिं ) जिनका-आमर्ष अङ्ग स्पर्शही औषधिरूप है ऐसे आमर्षौषधि प्राप्त, वे श्लेष्मौषधि और जल्लौषधि लब्धिवाले और-जिनके श्लेष्म मलही औषधि जैसे बने होते हैं (विप्पो सहि पत्तेहिं सव्वोसहिपत्तेहिं ) जिनके मलमूत्र औषधिरूप हों वैसी लब्धि वालेमुनि-विप्रौषधिप्राप्त और जिनके स्पर्श आदि-सब औषधिका कार्य करते हों वे सर्वौषधिप्राप्त कहाते हैं ( बीजबुद्धीहिं कुट्ठबुद्धीहिं पदाणुसारीहिं ) बीज की तरह अर्थमात्र को पाकर अनेक पदार्थों का ज्ञान करने वाली-बीजबुद्धिवाले, कोष्ठबुद्धि-कोठे की तरह एक वार जाने हुए विषयों को सदास्मृति में रखने वाले, पदानुसारी-एक पद से सैकड़ों पदों का अनुसरण करने की वुद्धि वाले, ( संभिन्न सोतेहिं ) संभिन्न श्रोत्र-शरीर के सब अवयवों से श्रवण करने की लब्धि वाले अथवा प्रत्येक इन्द्रियों से श्रवण दर्शन आदि इन्द्रियविषयों का ज्ञान करने वाले ( सुयधरेहिं ) विशिष्ट श्रुत को धारण करने वाले ( मणबलिएहिं वयबलिएहिं कायबलिएहिं ) मनोबली-निश्चलचित्त वाले, वाग्-बली-दृढ प्रतिज्ञावाले और कायबली-परिषहों में स्थिर शरीर वाले, ( नाणबलिएहिं दंसणबलिएहिं चरित्तबलिएहिं ) ज्ञानबली, दर्शनबली-स्थिर श्रद्धावाले, चरित्रबली-निर्मल चरित्र वाले। ( खीरासवेहिं महुआसवेहिं सप्पिआसवेहिं ) क्षीरास्रव-क्षीर की तरह मधुर वचन वाले, मधु आस्रव-जिसमें मधु के समान वचन में माधुर्य हो वैसी लब्धिवाले, सर्पिषास्रव-घृत की तरह-स्निग्ध वचन रूप लब्धि वाले (अक्खीण महाणसिएहिं ) अक्षीण महानसिक-अपने लिये लाये भोजन से लाख मनुष्यों को खिलाने पर भी जबतक स्वयं न भोजन करले तबतक जो भोजन बना रहे, वैसी लब्धि वाले ( चारणेहिं ) आकाश गमन की लब्धि वाले चारण-जंघाचारण और

विद्या चारण ऐसे दो प्रकार के हैं ( विज्जाहरेहिं ) विद्याधर-विशिष्ट विद्या वाले ( चउत्थभत्तिएहिं एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं ) चतुर्थ भक्तिक-उपवास व्रत वाले ऐसे षष्ठ अष्टम आदि यावत् षण्मास भक्त-छ मास के तप करने वाले, ( उक्खित्त चरएहिं निक्खित्तचरएहिं ) उत्क्षिप्त चरक-पकाने के भाजन से बाहर निकाले गये आहार का ही गवेषण करने वाले, निक्षिप्त चरक-थाली आदि में रक्खे हुए आहार की गवेषणा करने वाले ( अंतचरएहिं पंतचरएहिं लूहचरएहिं ) अन्तचरक-सेके हुए चने आदि की गवेषणा करने वाले, प्रान्त चरक-खाने से बचे हुए चने आदि तथा बासी पदार्थ की गवेषणा करने वाले, रुक्ष आहार की गवेषणा करने वाले ( समुदाण चरएहिं ) सामूहिक भिक्षा के लिये भ्रमण करने वाले ( अन्नइलाएहिं ) रात्रि के अन्न को खाने वाले ( मोणचरएहिं ) मौनचर्या वाले ( संसट्ठकप्पिएहिं तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं ) संसृष्ट-भरे हुए हाथ या पात्र से आहार लेने के कल्प वाले, जो पदार्थ ग्रहण करने के हैं उसीसे भरे हुए हाथ आदि से भिक्षा लेने के कल्प वाले, ( उवनिहिएहिं ) समीप में भिक्षा के लिये जाने वाले या पास में रहे हुए पदार्थ को ही लेने वाले ( सुद्धेसणिएहिं ) शुद्ध-दोष रहित एषणा वाले ( संखादत्तिएहिं ) ५।६ आदि संख्या प्रधान दत्ति वाले ( दिट्ठलाभिएहिं अदिट्ठलाभिएहिं ) दृष्ट स्थान से मिली हुई या दृष्ट पदार्थ के भागयुक्त भिक्षा लेने वाले, अदृष्टदाता से अथवा अदृष्ट वस्तु के ग्रहण वाले (पुट्ठलाभिएहिं) महाराज ? यह पदार्थ ले सकते हैं क्या ? इस प्रकार प्रश्न पूर्वक मिले हुए आहार को ग्रहण करने वाले ( आयंबिलिएहिं ) आयंबिल तप वाले (पुरिमड्ढिएहिं) पुरिमार्द्ध-दोपौरुषीके व्रत वाले (एक्कासणिएहिं) एकाशन करने वाले (निव्वितिएहिं) विगय घी, दही, दूध, आदि रस रहित भोजन करने वाले ( भिन्नपिंडवाइएहिं ) फूटे बिखरे हुए ओदनादि-पिण्ड को ही ग्रहण करने वाले (परिमियपिंड वाइएहिं) घर व भोजन के परिमाणयुक्त पिण्ड-आहार को ग्रहण करने वाले ( अंताहारेहिं ) सेके चने आदि का आहार करने वाले, ( पंताहारेहिं ) प्रान्त आहारी ( अरसाहारेहिं ) हिंग आदि के संस्कार रहित अरस आहार करने वाले ( विरसाहारेहिं ) रस रहित-पुराने पदार्थ का आहार करने वाले ( लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं ) रुक्ष आहारी तथा तुच्छ-अल्प आहार करने वाले ( अंत जीविहिं पंत जीविहिं लूह जीविहिं तुच्छ जीविहिं ) अन्त जीवी, प्रान्त जीवी, रुक्ष जीवी और तुच्छ जीवी (उवसंत जीविहिं पसंत

जीविहिं ) अन्तर्वृत्ति की अपेक्षा-उपशान्त जीवी-उपशान्त कषाय वाले, बहिर्वृत्ति से प्रशान्त जीवी-सौम्य जीवन वाले ( विवित्त जीविहिं ) विविक्त-निर्दोष भक्त आदि से जीने वाले (अखीर महु सप्पिएहिं) दूध, मधु और घृत के त्यागी (अमज्ज-मंसासिएहिं ) मद्यमांस रहित भोजन वाले (ठाणाइएहिं) ऊर्द्ध्व स्थान-खडे रहने आदि रूप अभिग्रह करने वाले ( पडिमं ठाईहिं ) प्रतिमा-कायोत्सर्ग से या मासिकी आदि भिक्षु प्रतिमा से रहने वाले (ठाणुक्कडिएहिं) उत्कटुक आसन से बैठने वाले ( वीरासणिएहिं ) वीरासन से बैठने वाले ( णेसज्जिएहिं ) निषद्या-आसन विशेषरूप चर्यावाले ( डंडाइएहिं ) दण्ड की तरह लम्बे-सीधे शयनरूप आसन वाले ( लगंडसाईहिं ) टेढे काष्ठ की तरह मस्तक और एड़ी को जमीन पर टेककर कुब्ज सोने वाले ( एगपासगेहिं ) एक पार्श्व से ही सोने वाले ( आयावएहिं ) आतापना लेने वाले ( अप्पावएहिं ) देह ढकने के लिये चादर आदि नहीं रखने वाले ( अणि-ट्ठुवएहिं ) मुंह से थूंक नहीं थूंकने वाले ( अकंडूयएहिं ) शरीर को नहीं खुजलाने वाले ( धुत केसमंसुलोमनखेहिं ) केश, दाढी, मूंछ और रोम-कांख आदि के बाल तथा नखों के संस्कार रहित याने इनकी काट छांट नहीं करने वाले ( सव्व गाय पडिकम्म विप्पमुक्केहिं ) सम्पूर्ण शरीर की अभ्यङ्ग आदि से शोभा नहीं करने वाले, पूर्वोक्त विविध गुण-विशिष्ट मुनियों से (समणुचिन्ना) आसेवन की गई 'अहिंसा तथा ( सुयधर विदितत्थ कायबुद्धीहिं ) श्रुतधर और शास्त्र की अथ-राशि को समझने योग्य बुद्धि वाले महात्माओं से पालन की गई है ( धीरमति बुद्धिणोय ) और स्थिर अवग्रहादि मतियुक्त तथा औत्पत्तिकी आदि बुद्धि वाले ( जेते ) जो वे मुनिवर ( आसी विस उग्गतेय कप्पा ) उग्र विषधर नाग के समान उग्र तेजवाले ( निच्छय ववसाय पज्जत्तकयमतीया ) निश्चय-पदार्थ ज्ञान और परिपूर्ण पुरुषार्थ में कृतमति वाले (णिच्चं) सदा (सज्झायज्झाण अणुवद्धधम्मज्झाणा) वाचनादि पञ्च-विध स्वाध्याय तथा ध्यान-चित्त निरोध करने वाले व निरन्तर आज्ञा विचय आदि धर्म-ध्यान वाले (पंच महव्वयचरित्त जुत्ता) पंच महाव्रतरूप चारित्र से युक्त (समिता समितिसु)ईर्या आदि समितिओंमें सम्यक् प्रवृत्ति वाले (समित पावा) उपशम या क्षय कर दिये हैं पाप जिन्होंने ऐसे (छव्विह जगवच्छला) पृथ्वी आदि के छः प्रकार के जीव युक्त जगत के वत्सल-हितैषी (निच्चमप्पमत्ता) सदा प्रमाद रहित (एएहिं) इन (अन्नेहिय) और इस प्रकार के अन्य भी महात्माओं से ( जासा अणुपालिया ) जो अहिंसा

अनुकूल रूप से पालन की गई है (सा भगवती) वह भगवती अहिंसा है। इस प्रकार अहिंसा का स्वरूप कहके अब अहिंसकों को क्या करना चाहिए? इसको कहते हैं-"

मूल-"इमं च पुढविदग अगणि मारुय तरुगण तस थावर सव्वभूय संजम दयट्ठयाते सुद्धं उञ्छं गवेसियव्वं, अकतमकारिमणाहूयमणुद्दिट्ठं, अकीयकडं, नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम उप्पायणेसणासुद्धं, ववगय चुय चाविय चत्त देहं च, फासुयं च, न निसज्ज कहापओयणक्खा सुओवणीयंति, न तिगिच्छामंतमूल भेसज्ज कज्ज हेउं, न लक्खणुप्पायसुमिण जोइस निमित्त कहकप्प उत्तं, न विडंभणाए, नवि रक्खणाते, नवि सासणाते, नवि दंभण रक्खण सासणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि वंदणाते, नवि माणणाते, नवि पूयणाते, नवि वंदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि हीलणाते, नवि निंदणाते, नवि गरहणाते, नवि हीलण 'निंदण' गरहणाते भिक्खं गवेसियव्वं नवि भेसणाते, नवि तज्जणाते, नवि तालणाते, नवि भेसण तज्जण तालणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि गारवेणं, नवि कुहण याते, नवि वणीमयाते, नवि गारव कुहवणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं, नवि मित्तयाए, नवि पत्थणाए, नवि सेवणाए, नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं, अन्नाए अगढिए अदुट्ठे अदीणे अविमणे अकलुणे अविसाती अपरितंत जोगी जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपउत्ते भिक्खू भिक्खेसणाते निरते, इमंचणं सव्वजीव रक्खण दयट्ठाते पावयणं भगवया सु कहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसमणं ॥ सू० २। २२ ॥

छाया-"इदञ्च पृथ्वीदकाऽग्नि मारुत तरुगण त्रस स्थावर सर्वभूतसंयम दयार्थाय शुद्धमुञ्छं गवेषणीयम्, अकृतमकारित मनाहूतमनुद्दिष्टमक्रीतकृतम्, नवभिः कोटिभिः

1 क. फासु ओवणीयं।

सुपरिशुद्धं, दशभिश्चदोषैर्विप्रमुक्तम्, उद्गमोत्पादनैषणा शुद्धं, व्यपगत च्युत च्यावित त्यक्तदेहञ्च प्राशुकञ्च न निषद्या कथा प्रयोजनाऽऽख्या श्रुतोपनीतमिति, न चिकित्सा मन्त्र मूल भैषज्यकार्यहेतुकं, न लक्षणोत्पात स्वप्न [ स्मरण ] ज्यौतिष निमित्त कथा कुहक प्रयुक्तम्, नापिदम्भनया, नापि रक्षणया, नापि शासनया, नापि दम्भना-रक्षणा-शासनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि वन्दनया, नापि माननया, नापि पूजनया, नापि वन्दना-मानना-पूजनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि हीलनया, नापि निन्दनया, नापि गर्हणया, नापि हीलना निन्दना गर्हणाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापिं भीषणया, नापि तर्जनया, नापि ताडनया, नापि भीषणा तर्जना ताडनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि गौरवेण, नापि क्रोधनया, नापि वनीपकतया, नापि गौरव क्रोधना ( कुधना ) वनीपकताभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि मित्रतया, नापि प्रार्थनया, नापि सेवनया, नापि मित्रता-प्रार्थना-सेवनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, अज्ञातः अग्रथितः,-अगृध्नुः, अदुष्टः, अदीनः अविमनाः अकरुणः अविषादी, अपरितान्तयोगी, यतन घटन करण चरण ( चरित ) विनय गुण योग सम्प्रयुक्तो भिक्षुर्भिक्षैषणायां निरतः। इदं च ननु सर्वजीव रक्षण दयार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितम्,-आत्महितं, प्रेत्यभावितम्, आगमिष्यद्भद्रं, शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलमनुत्तरम्, सर्वदुःखपापानां व्युपशमनम्। सूत्र २। २२॥

अन्व०-"( इमं च पुढवि दग अगणि मारुय तरुगण तसथावर सव्वभूय संयम दयट्ठयाते ) और पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वृक्ष समूह, और त्रस, स्थावर रूप सब जीवों पर संयम व दया के लिये इस ( सुद्धं उञ्छं गवेसियव्वं ) शुद्ध उञ्छ-अनेक घरों की भिक्षा से प्राप्त आहार की गवेषणा करनी चाहिए जो आहार-( अकतम कारिमणाहूयमणुद्दिट्ठं ) साधुओं के लिये किया हुआ न हो, न दूसरों से बनवाया हो, अनाहूत-गृहस्थ के द्वारा निमन्त्रण पूर्वक दिया हुआ याने बुलाके दिया गया भी नहीं हो अणु-उद्देशिक दोषयुक्त नहीं हो, ( अकीयकडं ) साधु के लिये खरीदकर लाया हुआ नहीं हो, इसी बात को विस्तार से कहते हैं-( नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं ) और जो नव कोटि से विशुद्ध हो ( दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं ) शङ्कित आदि दश दोषों से रहित और ( उग्गम उप्पाय णेसणासुद्धं ) उद्गम-उत्पादन और एषणा से शुद्ध-निर्दोष हो ( ववगय चुय चावियचत्तदेहं च ) जिस आहार से स्वयं जीव अलग होगये तथा पृथ्वी आदि के जीव जिसमें चव-मर गये अथवा दाता ने जिसे

निर्जीव कर दिये वैसे त्यक्त देह-निर्जीव बने हुए अथवा अपगत-सामान्यरूप से अचेतनता प्राप्त, च्युत-जीवन क्रियाओं से भ्रष्ट, च्यावित-आयुक्षय के कारण जीवन क्रियाओं से रहित और त्यक्तदेह-जीव के संसर्ग से होने वाली वृद्धि से हीन (फासुयंच) और प्राशुक-निर्जीव आहार को (न निसज्जकहापओयणक्खासुओवणीयंति) 'गोचरी में गया हुआ' घरमें बैठकर दी जाने वाली धर्मकथा के प्रयोजन से या दाता को खुश करने के लिये नट की तरह प्रयुक्त कथा-प्रतिबद्ध श्रुत के कारण जो नहीं लाया गया है वैसी भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए। (तिगिच्छा मंत मूल भेसज्ज कज्जहेउं) चिकित्सा-रोग के प्रतीकार, मन्त्र, मूलकृताञ्जलि आदि औषधी की जड और भैषज-अनेक द्रव्यों से बनी दवा आदि के हेतु से भिक्षा (न) नहीं लेनी चाहिए (नलक्खणुप्पायसुमिणजोइस निमित्तकहकप्पउत्तं) लक्षण-स्त्री पुरुष आदि के चिह्न विशेष, उत्पात-प्रकृति के अतिशय विकार धूल वृष्टि आदि, स्वप्न, ज्योतिषशास्त्र, निमित्त-चूडामणि आदि निमित्त शास्त्र, कथा-अर्थ कथा आदि और दूसरे को विस्मय उत्पन्न करने के प्रयोग इन कारणों से आकृष्ट होकर दाता ने जो द्रव्य देनेको निकाले हैं उनको नहीं ग्रहण करे (नवि डंभणाए) माया कपटके प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि रक्खणाते) दाताके पुत्र आदि की रक्षा के प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (न वि सासणाते) शिक्षा सिखा कर भी भिक्षा नहीं लें अथवा अनुशासन करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि दंभणरक्खण सासणाते) कपट, रक्षा, एवं अनुशासन का एकसाथ प्रयोग करके भी (भिक्खं गवेसियव्वं) भिक्षाकी गवेषणा नहीं करनी चाहिए (नवि वंदणाते) वन्दना करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि माणणाते) आसन आदि से दाता का मान करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि पूयणाते) मस्तक पर चन्दन लगाना या नमकर मुंह पत्ती आदि देने रूप पूजा से भी भिक्षा नहीं लें (नवि वंदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं) वन्दन मान और पूजा के एक साथ प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि हीलणाते) दाता की जाति आदि की हीलना करके भी नहीं लें, (नवि निंदणाते) दाता की या देय वस्तु की निन्दा करके भी नहीं लें, (नविगरहणाते) हीलना करके भी नहीं लें (नवि हीलणनिंदणगरहणाते भिक्खं गवेसियव्वं) हीलना, निन्दा और गर्हणा के एक साथ प्रयोग करके भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए, (नवि भेसणाते) भय दिखाकर भी भिक्षा नहीं लें, (नवि तज्जणाते) तर्जन करके भी नहीं लें (नवि तालणाते) चपेटा आदि

की ताडना से भी भिक्षा नहीं लें। ( न वि भेसण तज्जण तालनाते भिक्खं गवेसियव्वं ) भय प्रदर्शन, तर्जन और ताडना इन तीनों के साथ प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें ( नवि गारवेणं ) मैं राज पूजित हूं इस प्रकार गर्व से भी भिक्षा नहीं लें। ( नवि कुहण याते ) दरिद्रता के भाव से या क्रोध करके भी नहीं ले ( नवि वणीमयाते ) मंगतों की तरह दीनता दिखाकर भी नहीं लें ( नवि गारव कुहमणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं ) गर्व, क्रोध तथा याचकता इन तीनों के प्रयोग से भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करे ( नवि मित्तयाए ) मित्रता करके भी भिक्षा नहीं लें ( नवि पत्थणाए ) प्रार्थना करके भी न ले ( नवि सेवणाए ) सेवा करके भी भिक्षा नहीं ले ( नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं ) मैत्री, प्रार्थना व सेवा इन तीनों के साथ प्रयोग से भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए ( अन्नाए ) अपना सम्बन्ध नहीं कहने से जो गृहस्थों से नहीं जाना गया है ( अगढिए ) तथा जान लेने पर भी मोह रहित अथवा आहार में गृध्नुता रहित, ( अदुट्ठे ) अदुष्ट–आहार पर या दाता पर द्वेष नहीं करने वाले ( अदीणे ) क्षोभ रहित ( अविमणे ) उदासीनता रहित ( अकलुणे ) दीनता रहित ( अविसाती ) विषाद रहित ( अपरितंत जोगी ) सत्कर्म में थकावट रहित मन, वचन आदि योग वाला होने से ( जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपउत्ते ) यतन प्राप्त संयम योग में उद्यम और अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाला तथा विनय का सेवन करने वाला व क्षमा आदि गुणों से युक्त जो ( भिक्खू ) साधु ( भिक्खेसणाते निरते ) भिक्षा की एषणा से निरत–तत्पर रहता है ( इमंचणं सव्वजीव रक्खण दयट्ठाते ) और सब जगत के जीवों की रक्षा रूप दया के लिये इस ( पावयणं ) प्रवचन को ( भगवया ) भगवान् ने ( सुकहियं ) सम्यक् प्रकार से कहा है ( अत्तहियं ) जीवों के हित रूप और ( पेच्चाभावियं ) परलोक में सुख देने वाला है ( आगमेसिभद्दं ) भविष्य में कल्याण का कारण व ( सुद्धं ) शुद्ध है ( नेयाउयं ) न्याययुक्त, ( अकुडिलं ) अकुटिल–सरल, ( अणुत्तरं ) सर्व श्रेष्ठ तथा ( सव्वदुक्खपावाण ) सब दुःख और पापकर्मों का ( विउसमणं ) उपशमन करने वाला है ॥ २ । २२ ॥

भावार्थ—"यह अहिंसा भगवती प्राणिओं की परम रक्षा करने वाली है। भयभीत प्राणिओं को जैसे शरण का, पक्षिओं को आकाशमार्ग का, प्यासे को पानीका,

भूखे को भोजन का, समुद्र में डूबते हुए को जहाज का, चतुष्पदोंको आश्रयस्थानका, रोगिओं को औषधिका और अटवीमें भूले हुए को सार्थ का आधार होता है। इससे भी अधिक अहिंसा प्राणिओं के लिये हित साधिका है। क्योंकि भयभीत आदि को शरण आदि से कभी हित के बदले अहित भी हो सकता है, परन्तु अहिंसा से होने वाला हित ध्रुव और अटल है। जो पृथ्वी जल आदि त्रसस्थावर जीवमात्र के लिये क्षेम व रक्षण करने वाली है, वह अहिंसा ही संसार में भगवती है अन्य नहीं।

इसको जानने वाले व सेवन करने वाले भी विशिष्ट ज्ञानी महापुरुष हैं, जैसे अनन्तज्ञानी शीलसंयम आदि गुणों के प्रधान नायक, त्रिलोकी पूज्य और जगत् के हितैषी तीर्थङ्कर महाराज ने केवलज्ञानसे इसका सम्यङ् निश्चय एवं अनुभव किया है। अवधिज्ञानी और सामान्यविशेष दृष्टिवाले मनःपर्यवज्ञानिओं से अच्छी तरह जानी व देखी गई है। पूर्वधारिओं ने शास्त्र में इसका अध्ययन किया है। वैक्रिय लब्धिवाले तथा मतिज्ञानी व केवलज्ञानी महात्माओं ने आजीवन इसका पालन किया है।

तपस्या की विशिष्ट साधना से कई महात्मा अतिशय शक्ति सम्पन्न होजाते हैं, जिनको लब्धिधारक कहते हैं। २८ प्रकार के लब्धिधारिओं में से कुछ का यहां निम्नलिखित उल्लेख मिलता है। जैसे कि स्पर्शमात्र से रोग निवारण करने की लब्धि वाले आमर्षौषधिक। ऐसे कइओं के श्लेष्म रोगनिवारक होते हैं। एक ऐसीलब्धिधारी होते हैं कि उनके शरीर पर का मल रोगनिवारक होता है। कई महात्माओं के मलमूत्र तक रोगनिवारक होते हैं। किसी महात्मा के शरीर की सभी चीजें औषधिवत् रोगनिवारक होती हैं। बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि और पदानुसारी आदि ये सब विशिष्टबुद्धिधारक होते हैं। मन, वाणी और शरीर के स्थिर बल को धारण करने वाले तथा निर्दोष ज्ञानादि रत्नत्रय को धारण करने वाले हैं। इसलिये इनके वचन मानो क्षीर मधु और घृत के जैसे मधुर स्निग्ध एवं पौष्टिक होते हैं। अक्षीण महानस लब्धिवाले स्पष्ट हैं। जंघा या विद्या के बल से आकाश मार्ग में चलने की विशिष्ट शक्ति वाले चारण कहाते हैं। चतुर्थभक्त-उपवास से लेकर छः मास तक के तपस्वी मुनिओं ने इसका आराधन किया। ऐसे ही उत्क्षिप्त आदि

विविध अभिग्रहों से जो भिक्षा करने वाले हैं वैसे उपशान्त दशा वाले निर्दोष आहार के ग्राहक मुनिओं से सेवित हैं।

सामान्यतया मुनि लोग मद्य मांस रहित भोजन वाले, और अधिकता से दूध घृत तथा मधु के वर्जन करने वाले होते हैं। कई अनुकूलता के अनुसार स्थानायित एवं विविध आसन वाले होते हैं।

विशेष इस प्रकार है-सिंहासन पर पांव लटका के बैठा हुआ पुरुष जब आसन के हटाने पर भी उसी तरह बैठा रहे उसको वीरासन कहते हैं। आतापना करने वाले यावत्, जो सदा प्रमाद रहित हैं। ऐसे और अन्य विशिष्ट व्रतिओं से जो पालन की गई वह भगवती अहिंसा प्रथम संवर रूप है।

आगे अहिंसकों को कैसी और किस प्रकार से भिक्षा लेनी चाहिए? इस बातको दिखाते हैं।

पृथ्वी आदि सभी प्राणी मात्र के संयम तथा दया के लिये मुनि को निम्न प्रकार की शुद्ध भिक्षा लेनी चाहिए, जो आहार साधु के लिये नहीं किया हो और कराया गया भी नहीं हो। बुलाकर दिया हुआ और साधु के लिये खरीदा हुआ भी नहीं हो। नव कोटि शुद्ध तथा ४२ प्रकार के एषणा दोषों से रहित यावत् निर्दोष निर्जीव हो वैसा ले सकते हैं। किन अविधिओं को टालकर लेना यह बताया जाता है-"

घरमेंबैठकर कथा सुनानेसे मिला हुआ नहीं लेना। चिकित्सा, मन्त्र, मूल आदि प्रयोग बताकर भी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। इसी प्रकार शारीरिक लक्षण आदि बताकर भी भिक्षा प्राप्त नहीं करे। कपट, रक्षा और अनुशासन करके तथा स्तुति, मान या पूजा के द्वारा भी भिक्षा ग्रहण नहीं करे। गृहस्थकी हीलना, निन्दा और गर्हा करके अथवा डराना, ताडना और तर्जना से भी भिक्षा नहीं ले। गर्व क्रोध या भिखारी की तरह दीनता दिखाकर एवं मैत्री, प्रार्थना तथा सेवा के द्वारा भी भिक्षा प्राप्त नहीं करे अर्थात् गृहस्थ को विना किसी प्रकार का स्वार्थ भय और दीनता दिखाये मुनि भिक्षा ग्रहण करे। इससे अपनी मोह-वृद्धि और गृहस्थों में स्वार्थ वृद्धि नहीं होगी वैसे मुनिओं का स्वरूप निम्न प्रकार है-"

वे अपना परिचय गृहस्थों को स्वयं नहीं देते और न आहार आदि में आसक्त होते हैं। द्वेष क्षोभ व उदासीनता से दूर, नहीं मिलने पर भी

खेद ग्लानि नहीं करते। विना विश्रान्ति के योगशील बने रहते हैं। यावत् ऐसे भिन्नु भिन्नैषणा में तत्पर रहते हैं। अहिंसा एवं अहिंसक साधु के स्वरूप को कहने वाले इस प्रवचन को भगवान् महावीर ने जगज्जीवों के रक्षणार्थ कहा है। यह आत्मा को हितकारी व परलोक में सुखदायी और भविष्य में भद्र का कारण है। शुद्ध न्याययुक्त तथा मोक्ष का सर्व श्रेष्ठ सरल मार्ग है। इससे सब दुःख और पापों का शमन होता है।

अब पूर्वोक्त अहिंसा व्रत की पांच भावनाओं को कहते हैं–"

मूल–"तस्स इमा पंच भावणातो पढमस्स वयस्स होंति पाणातिवाय-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए, पढमं ठाण-गमण-गुण-जोग-जुंजण-जुगंतर निवातियाए दिट्ठीए ईरियव्वं, कीडपयंग-तस-थावर-दयावरेणनिच्चं पुप्फ-फल-तय-पवाल-कंद-मूल-दग-मट्टिय-बीज-हरिय-परिवज्जिएण सम्मं, एवं खलु सव्व पाणा न हीलियव्वा, न निंदियव्वा, न गरहियव्वा, न हिंसियव्वा, न छिंदियव्वा, न भिंदियव्वा, न वहेयव्वा, न भयं दुक्खंच किंचिलब्भा पावेउं, एवं ईरिया समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठ–निव्वण-चरित्त-भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ १ ॥

वितीयं च मणेण पावएणं पावगं अहम्मियं दारुणं निस्संसं वहबंध परिकिलेस बहुलं, ( भय ) जरा मरण परिकिलेस–संकिलिट्ठं न कयावि मणेण पावतेणं पावगं किंचि वि झायव्वं, एवं मणसमितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ–निव्वण–चरित्त भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ २ ॥

ततियं च वतीते पावियाते पावगं न किंचिवि भासियव्वं, एवं वति समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ–निव्वण–चरित्त भावणाए अहिंसओ संजओ सुसाहू ॥ ३ ॥

चउत्थं आहार एसणाए सुद्धं उंछं गवेसियव्वं, अन्नाए अगढिते[2] अदुट्ठे,[3] अदीणे, अकलुणे, अविसादी, अपरितंत जोगी जयण-घडण-करण

१—क० अहम्मिक दारुणं निसंसं वह बंध परिकिलेस बहुलं जरा मरण परिकिलेस संकिलिट्ठं, नकयाविमणेण पावियाए (ओ) पावगं।

२ क. अकहिए।　　३ असिट्ठे।

चरिय–विणय–गुण जोग संपओगजुत्ते भिक्खू भिक्खेसणाते जुत्ते, समुदाणेऊण भिक्खचरियं उंछं घेत्तूण आगतो गुरु जणस्स पासं, गमणा गमणातिचारे पडिकमण पडिक्कंते, अलोयणदायणं च दाऊण गुरुजणस्स गुरुसंदिट्ठस्सवा, जहोवएसं निरइयारं च अप्पामत्तो पुणरवि अणेसणाते पयतो पडिक्कमित्ता पसंते आसीण सुहनिसन्ने मुहुत्तमेत्तं च झाण–सुहजोग–नाण–सज्झाय–गोवियमणे, धम्ममणे, अविमणे, सुहमणे, अविग्गहमणे, समाहियमणे, सद्धा संवेगनिज्जरमणे, पवयण वच्छल्लभावियमणे, उट्ठेऊणय पहट्ठ[1] तुट्ठे जहारायणियं निमंतइत्ता य, साहवे भावओ य विइण्णे य गुरुजणेणं उपविट्ठे, संपमज्जिऊण ससीसं कायं, तहा करतलं, अमुच्छिते, अगिद्धे, अगढिए, अगरहिते, अणज्झोववण्णे, अणाइले, अलुद्धे, अणत्तट्ठिते, असुर सुरं अचव[2] चवं, अदुतमविलंबियं, अपरिसाडिं, आलोयभायणे जयं पयत्तेण ववगयसंजोग मणिंगालं च, विगय धूमं, अक्खोवंजणाणुलेवणभूयं संजम जाया माया निमित्तं संजम भार–वहणट्ठयाए भुंजेज्जा, पाण धारणट्ठयाए संजएण समियं, एवं आहार समितिजोगेणं भाविओ भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ–निव्वण चरित्त भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ ४ ॥

छाया–"तस्येमाः पञ्चभावनाः प्रथमस्य व्रतस्य भवन्ति, प्राणातिपात विरमण-परिरक्षणार्थाः । प्रथमं स्थानं गमनगुणयोगयोजना–युगान्तरनिपातिकया दृष्ट्या ईर्यितव्यम् ॥ १ ॥

कीट–पतङ्ग–त्रस स्थावर–दयापरेण नित्यं पुष्पफल–त्वक्–प्रवाल कन्दमूल–दक मृत्तिका–बीजहरित–परिवर्जनयासमम् । एवं खलु सर्वे प्राणा न हीलयितव्या, न निन्दितव्या, न गर्हितव्या, न हन्तव्या, [ हिंसितव्या ] न छेत्तव्या, न भेत्तव्या, न वधितव्या, न भयं दुःखं च किञ्चित् लभ्याः प्रापयितुम्, एवमीर्यासमितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा, अशबलाऽसंक्लिष्ट–निर्व्रणचारित्र भावनया अहिंसकः संयतः सुसाधुः ।

द्वितीयञ्च मनसा पापकेन पापकमधार्मिकं, दारुणं, नृशंसं, वधबन्ध–परिक्लेश बहुलं, भय मरण संक्लेश–[ परिक्लेश ] संक्लिष्टं, न कदापि मनसा पापकेन

१ क. पहट्ठो   २ क. अवचवं ।

पापकं किञ्चिदपि ध्यातव्यम्। एवं मनः समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्रभावनया अहिंसकः संयतः सुसाधुः।

तृतीयञ्च वाचा पापकया पापकं न किञ्चिदपि भाषितव्यम्, एवं वचन-समिति-योगेन-भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनया अहिंसकः संयतः सुसाधुः।

चतुर्थमाहारैषणायां शुद्धमुञ्छं गवेषयितव्यम्, अज्ञातोऽगृद्धरदुष्टःअदीणो-अदीनोऽकरुणोऽविषादी अपरितान्तयोगी यतन-घटन-करण-चरित्र-विनयगुण योग-सम्प्रयोगयुक्तो भिक्षुर्भिक्षैषणायां युक्तः, समुदानयित्वा भिक्षाचर्यां उञ्छं गृहीत्वाऽऽगतो गुरुजनस्य पार्श्वं, गमनाऽगमनातिचारान् प्रतिक्रमण प्रतिक्रान्तान् आलोचनाऽऽदानकं च दत्त्वा, गुरुजनस्य गुरुसन्दिष्टस्य वा यथोपदेशं निरतिचारं चाऽप्रमत्तः। पुनरप्यनेषणायां प्रयतः प्रतिक्रम्य प्रशान्त आसीनः सुखनिषण्णो मुहूर्तमात्रं च ध्यान शुभयोग-ज्ञान गोपितमना, धर्ममना, अविमनाः, सुखमना, अविग्रहमनाः, समाहितमनाः, श्रद्धा संवेग-निर्जरमनाः, प्रवर्तनावत्सलभावितमना उत्थाय च प्रहृष्टतुष्टो, यथारात्निकं निमन्त्र्य च साधून्, भावतश्च वितीर्णे च, गुरुजनेन, उपविष्टः संमार्ज्य सशीर्षं कायं, तथा करतलममूर्च्छितोऽगृद्धोऽग्रथितोऽगर्हितोऽनध्युपपन्नोऽनाविलोऽलुब्धोऽनात्मस्थितोऽसुरसुरम्-अचवचवम्-'इति 'ध्वनि रहितम्' अद्रुतमविलम्बितम्, अपरिसाटितम्, आलोकभाजनेजयं प्रयत्नेनव्यपगत संयोगमनिङ्गालं च, विगत धूमक्षोपाञ्जनानुलेपनभूतं, संयम-यात्रा मात्रा-निमित्तं, संयम भार वहनार्थाय भुञ्जीत, प्राणधारणार्थाय संयतः समितम्। एवमाहार समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनयाऽहिंसकः संयतः सुसाधुः।

अन्व०-"(तस्स) अहिंसा रूप उस (पढमस्स वयस्स) प्रथम व्रत की (इमा पंच भावणातो) ये आगे कही गईं पांच भावनायें (होंति) होती हैं, (पाणातिवाय वेरमण परिरक्खणट्ठयाए) प्राणातिपात विरमण रूप अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये (पढमं) पहली भावना (ठाण गमणगुण जोग जुंजण जुगंतर निवातियाए) ठहरने और चलने में स्वपर की पीड़ा रहित गुण योग को जोड़ने वाली तथा गाड़ी के जूवे प्रमाण भूमि पर गिरने वाली (दिट्ठीए) दृष्टि से (इरियव्वं) चलना चाहिए (कीड पतंग तस थावर दयावरेण) कीट पंतग आदि त्रस और स्थावर जीवों पर

१ अकथितः-अशिष्टः इति पाठान्तरं।

दया भाव वाले ( निच्चंपुप्फ फलतय पवाल कंद मूल दगमट्टिय बीज हरिय परि-वज्जिएण ) सदा फूल फल गीली छाल प्रवाल कूंपल कन्द, मूल वृक्षादि के मूल और कच्चा जल, खान आदि की कच्ची मिट्टी बीज तथा दूब आदि हरित इनका बचाव करने वाले को ( सम्मं ) अच्छी तरह यत्न से चलना चाहिए ( एवं खलु ) ऐसे ही ( सव्व पाणा ) जीव मात्र ( नहीलियव्वा ) हीलना करने योग्य नहीं ( न निंदियव्वा) निन्दा करने योग्य नहीं (न गरहियव्वा) गर्हा-किसी के सामने बुराई करने योग्य नहीं है (न हिंसियव्वा ) हिंसा करने योग्य नहीं ( न छिंदियव्वा ) छेदन करने-काटने योग्य नहीं ( न भिंदियव्वा ) तथा भाले आदि से भेदन करने योग्य नहीं ( न वहेयव्वा ) पीडा पहुंचाने योग्य नहीं ( न भयं दुक्खंचकिंचि लब्भा पावेउं ) और कुछ भी भय तथा दुःख पहुंचाने योग्य नहीं है ( एवं ) इस प्रकार ( ईरिया समितिजोगेण ) इर्यासमिति के योग से ( भावितो ) भावित-पवित्र ( अंतरप्पा ) अन्तरात्मा ( असबलमसंकिलिट्ठनिव्वण चरित्त भावणाए ) मलिनता रहित विशुद्धिमय विचार और अखण्ड चारित्र की भावना वाला ( भवति ) होता है वह ( अहिंसए ) अहिंसक ( संजए ) संयत-मृषावाद आदि सावद्य कर्मों से अलग रहने वाला, ( सुसाहू ) सुसाधु है।

( वितीयंच ) और दूसरी भावना ( मणेणं पावएण ) पापकारी अशुभ मन से ( पावगं ) पापयुक्त ( अहम्मियं ) अधार्मिक-धर्मविरुद्ध (दारुणं) दारुण ( निस्संसं ) नृशंस-दया रहित ( वहबंधपरिकिलेसबहुलं ) वध, बन्ध और परितापकी अधिकता वाला ( भय मरणपरिकिलेस संकिलिट्ठं ) भय, मृत्यु और क्लेशों से क्लेशजनक ( न कयाबि मणेण पावतेणं पावगं किंचि विज्झायव्वं ) पाप युक्त मन से वैसे पाप-कारी विचार से कभी थोड़ा भी नहीं करना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार दूसरी (मणसमिति जोगेण ) मनः की समिति- मन की सम्यक् प्रवृत्ति के योग से (भावितो) भावित ( अंतरप्पा ) जीव ( असबलमसंकिलिट्ठनिव्वण चरित्त भावणाए ) मलिनता और संक्लेश रहित अखण्ड चारित्र की भावना से ( अहिंसए ) हिंसा नहीं करने वाला ( संजए ) और पाप कर्म से पृथक् होने से संयत ( सुसाहू ) सुसाधु ( भवति ) होता है।

अब तीसरी भावना-वाक् समिति रूप-( ततियंच ) और तीसरी भावना ( वतीते पावियाते ) अशुभ भाषा से ( किंचिवि ) कुछ भी ( पावगं ) पाप युक्त

वचन ( न भासियव्वं ) नहीं बोलना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( वति समिति जोगेण ) वाक्-समिति-भाषा समिति के योग से ( भावितो ) भावित (अंतरप्पा) जीव ( असवलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए ) निर्मल, संक्लेश रहित और अखण्डित चारित्र की भावना वाला ( अहिंसओ ) अहिंसक ( संजओ ) मुनि ( सुसाहू ) सुसाधु ( भवति ) होता है।

चौथी एषणासमिति ( चउत्थं ) चौथी भावना ( आहार एसणाए ) आहार आदि की एषणासे ( सुद्धं ) दोष रहित ( उंछं ) सामूहिक अनेक घरों से प्राप्त भिक्षा की ( गवेसियव्वं ) गवेषणा करनी चाहिए ( अन्नाए ) अज्ञात सम्बन्ध वाला (अगढिते) मोह रहित ( अदुट्ठे ) दुष्टता रहित ( अदीणे ) क्षोभ से दूर ( अकलुणे ) दीनता रहित ( अविसादी ) खेद रहित ( अपरितंत जोगी ) भ्रमण में आहारादि नहीं मिलने पर भी अथकयोगरूप प्रवृत्तिवाला ( जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपओग जुत्ते ) प्राप्त संयम प्रकृति में यतना और अप्राप्त सत्कर्म के लिये प्रयत्न करने वाला विनय का सेवन करने वाला तथा क्षमा आदि गुणयोग से जो युक्त है ( भिक्खू ) वैसा भिक्षु ( भिक्खेसणाते ) भिक्षा की एषणा में ( जुत्ते ) युक्त लगा हुआ ( समुदाणेऊण ) अनेक घरों में फिर कर ( भिक्ख चरियं उंछं ) थोड़ी २ भिक्षा ( घेत्तूण ) ग्रहण करके ( आगतो गुरुजणस्स पासं ) गुरुजन के पास आया हुआ, ( गमणागमणातिचारे ) गमनागमन के अतिचारों का ( पडिक्कमण पडिक्कंते ) ईर्यापथिक प्रतिक्रमण से प्रतिक्रमण करके ( गुरुजणस्स गुरुसंदिट्ठस्सवा ) गुरु या गुरु से अधिकार पाये हुए उपाध्याय आदि के पास ( आलोयण दाणं च ) ग्रहण किये हुए आहार पानी की यथावत् आलोचना कर उनको दिखादे ( दाऊण ) गुरुजनों को देकर ( जहोपदेसं ) उपदेश के अनुसार ( निरइयारं च ) और अतिचार रहित ( अप्पमत्तो ) प्रमाद से दूर रहने वाले साधु ( पुणरवि ) फिर भी ( अणेसणाते ) अज्ञात रूपमें छुटे हुए एषणा के दोषों को ( पयतो ) यत्नवान ( पडिक्कमित्ता ) कायोत्सर्ग से प्रतिक्रमण करके ( पसंते ) प्रशान्त दशा वाला याने उत्सुकता रहित ( आसीण सुहनिसन्ने ) और आसन पर सुख पूर्वक निराबाधपने बैठा हुआ ( झाणसुहजोग नाण सज्झाय गोवियमणे ) ध्यान गुरुजनों की सेवा आदि शुभ योग, ज्ञान-तत्त्वचिन्तन और स्वाध्याय-शास्त्र पाठ रूपसे मनको गोपन करके ( धम्ममणे ) श्रुत चारित्ररूप धर्म में मन वाला, ( अविमणे सुहमणे ) शून्य चित्त

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, ( अविग्गहमणे समाहियमणे ) कलह शून्य या दुराग्रह से रहित मन वाला और स्वस्थ मन वाला ( सद्धा संवेगनिज्जरमणे ) श्रद्धा-तत्त्वज्ञान तथा संयममें निश्चल विश्वास, संवेग-मोक्षमार्ग में अभिलाषा या संसार से भय, और कर्म निर्जरा में तत्पर मन वाला ( पवयण वच्छल भावियमणे ) प्रवचन-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला ( मुहुत्तमेत्तं ) मुहूर्त भर ऐसा बैठा रहे ( उट्ठेऊण य ) फिर ऊठकर ( पहट्ठतुट्ठे ) अतिशय प्रमोद सहित ( जहारायणियं ) जो दीक्षा आदि से बड़े हों उनके अनुसार ( भावओ ) भाव-आदर बुद्धि से ( साहवे ) साधुओं को ( निमंतइत्ता ) निमन्त्रण करके अर्थात् उसमें से लेने की प्रार्थना करके ( विइण्णे य ) और देकर के ( गुरुजणेणं ) गुरुजनों से आहार के वितीर्ण कर लेने व सबको दे चुकने पर बाद आज्ञा देने पर ( उपविट्ठे ) योग्य आसन पर बैठा हुआ ( ससीसं कायं तहा करतलं संपमज्जिऊण ) मस्तक सहित शरीर तथा हाथ के तले को रजोहरण से अच्छी तरह प्रमार्जन-पूंज करके ( अमुच्छिते ) आहार में मूर्च्छा रहित ( अगिद्धे ) पाई वस्तु में लालसा रहित ( अगढिए ) अप्राप्त वस्तुओं में अभिलाषा रहित ( अगरहिते ) प्रतिकूल पदार्थों में गर्हा नहीं करता हुआ ( अणज्झोववन्ने रसों में तल्लीन नहीं होता हुआ ( अणाइले अलुद्धे अणत्तट्ठिते ) हृदय की मलिनता रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु ( असुरसुरं अचवचवं ) सुर सुर, चव चव आदि ध्वनि नहीं करता हुआ ( अदुतमविलंबियं ) अधिक जल्दी या अधिक देरी से नहीं अर्थात् भोजनके योग्य काल में ( अपरिसाडिं ) नीचे नहीं गिराते हुए ( आलोयभायणे ) प्रकाश में और प्रकाशमान पात्र में ( जयं ) मन व इन्द्रियों के संयम पूर्वक ( पयत्तेण ) प्रयत्न पूर्वक ( ववगय संजोग मणिंगालं च ) दूध व सक्कर के संयोग नहीं मिलाने रूप संयोजना दोष रहित और सरस आहार पर राग करने रूप इंगाल दोप से दूर और ( विगय धूमं ) नीरस आदि प्रतिकूल पदार्थ पर द्वेष करने रूप धूम्रदोप से रहित ( अक्खोवं ) गाड़ी के चाकमें तेल लगाने और ( वणाणुलेवण भूयं ) घाव पर लेप करने के समान वैसे परिमित आहार को ( संजम जाया माया निमित्तं ) संयम भार का वाहन करने के लिये ( संजम भार वहणट्ठयाए पाण धारणट्ठाये ) संयम रक्षा के लिये और केवल प्राण धारण मात्र करने लिये ( समियं ) समिति से युक्त ( संजएण ) साधु ( भुंजेज्जा ) आहार करे।

( एवं ) इस प्रकार ( आहार समिति जोगेणं ) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से ( अंतरप्पा ) अन्तरात्मा ( भावितो ) भावित ( असबलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए ) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भावना वाला ( अहिंसए ) अहिंसक ( संजए ) संयत ( सुसाहू ) सुसाधु ( भवति ) होता है।

मूल-"पंचमं आदान निक्खेवण समिई-पीढ फलग-सिज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग-रयहरण-चोलपट्टग- मुहपोत्तिग- पायपुंछणादी, एयंपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वाता-तवदंस-मसग-सीय-परिरक्खणट्ठयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरितव्वं, संजमेणं णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइसययं, निक्खियव्वं च, गिण्हियव्वं च, भायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण भंड-निक्खेवणा-समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं [1]संवरियं होति सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहिविकारणेहिं, मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं, णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो, धितिमया, मतिमया, अणासवो [2]अकलुसो [3]अच्छिद्दो असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्वजिणमणुन्नातो, एवं पढमं संवरदारं फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति। एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं, परूवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासणमिणं आघवितं, सुदेसितं, पसत्थं। पढमं संवरदारं समत्तं त्तिबेमि। सूत्र ३। २३। इति पढमं संवरदारं।

छाया-"पञ्चमी-आदान निक्षेपणसमितिः-"पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र,- पात्र-कम्बल- दण्डक- रजोहरण- चोलपट्टक-मुखपोतिका-पादपुञ्छनादयः, एतदपि संयमस्योपबृंहणार्थं, वाताऽऽतप दंश मशक शीतपरिरक्षणार्थमुपकरणं, राग द्वेषरहितं परिहर्तव्यम्* संयमे(ते)न नित्यं प्रतिलेखन-प्रस्फोटन-प्रमार्जनाभिः अहन्न

१ क. संचरियं। २ क. अकुलसो। ३ क. अच्छिद्दो अपरिस्सावी।

* धारयितव्यमित्यर्थः।

रात्रिश्च अप्रमत्तेन भवति सततम् निक्षेप्तव्यञ्च ग्रहीतव्यञ्च, भाजनभण्डोपध्युपकरणम् एवमादान-भण्ड निक्षेपणा-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा-अशवलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनयाऽहिंसकः संयतः सुसाधुः।

एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यक् संवृतं भवति सुप्रणिहितम्, एतैः पञ्चभिः कारणैर्मनो, वचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैषयोगोनेतव्योधृतिमता मतिमता अनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽसंक्लिष्टः, शुद्धः सर्वजिनानुज्ञातः, एवं प्रथमं संवरद्वारं, स्पृष्टं, पालितं, शोधितं, तीर्णं, कीर्तितमाराधितमाज्ञयाऽनुपालितं भवति। एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञपितं प्ररूपितं, प्रसिद्धं, सिद्धं सिद्धवरशासनमिदमघोषितं [आख्यापितं] सुदेशितं, प्रशस्तं, प्रथमं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि। सूत्र २।२३।

* इति प्रथमं संवरद्वारम् *

आदान निक्षेपणा समिति रूप भावना-

अन्व०-"( पंचमं ) पांचवी भावना ( आदान निक्खेवणासमिई ) आदान निक्षेपणा समिति ( पीढ फलग सिज्जासंथारग वत्थ पत्त कंबल दंडग रयहरण चोल पट्टग-मुहपोत्तिग, पाय पुंछणादी ) पीठ फलक-पाट शय्या संस्तारक-छोटा बिछौना, वस्त्र, पात्र, कंबल, दंडक रजोहरण, चोलपट्टक- पहनने का कपड़ा, मुहपोत्तिक-मुख वस्त्रिका, पादप्रोञ्छन, आदि (एयंपि) यह सब भी ( संजमस्स) संयम के ( उववूहणट्टयाए ) पोषण के लिए (वातातव-दंस-मसगसीय परिक्खणट्टयाए ) वायु, आतप-धूप, दंश, मशक, मच्छर और सर्दीकी रक्षाके लिये (उवगरणं) उपरोक्त उपकरण को ( राग दोसरहितं ) राग द्वेष से रहित ( परिहरितव्वं ) धारण करना चाहिए ( संजमेणं ) संयम पूर्वक, ( णिच्चं ) सदा (पडिलेहण पप्फोडण पमज्जणाए) प्रति लेखना-देखना, प्रस्फोटन-झटकना व प्रमार्जन करने से ( अहोयराओय ) दिन व रात्रि में ( सययं ) सदा ( अप्पमत्तेण ) प्रमाद रहित ( निक्खियव्वं च ) रखने योग्य और ( गिण्हियव्वं ) ग्रहण करने-लेने योग्य ( होइ ) होता है (भायण भंडोवहि उवगरणं) भाजन-पात्र, मिट्टी के भांड और उपधि-वस्त्र आदि उपकरण-उपयोगी सामग्री जो हैं ( एवं ) इस प्रकार ( आयाण भंड निक्खेवणा समिति जोगेण ) आदान भाण्ड निक्षेपणा समिति के योग से ( भाविओ ) भावित-युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तरात्मा

( अन्नवलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए ) निर्मल व संक्लेश रहित और अखण्डित चरित्र की भावना से ( अहिंसए संजए सुसाहू ) अहिंसक, संयत सुसाधु ( भवति ) होता है।

( एवमिणं संवरस्सदारं ) इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार ( सम्मं ) अच्छी तरह ( संवरियं ) अङ्गीकृत ( सुप्पणिहियं ) उत्तम रीति से प्रणिधान में लाया हुआ, ( होति ) होता है ( इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं ) इन पांचों कारणों से ( मण वयण-काय परिरक्खिएहिं ) मन वचन कायों से परिरक्षित ( णिच्चं ) सदा ( आमरणं-तंच ) मरण पर्यन्त ( एसजोगो ) यह योग ( धितिमया मतिमया ) धैर्यवान् व बुद्धिमान् से ( अणासवो ) आस्रव रहित (अकलुणो) कायरता रहित ( अच्छिद्दो) त्रुटि रहित ( असंकिलिट्ठो ) संक्लेश रहित ( सुद्धो ) शुद्ध अतएव ( सव्वजिण मणुन्नातो ) सर्व जिनों से अनुज्ञात-अनुमत है। ( एवं ) इस प्रकार ( पढमं ) पहला ( संवर दारं ) संवरद्वार ( फासियं ) स्पृष्ट-गृहीत ( पालियं ) पालित ( सोहियं ) शोधित-शुद्ध किया ( तिरियं ) पूरा पाला हुआ ( किट्टियं ) कीर्तित ( आराहियं ) आराधित ( आणाते अणु पालियं ) आज्ञा से अनुपालित (भवति) होता है। ( एवं ) इस प्रकार ( नायमुणिणा भगवया ) भगवान् ज्ञातमुनि महावीर-ने ( पन्नवियं ) प्रज्ञापित ( परूवियं ) प्ररूपित ( पसिद्धं ) प्रसिद्ध ( सिद्धं ) सिद्ध है ( सिद्धवरसासणमिणं ) यह सिद्धवर शासन ( आघवितं ) बहुमूल्य ( सुदेसितं ) उपदेशित ( पसत्थं ) प्रशस्त ( पढमं ) पहला ( संवरदारं ) संवरद्वार ( समत्तं ) समाप्त हुआ ( त्तिवेमि ) ऐसा मैं कहता हूं। सूत्र ३। २३।

भावार्थ-इस सूत्र में अहिंसाव्रत को विशुद्ध रूप से पालने के लिये पांच भावनायें कही गई हैं। ये भावनायें अहिंसाव्रत का रक्षण तथा पोषण करने वाली हैं। इन भावनाओं के बल पर ही अहिंसा-प्राणातिपात विरमणरूप व्रत पालित हो सकता है, अन्यथा नहीं। अतएव उन पांच भावनाओं के स्वरूपों का निरूपण किया जाता है।

अहिंसा-व्रत की पांच भावनाओं में पहली भावना-ईर्या समिति-गमन आगमन की क्रिया में हिंसा न होने की सावधान प्रवृत्ति है। इसमें पहली बात यह है कि युग प्रमाण-प्रायः चार हाथ तक भूमि पर दृष्टि रखते हुए पवित्र भूतल पर चलना चाहिए, जिससे कीट पतङ्ग आदि त्रस स्थावर जीवों की दया पाली जाय।

दूसरी बात–पुष्प, फल, वृक्ष की गीली त्वचा, हरे पत्ते, कन्द, मूल, जल, मिट्टी, बीज और हरी चीजें, इन सब वस्तुओं को नहीं छूना। किसी भी प्राणी की हीलना, निन्दा, गर्हा, हत्या, छेदन, भेदन, बध नहीं करना। किसी भी प्राणी को भय में या दुःखमें नहीं पहुँचाना। इस ईर्या समिति योग से भावित अन्तरात्मा वाला अहिंसक, संयत एवं सुसाधु होता है।

दूसरी भावना यह है कि पापयुक्त मन से किसी भी पापमय कर्म को नहीं करना चाहिए। मनतक में बुरे विचारों को स्थान नहीं देना चाहिए। इस प्रकार मनः समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है।

तीसरी भावना है कि–पापमयी वाणीसे पापयुक्त वचनको नहीं बोलना चाहिए। इस प्रकार वचन समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है।

चौथी भावना आहारैषणा है–इसमें भिक्षा शुद्धि के लिये साधु अपना विशेष परिचय नहीं दे। उत्तम भोजन में आसक्त नहीं हो। नहीं मिलने पर दीनता या द्वेष प्रगट नहीं करे। विधि पूर्वक निर्दोष भिक्षा को ग्रहण करने पर भी अहिंसा की आराधना के लिये यह आवश्यक है कि वह भिक्षा गुरुजनों को दिखाई जाय। भिक्षा में लगने वाले दोषों की गुरु के पास आलोचना की जाय। और गुरु की आज्ञा प्राप्त होने पर सावधानता के साथ सर्वथा शान्तभाव से क्षणभर बैठकर ध्यान किया जाय। इसके बाद अपने प्राप्त आहार से वात्सल्यभाव पूर्वक उठकर मुनियों को आमन्त्रण करे। मोह या स्वार्थ बुद्धि से नहीं किन्तु श्रद्धा, संवेग और कर्म निर्जरा के भाव से। इस प्रकार गुरु और स्वधर्मी–मुनिओं का आदर करके स्वयं भोजन को बैठे। भोजन के पूर्व मस्तक से लेकर सारी देह और विशेषतः करतल का प्रमार्जन किया जाय। फिर शान्ति एवं सन्तोष के साथ प्रकाश वाले स्थान तथा पात्र में भोजन किया जाय।

भोजन करते सुरसुर या चवचव आदि ध्वनि नहीं करे। अति जल्दी या अधिक विलम्ब भी नहीं करे।

संयम यात्रा और देह की रक्षा ही आहार का प्रधान हेतु है अतएव नीचे नहीं गिराते हुए पूर्ण यतना के साथ भोजन करें।

अहिंसक साधुओं की कितनी उदात्त दिनचर्या है। भूख के समय भी कैसे धीरज का उपदेश है! साथिओं के साथ कैसा आदर भाव है? ऐसी चर्या वाले कुटुम्ब में

भी क्या भोजन जन्य मनोमालिन्य हो सकता है ? नहीं। अहिंसा की यह चतुर्थ भावना है। इस प्रकार आहार समिति योगसे अन्तरात्मा भावित होता है।

पांचवी आदान निक्षेपणा समिति है–

इसमें संयम के साधन उपकरण जैसे, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, पाद पुंछन आदि। ये सब भी केवल संयमवृद्धि के लिये होते हैं जो हवा, धूप, दंश, मशक, ठंडी आदि से आत्म रक्षार्थ राग-द्वेष रहित धारण करने योग्य हैं। प्रतिदिन इन भाण्डोपकरणों की देखभाल और प्रमार्जना रूप क्रियाओं से शुद्धि करनी चाहिए। इसके लिये अहर्निश प्रमाद रहित होना चाहिए। इस प्रकार भण्डोपकरण सम्बन्धी आदान निक्षेपणरूप समिति के योग से अन्तरात्मा भावित होता है। निर्मल असंक्लिष्ट तथा अखण्डित चारित्र की भावना से अहिंसक, संयत, सुसाधु होते हैं। इस प्रकार यह संवरद्वार सम्यग् अङ्गीकृत व सुपालित होता है। मन वचन एवं काय से सुरक्षित इन पांच कारणों से सदा मरणकाल पर्यन्त यह योग धैर्यवान् व मतिमान् संयमिओं से पालने योग्य है। इसमें आस्रव नहीं हो, मलिनता न हो–त्रुटि न हो, संक्लेश न हो, अर्थात् सर्वथा विशुद्ध होना चाहिए। ऐसा ही सर्व जिनेन्द्रों के द्वारा कहा गया है। ऐसी ही आराधना से यह संवरद्वार स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीर्ण, कीर्तित और आराधित होता है। और भगवान् की आज्ञानुसार अनुपालित होता है। इस प्रकार ज्ञातमुनि–भगवान् महावीर ने फरमाया है जो सिद्ध है और प्रसिद्ध है। यह श्रेष्ठ सिद्ध का अनुशासन है, बहुमूल्य है। उपदिष्ट है। प्रशस्त है। इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार पूर्ण हुआ। सू० १। २३।

## ❀ समाप्तं प्रथमं संवरद्वारम् ❀

❀ सच्छायं सान्वयार्थं भावार्थम् ❀

# द्वितीयं संवर द्वारम्

पहले संवरद्वार में प्राणातिपात विरमणव्रत कहा गया अब मृषावाद विरमणव्रत कहते हैं। अहिंसा की सर्वाङ्गसाधना के लिये मृषावाद विरमण-सत्य की आवश्यकता है। सत्य के बिना अहिंसा का पूर्ण पालन नहीं हो सकता। इसलिये अहिंसा के बाद मृषावाद विरमणरूप दूसरा संवरद्वार कहा जाता है। जिसका प्रथम सूत्र निम्नलिखित है-

## सत्य का महिमाशाली स्वरूप-

मूल-" जंबू! बितियं च सच्चवयणं सुद्धं सुचियं सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं सुपतिट्ठियं सुपइट्ठियजसं सुसंजमिय वयण बुइयं सुर वर नर वसभ पवर बलवग सुविहिय जण बहुमयं, परमसाहु धम्मचरणं तव नियम परिग्गहियं, सुगतिपहदेसगं च लोगुत्तमं वयमिणं विज्जाहर गगणगमण विज्जाणसाहकं, सग्ग मग्ग सिद्धि पहदेसकं अवितहं तंसच्चंउज्जुयं अकुडिलं भूयत्थं, अत्थतो विसुद्धं उज्जोयकरं पभासकं भवति सव्वभावाण जीवलोगे अविसंवादि जहत्थ मधुरं पच्चक्खं दयिवयंवजंतं अच्छेरकारकं अवत्थंतरेसु बहुएसु माणुसाणं सच्चेण महासमुद्द मज्झेवि चिट्ठंति न निमज्जंति मूढाणिया वि पोया सच्चेण य उदग संभमं मिवि न बुज्झइ न य मरंति थाहंते लभंति। सच्चेणय अगणि संभमं मिवि न डज्झंति उज्जुगा

मणूसा । सच्चेण य तत्ततेल्ल तउ लोहसीसकाइं छिवंति धरेंति नय डज्झंति, मणूसा । पव्वयकडकाहिं मुच्चंते न य मरंति । सच्चेण य परिग्गहिया असि. पंजरगया समराओ विणिइंति, अणहाय सच्चवादी वह-बंधभियोगवेर घोरेहिं पमुच्चंतिय अमित्तमज्झाहिं निंइति अणहा य सच्च-वादी । सादेव्वाणिय देवयाओ करेंति सच्चवयणे रताणं ।

छाया-"जम्बूः ? द्वितीयञ्चसत्यवचनं शुद्धं सुचितं शिवं सुजातं सुभाषितं सुव्रतं सुकथितं सुदिष्टं सुप्रतिष्ठितं सुप्रतिष्ठितयशस्कं सुसंयमित वचनोक्तं सुरवर नर वृषभ प्रवर बलवत्सुविहितजन बहुमतं परमसाधु धर्मचरणम् तपोनियम परिगृहीतं सुगति-पद्देशकं च लोकोत्तमं व्रतमिदं विद्याधर गगन गमन विज्ञान साधकं स्वर्गमार्ग सिद्धि पद्द देशकम् अवितथं तत्सत्यमृजुकम् अकुटिलं भूयोऽर्थमर्थतो विशुद्धमुद्योतकरं प्रभा-सकं भवति सर्वभावानां जीवलोकेऽविसंवादि यथार्थ मधुरं प्रत्यक्षं दैवतकमिव यत्त दाश्चर्यकारकम् अवस्थान्तरेषु बहुषु मनुष्याणां सत्येन महासमुद्रमध्येऽपि मूढानीका अपि पोताः । सत्येन च उदकसम्भ्रमेऽपि न निमज्जन्ति न म्रियन्ते तीरंते लभन्ते । सत्येन च वह्नि सम्भ्रमेऽपि न दह्यन्ते ऋजुका मनुष्याः सत्येन च तप्ततैल तप्तलोहसीस-कानि क्षिपन्ति, धरन्ति न च दह्यन्ते मनुष्याः । पर्वतकटकाद्विमुच्यन्ते । न च म्रियन्ते सत्येन च परिगृहीता असिपञ्जरगताः समरादपि निर्यान्ति, अनघाश्च सत्यवादिनो वध बन्धाभियोगवैर घोरेभ्यः प्रमुच्यन्ते चामित्रमध्यादपि निर्यान्ति अनघाश्च सत्य-वादिनः सादेव्यानि ( सान्निध्यानि ) कुर्वन्ति सत्यवचनेरतानाम् ।

अन्व०-"( जंबू ? ) हे शिष्य जम्बू ! ( बितियंच ) अहिंसारूप प्रथम संवर के बाद फिर दूसरा संवर ( सच्चवयणं ) सत्यवचन जो सज्जनों के लिये अथवा द्रव्य और गुणों के लिये हितकारी है ( सुद्धं ) दोष रहित ( सुचियं ) पवित्र ( सिवं ) उपद्रव रहित ( सुजायं ) शुभ विचार से उत्पन्न ( सुभासियं ) अतएव सुभाषित ( सुव्वयं ) सुव्रत-श्रेष्ठ व्रत रूप ( सुकहियं ) ) और सम्यक् विचार पूर्वक कहा गया ( सुदिट्ठं ) कल्याण के साधन रूप से ज्ञानिओं के द्वारा अच्छी तरह देखा गया व ( सुपतिट्ठियं ) सुप्रतिष्ठित-सभी प्रमाणों से प्रतिष्ठा प्राप्त है ( सुपतिट्ठियजसं ) अच्छी तरह स्थिर कीर्ति वाला ( सुसंजमिय वयण वुइयं ) सम्यक् प्रकार के संयम युक्त वचनों से बोला गया, ( सुरवर ) उत्तम जाति के देव ( नर वसभ ) प्रधान पुरुष ( पवर बलवग सुविहियजणबहुमयं ) अतिशय बलधारी और सुविहित मनुष्य

सज्जन पुरुष का सत्यव्रत बहुत माना हुआ है ( परम साहु धम्म चरणं ) नैष्ठिक मुनिओं का धार्मिक अनुष्ठान ( तव नियम परिग्गहियं ) और तप नियम से स्वीकार किया गया है ( सुगतिपहदेसगं ) सुगति मार्ग का उपदेशक ( च ) और ( लोगुत्तमं ) लोक में उत्तम ( वयमिणं ) यह सत्य व्रत है, ( विज्जाहर गगण गमण विज्जाण साहकं ) विद्याधरों की आकाश गामिनी आदि विद्याओं का साधन ( सग्ग मग्ग सिद्धि पह-देसकं ) स्वर्ग के मार्ग और सिद्धि पथ का प्रवर्तक तथा ( अवितहं ) असत्य से रहित है ( तं सच्चं ) वह सत्य नाम का दूसरा संवर ( उज्जुयं ) सरल भाव से प्रवर्तित होने से ऋजु तथा ( अकुडिलं ) कुटिलता रहित ( भूयत्थं ) सद् भूत अर्थ वाला ( अत्थतो विसुद्धं ) अर्थ प्रयोजन से विशुद्ध ( उज्जोयकरं ) पदार्थ का प्रकाशक ( सव्व भावाणं ) सब पदार्थों का ( जीव लोगे ) जीव लोक में (पभासकं) अच्छी तरह कथन करने वाला ( भवति ) होता है ( अविसंवादि ) दोष विरोध रहित ( जहत्थ मधुरं ) यथार्थ होने से मधुर ( पचक्खं ) प्रत्यक्ष ( दयिवयंव ) दैवत-देव-की तरह ( जं ) जो ( माणुसाणं ) मनुष्यों की ( बहुएसु अवत्थंतरेसु ) बहुत सी अवस्थाओं में-दशा विशेष में ( तं ) वह सत्य ( अच्छेर कारकं ) आश्चर्य कारक होता है ( सच्चेण ) सत्य के कारण ( महासमुद्दमज्झेवि ) बड़े समुद्र के मध्य में भी ( मूढाणिया वि ) मूढानीक-दिग्भ्रम में पड़े हुए चालकसमूह :वाले भी ( पोया ) पोत-नौका जहाज 'पार लगते हैं ( सच्चेणय ) और सत्य से ( उदगसंभमं मिवि ) जल के तेज:प्रवाह में या भँवर में भी ( न वुज्झइ ) नहीं डूबते ( न य मरंति ) और अपमृत्यु से नहीं मरते हैं ( थाहं ते लभंते ) गिरे हुए वे सत्यव्रती स्ताघ-भूमि तल को प्राप्त करते हैं अर्थात् डूबने के प्रसङ्ग में भी वे सत्यव्रती सत्य के प्रभाव से आश्रय पा लेते हैं ( सच्चेणय ) और सत्य से (अगणि संभमं मिवि ) अग्नि के चक्कर में भी ( न डज्झंति ) नहीं जलते हैं ( उज्जुगा मणूसा ) सरल हृदय वाले मनुष्य ( सच्चेणय ) फिर सत्य के प्रभाव से ( तत्त तेल तउ लोहसीस काइं ) तपे हुए तेल, ताम्बा, लोह और सीसे को ( छिवंति ) छू लेते ( य ) और ( धरेंति ) हाथ में धर लेते हैं। ( न डज्झंति ) जलते नहीं ( मणूसा पव्वय कडकाहिं मुच्चंते ) मनुष्य पर्वतके शिखरसे गिराये जाते हैं, (नय मरंति) फिर भी वे नहीं मरते हैं यह सत्यका प्रताप है ( सच्चेणय परिग्गहिया ) और सत्य से परिगृहीत याने सत्य व्रत वाले पुरुष ( असिपंजरगया ) असिपंजरगत-पिंजरे की तरह चारो ओर खड्ग-धारिओं से

घिरे हुए (समराओ वि) समरभूमि से भी (अणहा) अक्षत-घाव वाले बचे हुए (णिइंति) निकल जाते हैं (य) और (सच्चवादी) सत्यवादी (वहबंध भियोग वेर घोरेहिं) वध बन्ध, अभियोग-बलात्कार पकड़े जाना और भयङ्कर शत्रुता के प्रसंगों से (पमुच्चंति) छूट-जाते हैं (य) और (अमित्तमज्झाहिं) शत्रुओं के समूह से (अणहा) बिना बाधा के (सच्चवादी) सत्यवादी मनुष्य (णिइंति) निकल जाते हैं (य) और (सच्चवयणे रताणं) सत्य वचन में रत रहने वाले मनुष्यों की (देवयाओ) देव लोग (सादेव्वाणि) सान्निध्य-साहाय्य (करेंति) करते हैं।

मूल—"तं सच्चं भगवं तित्थकर सुभासियं, दसविहं चोद्दसपुव्वीहिं पाहुडत्थविदितं महरिसीणय समयप्पदिन्नं देविंदनरिंद भासियत्थं वेमाणिय साहियं महत्थं मंतोसहि विज्जासाहणत्थं चारणगण समण सिद्धविज्जं, मणुयगणाणं वंदणिज्जं, अमरगणाणं अच्चणिज्जं असुर-गणाणं य पूयणिज्जं अणेगपासंडि परिग्गहितं। जं तं लोकंमि सारभूयं, गंभीरतरं महासमुद्दाओ। थिरतरगं मेरुपव्वयाओ। सोमतरगं चंदमंडलाओ। दित्ततरं सूरमंडलाओ। विमलतरं सरयनहयलाओ। सुरभितरं गंधमादणा-ओ जेविय लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभका य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाणिवि ताइं सच्चे पइट्ठियाइं। सच्चंपि य संजमस्स उवरोहकारकं किंचि न वत्तव्वं हिंसासा-वज्जसंपउत्तं। भेय विकहकारकं, अणत्थवाय कलहकारकं। अणज्जं अव-वाय विवाय संपउत्तं वेलंबं, ओजधेज्जबहुलं, निल्लज्जं, लोयगरहणिज्जं, दुद्दिट्ठं दुस्सुयं, अमुणियं। अप्पणो थवणा परेसु निंदा। न तंसि मेहावी, ण तंसि धन्नो न तंसि पियधम्मो न तं कुलीणो न तंसि दाणव(प)ती न तंसि सूरो न तंसि पडिरूवो न तंसि लट्ठो न पंडिओ न बहुस्सुओ नवि य तं तवस्सी ण यावि परलोगणिच्छियमतीऽसि सव्वकालं जातिकुल रूव वाहिरोगेण वाविजं होइ वज्जणिज्जं दुहिलं (दुहओ) उवयार मतिक्कंतं एवं विहं सच्चंपि न वत्तव्वं। अहकेरिसकं पुणाइ सच्चं तु भासियव्वं? जं तं दव्वेहिं

पज्जवेहिय गुणेहिं कम्मेहिं बहुविहेहिं सिप्पेहिं आगमेहि य नामक्खाय निवा उवसग्ग तद्धिय समास संधि पदहेउ जोगिय उणादि किरिया विहाण धातु सर विभत्ति वन्नजुत्तं तिकल्लं दसविहंपिसच्चं जह भणियं तह य कम्मुणा होइ दुवालसविहा होइभासा, वयणंपि य होइ सोलसविहं। एवं अरहंत मणुन्नायं समिक्खियं संजएण कालंमिय वत्तव्वं ॥ सूत्र१।२४।

छाया–तत्सत्यं भगवत्तीर्थंकर सुभाषितं दशविधं चतुर्दशपूर्विभिः प्राभृतार्थ विदितं महर्षीणांच समयप्रदत्तं देवेन्द्र नरेन्द्र भाषितार्थं वैमानिकसाधितं महार्थं मन्त्रौषधिविद्यासाधनार्थम्। चारणगण श्रमण सिद्धवेद्यं मनुजगणानाञ्च वन्दनीयम् अमरगणानाञ्चाऽर्चनीयम्, असुरगणानाञ्च पूजनीयम्, अनेकपाषण्डिपरिगृहीतम्, यत्तल्लोके सारभूतं गम्भीरतरं महासमुद्रात् स्थिरतरकं मेरुपर्वतात्, सौम्यतरं चन्द्रमण्डलात्, दीप्ततरं सूर्यमण्डलात्, विमलतरं शारदनभस्तलात्, सुरभितरं गन्धमादनात्। येऽपिचलोकेऽपरिशेषा मन्त्रयोगा जपाश्च विद्याश्च जृम्भकाश्च अस्त्राणि च शस्त्राणि च शिक्षाश्चाऽऽगमाश्च सत्यानि च तानि सत्ये प्रतिष्ठितानि, सत्यमपि च संयमस्योपरोधकारकं किञ्चिदपिनोवक्तव्यम् हिंसासावद्यसम्प्रयुक्तं भेद विकथाकारकम् अनर्थवाक्कलहकारकम् अनार्यम् अपवाद विवाद सम्प्रयुक्तं विडम्बम् ओजोधैर्यबहुलं निर्लज्जं लोकगर्हणीयं दुर्दृष्टं दुःश्रुतममनोज्ञम्, आत्मनः स्थापना परेषु निन्दा, न तत्रमेधावी, न तत्रधन्यो न तत्र प्रियधर्मो न तत्कुलीनो न तत्र दानपति र्न तत्र शूरो न तत्र प्रतिरूपो न तत्र लष्टो न पण्डितो न बहुश्रुतो नापिच तत् तपस्वी न चापि परलोक निश्चित मतिरस्ति। सर्वकालं जातिकुल रूप–व्याधिरोगेण वापि यद्भवति वर्जनीयम्, दुःखत उपकारमतिक्रान्तमेवंविधं सत्यमपि न वक्तव्यम्, अथकीदृशकं पुनरपि सत्यन्तु भाषितव्यम्? यत्तद्द्रव्यैः पर्यायैश्च गुणैः कर्मभिर्बहुविधैः शिल्पैरागमैश्च नामाऽऽख्यात निपातोपसर्ग तद्धित समाससन्धिपदहेतु यौगिकोणादि क्रिया विधान धातु स्वरविभक्तिवर्णयुक्तं त्रिकालं दशविधमपिसत्यं यथा भणितं तथा च कर्मणा भवति द्वादशविधा भवति भाषा, वचनमपि च भवति षोडशविधम्। एवञ्चार्हदनुज्ञातं समीक्षितं संयमिना काले च वक्तव्यम्। सूत्र १। २४।

अन्व०–"( तं सच्चं ) इस प्रकार का वह सत्य महाव्रत ( भगवं ) भगवान्–अतिशय सम्पन्न ( तित्थकर सुभासियं ) तीर्थङ्करों से अच्छी तरह कहा गया ( दसविहं ) दश प्रकार का है ( चोद्दस पुव्वीहिं ) चतुर्दश पूर्व धारियों ने ( पाहुड-

स्यविदितं ) जिसे पूर्वका एक अंश होने के कारण अर्थ रूप से जाना है। ( महरिसीणय ) और महर्षि-मुनिओं को ( समयप्पदिन्नं ) सिद्धान्त रूप से दिया गया अर्थात् साधुओं के द्वितीय महाव्रत में सिद्धान्त के द्वारा सत्य स्वीकार किया गया है ( देविंद नरिंद भासियत्थं ) देवेन्द्र तथा नरेन्द्र-राजाओं ने लोगों से जिसका अर्थ कहा है अथवा देवेन्द्र आदि को जिसका प्रयोजन तत्त्वरूप से कहा गया है वैसा ( वेमाणिय साहियं ) वैमानिक देवों से समर्थित एवं आसेवित है ( महत्थं ) बड़े प्रयोजन वाला ( मंतोसहि विज्जासाहणत्थं ) मन्त्र, औषधि और विद्याओं के साधन में अर्थयुक्त याने साधना का कारण है ( चारण गण समण सिद्धविज्जं ) विद्या चारण आदि मुनिवृन्द की विद्याओं को सिद्ध करने वाला ( मणुयगणाणं वंदणिज्जं ) मनुष्य गणों का वन्दनीय-स्तुति पात्र ( अमर गणाणं अच्चणिज्जं ) देवगणों का अर्चनीय-आदर पात्र ( असुरगणाणं च पूजनीयं ) असुरकुमार आदि भवनपति देवों का पूजनीय-बहुमान पात्र और ( अणेग पासंडि परिग्गहितं ) विविध प्रकार के व्रतधारिओं से धारण किया गया है ( जं ) जो पूर्वोक्त महत्व वाला है (तं) वह सत्य ( लोगंमि सारभूयं ) लोकों में सारभूत ( महा समुद्दाओ गंभीरतरं ) एवं महा समुद्र-लवण आदि विशाल समुद्र से अधिक गम्भीर ( मेरु पव्वयाओ थिरतरगं ) मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर ( चन्दमंडलाओ सोमतरगं ) चन्द्र मण्डल से विशेष सौम्य तथा ( सूरमंडलाओ दित्ततरं ) सूर्य मण्डल से अधिक दीप्ति वाला ( सरयनहयलाओ निमलतरं ) शरत् काल के आकाश तल से अधिक निर्मलता वाला और ( गंधामादणाओ सुरभितरं ) गन्धमादन नामक गज दन्त से विशेष सुगन्धि वाला है ( जेविय ) और जो भी ( लोगंमि ) संसार में ( अपरिसेसा मंत-जोगा ) हरिणगमेषी आदि के सब मन्त्र तथा वशीकरण आदि योग ( जवा य ) और जप ( विज्जा य ) प्रज्ञप्ति आदि विद्यायें और ( जंभका ) जृम्भक देव ( य ) और ( अत्थाणि ) धनुष आदि अस्त्र ( सत्थाणि य ) और शस्त्र अर्थ शास्त्र आदि शास्त्र या खड्गादिशस्त्र ( सिक्खाओ य ) औरकलायें ( आगमा य ) सिद्धान्त-ज्ञान के तत्त्व शास्त्र हैं ( सव्वाणिवितोइं ) वे सभी पूर्वोक्त मन्त्रादि ( सच्चे पइट्ठियाइं ) सत्य में प्रतिष्ठित हैं ( सच्चंपि य ) और सत्य भी ( संजमस्स उवरोह कारकं ) संयम में बाधक हो वैसा ( किंचिन वत्तव्वं ) किंचिन्मात्र भी नहीं बोलना चाहिए जैसे ( हिंसा सावज्जसंपउत्तं ) हिंसा व पाप युक्त क्रिया के योग वाला ( भेयविकह

कारकं ) दर्शन तथा चारित्र में भेद करने वाली स्त्री आदि की विकथा युक्त वचन ( अणत्थवाय कलह कारकं ) निष्प्रयोजन वचन और कलहकारी ( अणज्जं ) अनार्य के योग्य अथवा न्याय हीन वचन ( अन्नवाय विवाय संपउत्तं ) अपवाद-निन्दा और विरोध युक्त वचन ( वेलंबं ) दूसरों की विडम्बना कारी वचन ( ओजधेज्जवहुलं ) बल और धृष्टता-धिठाई की अधिकता वाला, ( निल्लज्जं ) लज्जा रहित ( लोयगरहणिज्जं ) लोक में निन्दनीय वचन ( दुद्दिट्ठं ) अच्छी तरह नहीं देखा हुआ ( दुस्सुयं ) बुरी तरह से सुना हुआ, ( अमुणियं ) पूर्ण रीति से नहीं जाना हुआ, याने अज्ञात विषय का कथन ( अप्पणो थवणा ) अपनी स्तुति तथा ( परेसुनिंदा ) दूसरों के सम्बन्ध में निन्दा करना जैसे कि-( न तंसि मेहावी ) तू ग्रहण-धारणा शक्ति सम्पन्न मेधावी नहीं है ( ण तंसिधन्नो ) तू धन पाने योग्य नहीं है ( न तंसि पियधम्मो ) तू प्रिय धर्मा-धर्म प्रेमी नहीं है ( न तं कुलीणो ) न तू कुलीन है ( न तंसिदाणपती ) दान देने वाला भी तू नहीं है ( न तंसिसूरो ) तू शूर नहीं है ( न तंसि पडिरूवो ) तू रूप सम्पन्न भी नहीं है ( न तंसिलट्ठो ) न तू सौभाग्यशाली है ( न पंडिओ ) न पण्डित है ( न बहुस्सुओ ) तू बहुत शास्त्र का जानकार नहीं ( न वियतं तवस्सी ) तू तपस्वी भी नहीं है ( ण यावि पर लोगणिच्छियमतीऽसि ) और तू पर लोक के विषय में निश्चित बुद्धि वाला भी ( सव्व कालं ) सर्व काल-आजन्म ( नऽसि ) नहीं है, इस प्रकार ( जाति कुल रूव वाहिरोगेणवावि ) जाति-मातृवंश, कुल-पितृ वंश, रूप, व्याधि-कुष्ठ आदि अथवा रोग-ज्वर आदि से जो भी वचन ( वज्जणिज्जं ) पर पीड़ाकारी होने से वर्जनीय ( होइ ) है ( दुहओ ) द्रव्य और भाव से ( उवयार मतिक्कंतं ) उपचार-आदर या उपकार रहित हो ( एवं विहंसच्चंपि ) इस प्रकार का सत्य भी ( न वत्तव्वं ) नहीं बोलना चाहिए।

अब जो सत्य वचन बोलने योग्य होता है प्रश्न पूर्वक उसका स्वरूप कहते हैं-(अह केरिसकं पुणाइ सच्चंतु भासियव्वं?)अब फिर कैसा सत्यभी वचन बोलने योग्य है ? उत्तर-(जं)जो सत्य (दव्वेहिं पज्जवेहिय) द्रव्य और पर्याय-अवस्थाओं से (गुणेहिं कम्मेहिं) वर्ण आदि गुणों से कृषि आदि कर्मसे (बहुविहेहिं सिप्पेहिं) बहुत प्रकारके चित्र आदि शिल्प (आगमेहिय) और सिद्धान्त के अर्थों से (नाम क्खाय ) नामपद देवदत्त आदि, आख्यात- क्रियापद भवति आदि ( निवा उवसग्ग तद्धित समास संधि पद हेउ जोगिय उणादि किरिया विहाण धातु सर विभत्ति वन्नजुत्तं ) निपात-

ष वा आदि, उपसर्ग-धातु के साथ लगने वाले प्र परा आदि, तद्धित-तद्धित प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे नाभेय आदि पद, समास-अनेक पदों को एक साथ मिला कर एक पद करना जैसे राजपुरुष आदि, सन्धि-समीपतासे पदों का सम्बन्ध विशेष जैसे दध्यत्र आदि, हेतु-अनुमान का अङ्ग विशेष, यौगिक-दो आदि के संयोग वाला पद अथवा जिस पद के अवयवार्थ से समुदायार्थ जाना जाय जैसे पाचक पाठक आदि, उणादि-उण् आदि उणादिगण के प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे साधु, स्वादु आदि क्रियाविधान-क्रिया का विधान करने वाला पाचक आदि पद, धातु-क्रियाका कथन करने वाले भू आदि, स्वर-आकार आदि या षड्जादि सप्तस्वर, विभक्ति-प्रथमा आदि सात विभक्तिपद और वर्ण-ककार आदि व्यञ्जनों से युक्त (तिकल्लं) त्रिकाल विषयक (दसविहंपि) दश प्रकार का भी (जहभणियं) जैसे वचन (तहय) वैसे ही (कम्मुणा) लेखन व चेष्टा आदि क्रिया से दश प्रकार का (सच्चं) सत्य (होइ) होता है (दुवालस विहा होइ भासा) बारह प्रकार की भाषा होती है (वयणंपि यहोइ सोलसविहं) और वचन भी सोलह प्रकार का होता है (एवं) इस प्रकार (अरहंत) तीर्थङ्करों से (मणुन्नायं) अनुज्ञात (य समिक्खियं) और अच्छी तरह विचार पूर्वक सोचा हुआ वचन (संजएण) संयमी साधु को (कालंमिय) बोलने के अवसर पर (वत्तव्वं) बोलना चाहिए । २ । २४ ॥

भावार्थ-हे जम्बू ! अहिंसा व्रत के बाद फिर दूसरा सत्य वचन रूप संवर है, जो शुद्ध-सुयोग्य शिव-कल्याण कारक यावत् उत्तम देव और श्रेष्ठ पुरुषों का बहुमत है, साधु धर्म का अनुष्ठान तथा सुगति मार्ग का देशक है। तप और नियमों में इसका प्रधान स्थान है। यह लोकोत्तम व्रत विद्याधरों की विद्याका साधन तथा स्वर्ग व मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक है। मृषासे रहित यह सत्य नामका संवर कुटिलता रहित सरल और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला यावत् संसार में पदार्थ मात्र का सम्यक् कथन करने वाला है, विरोध रहित, यथार्थ, मधुर और जो वह सत्य, मनुष्यों की विविध दशाओं में प्रत्यक्ष देवों की तरह उपकारक होता है, सत्य के प्रताप से महा समुद्र में भी सत्यशील मनुष्य नहीं डूबते हैं, और अपमृत्यु सेभी नहीं मरते हैं तथा सत्य में निष्ठा रखने वालों की सन्निधि में देव भी आते हैं, इत्य विविध विशेषताशाली सत्य भगवान तीर्थङ्करों से अच्छी तरह कहा गया सत्य दश प्रकार का है, चौदह पूर्व के ज्ञानिओं ने पूर्व श्रुत में इसको सम्य

और साधुओं को महा व्रत रूप से दिया गया है, देवेन्द्र आदि के समक्ष कहा गया तथा वैमानिक देवों से सेवित है, मन्त्र आदि की सिद्धि का साधन तथा देव दानव और मानवों के लिये वन्दनीय आदरणीय एवं पूज्य है, अनेक प्रकार के व्रतियों से धारण किया गया जो यह सत्य समस्त लोक में सारभूत है, गम्भीरता में समुद्र जैसा अति गम्भीर और स्थिरता में मेरु जैसा अकम्प है ऐसे सौम्य दीप्ति और निर्मलता में चन्द्र सूर्य तथा स्वच्छ आकाश व गन्धमादन की उपमा जिस सत्य को दी गई है, संसार में जो भी मन्त्र यन्त्र आदि हैं वे सभी सत्य में प्रतिष्ठित हैं।

होकर भी जो वचन संयम में बाधक हो वह नहीं बोलना चाहिए–जैसे हिंसा ादि पाप युक्त तथा सच्चरित्र में भेद करने वाली स्त्री आदि की विकथा युक्त निरर्थक व कलह वर्द्धक व न्याय विरुद्ध वचन तथा लोक निन्दनीय तथा दुर्दिष्ट आदि वचन अवाच्य है, अपनी स्तुति एवं पर निन्दा के वचन भी नहीं बोलना चाहिए, जैसे कि तू बुद्धिमान नहीं है आदि जाति कुल रूप आदि से जो भी वचन वर्जनीय है इस प्रकार का सत्य भी नहीं बोलना चाहिए सत्य होने पर भी कैसा वचन बोलना चाहिए ? यह दिखाते हैं-जो वचन द्रव्य पर्याय गुण कर्म और विविध प्रकार के शिल्प तथा सिद्धान्त के अर्थ से युक्त हो, नाम ... या, निपात,

भत्तव्वं, एवं अणुवीति समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपुन्नो। बितियं कोहोणसेवियव्वो, कुद्धोचंडिक्कियो मणूसो अलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज फरुसं भणेज्ज अलियं पिसुणं फरुसंभणेज्ज, कलहं करेज्जा वेरं करेज्जा विकहं करेज्जा कलहं वेरं विकहं करेज्जा सच्चं हणेज्ज सीलं हणेज्ज विणयं हणेज्ज सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज वेसो हवेज्ज वत्थुं भवेज्ज गम्मोभवेज्ज वेसोवत्थुं गम्मो भवेज्ज, एयं अन्नं च एवमादियं भणेज्ज कोहग्गि संपलित्तो तम्हा कोहो न सेवियव्वो, एवं खंतीइ भाविओ भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो। ततियं लोभो न सेवियव्वो, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं खेत्तस्स व वत्थुस्स व कतेण १ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कित्तीए लोभस्स व कएण २ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं रिद्धीय (ए) वसोक्खस्स व कएण ३, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं भत्तस्स व पाणस्स व कएण ४, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं पीढस्स व फलगस्स व कएण ५, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सेज्जाए व संथारकस्स व कएण ६, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं वत्थस्स व पत्तस्स व कएण ७, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कंबलस्स व पायपुंछणस्सव कएण ८ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सीसस्स व सिस्सिणीए व कएण ६, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं अन्नेसुय एवमादिसु बहुसु कारणसतेसु, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तम्हा लोभो न सेवियव्वो, एवं मुत्तीय भाविओ भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो।

छाया-"इदञ्चाऽलीक पिशुन परुष कटुक चपल वचन परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभाविकम् आगमिष्यद्भद्रं शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःख पापानां व्युपशमनम्। तस्येमाः पञ्चभावनाः द्वितीयस्य व्रतस्य अलीकवचनस्य विरमण परिरक्षणार्थतायै प्रथमं श्रुत्वा संवरार्थं परमार्थं सुष्ठु ज्ञात्वा न वेगितं न त्वरितं न चपलं न कटुकं न परुषं न साहसं न च परस्य पीडाकरं सावद्यं सत्यञ्च हितञ्च मितञ्च ग्राहकञ्च शुद्धं सङ्गतं काहलमपापञ्च समीक्षितं संयतेन काले च वक्तव्यम्। एवमनुविचिन्त्य समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा

और अनादर का स्थान तीनों होता है ( एयं अन्नं च एवमादियं ) यह असत्य और कूट लेखन आदि अन्य इस प्रकार के वचन ( कोहग्गि संपलित्तो ) क्रोधानल से जले हृदय वाला, ) भणेज्ज ) बोलता है ( तम्हा ) इसलिये ( कोहो ) क्रोध ( न सेवियव्वो ) सेवन नहीं करना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( खंतीइ ) क्षमासे ( भाविओ ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तः करण वाला ( संजय कर चरण नयण वयणो ) कर, चरण, नेत्र और मुख के संयमयुक्त साधु ( सूरो ) शूर तथा ( सच्चज्जव संपन्नो) सत्य और सरलता से सम्पन्न ( भवति ) होता है ( ततियं ) तृतीय भावना लोभ निग्रहरूप ( लोभो ) लोभ ( न सेवियव्वो ) नहीं करना चाहिए क्योंकि ( लुद्धो लोलो ) लुब्ध-लोभी व्रतमें चंचल बना हुआ ( खेत्तस्स व वत्थुस्स व कतेण ) क्षेत्र-जमीन या घर के लिये ( भणेज्ज अलियं ) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी तथा चंचल व्रत वाला ( कित्तीए लोभस्स व कएण ) कीर्ति अथवा लोभ-धन प्राप्ति के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ २ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल व्रती ( रिद्धीय व सोक्खस्स व कएण ) ऋद्धि या सुख के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ३ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चञ्चल व्रत वाला ( भत्तस्स व पाणस्स व कएण ) भोजन व पानी के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ४ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( पीठस्सव फलगस्स व कएण भणेज्ज अलियं ) पीठ व फलक-पाट के लिये झूठ बोलता है ॥ ५ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( सेज्जाए व संथारकस्स व कएण ) शय्या अथवा संस्तारक-छोटे बिस्तर के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ६ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( वत्थस्स व पत्तस्स व कएण ) वस्त्र अथवा पात्र के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ७ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( कंबलस्स व पायपुंछणस्स व कएण ) कंबल या पादप्रोञ्छन रजोहरण के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ८ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( सीसस्स व सिस्सीणीए व कएण ) शिष्य अथवा शिष्यिणी के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ९ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( अन्नेसुय एवमादिसु ) फिर अन्य इस प्रकार के ( बहुसु कारणसतेसु ) बहुत से सैकड़ों कारणों में ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ( लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं ) लोभी व चंचल प्रकृति मनुष्य झूठ बोलता है, ( तम्हा लोभो न सेवियव्वो ) इसलिये लोभ

का सेवन नहीं करना चाहिए। (एवं) इस प्रकार (मुत्तीय भाविश्रो) मुक्ति-निर्लोभिता से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आंख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर एवं (सच्चज्जवसंपन्नो) सत्य व सरलता से युक्त (भवति) होता है।

मूल—" चउत्थं न भाइयव्वं भीतं खु भया अइंति, लहुयं भीतो अबितिज्जओ मणूसो भीतो भूतेहिं घिप्पइ, भीतो अन्नं पिहु भेसेज्जा, भीतो तव संजमं पिहु मुएज्जा भीतो य भरं न नित्थरेज्जा सप्पुरिसनिसेवियं च मग्गं भीतो न समत्थो अणुचरिउं, तम्हा न भातियव्वं भयस्स वा वाहिस्स वा रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा अन्नस्स वा एगस्सवा (एवमादियस्स) एवं धेज्जेण भाविश्रो भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो। पंचमकं हासं न सेवियव्वं अलियाइं, असंतकाइं जंपंति हासइत्ता परपरिभव कारणं च हासं परपरिवायप्पियं च हासं पर पीलाकारगं च हासं भेदविमुत्तिकारकं च हासं अन्नोन्नजणियं च होज्जहासं अन्नोन्नगमणं च होजमम्मं अन्नोन्नगमणं च होजकम्मं कंदप्पाभियोगगमणं च होज्जहासं आसुरियं किव्विसत्तणं च जणेज्जहासं तम्हा हासं न सेवियव्वं एवं मोणेण भाविश्रो भवइ अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो, एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण वयण काय परिरक्खिएहिं निच्चं आमरणं तं च एस जोगो णेयव्वो धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकलिट्ठो (सुद्धो) सव्वजिणमणुन्नाओ, एवं बितियं संवर दारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवति, एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवर सासणमिणं आघवितं सुदेसितं पसत्थं बितियं संवरदारं समत्तं तिबेमि ॥ सू० ॥ २५ । इति बितियंदारं।

छाया—"चतुर्थं न भेतव्यम्, भीतंखलु भयान्यायान्ति लघुकम्, भीतोऽद्वितीयको मनुष्यः, भीतो भूतैः क्षिप्यते गृह्यते, भीतोऽन्यानपिभेषयेत् भीतस्तपः संयमानपि-मुञ्चेत्, भीतश्चभारं न निस्तारयेत् सत्पुरुष निषेवितं च मार्गं भीतो न समर्थोऽनुचरि-

तुम् , तस्मान्नभेतव्यम् , भयस्य वा व्याधेर्वा रोगस्य वा जराया वा मृत्योर्वाऽन्यस्य वा एवमादेः । एवं धैर्येण भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरणनयनवदनः शूरः सत्या र्जवसम्पन्नः । पञ्चमकं हास्यं न सेवितव्यम् अलीकान्यसत्कानि जल्पन्ति हास्यायत्ताः परपरिभवकारणञ्चहास्यं परपरिवादप्रियञ्च हास्यं परपीडाकारकं च हास्यं भेदविमुक्तिकारकं च हास्यमन्योऽन्यजनितं च भवेद्धास्यम् अन्योऽन्यगमनञ्च भवेत्मर्म अन्योऽन्यगमनं च भवेत्कर्म कन्दर्पाभियोगगमनञ्च भवेद्धास्यम् आसुरं किल्विषित्वं च जनयेद्धास्यं तस्माद्धास्यं न सेवितव्यम् एवं मौनेन भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरण नयन वदनः शूरः सत्यार्जवसम्पन्नः । एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यक् संवृतं भवति सुप्रणिहितमेतैः पञ्चभिः कारणैर्मनोवचन काय परिरक्षितै नित्यमामरणान्तं चैष योगोनेतव्यो धृतिमता मतिमताऽनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी–असंक्लिष्टः सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं द्वितीयं संवरद्वारं स्पृष्टं पालितं शोधितं तीर्णं कीर्तितमनुपालितमाज्ञयाऽऽराधितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्तं प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाज्ञप्तं सुदेशितं प्रशस्तं द्वितीयं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि । इति द्वितीयं द्वारम् । सूत्र । २५ ।

अन्व०–"( चउत्थं ) चौथी भावना भय का त्यागना रूप ( न भाइयव्वं , भय नहीं करना चाहिए ( भीतंखु ) भयभीत मनुष्य को ( भया अइंति लहुयं ) शीघ्र ही भय प्राप्त कर लेते हैं ( भीतो अवितिज्जओमणूसो ) डरा हुआ मनुष्य अद्वितीय-सहायता रहित होता है ( भीतो भूतेहिं घिप्पइ ) भीत मनुष्य भूत प्रेतों से घर लिया जाता है ( भीतो अन्नं पिहु भेसेज्जा ) डरा हुआ दूसरों को भी डरा देता है ( भीतो तव संजमं पिहु मुएज्जा ) डरा हुआ मनुष्य तप संयम को भी छोड़ देता है ( भीतो य भरं न नित्थरेज्जा ) और भीत मनुष्य कर्तव्य भार को भी पाल नहीं सकता है ( सप्पुरिसनिसेवियंच ) और सत्पुरुषों से सेवित ( मग्गं ) मार्ग को ( भीतो ) डरा हुआ मनुष्य ( अणुचरिउं ) आचरण में लाने के लिये ( न समत्थो ) समर्थ नहीं होता है ( तम्हा न भातियव्वं , इसलिये भय नहीं करना चाहिए । ( भयस्सवा ) भय हेतु-दुष्ट मनुष्य आदि से ( वाहिस्स वा रोगस्स वा ) अथवा रोग से या व्याधि से अर्थात् ज्वर आदि से या दीर्घ कालिक कुष्ठ आदि से ( जराए वा ) अथवा वृद्धावस्था से ( मच्चुस्स वा ) अथवा मृत्यु से ( अन्नस्स वा एवमादियस्स ) अथवा ऐसे ही दूसरे कारणों से डरना नहीं चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( धेज्जेण ) धैर्य से

(भाविओ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तः करण वाला–( संजय कर चरण नयण वयणो ) हाथ पैर आंख और मुख का संयमी साधु ( सूरो ) शूर ( सच्चज्जवसंपन्नो ) सत्य व सरलता से सम्पन्न ( भवति ) होता है। ( पंचमकं ) पांचवीं भावना हास्य त्याग ( हासं न सेवियव्वं ) हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि ( हासइत्ता ) हास्यरस के वशीभूत नर ( अलियाइं ) सत्य अर्थ को छिपाने रूप अलीक और ( असंतकाइं ) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को ( जंपंति ) बोलते हैं ( परपरिभवकारणं च हासं ) और हास्य दूसरों के अनादर का कारण है ( परपरिवायप्पियं च हासं ) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर ( हासं पर पीला कारगं ) हास्य दूसरे को पीड़ा देने वाला है ( च ) और ( हासं भेदविमुत्तिकारकं ) हास्यचारित्रभेद और शरीर को विकृत–विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेद करने वाला है ( अन्नोन्नजनियं च हासं ) और हास्य अन्योन्य–एक दूसरे से किया हुआ ( होज्ज ) होता है ( अन्नोन्नगमनं च होज्ज मम्मं ) और फिर हास्य परस्पर में परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है ( अन्नोन्नगमनं च होज्जकम्मं ) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंदप्पाभियोग गमणं च होज्जहासं) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक–आज्ञाकारी देव जाति विशेष में गमन का हास्य हेतु होता है आसुरियं असुर जाति के देवपन को (किव्विसत्तणं च ) और किल्विषिक–नीच जाति के देवपन को ( जणेज्ज हासं ) हास्य–हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए हासं न सेवियव्वं हास्य-परिहास नहीं करना चाहिए (एवं मोणेण भाविओ) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला ( संजय कर चरण नयण वयणो ) हाथ पैर आंख और मुख का संयमी साधु ( सूरो ) शूर ( सच्चज्जव संपन्नो ) सत्य सरलता से युक्त ( भवति ) होता है ( एवं मिणं ) इस प्रकार यह ( संवरस्सदारं ) संवर का दूसरा द्वार (सम्मं) सम्यक्–अच्छी तरह से ( संवरियं ) सुरक्षित ( होइ ) होता है, ( इमेहिं पंच हिंवि कारणेहिं ) इन ऊपर कही गई पांच भावना रूप कारणों से ( मण वयण काय परिरक्खिएहिं ) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित हैं उनसे ( सुप्पणिहियं ) उत्तम निधान की तरह ( निच्चं ) सदा ( आमरणंतं ) मरण पर्यन्त ( एसजोगो ) यह योग ( धितिमया मतिमया ) धीर तथा बुद्धिमान् साधु को ( णेयव्वो ) पार ले जाने योग्य है ( अणासवो ) आस्रव रहित ( अकलुसो ) पाप रूप मल रहित

( अच्छिद्दो ) कर्म ग्रहण के योग्य छिद्र रहित ( अपरिस्सावी ) कर्म जल को नहीं झराने वाला तथा ( असंकिलिट्ठो ) संक्लेश रहित और ( सव्वजिणमणुन्नाओ ) सब तीर्थङ्करों से अनुज्ञात है ( एवं ) इस प्रकार ( बितियं संवरदारं ) दूसरा सत्यव्रत रूप संवरद्वार ( फासियं ) वचन से स्पर्श-स्वीकार किया हुआ ( पालियं ) मन से पाला गया ( सोहियं ) दोष के निवारण करने से शुद्ध किया गया ( तिरियं ) पूर्णता तक पहुँचाया हुआ, ( किट्टियं ) सद् भाव से प्रशंसा योग्य किया गया ( अणुपालियं ) अनुकूलता से पाला गया ( आणाए आराहियं भवति ) आज्ञा की आराधना करने वाला होता है ( एवं ) ऐसा ( नाय मुणिणा भगवया ) ज्ञात मुनि भगवान महावीर ने ( पन्नवियं ) कहा है ( परूवियं ) उदाहरण पूर्वक समझाया है ( पसिद्धं सिद्धवर सासण मिणं ) यह प्रसिद्ध और उत्तम सिद्ध पुरुषों का शासन है ( आघवितं ) देव आदि का सम्मान पात्र ( सुदेसियं ) पूर्ण ज्ञानिओं से सम्यक् कहा गया है तथा ( पसत्थं ) प्रशस्त है ऐसा यह ( बितियं ) दूसरा ( संवरदारं ) संवरद्वार ( समत्तं ) पूर्ण हुआ ( तिबेमि ) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ २५ ॥

भावार्थ-"सत्यव्रत का पूर्व कथित यह प्रवचन भगवान् महावीर ने असत्य कटु आदि अवाच्य वचनों से आत्मा को रक्षित रखने के लिये कहा है। जो कि आत्मा के लिये हितकारी व परलोक और भविष्य के कल्याण का कारण है। शुद्ध न्याय युक्त यावत् सब दुःखों का शमन करने वाला है। असत्य वचन त्यागरूप उस दूसरे व्रत की पांच भावना व्रत की रक्षा के लिये कही गई हैं। इनमें प्रथम भावना-सत्य व्रत के स्वरूप को सुनकर तथा परमार्थ को सम्यक् जानकर बोलना चाहिए। वेग युक्त आदि सावद्य वचन नहीं बोलना, किन्तु सत्य और हितकारी आदि परिमित वचन ही साधु को समय पर बोलना चाहिए। इस प्रकार विचार पूर्वक बोलने वाला संयमी सत्य और आर्जव से युक्त होता है।

दूसरी भावना क्रोधवश नहीं बोलना। क्रोधवश मनुष्य असत्य बोलता है, पैशुन्य और कठोर वचन बोलता है। वैर, कलह और धर्मविरुद्ध कथा को क्रोधी करता है। सत्य और शील का हनन करता, विनय को भंग करता, और लोकमें अप्रीति का भाजन बनता है। क्रोध से सन्तप्त हृदय वाला मनुष्य इस प्रकार अन्य भी अवाच्य बोलता है इसलिये क्रोध नहीं करना चाहिए। क्षमायुक्त साधु सत्य का पालन करने वाला होता है।

तीसरी भावना-लोभके वश होकर नहीं बोलना,क्योंकि लोभी चंचलचित्त होकर खेतवाड़ी व घरके लिये झूठ बोलता है। ऐसे ही कीर्ति और अर्थ प्राप्ति के लिये ऋद्धि तथा सुख सामग्री के लिये और खान पान के साधनों के लिये अथवा पाट आदि आसनों के लिये तथा अनेक प्रकार शय्याओं के कारण या वस्त्र पात्र आदि के लिये अथवा कंबल और रजोहरण तथा शिष्य आदि ऐसे सैकडों कारणों पर असत्य बोलता है। इसलिये लोभ नहीं करना चाहिए। निर्लोभतायुक्त साधु सत्यव्रत का आराधक होता है।

चौथी भावना-भय त्यागरूप है-'डरा हुआ मनुष्य अनेक प्रकार के भयों को पाकर असहाय अकेला हो जाता है। भयभीत को ही भूत भी पकड़ते हैं। भय-भीत दूसरों को भी डरा देता है। डरा हुआ तप संयमको भी त्याग देता है। भयभीत मनुष्य सत्पुरुषों से सेवित सत्यमार्ग पर नहीं चल सकता है। इसलिये रोग, व्याधि जरा, मृत्यु आदि ऐसे किसी भी भय के हेतु से नहीं डरना चाहिए। धैर्ययुक्त संयमी सत्यव्रत का पालक होता है।

पांचवी भावना परिहास त्यागरूप-क्रोध, लोभ, भय और अविचार की तरह हंसी भी असत्य का कारण है। हंसी करने वाले असत्य या मिथ्या बोलते हैं। परिहास का वचन दूसरे के अपमान का कारण, निन्द्राप्रिय पीडाकारक और चारित्रभेद आदि का कारण है। एक दूसरे से किया गया हास्य परस्पर की कुचेष्टा और परदार गमन आदि दुष्कर्म का प्रवर्तक होता है। हंसी करने वाला साधु देवगतियोग्य आयु सञ्चय करके भी कान्दर्पिक या आभियोगिक रूप कुदेवपन में जाता है। असुरभाव और किल्विषिकपन को हास्यरस उत्पन्न करता है। इसलिये हास्य का सेवन नहीं करें। इस प्रकार वचन के संयम वाला साधु सत्यव्रती होता है। इस प्रकार यह सत्यव्रतरूप संवर का दूसरा द्वार इन पांच कारणों से सुरक्षित होता है आदि उपसंहार पूर्ववत्। यह दूसरा संवरद्वार पूर्ण हुआ।

## ❀ समाप्तं द्वितीयसंवरद्वारम् ❀

❀ सज्झायं सानुभार्थं आधार्मक ❀

# तृतीय संवर द्वार

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन में मृषावाद-असत्य-निवृत्तिरूप दूसरे संवर का प्रतिपादन किया है, उस सत्यव्रत का पालन चौर्य कर्म के त्यागने पर ही सुकर होता है, इसलिये इस अध्ययन में अदत्तादान विरमणरूप संवर का वर्णन किया जायगा। सूत्र क्रम से सम्बन्धित उस अस्तेयव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल-"जंबू ! दत्तमणुन्नाय संवरो नाम होति ततियं सुव्वता ! महव्वतं । गुणव्वतं परदव्व हरण-पडिविरइ-करणजुत्तं, अपरिमिय मणंत-तण्हाणुगय-महिच्छ-मण-वयण-कलुस-आयाण सुनिग्गहियं । सुसंजमिय मणो हत्थ-पायनिभियं, निग्गंथं णेट्ठिकं निरुत्तं निरासवं निब्भयंविमुत्तं । उत्तम-नरवसभ-पवरबलवग-सुविहित जणसंमतं, परमसाहुधम्मचरणं, जत्थ य गामागर-नगर- निगम- खेड-कव्वड -मडंब- दोणमुह-संवाह-पट्टणासमगयंच, किंचि दव्वं मणि-मुत्त[2]-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमादिं,पडियं पम्हुट्ठं विप्पणट्ठं, न कप्पति कस्सति कहेउं वा, गेण्हिउं वा । अहिरन्न सुवन्निकेण समलेट्ठु कंचणेणं अपरिग्गह संवुडेणं लोगंमि विहरियव्वं । जंपिय होज्जाहिदव्वजातं खलगतं खेत्तगतं रन्नमंतरगतं वा किंचि पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादि, अप्पं च बहुं च, अणुं च थूलगं वा, नकप्पति उग्गहंमि अदिण्णंमि गिण्हिउं जे । हणि हणि उग्गहं अणुन्नविय गेण्हियव्वं । वज्जेयव्वो य सव्वकालं अचियत्त घरप्पवेसो । अचियत्त भत्त पाणं । अचियत्त-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायणभंडोवहि उवकरणं, परपरिवाओ,

१-मणहत्थ पा. २-मुत्ति आ॰ मं॰

परस्स दोसो, पर-ववएसेणं जं च गेण्हइ। परस्स नासेइ जं च सुकयं, दाणस्स य अंतरातियं, दाण विप्पणासो, पेसुन्नं चेत्र मच्छरित्तं च।

छाया-"जम्बूः ? दत्ताऽनुज्ञातसंवरो नाम भवति तृतीयम सुव्रत ? महाव्रतं। गुणव्रतं परद्रव्यहरण-प्रति विरति-करणयुक्तम् अपरिमिताऽनन्त-तृष्णाऽनुगत-महेच्छ-मनो-वचन-कलुषाऽऽदानसुनिगृहीतं, सुसंयमित मनोहस्त पादनिभृतं, निर्ग्रन्थं नैष्ठिकं निरुक्तं निरास्रवं निर्भयं विमुक्तम्। उत्तम नर वृषभ-प्रवर-बलवत्सु विहितजन संमतं, परमसाधु धर्मचरणम्। यत्र च ग्रामाकर नगर-निगम-खेट-कर्बट मडम्ब-द्रोणमुख-संवाह-पट्टणाऽऽश्रमगतं च किञ्चिद् द्रव्यं मणि-मुक्ता-शिला प्रवाल-कांस्य-दूष्य-रजत-वर कनक-रत्नादि पतितं प्रमुष्टं विप्रणष्टं, न कल्पते कस्यापि कथयितुं वा ग्रहीतुं वा। अहिरण्य सौवर्णिकेन समलेष्टुकाञ्चनेन अपरिग्रह संवृतेन लोकेविहर्तव्यम्। यदपि च भवेद् द्रव्यजातं खलगतं क्षेत्रगतमरण्याऽन्तर्गतं वा किञ्चित् पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-कन्द-मूल-तृण-काष्ठ-शर्करादि अल्पं च बहु च, अणुच स्थूलकं वा, न कल्पतेऽवग्रहेऽदत्ते ग्रहीतुम्। अहन्यहनि अवग्रहमनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम्। वर्जयितव्यः सर्वकालमप्रीत गृहप्रवेशः। अप्रीतिकारक भक्त पानम्। अप्रीतिकारक पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-दण्डक-रजोहरण-निषद्या-चोल पट्टक-मुखवस्त्रिका-पादप्रोञ्छनादि-भाजनभण्डोपध्युपकरणं पर परीवादः, परस्य दोषः, परव्यपदेशेन यच्चगृह्णाति, परस्य नाशयति यच्च सुकृतं, दानस्य चान्तरायिकं, दानविप्रणाशः, पशुन्यञ्चैव मत्सरित्वं च।

अन्व०-( सुव्वया जंबू ) हे सुव्रत जम्बू ! ( ततियं ) तीसरा ( दत्तमणुन्नायसंवरो नाम होति ) दिये गए अन्न आदि और ग्रहण करो इस प्रकार आज्ञा पाये हुए पीठ आदि जिसमें लिये जांय वह दत्तानुज्ञात नामका संवर होता है ( महव्वयं ) यह महाव्रत है ( गुणव्वयं ) सद्गुणों का कारण होने से गुणव्रत है ( परदव्वहरण पडि विरइकरणजुत्तं ) पर द्रव्य के हरण की निवृत्ति वाला ( अपरिमिय मणंततण्हा णुगय महिच्छ मण वयण कलुस आयाण सुनिग्गहियं ) अपरिमित असीम द्रव्यों में अनन्त-समाप्ति रहित जो तृष्णा उससे अनुगत-युक्त और अतिशय इच्छा वाले विचार तथा वचन से मलिन जो अदत्त ग्रहण उसका सम्यक्-निग्रह करने वाला ( सुसंजमिय मण हत्थ पाय निभियं ) अशुभ भावना में संकोच शील मन के कारण परधन ग्रहण से रुके हुए हैं हाथ पैर जहां पर ऐसा ( निग्गथं ) बाह्य आभ्यन्तर

ग्रन्थि रहित ( णेट्ठिकं ) सब धर्मों में पर्यन्तवर्ती याने यह सब धर्म की निष्ठा वाला है ( निरुत्तं ) सर्वज्ञों के द्वारा अच्छी तरह कहा गया अतः निरुक्त ( निरासवं ) चोरी के आस्रव से रहित ( निब्भयं ) निर्भय ( विमुत्तं ) लोभ रूप दोषसे मुक्त-छूटा हुआ ( उत्तम नर वसभ पवर बल वगसुविहितजण संमतं ) प्रधान बलधारी उत्तम मनुष्य और क्रियापात्र साधु साध्विओं से सम्मत तथा ( परमसाहु धम्मचरणं ) उत्तम साधुओं का धर्माचरण है ( जत्थ य ) और जिस तृतीय संवर में ( गामागर-नगर-निगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-संवाह-पट्टणासमगयंच ) ग्राम, आकर-सुवर्ण आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर, निगम-वणिग् वसति, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख,संवाह, पत्तन और आश्रम में रहा हुआ ( किंचिद्दव्वं ) कोई भी द्रव्य ( मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमादिं ) मणि-चन्द्र-कान्त आदि, मौक्तिक-मोती, शिला प्रवाल-मूंगा, कांस्य-कांसी के पात्र आदि, दूस-उत्तम वस्त्र, रजत-चांदी, उत्तम सोना और रत्न आदि ( पडियं ) किसी का गिरा हुआ हो। ( पम्हुट्ठं ) भूला हुआ हो ( विप्पणट्ठं ) खोजने पर भी मालिक को नहीं मिला हो, वैसा द्रव्य ( कस्सति ) किसी गृहस्थ आदि को ( कहेउं वा ) कहना गेण्हिउं वा) अथवा ग्रहण करना (न कप्पति) योग्य नहीं है। (अहिरन्न-सुवन्निकेण ) हिरण्य सुवर्ण को नहीं रखने वाले साधु को ( लोगंमि ) लोक में ( समलेट्ठु कंचणेणं ) पत्थर और सुवर्ण में समदृष्टि तथा ( अपरिग्गह संवुडेणं ) अपरिग्रह-धन आदि के संग्रह रूप से व मूर्च्छा से रहित व संवरयुक्त होकर (विहरियव्वं ) विचरना चाहिए ( जंपिय ) और जो भी ( होज्जहि ) होते हैं ( दव्व जातं ) द्रव्य समूह ( खलगतं ) खले में रहा हुआ, ( खेत्तगतं ) खेत में पड़ा हुआ ( वा ) या ( रन्नमंतरगतं ) अरण्य-जंगल के भीतर पड़ा हुआ ( किंचि ) कोई ( पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण कट्ठ-सक्करादि ) फूल, फल, त्वचा-छाल, प्रवाल, कन्द, मूल तृण, काष्ठ और वालू-धूलि आदि पदार्थ हैं ( अप्पं च बहुं च ) थोड़ा या बहुत ( अणुं च थूलगं ) छोटा या बड़ा ( उग्गहंमि अदिण्णंमि ) घर तथा जंगल आदि अवग्रह स्थान में स्वामी के नहीं देने पर या आज्ञा नहीं मिलने पर ( गिण्हिउं न कप्पति ) कोई भी वस्तु ग्रहण करने को नहीं कल्पती याने विना दिये ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये ( हणि हणि ) प्रतिदिन ( उग्गहं अणुन्नविय ) अवग्रह की आज्ञा लेकर अर्थात् आपके स्थान पर अमुक वस्तु है जो कि आज्ञा देने

पद ले सकते हैं, ऐसा पूछकर ( गेण्हियव्वं ) ग्रहण करना चाहिए। ( सव्वकालं ) सर्वदा ( अचियत्त घरप्पवेसो ) अप्रीति कारक घर में प्रवेश ( वज्जेयव्वो ) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणं) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और ( अचियत्त-पीठ- फलग- सेज्जा- संथारग- वत्थ- पत्त- कंबल- दंडग- रय हरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुंछणाइ ) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्ड-सकारण लेने योग्य लाठी, रजोहरण, निषद्या-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख वस्त्रिका और पादप्रोञ्छन आदि (भायण भंडोवहि उवकरणं) पात्र मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण 'वर्जन करना चाहिए' ( परपरिवायो ) दूसरे की निन्दा ( परस्स दोसो ) दूसरे के साथ द्वेष करना ( जं च पर ववएसेण ) और जो अचार्य आदि दूसरे के नाम से ( गेण्हइ ) ग्रहण करता है ( जंच ) और जो ( परस्स ) दूसरे के ( सुकयं ) उपकार या सुकृत को ( नासेइ ) नष्ट करता या छिपाता है ( दाणस्स य अंतराति्यं ) और दान में अन्तराय करता (दाण विप्पणासो ) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और ( पेसुन्नं ) पैशुन्य-चुगली ( चेव ) और (मच्छरित्तं) मत्सरता-द्वेष करता है।

मूल—"जेविय पीढ—फलग—सेज्जा— संथारग—वत्थ— पायं[1]—कंबल—दंडग—रयहरण—निसेज्ज—चोल पट्टग— मुहपोत्तिय— पायपुंछणादि— भायण भंडोवहि उवकरणं असंविभागी, असंगहरुती, तवतेणे य, वइतेणे य, आयारे चेव भावतेणे य। सद्दकरे, झंझकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकहकरे, असमाहि-करे। सया अप्पमाण भोती, सततं अणुबद्धवेरे, य निच्चरोसी से तारिस-ए नाराहए वयमिणं। अहकेरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं ?, जे से उवहि भत्तपाण—संगहण—दाणकुसले, अच्चंतबाल—दुब्बल—गिलाण-वुड्ढ—खमके, पवत्ति—आयरिय—उवज्झाए—सेहे—,साहम्मिके, तवस्सी—कुल—गण—संघ—चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविहं बहुविहं करेति। न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ। न य अचियत्तस्स गेण्हइ भत्तपाणं। न य अचिय त्तस्स सेवइ पीढ—फलग— सेज्जा— संथारग—वत्थ— पाय—कंबल— डंडग—रयहरण—निसेज्ज—चोल पट्टय—मुहपोत्तिय—पायपुंछणाइ—भायण भंडोवहि

१– पत्त इत्यपि पाठः।

उवगरणं। न य परिवायं परस्स जं पति, णयावि दोसे परस्स गेण्हति, परववएसेणवि न किंचि गेण्हति, न य विपरिणामेति कंचिजणं, न यावि णासेति दिन्न सुकयं, दाऊण य काऊण य न होइ पच्छाताविए। संभागसीले संगहोवग्गहकुसले से तारिसते आराहते वयमिणं।

छाया-"योऽपिच पीठ-फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-मुखपोत्तिका पादप्रोञ्छनादि-भाजनभण्डोपध्युपकरणम् असंविभागी-,असंग्रहरुचिस्तपःस्तेनश्च, वाक्स्तेनश्च,रूपस्तेनश्च,आचारे चैव भावस्तेनश्च। शब्दकरो झंझाकरःकलहकरो वैरकरो विकथाकरः-असमाधिकरः। सदाऽप्रमाणभोजी, सततमनुबद्धवैरश्च नित्यरोषी, एतादृशो नाऽऽराधयति व्रतमिदम्। अथकीदृशः पुनराराधयति व्रतमिदम्?, योऽसावुपधिभक्तपान-संग्रहण-दानकुशलोऽत्यन्त बाल-दुर्बल-ग्लान-वृद्धक्षपके,प्रवर्तकाऽऽचार्योपाध्याये, शैक्षे, साधर्मिके, तपस्वि-कुल-गण-संघ-चैत्यार्थी च निर्जरार्थी वैयावृत्यमनिश्रितं दशविधं बहुविधं करोति। न चाऽप्रीतिकरस्य गृहं प्रविशति। नचाऽप्रीतस्य गृह्णाति भक्तपानं। न चाऽप्रीतिकारकस्य सेवते पीठ-फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्रपात्र-कम्बल-दण्डक-रजोहरण-निषद्या-चोलपट्टक-मुखपोत्तिका-पादप्रोञ्छनादि-भाजन-भण्डोपध्युपकरणं, न च परीवादं परस्य जल्पति। न चापि दोषान् परस्य गृह्णाति। परव्यपदेशेनापि न किञ्चिद् गृह्णाति। न च विपरिणामयति कमपिजनं, न चापि नाशयति दत्तसुकृतम्। दत्त्वा च कृत्वा च न भवति पश्चात्तापः। सम्भाग शीलः संग्रहोपग्रहकुशलः स तादृशक आराधयति व्रतमिदम्।

अन्वय-( जेविय ) और जो भी ( पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंबल दंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुंछणादि ) पीठ, पाट, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका और पादप्रोञ्छन आदि ( भायण-भंडोवहि उवगरणं ) पात्र-मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण का ( असंविभागी ) आचार्य आदि के लिये जो संविभाग नहीं करता ( असंगहरुती ) गच्छ के उपयोगी पीठ आदि उपकरणों के संग्रह में रुचि नहीं रखता ( तव तेणेय ) और तपस्या का चोर अर्थात् तपस्वी न होकर भी लोक में तपस्वी तरीके अपना परिचय देने वाला ( वइतेणे य ) फिर वाक्य स्तेन-वचन का चोर याने वचन लब्धि नहीं होने पर भी जनता में झूठे वचन से सिद्ध कहलाने वाला ( रूव तेणे य ) तथा शरीर की सुन्दरता या क्रिया पात्र साधु का सच्चा वेश नहीं होते हुए भी लोक में उसरूप से परिचय देने वाला रूपस्तेन और

( आयारे चेव ) ऐसे ही आचार-साधु-आचार में बनावटीपन करने वाला, और ( भाव तेणेय ) दूसरे के ज्ञानादि गुणोंसे अपने को ज्ञानी कहने वाला भावस्तेन और ( सद्दकरे ) रात्रि में जोर से बोलने वाला या गृहस्थ की जैसी सावद्य भाषा बोलने वाला, ( झंझकरे ) गच्छ में भेद पटकने के कार्य करने वाला, ( कलहकरे ) कलहकारी ( वेरकरे ) वैर विरोध करने वाला ( विकहकरे ) स्त्री आदि की धर्म विरुद्ध कथा करने वाला ( असमाहिकरे ) असमाधि-चित्त की अस्वस्थता को करने वाला ( सया अप्पमाणभोती ) सदा बिना प्रमाण के भोजन करने वाला ( सततं अणुबद्धवेरे य ) और निरन्तर वैर को बांधने वाला तथा ( निच्चरोसी ) सदा क्रोध में रहने वाला ( से तारिसए ) इस प्रकार की वृत्ति वाला वह मनुष्य ( नाराहए वयमिणं ) इस व्रत को आराधन नहीं करता है। ( अह ) अब ( केरिसए पुणाइं ) फिर कैसा मणुष्य, ( आराहए वयमिणं ) इस व्रत का आराधन करता है ?

उत्तर-( जे ) जो साधु ( उवहि-भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले ) उपधि और खान पान के दान और संग्रहण में कुशल है (अच्चंत बाल-दुब्बल-गिलाण-वुड्ढ-खमके ) अतिशय बालक बहुत दुर्बल, ग्लान-रोगी, वृद्ध और तपस्वी के विषय में ( पवत्ति-आयरिय उवज्झाए ) प्रवर्तक-तप संयम आदि में यथायोग्य साधुओं को लगाने वाला, आचार्य और उपाध्याय के विषय में ( सेहे ) नव दीक्षित साधु ( साहम्मिके ) साधर्मिक-समान धर्म वाले के सम्बन्धमें और ( तवस्सी कुल ) तपस्वी, एक गुरु से वाचना लेने वाले साधुओं के समूह रूप कुल ( गण-संघ-चेइयट्ठे य ) गण-अनेक कुलों का समूह, संघ-साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप इन सबके चित्त की प्रसन्नता के लिये ( निज्जरट्ठी ) निर्जरार्थी-कर्मक्षय की इच्छा वाला साधु ( अणिस्सियं ) कीर्ति आदि की अपेक्षा बिना ( दसविहं ) सेव्य की अपेक्षा दश प्रकार की ( वेयावच्चं ) सेवा को ( बहुविहं ) अन्न पानादि दान रूप से अनेक प्रकार की ( करेति ) करता है, ( से ) वह ( अचियत्तस्स ) अप्रीति कारक गृहस्थ के ( गिहं ) घर में ( नय पविसइ ) प्रवेश नहीं करता और ( नय अचियत्तस्स ) न अप्रीतिकारक के यहां का ( भत्त पाणं गेण्हइ ) आहार पानी ग्रहण करता है ( न य अचियत्तस्स सेवइ पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंबल-डंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टय-मुह पोत्तिय-पाय-पुंछणाइ ) और अप्री-

ति कारक के पीठ, फलग, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, परिधान वस्त्र, मुखवस्त्रिका और पादप्रोंछन सेवन नहीं करता है ( भायण भंडोवहि उवगरणं ) पात्र, भाण्ड एवं वस्त्र आदि उपकरण भी नहीं लेता ( नय परिघायं परस्स जंपति ) और दूसरों की निन्दा नहीं करता है ( न यावि दोसे परस्स गेण्हति ) और दूसरे के दोषों को भी ग्रहण नहीं करता है ( पर ववएसेणवि न किंचि गेण्हति ) और जो दूसरे के नाम से भी कुछ नहीं लेता है ( नय विपरिणामेति किंचिजणं ) और न किसी मनुष्य को दान आदि धर्म से विमुख करता है ( न यावि णासेति दिन्न सुकयं ) और दूसरे के दानरूप सुकृत या धर्माचरण को नहीं मिटाता है (दाऊण य) और देकर (काऊणय) करके ( पच्छातावए ) पश्चाताप करने वाला ( न होइ ) नहीं होता है ( तारिसए ) वैसा ( से ) वह ( संभागसीले ) आचार्य आदि समूह के लिये अन्न आदि का संविभाग करने वाला ( संगहोवग्गहकुसले ) संग्रह और आहार व ज्ञान आदि से उपकार करने में कुशल ( वयमिणं आराहते ) ऐसा साधु इसव्रत का आराधन करता है ।

भावार्थ–सुधर्म स्वामी महाराज अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू ! तीसरा संवर दत्तानुज्ञात नाम का है। यह महाव्रत सद्गुणों का कारण और पर द्रव्य हरण से निवृत्ति करने वाला है। अपरिमित द्रव्य में अनन्त तृष्णा वाला और कलुषित अदत्त ग्रहण का निग्रह करने वाला है। संयम युक्त मन के कारण यह हाथ पांव को अदत्त ग्रहण से रोकने वाला है। निग्रन्थ आदि विशेषण युक्त उत्तम पुरुष और क्रिया पात्र जनों से सम्मत तथा उत्तम साधुओं का धर्माचरण है । इसव्रत में ग्राम वगैरह क्षेत्रों में रहे हुए मणि मौक्तिक आदि कोई भी पदार्थपड़े हुए भूले हुए या खोजने परभी नहीं मिले हुए अगर दृष्टि में आजांय तो व्रती को न किसी से कहना चाहिये और न स्वयं ही लेना चाहिये। क्योंकि साधु सुवर्ण आदि का त्यागी है। उसको कंचन और मिट्टी पर समबुद्धि होकर रहना चाहिए। अपरिग्रह भाव उसका मुख्य धर्म है। चाहे कोई द्रव्य खले में हो खेतमें या जंगल में पडेहों वैसे, फूल फल आदि अल्पमूल्य वाले या वडी कीमत के, छोटा अथवा वडा कोई भी द्रव्य स्वामीके बिना दिये ग्रहण करना मर्यादाके विरुद्ध है। इसलिये व्रती को प्रतिदिन गृहपति आदि की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिये। जिस घरमें जाने से गृहपति को अप्रीति हो उस घर में व्रती को कभी प्रवेश नहीं करना चाहिए, तथा अप्रीति का कारण मालूम,

हो तो वैसा आहार पानी पीठ पाट भाण्ड आदि उपकरण भी नहीं लेना चाहिए। दूसरे की निन्दा और परदोष कथन भी त्यागना चाहिए। क्योंकि तीर्थङ्करों से निषिद्ध होने के कारण इनका सेवन अदत्त' रूप है। अचौर्य व्रत वाले को दूसरे के नाम से कोई वस्तु ग्रहण करना और दूसरे के सुकृत को मिटाना तथा दान में अन्तराय देना दाता के नाम को छिपाना और दूसरे की चुगली या मत्सरता करना वर्जित है। ऐसा करने से अचौर्य व्रत में दोषापत्ति होती है। फिर कैसा व्यक्ति अचौर्यव्रत को नहीं पाल सकता? इसे दिखाते हुए कहा गया है कि जो पीठ आदि भण्डोपकरण का संविभाग नहीं करता। गच्छवासी होकर भी स्वधर्मियों के योग्य साधन संग्रह में रुचि नहीं रखता। दूसरे के तपोबल व वाग्बल से अपनी ख्याति कराता है। सुसाधु के वेष आचार और ज्ञान आदि भावों की चोरी करता अर्थात् इन गुणों के अभाव में भी वैसी महिमा चाहता एवं दूसरों के सामने वचन का छल करता है। प्रहर रात्रि के बाद जोर से बोलता और समूह में भेद डालता है। कलह तथा वैर को करने वाला, स्त्री आदि की कथा करने वाला एवं असमाधि करने वाला जो सदा बिना परिमाण के खाता है। निरन्तर वैर बांधता, तथा सदा रुष्ट रहता है वह अचौर्य व्रत का पूर्ण पालन नहीं कर सकता। कौन पालन कर सकता है? इसको दिखाते हैं,-"उपधि और भक्त पान के योग्य संग्रह व दान में कुशल, और जो बाल, वृद्ध, दुर्बल, ग्लान आदि की प्रसन्नता के लिये निर्जरार्थी होकर विविध प्रकार से सेवा करता है। जहां जाने से अप्रीति हो वैसे घर में नहीं जाता और न वैसे घर के आहार पानी और पीठ आदि भण्डोपकरण ही लेता है। फिर जो दूसरे की बुराई नहीं करता और दूसरे के दोषों को ग्रहण नहीं करता है। दूसरे के नाम से स्वयं कुछ नहीं लेता है। न किसी को धर्म से विमुख करता है। दूसरे के दान आदि सत्कर्म को भी नहीं छिपाता और न देकर या करके स्वयं पश्चात्ताप ही करता है। संविभाग करने वाला और जो गच्छ समूह के उपयुक्त सामग्री का संग्रह कर उसका उपकार करने वाला है। वह अचौर्यव्रत का पूर्ण पालन कर सकता है।

मूल—"इमं च परदव्व हरण वेरमण—परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहितं, अत्तहितं पेच्चाभावितं, आगमेसिभद्दं, सुद्धं नेयाउयं, अकुडिलं,

---

१—सामीजीवादत्तं तित्थयरेण तहेव य गुरुहिं,-स्वामि-अदत्त, जीव अदत्त, तीर्थङ्कर और गुरु का अदत्त इस तरह चार प्रकार के अदत्त हैं।

अणुत्तरं, सव्वदुक्ख-पावाण विओवसमणं। तस्स इमा पंच भावणातो ततियस्स होंति, परदव्वहरण वेरमण परिरक्खणट्ठयाए। पढमं—देवकुल-सभ-प्पवा दसह—रुक्खमूल आराम—कंदरागर—गिरिगुहा—कम्म—उज्जाण—जाणसाला कुवितसाला—मंडव—सुन्नघर—सुसाण, लेण—आवणे अन्नं मियएव मादियंमि, दग—मट्टिय—बीजहरित—तस पाण असंसत्ते अहाकडे फासुए विवित्ते पसत्थे उवस्सए होइ विहरियव्वं। आहाकम्म बहुले य जे से आसित संमज्जि—उस्सित्त—सोहिय—छायण—दूमण—लिपण—अणुलिंपण—जलण—भंड चालणे अंतो बहिं च असंजमो जत्थ वड्ढती, संजयाण अट्ठा वज्जेयव्वोहु उवस्सओ से तारिसए सुत्तपडिकुट्ठे। एवं विवित्तवास—वसहि—समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा निच्चं अहिकरण—करण—कारावण—पाव कम्म—विरतो दत्तमणुन्नाय ओग्गहरुती।

बितीयं—आरामुज्जाण—काणण- वणप्पदेसभागे जं किंचिइक्कडं व कठिणगं च जंतुगं च परामेर—कुच—कुस—डब्भ—पलाल—मूयग—वक्कय—पुप्फ—फल—तय—प्पवाल—कंद—मूल—तण—कट्ठ—सक्करादी गेण्हइ सेज्जोवहिस्स अट्ठान कप्पए उग्गहे अदिन्नंमि गेण्हिउंजे, हणि हणि उग्गहं अणुन्नविय गेण्हियव्वं। एवं उग्गहसमिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा निच्चं अहिकरण—करण—कारावण—पाव-कम्मविरते दत्तमणुन्नाय ओग्गहरुती।

ततीयं—पीठ—फलग—सेज्जा—संथारगट्ठयाए रुक्खा न छिंदियव्वा, न छेदणेण भेयणेण सेज्जा कारियव्वा, जस्सेव उवस्सते वसेज्ज सेज्जं तत्थेव गवेसेज्जा, न य विसमं समं करेज्जा, न निवाय पवाय उस्सुगत्तं, न डंसमस गेसु खुभियव्वं, अग्गी धूमो न कायव्वो। एवं संजम बहुले संवर बहुले संवुड बहुले समाहि बहुले धीरे काएण फासयंतो सययं अज्झप्पज्झाण जुत्ते समिए एगे चरेज्जधम्मं। एवं सेज्जा समिति जोगेण भावितो भवति

अंतरप्पा निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती।

छाया-"इदञ्च परद्रव्यहरण-विरमण-परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभावितमागमिष्यद्भद्रं, शुद्धं न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तरं सर्वदुःखपापानां व्युपशमनम्। तस्येमाः पञ्चभावनास्तृतीयस्य भवन्ति परद्रव्यहरण-विरमण-परिरक्षणार्थाय।

प्रथमं-देवकुल-सभा- प्रपाऽवसथ- वृक्षमूलाऽऽराम- कन्दराऽऽकर- गिरिगुहा-कर्मोद्यान-यान शाला-कुपितशाला-मण्डप-शून्यगृह-श्मशान-लयनाऽऽपणे, अन्यस्मिंश्चैवमादिके-उदक-मृत्तिका-बीज-हरित-त्रस प्राण्यसंसृष्टे यथाकृते, प्रासुके, विविक्ते, प्रशस्ते-उपाश्रये भवति विहर्तव्यम्। आधाकर्मबहुलश्च यः स आसिक्त-संमार्जितोत्सिक्त-शोभित-छादन-धवलन-लिम्पनाऽनुलिम्पन-ज्वलन-भाण्ड चालनम् अन्तर्बहिश्चाऽसंयमो यत्र वर्द्धते, संयतानामर्थे वर्जयितव्यो हि उपाश्रयः सतादृशः सूत्र प्रतिकुष्टः। एवं विविक्तवास वसति-समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा-पापकर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः।

द्वितीयमारामोद्यान-कानन-वनप्रदेश भागे यत्किञ्चिदिक्कडं वा-ढंढण सदृशं तृण-विशेषः, कठिनकञ्च, जन्तुकञ्च, परामेरा-( मुञ्जसरिका ) कूर्च-कुश-दर्भ-पलाल-मूयक-वल्वज-पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-कन्द-मूल- तृण-काष्ठ- शर्करादि गृह्णाति शय्योपधेरर्थाय। न कल्पते अवग्रहेऽदत्ते ग्रहीतुम्। अहन्यहनि अवग्रहमनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम। एवमवग्रह समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा-पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः।

तृतीयं-पीठ-फलक शय्या-संस्तारकार्थाय वृक्षा न छेदनीयाः। न छेदनेन-भेदनेन शय्या कारयितव्या। यस्यैवोपाश्रयेवसेत्, शय्या तत्रैवग वेषणीया न च विषमां समां कुर्यात्। न च निवात-प्रवातोत्सुकत्वं, न दंशमशकेषु क्षुभितव्यम्-अग्निर्धूमो न कारयितव्यः। एवं संयम बहुलः संवर बहुलः संवृत बहुलः समाधि बहुलः। धीरः कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्तः समितया एकश्चरेद्धर्मः। एवं शय्या समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा-पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः।

अन्व०-"( इमंच ) और यह अचौर्य व्रत सम्बन्धी ( पावयणं ) प्रवचन ( परद्व्व हरण-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ) पर द्रव्य हरण-विरति रूप व्रत की रक्षा के

लिये ( भगवया ) भगवान् महावीर ने ( सुकहितं ) अच्छी तरह से कहा है जो ( अत्तहितं ) आत्म हितकारी ( पेच्चाभावितं, आगमेसिभद्दं ) परलोक में शुभ फल-दाता और भविष्य में कल्याण का कारण है ( सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं ) शुद्ध न्याय युक्त एवं कुटिलता रहित है ( अणुत्तरं ) सर्व श्रेष्ठ (सव्वदुक्ख पावाण विओसमणं) सर्व दुःख एवं पापों का उपशमन करने वाला है ( तस्स ) उस अचौर्य व्रत की ( इमा पंच भावणाओ ) ये पांच भावनायें ( ततियस्स परदव्वहरणवेरमण-परि-रक्खणट्ठयाए ) तीसरे परद्रव्य हरण विरति रूप व्रत की रक्षा के लिये ( होंति ) होती हैं। (पढमं) पहली भावना-विविक्त वसति सेवन रूप जैसे ( देवकुल-सभ-प्पवा वसह-रुक्खमूल-आराम-कंदरागर- गिरिगुहा-कम्म-उज्जाण जाण साला-कुवित साला-मंडव-सुन्नघर-सुसाण-लेण-आवणे ) देउल-देव स्थान, सभा-विचार स्थान या व्याख्यान सभा, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजकों का स्थान, वृक्ष मूल, आराम-लता मण्डप आदिसे युक्त वनविशेष, कन्दरा-गुफा, आकर-खान, गिरि-गुहा, कर्म-सुधा आदि बनाने का स्थान रसशाला आदि, उद्यान बगीचा, यानशाला-वाहनादि रखने का घर, कुपित शाला-तृण आदि सामान रखने का घर, मंडप-विवाह आदि प्रसङ्ग में बना हुआ सभा मण्डप, शून्य घर, श्मशान, लयन-पहाड़ में बना हुआ घर और दुकान में ( अन्नंमि य एव मादियंमि ) और इस प्रकार के अन्य स्थान में जो (दग-मट्टिय बीज हरित-तस पाण-असंसत्ते) सचित्त जल, मिट्टी, बीज, दूब आदि हरी और त्रस प्राणिओं से रहित हो ( अहाकडे ) गृहस्थ ने अपने लिये जिसे बनाया हो, ऐसे ( फासुए ) प्रासुक-निर्जीव ( विवित्ते ) एकान्त अतएव ( पसत्थे उवस्सए ) प्रशस्त-उत्तम उपाश्रय में ( विहरियव्वं होइ ) विचरना चाहिये ( आहाकम्म बहुले य जे ) साधुओं के निमित्त जिसमें हिंसा की जाय वैसे आधा कर्म रूप दोष की अधिकता वाला और जो ( आसित-संमज्जि-उस्सित्त-सोहिय-छायण-दूमण-लिंपण-अणुलिंपण-जलण भंड चालण-अंतो वहिं च ) आसिक्त पानी से थोड़ा सींचा हुआ, संमार्जित-झाड़ से संमार्जन किया हुआ, उत्सिक्त-खूब पानी सींचा हो, शोभित-पुष्प माला आदि से शोभित हो, छादन-डाभ आदि से छान किया हो, दूमन-खड़ी आदि से पोता हो, लिंपन-गोबर आदि से लिपा हो, अनु लिंपन-लिपे हुए को पुनः लीपा हो, ज्वलन-अग्नि जला कर तपाया हो या प्रकाशित किया हो, साधु के लिये भांडों को हटाया हो और घर के भीतर या बाहर

( जत्थ असंजमो वड्ढती ) जहां असंयम-जीवों की विराधना बढती हो ( संजयाण अट्ठा से वज्जेयव्वो हु उवस्सओ ) साधुओं के लिये वह उपाश्रय निश्चय से वर्जनीय है, क्योंकि ( तारिसए ) वैसा स्थान ( सुत्तपडिकुट्ठे ) सूत्र से निषिद्ध है ( एवं विवित्त वास-वसहि समिति जोगेण ) इस प्रकार निर्दोष वास स्थान में व सतिरूप समिति के योगसे ( भावितो ) पवित्र किये हुए ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला मुनि ( निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरतो ) सदा, दुर्गति के कारण पापकर्म के करने व करवाने से निवृत ( दत्तमणुन्नाय-ओग्गहरुती ) दत्त अनुज्ञात अवग्रह में रुचि वाला ( भवति ) होता है।

( बितीयं ) दूसरी भावना-अनुज्ञात संस्तारक ग्रहण रूप, जैसे-( आरामुज्जाण काणण-वण-प्पदेस भागे ) आराम, उद्यान-बगीचा, कानन-नगर के समीपवर्ती सामान्य वन, वन-नगर से दूर का वन प्रदेश इन सब स्थानों में ( जं किंचि ) जो कुछ भी ( इक्कडं ) इक्कडजाति का घास, तथा ( कठिणगं ) कठिन-तृण जाति ( च ) और ( जंतुगं ) जन्तुक-पानी में पैदा हुआ तृण ( च ) और ( परामेर-कुच्च-कुस-डब्भ-पलाल-मूयग वक्कय-पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादी) परा-एक प्रकार का तृण, मेरा मुंज की तन्तु, कूर्च-जुलाहे के कूंची बनाने का तृण कुश और डाभ, पलाल-धान्य विशेष का डांट, मूयक-एक प्रकार का तृण, वल्कज, पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और शर्करा आदि द्रव्य ( गेण्हइ ) ग्रहण करता है ( सेज्जोवहिस्स अट्ठा ) शय्या और उपधि के लिये ( उग्गहे अदिन्नंमि ) उपाश्रय के भीतर की ग्राह्य वस्तुओं को दाता के बिना दिये ( गेण्हिउ ) लेना ( न कप्पए ) नहीं कल्पता है इसलिये ( हणिहणि ) प्रति दिन ( उग्गहं अणुन्नविय ) ग्राह्य वस्तु की आज्ञा लेकर ( गेण्हियव्वं ) ग्रहण करना चाहिए। ( एवं ) इस प्रकार ( उग्गहसमिति जोगेण ) अवग्रह समिति योग से ( भावितो ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला साधु ( निच्चं ) सदा ( अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरते ) दुर्गति के कारण स्वरूप पाप कर्म के करने व कराने से विरक्त हुआ ( दत्त मणुन्नाय य ओग्गहरुती ) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह-पदार्थ को रुचि वाला ( भवति ) होता है।

( ततियं ) तृतीय भावना-शय्या परिकर्मवर्जन रूप, जैसे-( पीठ-फलग सेज्जा-संथारगट्ठयाए ) पीठ, पाट, शय्या और संस्तारक के हेतु ( रुक्खा ) वृक्ष ( न

छिंदियव्वा) नहीं छेदन करना चाहिए (छेदणेण) वृक्ष आदि के छेदन व (भेयणेण) भेदन से (सेज्जा) शय्या (न कारेयव्वा) नहीं करवानी चाहिए (जस्सेव उवसस्ते) जिसी के उपाश्रय में (वसेज्ज) ठहरे (तत्थेव) वहां पर ही (सेज्जं) शय्या की (गवेसेज्जा) गवेषणा करे ( य ) किन्तु ( विसमं समं न करेज्जा ) विषम को सम नहीं बनावे ( न निवाय पवाय उस्सुगत्तं ) पवन वाला या वायु रहित स्थान में उत्सुकता नहीं करे ( न डंस-मसगेसु खुभियव्वं ) डांस और मच्छर आदि के विषय में क्षुब्ध नहीं होना चाहिए ( अग्गी धूमो न कायव्वो ) डांस आदि हटाने के लिये अग्नि अथवा धूंआं नहीं करना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( संजम बहुले ) संयम-जीव रक्षा की प्रधानता वाला ( संवर बहुले ) संवर की अधिकता वाला ( संवुडबहुले ) कषाय व इन्द्रियों के संवृतपन की प्रचुरता वाला ( समाहिवहुले ) अतः समाधि सम्पन्न ( धीरे ) धीर साधु ( काएण फासयंतो ) शरीर से इस व्रत का पालन करता हुआ ( सययं ) निरन्तर ( अज्झप्प-ज्झाणजुत्तो ) अध्यात्म ध्यान से युक्त ( समिए ) समिति वाला ( एगे धम्मं चरेज्ज ) रागादि रहित एकाकी होकर धर्म का आचरण करे ( एवं ) इस प्रकार ( सेज्जा-समिति जोगेण ) शय्या समिति के योग से ( भावितो ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला ( निच्चं ) सदा ( अहिकरण-करण-कारावण-पाव कम्म विरते ) अधिकरण को करने व कराने रूप पाप कर्म से विरत (दत्तमणु-न्नाय-उग्गहरुती ) दिये गए और आज्ञा प्राप्त अवग्रह की रुचि वाला ( भवति ) होता है।

तवोविधम्मो, तम्हा विणओ पउंजियव्वो । गुरुसु साहूसु तवस्सीसु य । एवं विणतेण भाविओ भवति अंतरप्पा णिच्चं अधिकरण-करण-कारावण पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय उग्गहरुई । एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुपणिहियं एवं जाव आघवियं सुदेसितं पसत्थं ॥ तृतीयं संवरदारं समत्तं तिबेमि ॥ सू० २ । २६ ॥

छाया-"चतुर्थं साधारण पिण्डपात्रलाभे भोक्तव्यं संयतेन सम्यक्- नशाकसूपादिकं, नाऽधिकं न वेगितं, न त्वरितं, न चपलं, न साहसं, न च परस्य पीडाकर सावद्यं, तथा भोक्तव्यं यथा तस्य तृतीयं व्रतं न सीदति । साधारण पिण्डपात्र लाभे सूक्ष्ममदत्ताऽऽदानव्रतनियम विरमणम् । एवं साधारण पिण्ड पात्रलाभे समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण करण,कारणा पाप कर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः । पञ्चमकं साधर्मिके विनयः प्रयोक्तव्य उपकरण पारणासु विनयः प्रयोक्तव्यो, वाचनपरिवर्तनासु विनयः प्रयोक्तव्यः । दान ग्रहण पृच्छासु विनयः प्रयोक्तव्यो निष्क्रमण प्रवेशेषु विनयः प्रयोक्तव्यः । अन्येषु चैवमादिकेषु बहुषु कारणशतेषु विनयः प्रयोक्तव्यः । विनयोऽपितपः, तपोऽपिधर्मः तस्माद्विनयः प्रयोक्तव्यो गुरुषु साधुषु तपस्विषु च । एवं विनयेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः । एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यक् संवृतं भवति सुप्रणिहितम् एवं यावत् आज्ञप्तं सुदेशितं प्रशस्तम् । तृतीयं संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि । २ । सू० २६ ।

अन्व०-"(चउत्थं) चतुर्थ भावना-अनुज्ञात भक्तादि भोजन रूप (साहारण पिंडपातलाभे ) सब साधुओं के लिये सन्मिलित आहार आदिके मिलने पर ( संजएण ) साधु को ( समियं ) सम्यक् यतना पूर्वक ( भोत्तव्वं ) आहार करना चाहिए, जैसे ( न सायसूयाहिकं ) शाक और सूप की अधिकता वाला नहीं खाना चाहिए ( न खद्धं ) साथ बैठकर स्वयं अधिक या जल्दी २ नहीं खावे ( न वेगितं ) वेग युक्त नहीं खाना ( न तुरियं ) जल्दी २ भी नहीं खाना ( न चवलं ) न चंचलता युक्त ( न साहसं ) न बिना विचारे खाना चाहिए ( न य परस्स पीलाकर सावज्जं ) और दूसरे को पीड़ाकारक तथा सदोष रीति से नहीं खाना चाहिए ( तह भोत्तव्वं जह से ततिय वयं न सीदति ) उस प्रकार आहार करना चाहिए जिस प्रकार से उस साधु का तीसरा अचौर्य व्रत नष्ट नहीं हो ( साहारणपिंड-

पायलाभे ) साधारण पिण्डपात के लाभ में ( सुहुमं ) यह सूक्ष्म ( अदिन्नादाण-वय नियमवेरमणं अदत्तादान को व्रतनियम से रोकने वाला अथवा अदत्तादान विरमणव्रतसे आत्मा का नियमन करने वाला है ( एवं ) इस प्रकार ( साहारणपिंडपायलाभे ) साधारण पिण्ड पातके लाभमें ( समितिजोगेण ) समिति के योग से ( भावितो अंतरप्पा ) युक्त अन्तःकरण वाला साधु ( निच्चं ) सदा ( अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते ) अधिकरणरूप पापकर्म के करने कराने रूप कर्म से विरत ( दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती ) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला ( भवति ) होता है।

( पंचमगं ) पांचवी भावना-साधर्मिक विनय करने रूप, जैसे-( साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो ) साधर्मिक के सम्बन्ध में विनय करना चाहिए ( उवकरण पारणासु ) उपकार और तपस्या की पारणा-पूर्ति-में ( विणओ पउंजियव्वो ) विनय-प्रयोग करना चाहिए ( वायण-परियट्टणासु ) सूत्र ग्रहणरूप वाचना में और सूत्र की आवृति में-पुनः पठन में ( विणओ पउंजियव्वो ) विनय करना चाहिए, ( दाणग्गहणपुच्छणासु विणओ पउंजियव्वो ) मिले हुए अन्न दि साधुओं को देने में और दूसरों से ग्रहण करने एवं विस्मृत सूत्रार्थ की पुनः पृच्छामें विनय करना चाहिए ( निक्खमण पवेसणासु विणओ पउंजियव्वो ) स्थान से निकलने व प्रवेश करने में आवश्यकीय आदि विनय करना चाहिए ( अन्नेसु य एवमादिसु ) और इत्यादि-इस प्रकार के दूसरे ( बहुसु कारणसएसु ) बहुत से सैकड़ों कारणों में ( विणओ पउंजियव्वो ) विनय करना चाहिए। ( विणओ वि-तवो ) विनय भी तप और ( तवो वि धम्मो ) तप भी धर्म है ( तम्हा विणओ पउंजियव्वो ) इसलिये विनय करना चाहिए।

किनके सम्बन्ध में विनय कर्तव्य है ?

उत्तर-( गुरुसु साहूसु तवस्सीसु य ) गुरुओं में, साधुओं में और तपस्वियों में। ( एवं ) इस प्रकार ( विणतेण भावितो ) विनय से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला साधु ( णिच्चं ) सदा ( अहिकरण-करण-कारावण पावकम्म विरते ) अधिकरणरूप पाप के करने व कराने से विरत ( दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती ) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह में रुचिवाला ( भवति ) होता है ( एवमिणं संवरस्स दारं ) इस प्रकार अचौर्यव्रतरूप यह संवरद्वार ( सम्मं ) अच्छी तरह ( संवरियं ) पालन

किया गया ( सुप्पणिहियं ) सुरक्षित (होइ) होता है। ( एवं जाव ) इस प्रकार यावत् ( आघवियं सुदेसितं ) देव आदिओं के माननीय ज्ञानियों के द्वारा अच्छी तरह कहा हुआ ( पसत्थं ) प्रशस्त है।

( ततियं संवरदारं समत्तं तिबेमि ) तीसरा संवरद्वार समाप्त हुआ ऐसा मैं कहता हूं। सूत्र २ । २६ ।

भावार्थ-"पर द्रव्य हरण से निवृत्तिरूप इस व्रत की रक्षा के लिये यह प्रवचन भगवान् महावीर ने अच्छी तरह कहा है। जो आत्महितकारी और यावत् सबदुःख एवं पापों का उपशमन करने वाला है। व्रत की रक्षा के लिये इस तीसरे व्रत की पांच भावनायें हैं, जैसे-

पहली भावना गृहस्थ के द्वारा उनके अपने लिये बनाये गए, सचित्त जल आदि त्रस स्थावर जीव रहित प्राशुक, स्त्री आदि विकारी साधन शून्य एकान्त और प्रशस्त उपाश्रय में रहना चाहिए। देवकुल, सभा आदि १८ प्रकार के और ऐसे अन्य निर्दोष स्थान में ठहरना चाहिए। जो मकान साधु के लिये आरंभ करके बनाया हो, या पानी से सींचा हो, फूल माला आदि से सजाया हो, डाभ आदि से छत बनाना, चूने खड़ी से पोतना, गोबर से लीपना, अग्नि जलाना, और भाण्ड बर्तन बासन इधर उधर करना ये सब क्रियायें जहां घर के भीतर या बाहर साधु के लिये की गई हों, साधुओं को वैसा हिंसायुक्त उपाश्रय वर्जन करना चाहिए, क्योंकि ऐसा स्थान सूत्राज्ञा से निषिद्ध है। इस प्रकार यह विविक्त-पवित्र वास वसति रूप प्रथम भावना है।

ऐसे बगीचे आदि के वन प्रदेश में जो कुछ इक्कड आदि घास और फूल, फल त्वचा आदि वनस्पति के अङ्ग तथा काष्ठ आदि कोई ग्रहण करता है व्रती-साधु को उनमें से कोई भी पदार्थ स्वामी की आज्ञा लिये बिना ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये प्रति दिन ग्राह्य पदार्थों की आज्ञा लेकर ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अवग्रह समिति रूप दूसरी भावना है।

पाट पाटिया व शय्या के लिए वृक्ष नहीं कटाने चाहिए। छेदन भेदन से पाट आदि शय्या नहीं बनवानी चाहिए, किन्तु जिस उपाश्रय में ठहरें वहां पर ही शय्या की गवेषणा करनी चाहिए। विषम स्थान को सम नहीं बनाना, वायु रहित अथवा अधिक वायु वाले स्थान में उत्सुकता नहीं करना। डांस मच्छर

आदि से क्षुब्ध नहीं होना और उनके निवारणार्थ अग्नि या धूम का प्रयोग भी नहीं करना, इस प्रकार संयम आदि भाव की प्रधानता से समाधियुक्त धीर मुनि शरीर से सदा अचौर्य व्रत का पालन करे। आत्मध्यानसे युक्त सम्यक् प्रवृत्ति वाला और राग द्वेष रहित होकर धर्मका आचरण करे। यह शय्या समिति रूप तृतीय भावना है।

चौथी भावना-साधु समूह के लिये साधारण पिण्ड के मिलने पर व्रती को यतना पूर्वक सेवन करना चाहिए। शाक आदि से प्रचुर भोजन को अधिक अथवा जल्दी २ नहीं करे चपलता युक्त बिना विचारे और दूसरे के लिए पीड़ा कारक सदोष आहार का वर्जन करे। साधु को उस प्रकार खाना चाहिए जिस प्रकार से अचौर्य व्रत का भङ्ग नहीं हो। यह अदत्तादान विरमण व्रत का सूक्ष्म नियम है। यह साधारण पिण्ड लाभ की समिति रूप चौथी भावना है।

साधर्मिक साधुओं के साथ योग्य विनय करना चाहिए। उपकार और पारणक आदि विभिन्न प्रसङ्गों पर गुरु,सामान्य साधु-व्रती और तपस्वियोंके विषयमें विनय करना चाहिए। क्योंकि विनय भी एक प्रकार का तप है औरतप भी धर्म है। इसलिए विनय साधन करना चाहिए। इस प्रकार विनय समितिरूप पांचवी भावना होती है।

इस प्रकार प्रत्येक भावना से युक्त अन्तःकरण वाला साधु सदा अधिकरण रूप पाप कर्म के करने व कराने से विरत होकर दत्तानुज्ञात अवग्रह अर्थात् अचौर्य व्रत की रुचि वाला होता है। इस प्रकार यह अचौर्य व्रत तृतीय संवर का द्वार है। उपरोक्त भावनाओं के द्वारा अच्छी तरह पाला जाता है। उत्तम है। इस प्रकार सुधर्म स्वामी कहते हैं कि यह तीसरा संवर द्वार पूर्ण हुआ। सू० ॥ २ ॥ २६ ॥

सारांश-इस अध्ययन में द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के चौर्यकर्म का निषेध किया गया है। क्योंकि काव्य के पद और साहित्य का अंश लेकर अपनी विद्वत्ता बताना भी एक प्रकार की चोरी है। इस व्रत की रक्षा के लिये पांच बातें परम अपेक्षित हैं। निर्दोष व एकान्त स्थान का सेवन करना, बिना दिये तृण तक भी ग्रहण नहीं करना, शय्या आदि के लिये वृक्ष आदि नहीं कटवाना, और प्रतिकूल परिस्थिति में भी क्षुब्ध नहीं होना। भिक्षा से प्राप्त आहार का विधिवत् सेवन करना, गुरु, और साधुओंमें यथायोग्य विनय करना, साधकको इन्हें ध्यानमें रखना चाहिए।

## ॥ समाप्तं तृतीयसंवरद्वारम् ॥

## ॥ अन्वयार्थ सान्वयार्थ भावार्थम् ॥

# चतुर्थ संवरद्वारम्

सम्बन्ध-तृतीय संवर में अचौर्यव्रत का विधान किया गया, वह ब्रह्मचर्य धारण करने पर ही निर्बाध पाला जा सकता है, इसलिये चतुर्थ अध्ययन में सूत्र क्रम से सम्बन्धित ब्रह्मचर्यव्रत का निरूपण करते हैं-

मूल-"जंबू ! एत्तो य बंभचेरं उत्तम-तव-नियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्मत्त-विणयमूलं, जम-नियम-गुणप्पहाणजुत्तं, हिमवंत महंत-तेयमंतं, पसत्थ-गंभीर-थिमित-मज्झं, अज्जव-साहुजण-चरितं, मोक्ख-मग्गं, विसुद्ध-सिद्धिगति-निलयं, सासयमव्वाबाहमपुणब्भवं, पसत्थं सोमं सुभं सिवमचलमक्खयकरं । जतिवर-सारक्खितं, सुचरियं सुभासियं, नवरिमुणिवरेहिं महापुरिस-धीर-सूर-धम्मिय-धितिमंताण य सया विसुद्धं, भव्वं भव्वजणाणुचिन्नं, निस्संकियं, निब्भयं, नित्तुसं, निरायासं, निरुवलेवं, निव्वुतिघरं, नियम निप्पकंपं तव संजम-मूल-दलियणेम्मं, पंच महव्वय सुरक्खियं, समिति गुत्ति गुत्तं, झाणवर-कवाड-सुकयमज्झप्प दिन्नफलिहं, संनद्धोच्छइयदुग्गइपहं, सुगतिपहदेसगं च, लोगुत्तमं च व-यमिणं, पउमसरतलाग-पालिभूयं, महासगड अरगतुंब भूयं, महा-विडिमरुक्खक्खंधभूयं, महानगर पागार कवाडफलिहभूयं, रज्जु पिणिद्धो व इंदकेतू विसुद्ध णेग गुण संपिणद्धं । जंमिय भग्गंमि होइ सहसा सव्वं संभग्ग-मथिय-चुन्निय- कुसल्लिय-पल्लट्ट-पडिय-खंडिय-परिसडिय-विणा-सियं, विणयसील-तव-नियम गुणसमूहं, तं बंभं भगवंतं-गहगण न क्खत्त तारगाणं वा जहा उडुपती १, मणिमुत्त-सिल-प्पवाल-रत्त रयणा-गराणं व जहा समुद्दो २, वेरुलिओ चेव जहा मणीणं ३, जहा मउडो चेव भूसणाणं ४, वत्थाणं चेव खोम जुयलं ५, अरविंदं चेव पुप्फजेट्ठं ६, गोसी-सं चेव चंदणाणं ७, हिमवंतो चेव ओसहीणं ८, सीतोदा चेव निन्नगाणं ९,

उदहीसु जहा सयंभु रमणो१०, रुयगवरे चेव मंडलिक पव्वयाण पवरे११, एरावण इव कुंजराणं१२, सीहोव्व जहा मिगाणं पवरे१३, पव्वकाणं चेव वेणु देवे१४, धरणो जह पण्णगइंदराया१५, कप्पाणं चेव बंभलोए१६, सभासु य जहा भवे सुहम्मा१७, ठितिसु लव सत्तमव्व पवरा१८, दाणाणं चेव अभयदाणं१९, किमिराउ चेव कंबलाणं२०, संघयणे चेव वज्जरिसभे२१, संठाणे चेव समचउरंसे२२, झाणेसु य परम सुक्कज्झाणं२३, णाणेसु य परम केवलं तु सिद्धं२४, लेसासु य परम सुक्कलेस्सा२५ तित्थंकरे जहा चेव मुणीणं२६, वासेसु जहा महाविदेहे२७, गिरि राया चेव मंदरवरे२८ वणेसु जहा नंदण वणं पवरं२९, दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा, वीसु यजसा जीय नामेण य अयं दीवो३०, तुरगवती गयवती, रहवती नरवती जह वीसुए चेव राया३१, रहिए चेव जहा महा रहगते३२। एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति एक्कंमि वंभचेरे जं मिय आराहियं मि आराहियं वयमिणं सव्वं। सीलं तवो य विणओ य संजमो य खंती गुत्ती मुत्ती तहेव इहलोइय पार लोइय जसे य कित्ती य पच्चओ य। तम्हा निहुएण वंभचेरं चरियव्वं, सव्वओ विसुद्धं जावज्जी वाए जाव सेयट्ठि संजउत्ति एवं भणियं वयं भगवया।

छाया-"हे जम्बूः ! इदञ्च ब्रह्मचर्यमुत्तमतपो-नियम-ज्ञान-दर्शन-चारित्र सम्यक्त्व-विनयमूलं, यम नियम गुण प्रधानयुक्तं, हिमवन्महातेजस्वि, प्रशस्त गम्भीर-स्तिमित मध्यम्, आर्जव-साधुजनाचरितं मोक्षमार्गः। विशुद्ध-सिद्धिगति-निलयं, शाश्वत मव्याबाधमपुनर्भवम्, प्रशस्तं सौम्यं शुभं शिवमचलमक्षयकरं, यतिवर-सुरक्षितं सुचरितं सुभाषितं। केवलं ( न वरि ) मुनिवरैर्महापुरुष-धीर-शूर-धार्मिक-धृतिमतां च सदा विशुद्धं भव्यं भव्यजनानुचीर्णं निश्शङ्कितं निर्भयं निस्तुषं निरायासं निरुपलेपं निर्वृ तिगृहं नियम निष्प्रकम्पं तपः-संयम-मूल-दलिकनेमं, पञ्चमहाव्रत सुरक्षितं, समिति गुप्ति गुप्तं, ध्यानवर-कपाट-सुकृताध्यात्म-दत्तफलकं, संनद्धोच्छ-यित-दुर्गति पथं, सुगतिपथदेशकं च लोकोत्तमंचव्रतमिदं, पद्मसरस्तडागपालीभूतं, महाशकटारक तुम्ब (नाभि) भूतं, महा विटपवृक्षस्कन्धभूतं, महानगर-प्राकार-कपाट परिघीभूतं, रज्जु-पिनद्ध इवेन्द्रकेतुः, विशुद्धाऽनेकगुण संपिनद्धम्। यस्मिंश्च भग्ने भवन्ति सहसा सर्वं संभग्न-मथित-चूर्णित-कुशल्यित,-पर्यस्त-( पलट्ट )-पतित-

खण्डित-परिशाटित-विनाशितं । विनयशील-तपो-नियमगुणसमूहं, तद्ब्रह्मचर्यं भगवद्,-ग्रहगण नक्षत्र तारकाणां वा यथोडुपतिः १, मणिमुक्ताशिला-प्रवाल-रक्त रत्नाऽऽकराणां च यथा समुद्रः २, वैडूर्यञ्चैव यथामणीनां ३, यथा मुकुटञ्चैव भूषणानां ४, वस्त्राणाञ्चैव क्षौमयुगलम् ५, अरविन्दञ्चैव पुष्पज्येष्ठं ६, गोशीर्षञ्चैव चन्दनानां ७, हिमवांश्चैव औषधीनां ८, शीतोदाचैव निम्नगानाम् ९, उदधिषु यथा स्वयम्भुरमणः १०, रुचकवरश्चैव माण्डलिक पर्वतानां प्रवरः ११, ऐरावत इव कुञ्जराणाम् १२, सिंहोयथा मृगाणां प्रवरः १३, पावकानां चैव वेणुदेवो १४, धरणो यथा पन्नगेन्द्रराजा १५, कल्पानाञ्चैव ब्रह्मलोकः १६, सभासु च यथा भवेत्सुधर्मा १७, स्थितिषु लवसप्तमावा प्रवरा १८, दानानाञ्चैवाऽभयदानम् १९, कृमिराग इव कम्बलानाम् २० संहननेषु चैव वज्रर्षभः २१, संस्थाने चैव समचतुरस्रम् २२, ध्यानेषु च परमशुक्ल ध्यानम् २३ ज्ञानेषु च परमकेवलं तु सिद्धम् २४ लेश्यासु च परमशुक्ल लेश्या २५, तीर्थङ्करो यथा चैव मुनीनाम् २६, वासेषु यथा महाविदेहो २७, गिरिराजश्चैव मन्दरवरः २८, वनेषु यथानन्दनवनं प्रवरम् २९, द्रुमेषु यथा जम्बूः सुदर्शना विश्रुतयशा यस्यानाम्नाचायं द्वीपः ३० तुरगपति गजपतीरथपतिर्नरपतिर्यथा विश्रुतश्चैव राजा ३१, रथिकश्चैव यथा महारथगतः ३२ । एवमनेके गुणा अहीनाभवन्ति एकस्मिन् ब्रह्मचर्ये । यस्मिन् चाराधिते आराधितं व्रतमिदं सर्वम् । शीलं तपश्चविनयश्च संयमश्च, क्षान्तिर्गुप्तिर्मुक्तिस्तथैव ऐहिलौकिक पारलौकिक यशश्च कीर्तिश्च प्रत्ययश्च तस्मान्निभृतेन ब्रह्मचर्यं चरितव्यम् । सर्वतो विशुद्धं यावज्जीवनं यावच्छ्वेतोऽस्थि संयमिनेति, एवं भणितं व्रतं भगवता ।

अन्व०"( जंबू ! ) हे जंबू ! ( एत्तोय ) फिर इस तृतीय व्रत के आगे ( बंभचेरं ) ब्रह्मचर्य व्रत है, जो ( उत्तमतव-नियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्मत-विणयमूलं ) उत्तम अनशन आदि तप, नियम-उत्तर गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है ( जम-नियम-गुणप्पहाणजुत्तं ) अहिंसादि पांच यम और गुणों की प्रधानता वाले नियम से युक्त ( हिमवंत महंततेयमंतं ) हिमवान् पर्वत के समान बड़ा और तेजस्वी ( पसत्थगंभीरथिमितमज्झं ) प्रशस्त गम्भीर और स्थिर मध्य याने मनुष्य के अन्तःकरण वाला, ( अज्जव साहु जणा चरितं ) सरल भाव युक्त साधु पुरुषों से आसेवित ( मोक्खमग्गं ) मोक्ष का मार्ग ( विशुद्ध सिद्धिगति निलयं ) विशुद्ध रागादि रहित निर्मल सिद्धि गति रूप घर वाला ( सासयमव्वाबाहमपुण

खण्डित-परिशाटित-विनाशितं । विनयशील-तपो-नियमगुणसमूहं, तद्ब्रह्मचर्यं भगवद्,-ग्रहगण नक्षत्र तारकाणां वा यथोडुपतिः १, मणिमुक्ताशिला-प्रवाल-रक्त रत्नाऽऽकराणां च यथा समुद्रः २, वैडूर्यञ्चैव यथामणीनां ३, यथा मुकुटञ्चैव भूषणानां ४, वस्त्राणाञ्चैव क्षौमयुगलम् ५, अरविन्दञ्चैव पुष्पज्येष्ठं ६, गोशीर्षञ्चैव चन्दनानां ७, हिमवांश्चैव औषधीनां ८, शीतोदाचैव निम्नगानाम् ९, उदधिषु यथा स्वयम्भुरमणः १०, रुचकवरश्चैव माण्डलिक पर्वतानां प्रवरः ११, ऐरावत इव कुञ्जराणाम् १२, सिंहोयथा मृगाणां प्रवरः १३, पावकानां चैव वेणुदेवो १४, धरणो यथा पन्नगेन्द्रराजा १५, कल्पानाञ्चैव ब्रह्मलोकः १६, सभासु च यथा भवेत्सुधर्मा १७, स्थितिषु लवसप्तमावा प्रवरा १८, दानानाञ्चैवाऽभयदानम् १९, कृमिराग इव कम्बलानाम् २० संहननेषु चैव वज्रर्षभः २१, संस्थाने चैव समचतुरस्रम् २२, ध्यानेषु च परमशुक्ल ध्यानम् २३ ज्ञानेषु च परमकेवलं तु सिद्धम् २४ लेश्यासु च परमशुक्ल लेश्या २५, तीर्थङ्करो यथा चैव मुनीनाम् २६, वासेषु यथा महाविदेहो २७, गिरिराजश्चैव मन्दरवरः २८, वनेषु यथानन्दनवनं प्रवरम् २९, द्रुमेषु यथा जम्बूः सुदर्शना विश्रुतयशा यस्यानाम्नाचायं द्वीपः ३० तुरगपति गजपतीरथपतिर्नरपतिर्यथा विश्रुतश्चैव राजा ३१, रथिकश्चैव यथा महारथगतः ३२ । एवमनेके गुणा अहीनाभवन्ति एकस्मिन् ब्रह्मचर्ये । यस्मिन् चाराधिते आराधितं व्रतमिदं सर्वम् । शीलं तपश्चविनयश्च संयमश्च, क्षान्तिर्गुप्तिर्मुक्तिस्तथैव ऐहिलौकिक पारलौकिक यशश्च कीर्तिश्च प्रत्ययश्च तस्मान्निभृतेन ब्रह्मचर्यं चरितव्यम् । सर्वतो विशुद्धं यावज्जीवनं यावच्छ्वेयोऽस्थि संयमिनेति, एवं भणितं व्रतं भगवता ।

अन्व०"( जंबू ! ) हे जंबू ! ( एत्तोय ) फिर इस तृतीय व्रत के आगे ( बंभचेरं ) ब्रह्मचर्य व्रत है, जो ( उत्तमतव-नियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्मत-विणयमूलं ) उत्तम अनशन आदि तप, नियम-उत्तर गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है ( जम-नियम-गुणप्पहाणजुत्तं ) अहिंसादि पांच यम और गुणों की प्रधानता वाले नियम से युक्त ( हिमवंत महंततेयमंतं ) हिमवान् पर्वत के समान बड़ा और तेजस्वी ( पसत्थगंभीरथिमितमज्झं ) प्रशस्त गम्भीर और स्थिर मध्य याने मनुष्य के अन्तःकरण वाला, ( अज्जव साहु जणा चरितं ) सरल भाव युक्त साधु पुरुषों से आसेवित ( मोक्खमग्गं ) मोक्ष का मार्ग ( विशुद्ध सिद्धिगति निलयं ) विशुद्ध रागादि रहित निर्मल सिद्धि गति रूप घर वाला ( सासयमव्वाबाहमपुण

है । जिस ब्रह्मचर्य के भङ्ग होने पर सहसा विनयशील और तपनियम आदि गुण समूह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं । अतिशय सम्पन्न होने से वह ब्रह्मचर्य भगवान् है । बत्तीस उपमाओं से इसका महत्त्व कहा गया है ।

जैसे-'नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा के समान १, मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान २, मणिओं में वैडूर्य के समान ३, आभूषणों में मुकुट के समान ४, वस्त्रों में क्षौमयुगल-कपास वस्त्र के समान ५, पुष्पों में कमलके समान ६, चन्दनों में गोशीर्ष के समान ७, औषधि स्थानों में हिमवान् के समान ८, नदियो में शीतोदा नामकी नदी के समान ६, समुद्रों में स्वयम्भू रमण के समान १०, माण्डलिक पर्वतों में रुचकगिरि के समान ११, हाथिओं में ऐरावण हाथी के समान १२, जंगली पशुओं में सिंह के समान १३, सुपर्ण कुमारों में वेणुदेव के समान १४, नागकुमारों में धरणेन्द्र के समान १५, बारह देवलोकों में ब्रह्मदेवलोक के समान १६, सभाओं में सुधर्मा के समान १७, स्थितिओं में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थितिके समान १८, दानों में अभयदान के समान १६, कम्बलों में कृमिराग-रक्त कम्बलों के समान २०, शरीर के संहननों में वज्रऋषभनाराच के समान २१, छः प्रकार के संठाणों में समचतुरस्र संस्थान के समान २२, चार ध्यानों में शुक्ल ध्यान के समान २३, पांच ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २४, छः लेश्याओं में परमशुक्ल लेश्या २५, मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर २६, क्षेत्रों में जैसे महाविदेह प्रधान है २७, पर्वतों में सुमेरुके समान २८, वनों में नन्दनवन के समान २६ वृक्षों में जंबू वृक्ष के समान ३०, तुरगपति आदिओं में जैसे चक्रवर्ती राजा ३१, रथिकों में जैसे महारथी उत्तम है ऐसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत बडा और प्रधान है ३२ । इस प्रकार एक ब्रह्मचर्यव्रत में अनेक गुण पूर्ण तथा निवास किये रहते हैं । ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने पर यह निर्ग्रन्थ प्रव्रज्यारूपव्रत अखण्ड पालन किया होता है । शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता तथा सिद्धि एवं इस लोक परलोक की यश कीर्ति का भी आराधन हो जाता है । इसलिये स्थिर भावसे ब्रह्मचर्य का त्रिकरण त्रियोग की शुद्धि पूर्वक पालन करना चाहिए । जीवन पर्यन्त इसमें स्थिर रहना आदि, इस प्रकार श्री महावीर प्रभु ने ब्रह्मचर्यव्रत को कहा है वह इस प्रकार है । जैसे-

चार प्रकार के ध्यानों में जैसे परम शुक्ल ध्यान और ( णाणेसु य परम केवलं तु सिद्धं ) पांच ज्ञानों में जैसे केवल ज्ञान पूर्ण रूप से प्रसिद्ध है और ( लेसासु य परम सुक्कलेस्सा ) छः लेश्याओं में परम शुक्ल लेश्या जैसे उत्तम है ( तित्थंकरे जहा चेव मुणीणं ) मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर प्रधान हैं ( वासेसु जहा महा विदेहे ) वर्ष-क्षेत्रों में जैसे महाविदेह क्षेत्र, ( गिरिराया चेव मंदर वरे ) पर्वतों में जैसे मन्दर पर्वत गिरिराज है, ( वणेसु जहा नंदणवणं ) वनों में जैसे नन्दन वन ( पवरं ) श्रेष्ठ है ( दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा वीसुय जसा ) वृक्षों में जैसे जम्बू सुदर्शन वृक्ष विश्रुत-विख्यात कीर्ति वाला है ( जीय नामेणय अयंदीवो ) जिसके नाम से यह द्वीप-जम्बू द्वीप कहा जाता है ( तुरगवती गयवती रहवती नरवती जह वीसुए चेव राया ) अश्वपति, गजपति, रथपति और नरपति राजा जैसे विख्यात है, वैसे यह ब्रह्मव्रत भी उत्तम और विख्यात है ( रहिए चेव जहा महा रह गए ) बड़े रथ पर बैठा हुआ जैसे रथिक दूसरों का अभिभव करने वाला होता है ( एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति ) इस प्रकार अनेक गुण पूर्ण और स्वाधीन होते हैं ( जंमिय ) और जिस ( एक्कंमिबंभचेरे आराहियंमि ) एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर (आराहियं वयमिणं सव्वं) यह सब निर्ग्रन्थव्रत पालित होता है। [ व्रत गिनाते हैं ] ( सीलं ) शील-समाधान ( तवो य ) और तप ( विणओ य ) विनय और ( संजमो य ) संयम तथा ( खंती गुत्ती मुत्ती ) क्षमा,गुप्ति, मुक्ति-निर्लोभ वृत्ति ( तहेव ) इसी तरह ( इह लोइय पारलोइय जसे य कित्ती य ) इहलोक और परलोक सम्बन्धी यश और कीर्ति-दान पुण्य के फल भूत अथवा एक दिगन्त व्यापिनी प्रसिद्धि और ( पच्चओ य ) प्रत्यय-विश्वास का कारण है ( तम्हा ) इसलिये ( निहुएण ) स्थिर चित्त से ( सव्वओ विसुद्धं बंभचेरं चरियव्वं ) सर्वथा याने त्रिकरण त्रियोग से विशुद्ध दोष रहित ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। ( जावज्जीवाए जाव सेयट्ठि संजउत्ति ) आजीवन के लिये यावत् श्रेयोऽर्थी या तपस्या से निर्मांस होने के कारण साधु श्वेतास्थि कहाता है। ( एवं भणियं वयं भगवया ) इस प्रकार भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत को कहा है।

भाव-हे जंबू ? तीसरे संवर के बाद चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। यह प्रधान तप, नियम और ज्ञानादि का मूल तथा यम नियम आदि प्रधान गुण वाला है। हिमवान् के समान बड़ा तेजस्वी प्रशान्तगम्भीर हृदयवाला आदि अनेक विशेषण स्पष्ट

है। जिस ब्रह्मचर्य के भङ्ग होने पर सहसा विनयशील और तपनियम आदि गुण समूह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। अतिशय सम्पन्न होने से वह ब्रह्मचर्य भगवान् है। बत्तीस उपमाओं से इसका महत्त्व कहा गया है।

जैसे-'नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा के समान १, मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान २, मणिओं में वैडूर्य के समान ३, आभूषणों में मुकुट के समान ४, वस्त्रों में क्षौमयुगल-कपास वस्त्र के समान ५, पुष्पों में कमलके समान ६, चन्दनों में गोशीर्ष के समान ७, औषधि स्थानों में हिमवान् के समान ८, नदियो में शीतोदा नामकी नदी के समान ९, समुद्रों में स्वयम्भू रमण के समान १०, माण्डलिक पर्वतों में रुचकगिरि के समान ११, हाथिओं में ऐरावण हाथी के समान १२, जंगली पशुओं में सिंह के समान १३, सुपर्ण कुमारों में वेणुदेव के समान १४, नागकुमारों में धरणेन्द्र के समान १५, बारह देवलोकों में ब्रह्मदेवलोक के समान १६, सभाओं में सुधर्मा के समान १७, स्थितिओं में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थितिके समान १८, दानों में अभयदान के समान १९, कम्बलों में कृमिराग-रक्त कम्बलों के समान २०, शरीर के संहननों में वज्रऋषभनाराच के समान २१, छः प्रकार के संठाणों में समचतुरस्र संस्थान के समान २२, चार ध्यानों में शुक्ल ध्यान के समान २३, पांच ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २४, छः लेश्याओं में परमशुक्ल लेश्या २५, मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर २६, क्षेत्रों में जैसे महाविदेह प्रधान है २७, पर्वतों में सुमेरुके समान २८, वनों में नन्दनवन के समान २९ वृक्षों में जंबू वृक्ष के समान ३०, तुरगपति आदिओं में जैसे चक्रवर्ती राजा ३१, रथिकों में जैसे महारथी उत्तम है ऐसे ही व्रतों

मूल–"तंच इमं–"पंच महव्वय-सुव्वय–मूलं, समणमणाइल-साहुसुचिन्नं।
वेर विरमण–पज्जवसाणं, सव्वसमुद्द–महोदधितित्थं ॥ १ ॥

तित्थकरेहि सुदेसिय-मग्गं, नरय-तिरिच्छ-विवज्जियमग्गं।
सव्वपवित्ति–सुनिम्मियसारं, सिद्धिविमाण–अवंगुयदारं ॥ २ ॥

देव-नरिंद-नमंसियपूयं, सव्वजगुत्तम–मंगलमग्गं।
दुद्धरिसं गुणनायगमेक्कं, मोक्खपहस्स वडिंसकभूयं ॥ ३ ॥

जेण सुद्धचरिएण भवइ सुबंभणो, सुसमणो सुसाहू, सइसी समुणी ससंजए सएवभिक्खू जो सुद्धं चरति बंभचेरं।

इमं च रति-राग-दोस-मोह पवड्ढणकरं किमज्झ–पमाय–दोसपासत्थ-सीलकरणं अब्भंगणाणिय तेल्ल मज्झणाणि य अभिक्खणं कक्खा–सीस–कर चरण–वदण–धोवण–संबाहण–गायकम्म– परिमद्दणाणुलेवण– चुन्नवास-धूवण–सरीर परिमंडण–बाउसिक ( य ) हसिय–भणिय–नट्टगीय-वाइय-नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल पेच्छण–वे लंबक जाणिय सिंगारागाणि य अन्नाणिय एवमादियाणि तव–संजम–बंभचेर-घातोवघातियाइं अणुचर माणेणं बंभचेरं वज्जेयव्वाइं सव्वकालं।

भावेयव्वो भवइ य अंतरप्पा इमेहिं तव-नियम-सील-जोगेहिं निच्चकालं, किंते !–अण्हाणक–अदंतधावण–सेय–मल–जल्ल–धारणं मूणवय-केसलोए य खम–दम–अचेलग–खुप्पिवास लाघव–सीतोसिणकट्ठसेज्जा–भूमिनिसेज्जा परघर पवेस–लद्धावलद्ध-माणावमाण–निंदण–दंस–मसगफास नियम–तव–गुण विणयमादिएहिं जहा से थिरतरगं होइ बंभचेरं। इमं च अबंभचेर-विरमण परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं ( अत्तहितं ) पेच्चाभाविकं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसवणं।

छाया–"तच्चेदं–" पञ्चमहाव्रत सुव्रतमूलं समनाकाऽनाविल साधुसुचीर्णम्।
वैर विरमणपर्यवसानं, सर्वसमुद्रमहोदधि तीर्थम् ॥ १ ॥

---

१ दोधक छन्दसा ग्रथितान्यमूनि पद्यानि।

तीर्थङ्करैः सुदेशितमार्गं, नरक तीर्यग् विवर्जितमार्गम् ।
सर्व पवित्र ( प्रवृति ) सुनिर्मितसारम, सिद्धि विमानाऽपक्षुद्वारम् ॥ २ ॥
देवनरेन्द्र नमंस्यितपूज्यम्, सर्वजगदुत्तम मङ्गलमार्गम् ।
दुर्द्धर्षं गुणनायकमेकम्, मोक्षपथस्याऽवतंसकभूतम् ॥ ३ ॥

येन शुद्धाऽऽचरितेन भवति सुब्राह्मणः सुश्रमणः सुसाधुः, सऋषिः समुनिः स संयतः स एवभिक्षुः, यः शुद्धं चरति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च रति-राग-दोष-मोह प्रवर्द्धन करं किमध्य ( मद्य ) प्रमाद-दोष-पार्श्वस्थ-शीलकरणम्, अभ्यङ्गनानि च तैलमज्जनानि ( मर्दनानि ) च, कक्ष-शीर्ष-कर-चरण-वदन-धावन-संवाहन-गात्र कर्म-परिमर्दनाऽनुलेपन-चूर्णवास धूपन-शरीर-परिमण्डन- वाकुशिक- हसित-भणित-नृत्य-गीत-वादित-नट-नर्तक-जल्ल- मल्ल- प्रेक्षण वेलंबका ( विदूषका ) नि, ये शृङ्गारगृहाश्च, अन्यानि चैवमादिकानि तपः संयम-ब्रह्मचर्य-घातोपघातकानि, अनुचरता ब्रह्मचर्यं वर्जनीयानि सर्वकालम् । भावयितव्यो भवत्यन्तरात्मा, एभिस्तपो-नियमशीलयोगैर्नित्यकालम् । केते ? ( तद्यथा ) अस्नानकम् अदन्तधावनम्, स्वेदमल्ल-जल्लधारणम् मौनव्रतकेशलोचश्च क्षमा-दमाऽचेलक-क्षुत्पिपासा लाघव-शीतोष्ण-काष्ठ-शय्या-भूमि निषद्या-परगृहप्रवेश-लाभालाभ-मानाऽपमान-निन्दन-दंश-मशक-स्पर्श-नियम-तपो-गुणविनयादिकैर्यथा तत् स्थिरतरं भवति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च अब्रह्मचर्य विरमण परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितं प्रेत्यभाविकम् आगमिष्यद्भद्रं शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःखपापानां व्युपशमनम् ।

अन्व०-"( तं च ) और ब्रह्मचर्य विषयक वह वचन इस प्रकार है-( पंच महव्वय सुव्वयमूलं ) पंच महाव्रत रूप सुव्रतों का जो मूल की तरह मूल है अथवा साधुओं के शुभ व्रत और अणुव्रतों का जो मूल है तथा हे सुव्रत ? ऐसा सम्बोधन मानकर भी अर्थ किया गया है ( समणमणाइलसाहुसु चिन्नं ) भाव पूर्वक शुद्ध स्वभाव वाले साधुओं से सम्यक् सेवन किया गया ( वेर विरमणपज्जवसाणं ) वैर की निवृति और अन्त करने वाला ( सव्व समुद्द-महोदधि-तित्थं ) सब समुद्रों में वड़े स्वयम्भुरमण समुद्र के समान दुस्तर तथा तैरने का उपाय होने से तीर्थ है ॥ १ ॥ ( तित्थकरेहि सुदेसियमग्गं ) तीर्थङ्करों से अच्छी तरह दिखाये गये मार्ग वाला ( नरय-तिरिच्छ-विवज्जियमग्गं ) नरक तथा तिर्यञ्च गति के मार्ग को बंद करने

वाला ( सव्व-पवित्ति-सुनिम्मियसारं ) सब पवित्र अनुष्ठानों को सार युक्त करने वाला ( सिद्धि विमाण अवंगुयदारं ) सिद्धि और वैमानिक गति के द्वार को खोलने वाला ॥ २ ॥ ( देव नरिंद नमंसियपूयं ) देव तथा नरेन्द्रों से नमस्कृत मनुष्य के लिये पूजनीय ( सव्वजगुत्तम-मंगलमग्गं ) जगत् के सब मङ्गलों का मार्ग या उनमें प्रधान है ( दुद्धरिसं ) दुर्द्धर्ष-किसी से पराभव नहीं पाने वाला, अथवा दुष्कर ( गुण नायगमेक्कं ) अद्वितीय गुणों का नायक ( मोक्ख पहस्स ) सम्यग् दर्शनादि मोक्ष मार्ग का ( वडिंसकभूयं ) शेखर भूत है ॥ ३ ॥ ( जेण सुद्ध चरिएण ) जिसके शुद्ध आसेवन करने से ( भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू ) सुब्राह्मण-सच्चा ब्राह्मण यथार्थ तपस्वी और निर्वाण साधक सच्चा साधु होता है तथा(जो सुद्धं चरति बंभचेरं) जो शुद्ध रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करता है। ( स इसी ) वह ऋषि यथावत् वस्तु द्रष्टा है ( स मुणी ) वह यथोक्त मुनि तथा ( स संजए ) वह संयत-संयम्वान और ( स एव भिक्खू ) वही भिक्षु है। अब ब्रह्मचर्य में त्यागने योग्य व्यवहारों को कहते हैं ( इमंच ) और इस ( रति-राग-दोस-मोह-पवड्ढणकरं ) रति-विषय राग-राग-स्नेह राग द्वेष और मोह को बढाने वाला ( किंमज्झ-पमाय-दोस-पासत्थ-सील-करणं ) निस्सार प्रमाद दोष और ज्ञानादि आचार से बहिर्भूत नकली साधुओं का सा व्यवहार करना (अब्भंगणाणि य) घृत आदि की मालिश और (तिल मज्जणाणि य) तेल लगाकर स्नान करना तथा (अभिक्खणं)बारम्बार ( कक्ख-सीस-कर-चरण-वदण-धोवण-संबाहण गायकम्म-परिमद्दणाणुलेवण-चुन्नवास-धूवण-सरीर परिमंडण-बाउसिक-हसिय-भणिय-नट्ट-गीय-वाइय-नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल-पेच्छण वेलंबक ) कांख-बगल, शिर, हाथ पांव और मुख को धोना, संबाहन-मर्दन करना, पैर आदि अङ्गों का चंपन आदि करना, सब ओर से देह को मलना, और विलेपन करना, चूर्ण वास-सुगन्धित द्रव्य से शरीर को सुवासित करना, अगर आदि से धूप देना, शरीर का मण्डन करना, चारित्र को रंग बिरंगे करने वाली नख केश आदि की रचना करना,हसित-हास, व विकार युक्त बोलना, नाट्य गीत और भेरी आदि वाद्य की ध्वनि, नट-नाटक करने वाले, नर्तक-नृत्य करने वाले, जल्ल-डोरी पर खेलने वाले तथा मल्ल-कुश्ती लडने वाले-इन सबको देखना, और विदूषक सम्बन्धी हास्य चेष्टाएं ( जाणि य ) और जो (सिंगारागाराणि य) शृङ्गार रसके घरकी तरह ( अन्नाणि य ) और अन्य इस प्रकार की वस्तुयें ( तव-संजम-बंभचेर घातोव

घातियाइं ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घात व उपघात को करने वाली याने तप आदि का आंशिक या सर्वथा नाश करने वाली हैं ( बंभचेरं अणुचर माणेणं ) ब्रह्मचर्य के आसेवन करने वाले को उपरोक्त बातें ( सव्वकालं ) सर्वदा ( वज्जेयव्वाइं ) वर्जन करने योग्य हैं। ( इमेहिं तव-नियम-सील-जोगेहिं ) इन आगे कहे जाने वाले तप नियम और शील के व्यापारों से ( निच्चकालं ) सदा ( अंतरप्पा ) अन्तः करण ( भावेयव्वो भवइ ) भावित करने योग्य होता है ( किंते ? ) वे व्यवहार कौनसे हैं ?

उत्तर--(अण्हाणक-अदंतधावण-सेय-मल्ल-जल्लधारणं ) स्नान नहीं करना, दन्त धावन नहीं करना, पसीना और मल को धारण करना (मूणवय-केस लोए य) और मौनव्रत व केश का लुञ्चन करना, ( खम-दम-अचेलग-खुप्पिवास-लाघव-सीतोसिण-कट्ठसेज्जा-भूमिनिसेज्जा-परघर पवेस-लद्धावलद्ध-माणावमाण-निंदण दंस मसग फास-नियम तव-गुण विणयमाइएहिं ) क्षमा, दम-इन्द्रियनिग्रह, अचेलक-अल्पवस्त्र रखना, या वस्त्र रहित होना, भूख, प्यास, उपधि से हल्कापन, ठंडी और गर्मी, काष्ठशय्या-पाट-आदि की शय्या, भूमि निषद्या-भूमि का आसन तथा पर घर में जाने पर कुछ मिलना या नहीं मिलना मान अपमान, निन्दा और डांस मच्छर आदि का कष्ट सहना, द्रव्य आदि के अभिग्रह रूप नियम, तप, मूल व्रत आदि गुण और विनय आदि से अन्तःकरण को भावित करना चाहिए ( जहा से थिर तरंग होइ बंभचेरं ) जैसे उस व्रती का ब्रह्मचर्य अत्यन्त स्थिर हो। (इमंच) और यह (अबंभचेर-विरमण-परिरक्खणट्ठयाए) अब्रह्म-मैथुन के निवृतरूप व्रत की रक्षा के लिये ( पावयणं ) प्रवचन ( भगवया ) भगवान महावीर ने ( सुकहियं ) अच्छी तरह कहा है 'जो कि' ( पेच्चाभाविकं ) परलोक में शुभ फलदायक ( आगमेसिभद्दं ) भविष्य में कल्याण का कारण ( सुद्धं ) शुद्ध ( नेयाउयं ) न्याययुक्त ( अकुडिलं ) कुटिलता रहित ( अणुत्तरं ) सर्व श्रेष्ठ और ( सव्वदुक्ख पावाण विउसवणं ) सब दुःख व पापों का उपशमन करने वाला है।

मूल-"तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थयस्स होंति अबंभचेर वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए, पढमं सयणासण-घर-दुवार-अंगण-आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण-पच्छवत्थुक-पसाहणक-ण्हाणिकावकासा अवकासा

जे य वेसियाणं, अच्छंति य जत्थ इत्थिकाओ, अभिक्खणं मोह-दोस-रति-राग वड्ढणीओ कहिंति य कहाओ बहुविहाओ, तेऽवि हु वज्जणिज्जा, इत्थि संसत्त-संकिलिट्ठा अन्नेवि य एवमादी अवकासा तेहु वज्जणिज्जा, जत्थ मणोविब्भमो वा, भंगो वा भंसणा ( भंसणो ) वा अट्टं रुद्दं च हुज्जझाणं तं तं वज्जेज्ज वज्जभीरू अणायतणं। अंत पंतवासी एवमसंसत्त-वास-वसही समितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरतमण-विरय-गामधम्मे जितें-दिए बंभचेर गुत्ते ॥ १ ॥

बितियं नारीजणस्स मज्झे न कहेयव्वा कहा, विचित्ता बिब्बोय-विलास-संपउत्ता हास-सिंगार लोइयकइव्व मोहजणणी, न आवाह-वि-वाह-वरकहाविव इत्थीणं वा सुभग, दुभग कहा, चउसट्ठिं च महिला गुणा, न वन्न-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्थ परिजणकहा ( व्व ) इत्थि-याणं अन्नावि य एवमादियाओ कहाओ सिंगार कलुणाओ तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाओ, अणुचरमाणेणं बंभचेरं न कहेयव्वा, न सुणे यव्वा, न चिंतेयव्वा। एवं इत्थी कह विरति समिति जोगेणं भावितो भवति अंतरप्पा आरत-मण-विरय गामधम्मे जितिंदिए बंभचेर गुत्ते ॥ २ ॥

ततीयं नारीण हसित भणितं चेट्ठिय विप्पेक्खित-गइ-विलास-कीलियं, विब्बोतिय-नट्ट-गीत-वातिय-सरीर संठाण-वन्न-कर-चरण-नयण-ला-वण्ण रूव-जोव्वण-पयोहराधर-वत्थालंकार-भूसणाणि य गुज्झोवका-

विवाह–चोल्लकेसु य तिथि सुजन्ने सु उस्सवेसु य सिंगारागार–चारु वेसाहिं हाव– भाव–पललिय–विक्खेव–विलास–सालिणीहिं अणुकूल पेम्मिकाहिं सद्धिं अणुभूया सयण–संपओगा, उदुसुह–वरकुसुम सुरभिचंदण सुगंधि-वर वास–धूव–सुह फरिस–वत्थ–भूसणगुणोववेया, रमणिज्जा उज्जगेय पउर–नड नट्टक(ग)–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिक–वेलंवग–कहग–पवग–लासग–आइक्खग–लंख–मंख–तूणइल्ल–तूंव वीणिय–तालायर–पकरणाणि य बहूणि महुर सर–गीत सुस्सराइं, अन्नाणि य एवमादियाणि–तव–संजम–बंभचेर–घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं न तातिं समणेण लब्भा दट्ठुं न कहेउं, नविसुमरिउं जे। एवं पुव्वरय–पुव्वकीलिय–विरति समिति–जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण–विरत–गामधम्मे जि इंदिए बंभचेर गुत्ते ॥ ४ ॥

पंचमगं आहार–पणीय–निद्ध भोयण–विवज्जते, संजते सुसाहू, ववगय–खीर–दहि– सप्पि–नव नीय–तेल्ल–गुल–खंड –मच्छंडिक– महु–मज्ज–मंस–खज्जक–विगति–परिचत्तकयाहारे ण दप्पणं, न, वहुसो, न नितिकं, न सायसूपाहिकं, न खद्धं तहा भोत्तव्वं जह से जाया माता य भवति। नय भवति विब्भमो न भंसणा य धम्मस्स। एवं पणीयाहार विरति समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण विरत गाम धम्मे जिइंदिए बंभचेर गुत्ते ५। एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सु–पणिहितं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण–वयण–कायपरिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एसो जोगो णेयव्वो, धितिमता (या) मतिमता(या)अणासवो, अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्व जिणमणुन्नातो, एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालितं सोहितं तीरितं किट्टितं आणाए अणुपालियं भवति, एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं

सिद्ध वर सासणमिणं आघवियं सुदेसितं पसत्थं चउत्थं संवरदारं समत्तं त्तिबेमि । सू० २ । २७ ।

छाया–तस्यैता पञ्चभावनाश्चतुर्थस्य भवन्ति, अब्रह्मचर्य विरमण परिरक्षणार्थाय । प्रथमं–शयनाऽऽसन–गृहद्वाराऽङ्गणाऽऽकाश– गवाक्ष– शालाऽभिलोकन पश्चाद्वास्तुक–प्रसाधक–स्नातिकाऽवकाशा–ऽवकाशा, ये च वेश्यानामासते च यत्र स्त्रियः । अभीक्ष्णं मोह दोष रति रागवर्द्धिन्यः कथयन्ति च कथा बहुविधाः, तेऽपिहि वर्जनीयाः स्त्री संसक्त संक्लिष्टाः अन्येऽपि चैवमादयोऽवकाशास्ते हि वर्जनीयाः । यत्र मनो–विभ्रमो वा भङ्गो वा भ्रंशको वा आर्त्त रौद्रञ्च भवेद्ध्यानं तत्तद्वर्जयेत्- वर्ज्य भीरुः अनायतनमन्त प्रान्तवासी । एवमसंसक्त वास वसति समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरतमना विरतग्रामधर्मोजितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयं–नारी जनस्य मध्ये न कथनीया कथा, विचित्रा बिब्बोक विलास–सम्प्रयुक्ता हास्यश्रृङ्गार लौकिककथेव मोहजननी, न आवाह–विवाह–वरकथेव स्त्रीणां वा सुभगदुर्भगकथा, चतुःषष्टिश्च महिला गुणा, न वर्ण–देश–जाति–कुल–रूप–नाम नेपथ्य परिजनकथाः स्त्रीणामन्याअपि च एवमादयः कथाः श्रृङ्गार करुणाः तपः संयम–ब्रह्मचर्य घातोपघातिका अनुचरता ब्रह्मचर्यं न कथनीया, न श्रोतव्या न चिन्तयितव्याः । एवं स्त्री कथा–विरति–समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरत मना विरतग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ २ ॥

तृतीयं–नारीणां हसितभणितं चेष्टित–विप्रेक्षित–गतिविलासक्रीडितम्, बिब्बोकितनृत्यगीत–वादिक–शरीर संस्थान–वर्ण–कर–चरण–नयन–लावण्य–रूप–यौवन पयोधराऽधर वस्त्रालङ्कार भूषणानि च गुह्यावकाशिकानि अन्यानि च एवमादिकानि तपः संयमब्रह्मचर्य घातोपघातिकानि अनुचरता ब्रह्मचर्यं न चक्षुषा न मनसा न वचसा प्रार्थयितव्यानि पापकर्माणि । एवं स्त्रीरूप विरति समितियोगेन भावितो भवति अन्तरात्मा आर्तमनाविरत ग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थं–पूर्वरत–पूर्वक्रीडित–पूर्वसंग्रन्थ–ग्रन्थसंस्तुताः, ये ते–आवाह–विवाह–चौलकेषु च तिथिषु यज्ञेषु उत्सवेषुच श्रृङ्गाराऽऽगार चारुवेषाभिहावभाव-प्रललित-विक्षेप विलास शालिनीभिः-अनुकूलप्रेमिकाभिः सार्द्धमनुभूताः शयनसम्प्रयोगा ऋतुसुखवर (कर) कुसुम-सुरभिचन्दन–सुगन्धिवर वास-धूप सुखस्पर्श-वस्त्र–भूषण गुणोपपेता रमणीया आतोद्यगेयप्रचुर ( उद्गेय प्रचुर ) नट–नर्तक–जल्ल–मल्ल–मौष्टिक–विडम्बक

कथक-प्लवक-ला ( रा ) सकाऽऽख्यापक-लंख-मङ्ख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-ताला-चर-प्रकरणानि च बहूनि मधुरस्वर गीत सुस्वराणि-अन्यानिचैवमादिकानि तपः संयम ब्रह्मचर्य-घातोपघातिकानि-अनुचरता ब्रह्मचर्यं न तानि श्रमणेन लभ्यानि द्रष्टुं, न कथयितुं, नापिस्मतुंम् । एवं पूर्वरत-पूर्वक्रीडित-विरति समितियोगेन भावितो भवत्यन्तराऽऽत्मा आरतमना विरतग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ ४ ॥

पञ्चमकम्--आहार पानीय-स्निग्ध भोजनविवर्जकः संयतः सुसाधुर्व्यपगत क्षीर-दधि-सर्पि-नवनीत-तैल-गुड़-खण्ड-मत्स्यण्डिक- मधु-मद्य -मांस-खाद्यक-विकृति परित्यक्त कृताऽऽहारो न दर्पणं , न बहुशो, न नैत्यिकं, न शाक सूपाधिकं, न प्रभूतं । तथा भोक्तव्यम् , यथा तस्य यात्रामात्रायभवति । न च भवति विभ्रमो न भ्रंशना च धर्मस्य । एवं प्रणीताऽऽहार-विरति समिति-योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरतमना विरतग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्तः ॥ ५ ॥

एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यग् संवृतं भवति सुप्रणिहितम् । एतैःपञ्चभिः कारणै र्मनोवचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैष योगो नेतव्यो धृतिमता मतिमताऽना स्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी असंक्लिष्टः शुद्धः सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं चतुर्थं संवरद्वारं स्पृष्टं पालितं शोधितं तीर्णं कीर्तितम् आज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्तं प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाख्यापितं सुदेशितं प्रशस्तम् । चतुर्थं संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥

अन्व०-" ( तस्स ) उस ( चउत्थयस्स ) चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत की ( इमा ) ये निम्नोक्त ( पंचभावणाओ ) पांच भावनायें ( अबंभचेर-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ) अब्रह्मचर्य के निवृत्तिरूप व्रत की रक्षा के लिये ( होंति ) होती हैं।

( पढमं ) प्रथम भावना-स्त्री युक्त आश्रय वर्जन रूप जैसे—( सयणासण-घर-दुवार- अंगण- आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण- पच्छवत्थुक-पसाहणकण्हाणिकावकासा-अवकासा ) शय्या, आसन-विस्तर, गृह द्वार, आंगन-घर का चौक आकाश ऊपर से खुला स्थान, गवाक्ष-जाली झरोखा, भांड आदि रखने की शाला, अभिलोकन-बैठकर देखने का ऊंचा स्थान, पश्चाद् गृह-पीछे का घर, प्रसाधन-शरीर के मंडन और स्नान करने के स्थान, स्त्री संसक्त त्यागने योग्य है ( जे य ) और जो ( वेसियाणं अवकासा ) वेश्याओं के आश्रय स्थान हैं ( अच्छंति य जत्थ इत्थिकाओ ) और जहां स्त्रियां बैठती हैं ( अभिक्खणं ) और बार बार ( मोह दोस

रति राग और वड्ढणीओ ) मोह-अज्ञान द्वेष रति-कामराग और स्नेह राग को बढाने वाली ( बहुविहाओ कहाओ कहिंति ) बहुत प्रकार की कथाओं को कहती हैं ( ते विहुवज्जणिज्जा ) वे भी पूर्वोक्त शयनादि त्यागने योग्य हैं ( इत्थि संसत्त-संकिलिट्ठा ) स्त्री सम्बन्ध से व्याप्त-संक्लिष्ट ( अन्नेवि य ) और दूसरे भी जो ( अवकासा ) स्थान ( एवमादी ) इस तरह के हैं. (तेहुवज्जणिज्जा ) वे इस प्रकार के स्थान वर्जनीय है ( जत्थ ) जहां ( मणो विब्भमो वा ) मन की भ्रान्ति अस्थिरता हो या ( भंगोवा ) ब्रह्मचर्य का भंग, अथवा ( भंसगोवा ) कुछ अंश में व्रत का भंग हो तथा (अट्टं रूद्दं च) आर्त और रौद्र (हुज्जझाणं) ध्यान हो (तं तं वज्जेज्जवज्ज भीरू अणायतनं) उस उस अनायतन-अयोग्य स्थान का पाप भीरु त्याग करे ( अंतपंत वासी ) साधु इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला है। ( एवमसंसत्त वास वसही समिति जोगेण ) इस प्रकार स्त्रियों के सम्बन्ध रहित निवास वाली वसति के समिति-योग से ( भावितो ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला आरत मण-विरय गाम धम्मे ) ब्रह्मचर्य में मर्यादा से आसक्त मन वाला तथा विषय ग्रहण रूप इन्द्रिय स्वभाव से निवृत्ति वाला ( जितेंदिए ) जितेन्द्रिय ( बंभचेर गुत्तो ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवति ) होता है ॥ १ ॥

( वितियं ) दूसरी भावना-स्त्री कथा विवर्जन रूप जैसे—"( नारी जणस्स ) स्त्री जनों के (मज्झे) बीच में ( विचित्ता कहा न कहे यव्वा ) विचित्र प्रकार की कथा नहीं कहनी चाहिए, कैसी कथा ? ( विब्बोय विलास-संपउत्ता ) विब्बोक-स्त्रियों की कामुक चेष्टा, विलास-स्मित कटाक्ष आदिके वर्णनोंसे भरी हुई (हाससिंगार-लोइय-कहव्व) हास्य व श्रृंगार रस प्रधान लौकिक कथा की तरह ( मोहजणणी ) मोह को उत्पन्न करने वाली ( न आवाह विवाह वर कहा वि व ) द्विरागमन-गौना व विवाह की कथा भी नहीं कहनी चाहिए ( इत्थीणं वा सुभग दुभग कहा ) अथवा स्त्रियों के सौभाग्य दुर्भाग्य की कथा भी तथा ( चउसट्ठिं च महिला गुणा ) स्त्रियों की चौंसठ कलायें और ( न वन्न-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्थ-परिजण कहा ) स्त्रियों के वर्ण-रंगरूप, देश, जाति, कुल, रूप-सौंदर्य-पद्मिनी चित्रणी आदि भेद, वेष और परिजनों की कथा तथा ( अन्नावि य ) अन्य भी इस प्रकार की जो ( कहाओ सिंगार कलुणाओ ) कथायें श्रृङ्गार मार्दव से युक्त हो तथा ( तव संजम-बंभचेर-घातोव घातियाओ ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात उपघात करने वाली हैं ( बंभचेरं

अणुचरमाणेण ) ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले साधुओं को वैसी कथायें ( न कहेयव्वा ) नहीं कहनी चाहिए ( न सुणेयव्वा ) न सुननी चाहिए ( न चिंतेयव्वा ) न चिन्तन करनी चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( इत्थी कह विरति-समिति जोगेण ) स्त्री कथा से विरतिरूप समिति के योग से ( भावितो अंतरप्पा ) युक्त अन्तःकरण वाला ( आरतमण विरतगामधम्मे ) ब्रह्मचर्य में लीन मन वाला, और स्त्री सम्भोग रूप इन्द्रिय विकार से दूर रहने वाला ( जिर्तिदिए ) जितेन्द्रिय ( बंभचेरगुत्ते ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवइ ) होता है ॥ २ ॥

( ततीयं ) तीसरी भावना-स्त्रीरूप दर्शन के निषेधरूप है, जैसे-( नारीण ) स्त्रियों के ( हसितभणियं ) हास्य और विकारयुक्त भाषण को तथा ( चेट्ठिय-विप्पेक्खित-गइ-विलास-कीलियं ) हाथ आदि की चेष्टा, विप्रेक्षण- कटाक्षयुक्त देखना, गति-गज हंस के समान चलना तथा विलास और क्रीडा को ( विब्बोतिय-नट्ट-गीत-वातिय-शरीर संठाण-वण्ण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-पयोहराधर-वत्थालंकार-भूसणाणि य ) अनुकूल वस्तु मिलने पर अभिमान वश किया गया तिरस्कार भाव, नाट्य, नृत्य, गीत-गाना, वीणा आदि बजाना, शरीर का आकार और गौर श्याम आदि वर्ण हाथ पैर व आंखों का लावण्य-मनोहरपन, रूप, यौवन स्तन, अधर-नीचे के ओष्ठ, वस्त्र अलङ्कार और सौभाग्य चिन्ह भूत तिलक आदि भूषण इन सबको ( य ) और ( गुज्झोवकासियाइं ) गुह्य प्रदेशों को ( अन्नाणि य और अन्य प्रकार के स्त्री सम्बन्धी चेष्टा व अङ्गोपाङ्ग आदि जो ( तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाइं ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घातोपघात करने वाले हैं 'ऐसे विकारी भावों को' ( बंभचेरं अणुचरमाणेणं ) ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों को चाहिए कि ( न चक्खुसा न मनसा न वयसा) आंखों से न देखें, मन से न सोचें, और वचनों से न बोलें और (न पत्थेयव्वाइं पावकम्माइं) पाप युक्त कर्मों की प्रार्थना-इच्छा भी नहीं करें ( एवं ) इस प्रकार ( इत्थीरूव विरति समिति जोगेण ) स्त्रियों के रूप दर्शन की विरति-विरमण रूप समिति के योग से ( भावितो ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला साधु ( आरत मण विरत गाम धम्मे ) ब्रह्मचर्य में लीन मन वाला और स्त्री संभोग से निवृति वाला ( जिर्तिदिए ) जितेन्द्रिय (बंभ चेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवति ) होता है ॥ ३ ॥

( चउत्थं ) चौथी भावना-कामोत्तेजक वस्तुओं के स्मरण दर्शन आदि का त्याग

रूप, जैसे—( पुव्वरय-पुव्वकीलिय पुव्वसंगंथ-गंथसंथुया ) पहले के विषय भोग पूर्व क्रीडित-अव्रती दशा के जूआ आदि खेल तथा पूर्व सम्बन्ध-गृहस्थ दशा के श्वशुर कुल सम्बन्धी शाले आदि और उनसे सम्बन्धित शाले की स्त्री आदि तथा पूर्व के परिचित ( जे ते ) जो ये लोग ( आवाह-विवाह-चोल्लकेसु ) द्विरागमन-गौना, विवाह, चूड़ा कर्म-प्रथम मुण्डन अर्थात् बालकों के शिखा धारण प्रसङ्ग में ( य ) और ( तिथिसु जन्नेसु उस्सवेसु य ) पर्वतिथिओं में, यज्ञों-नागादि पूजाओं में व उत्सवों में ( सिंगारागार-चारु वेसाहिं ) शृङ्गार के घर की तरह सुन्दर वेश वाली ( हाव भाव-पललिय-विक्खेव-विलास सालिणीहिं ) हाव-मुख की चेष्टा, भाव-चित्त के अभिप्राय, प्रललित-लालित्य युक्त कटाक्ष विक्षेप और विलास स्थान आसन व नेत्र आदि की क्रिया का प्रयोग विशेष इन सब से शोभित होने वाली ( अणुकूलपेम्मिकाहिं ) अनुकूल प्रेम वाली ऐसी स्त्रियों के ( सद्धिं ) साथ ( अणुभूया सयण संपओगा ) अनुभव किये हुए जो शयन आदि विविध काम शास्त्रोक्त प्रयोग ( उउसुहवर कुसुम सुरभिचंदण सुगंधिवर वास-धूव-सुह फरिस-वत्थ-भूसण गुणोववेया ) ऋतु के अनुसार सुख वाले उत्तम फूलों की सुवास तथा श्रेष्ठ चन्दन की सुगन्धि, चूर्ण किये हुए अच्छे वासद्रव्य, धूप, सुखद स्पर्श वाले वस्त्र और भूषण इनके गुणों से युक्त ( रमणिज्ज ) रमणीय ( आउज्ज-गेय-पउर-नड-नट्टक जल्ल-मल्ल-मुट्ठिक-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब वीणिय-तालायर-पकरणाणिय ) आतोद्य-वाद्य ध्वनि, गान, बहुत से नट तथा नर्तक-नाचने वाले, जल्ल-डोरी पर खेलने वाले, मल्ल-कुश्ती करने वाले व मौष्टिक मल्ल आदि, विडम्बक-विदूषक-विविध-परिहास कथा करने वाले, प्लवक-उछलने वाले, रासगाने वाले, शुभाशुभ कहने वाले, लंख-बड़े बांसपर खेलने वाले, मंख-चित्रमय पाटिया लेकर फिरने वाले, भिक्षुक-तूण नामक वाद्य बजाने वाले, वीणा-या तम्बूरा बजाने वाले और तालचर इन सबकी क्रियाएं ( य ) और ( बहूणि महुर-सर-गीत-सुस्सराइं ) बहुतसे मधुर ध्वनि वाले गायकों के गीत और सुन्दर स्वर ( अन्नाणि य ) और अन्य इस प्रकार के ( एवमादियाणि ) इत्यादि ( तव संजम-बंभचेर-घातोवघातियाइं ) तप संयम तथा ब्रह्मचर्य के घात करने वाले कार्य ( अणुचरमाणेणं बंभचेरं ) ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले ( समणेणं ) साधुको ( न तातिलब्भा दट्ठुं ) कामोद्दीपन करने वाले वे सब पदार्थ देखने योग्य नहीं हैं

( न वइउं ) कहने के योग्य भी नहीं हैं ( न वि सुमरिउं ) स्मरण करने के योग्य भी नहीं हैं ( एवं ) इस प्रकार ( पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति-समिति जोगेण ) पूर्वरत, पूर्वक्रीडित-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से ( भावितो ) युक्त अंत रप्पा ) अन्तःकरण वाला ( आरयमण-विरतगामधम्मे ) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त ( जिइंदिए ) जितेन्द्रिय,( बंभचेर गुत्ते ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवइ ) होता है ॥ ४ ॥

( पंचमगं पांचवीं भावना-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे—( आहारपणीय-णिद्ध-भोयण विवज्जते ) प्रणीत भोजन-सरस आहार और स्निग्ध-चिकने भोजन का परिहार करने वाला ( संजते ) संयमी ( सुसाहू ) सुसाधु ( ववगय-खीर-दहि-सप्पि-नवनीय-तेल्ल- गुल-खंड-मच्छंडिक- महुमज्ज-मंस- खज्जक-विगतिपरिचत्त कयाहारे ) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड, मच्छंडी-मीसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्यक-पक्वान और विगई के भोजन रहित आहार करने वाला ( ण दप्पणं ) दर्प कारक आहार नहीं 'खावे' ( न बहुसो न नितिकं ) दिन में बहुत बार नहीं 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', ( न साय सूपाहिकं ) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता वाला ( न खद्धं ) और ज्यादा भी नहीं (तहा भोत्तव्वं) वैसे खाना चाहिए ( जहा ) जैसे ( से ) उस ब्रह्मचारी के ( जाया माता य ) व्रत निर्वाह मात्र के लिये ( भवति ) होवे । ऐसा आहार सेवन करने से ( न य भवति विब्भमो ) विभ्रम-मन की चंचलता नहीं होती ( नय भंसणा धम्मस्स ) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नहीं होता ( एवं ) इस प्रकार ( पणीयाहार-विरति-समिति जोगेण भावितो ) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला ( आरयमण-विरत-गाम धम्मे ) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त अतएव ( जिइंदिए ) जितेन्द्रिय व ( बंभचेरगुत्ते ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवति ) होता है ॥ ५ ॥

( एवमिणं संवरस्स दारं ) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार ( सम्मं संवरियं ) अच्छी तरह संवरण किया गया ( सुप्पणिहियं ) सुरक्षित ( होइ ) होता है ( इमेहिं पंचहि वि कारणेहिं मण वयण-काय परिरक्खिएहिं ) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्वोक्त पांच भावना रूप पांच कारणों से ( णिच्चं आमरणं तं ) सदा मरण पर्यन्त ( एसो जोगो ) यह योग-व्यवहार ( धितिमता मतिमता )

धैर्यवान् व बुद्धिमान् साधुको ( णेयव्वो ) लेचलना चाहिये। जो ( अणासवो ) आस्रव रहित ( अकलुसो ) मलिनता रहित ( अच्छिद्दो ) भावछिद्र रहित ( अपरिसावी ) कर्म का आस्रवण नहीं करने वाला ( असंकिलिट्ठो ) संक्लेश रहित ( सुद्धो ) शुद्ध और ( सव्वजिणमणुन्नातो ) सब तीर्थङ्करों से अनुज्ञात है ( एवं च उत्थं संवरदारं ) इस प्रकार चौथा संवरद्वार ( फासियं पालियं ) देह से स्पर्श किया गया पालन किया गया ( सोहितं तीरितं ) अतिचार-दोष-से शुद्ध किया हुआ और पूर्ण किया गया ( किट्टितं ) वचन से कीर्तित, ( आणाए अणुपालियं ) तीर्थङ्करों की आज्ञा के अनुसार अनुपालित ( भवति ) होता है ( एवं नायमुणिणा भगवया ) इस प्रकार ज्ञातमुनि भगवान् महावीर ने ( पन्नवियं कहा है ( परूवियं पसिद्धं ) युक्ति पूर्वक समझाया है प्रसिद्ध है ( सिद्धंवरसासणमिणं ) भवस्थित सिद्ध अर्हन्तों का यह उत्तम शासन है ( आघवियं ) देव आदि के मानपात्र ( सुदेसितं पसत्थं ) अच्छी तरह तीर्थङ्करों से कहा गया और प्रशस्त है ( चउत्थं संवरदारं समत्तं ति बेमि ) चतुर्थ संवरद्वार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूं ( सुधर्मा ) । २ । २७ ।।

भाव-ब्रह्मचर्य का महत्त्व इस प्रकार है-"यह पञ्चमहाव्रतों का मूल है। निर्मल चित्त वाले साधुओं से भावपूर्वक सेवन किया हुआ है। वैर विरोध का अन्त करने वाला और बड़े समुद्र की तरह दुस्तर है। तीर्थङ्करों ने इसका मार्ग अच्छी तरह दिखाया है। नरक तिर्यञ्च आदि दुर्गति से बचाने वाला, सब पवित्र अनुष्ठानों का सार और सिद्धिगति व वैमानिक गति के द्वार खोलने वाला है। देवेन्द्र और नरेन्द्रों से नमस्कार पाने योग्य, जगत् के सब मङ्गलों में प्रधान और दुर्द्धर्ष है। शम दम आदि गुणों का अद्वितीय नायक एवं मोक्षमार्ग का भूषण है। ३। इसके शुद्ध आचरण करने से व्रती यथार्थ ब्राह्मण, श्रमण और सुसाधु होता है। ऋषि, मुनि, संयमी और भिक्षु वही है जो शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करता है। ब्रह्मचर्य की साधना में निम्न कार्य वर्जनीय है। जैसे-काम राग आदि बढाने वाला निस्सार प्रमाद, तथा संयम को शिथिल करने वाले सदोष व्यवहार निषिद्ध है। पीठी, तैलमर्दन, और हाथ पैर मुंह व शिर आदि को बार बार धोना, मर्दन करना, अङ्गों को दबाना, विलेपन करना, सुगन्धिचूर्ण से शरीर को सुवासित करना, और धूप देना वर्ज्य है। शरीर की सजावट, हास्य, विकारयुक्त वचन, और नृत्य गीत वाद्य आदि

जो इन्द्रियपोषक प्रसङ्ग हैं और अन्य भी ऐसे शृङ्गार रसके घरके समान तप संयम और ब्रह्मचर्य का घात करने वाले हैं ब्रह्मचारिओं को उन सबों का त्याग करना चाहिए। नीचे के इन तप नियमादि योगों से सदा आत्मा को युक्त रखना चाहिए। जैसे-१ स्नान व दन्त मंजन नहीं करना, स्वेद आदि को धारण करना, २ मौनव्रत और ३ केश का लुञ्चन करना, ४ वस्त्र के अभाव में या उनकी अल्पता में तथा भूख, प्यास, ठंढी गर्मी में सहिष्णुता व जितेन्द्रिय होना ५ काष्ठशय्या, भूमिशय्या। ६ भिक्षा आदि के हेतु घरों में जाने पर लाभ अलाभ या मान अपमान आदि कुछ भी हो तथा डांश मच्छर आदि का प्रतिकूल स्पर्श सहन करना चाहिये। और तप नियम विनय आदि गुणों से आत्मा को पवित्र करना चाहिए। इस प्रकार उसका ब्रह्मचर्य स्थिर हो जाता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये प्रभु महावीर ने यह अच्छा प्रवचन कहा है, जो परलोक में सुखदायी यावत् सब दुःख और पापों का शमनकरने वाला है। इस चतुर्थ व्रत की रक्षा के लिये पांच भावनायें होती हैं-जैसे-१ स्त्री सम्बन्ध रहित वसति का सेवन करे। स्त्री सम्बन्ध से संक्लेश युक्त शय्या, आसन, और घर द्वार आदि सब स्थान और जो वेश्याओं के स्थान हैं तथा जहां स्त्रियां रहती और मोह राग आदि दुर्भाव बढाने वाली अनेक प्रकार की कथायें बारंबार कहती हैं, ऐसे ही स्त्रियों के विशेष सम्बन्ध वाले अन्य स्थान भी वर्जनीय हैं। जहां मनकी स्थिरता या व्रत का भङ्ग हो, अथवा इष्ट वस्तु मिलाने और अनिष्ट निवारण की चिन्तारूप आर्त ध्यान व रौद्रध्यान हो। साधारण या इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला पाप भीरु साधु पूर्वोक्त स्थानों का त्याग करे।

२-स्त्री कथा त्यागरूप दूसरी भावना-व्रतों को स्त्रियों के बीच विचित्र प्रकार की कथा नहीं करनी चाहिए। जो कथा हास्य और शृङ्गाररस प्रधान लौकिक कथा की तरह बिब्बोक विलासयुक्त हो। आवाह और विवाह कथा की तरह मोह उत्पन्न करने वाली, तथा स्त्रियों के अच्छे बुरे भाग्य का वर्णन करने वाली हो और स्त्रियों की चौसठ कलाओं के परिचयरूप या उनके रङ्ग रूप देश जाति और वेश आदि के वर्णन करने वाली हों। ऐसी अन्य भी जो शृङ्गाररस से भरी हुई और संयम की घातक हैं ब्रह्मचारी को वैसी कथायें न कहनी चाहिए, और न श्रवण व चिन्तन ही करना चाहिए।

३-रूप दर्शन विरति रूप तीसरी भावना-स्त्रियों का हंसना, विकार युक्त बोलना

चेष्टा, कटाक्ष आदि क्रियायें और शरीर के अङ्गोपाङ्ग व आकार तथा वस्त्रालंकार आदि वेष भूषा और गोप्य अंग ऐसे अन्य भी ब्रह्मचारी को नहीं देखना चाहिए, न मन में इनका विचार करना चाहिए और न इन निन्दित कार्यों की प्रार्थना ही करनी चाहिए। क्योंकि इनके दर्शन स्मरण तप संयम के घातक हैं।

४–पूर्व क्रीडित भोग आदिके स्मरणका त्यागरूप चौथी भावना-पूर्वजीवन की रति क्रीडा और पूर्व के जो विविध सम्बन्धी हैं तथा विवाह आदि विविध प्रसङ्गों पर सुन्दरी और प्रेमवती स्त्रियों के साथ जो संभोग आदि अनुभव किये हैं। ऋतु के अनुकूल सुखद उत्तम फूल आदि सुगन्धि और स्पर्श आदि अन्य गुण युक्त, वाद्य आदि के कई रमणीय साधन और गवैयों के मधुर गीत तथा ऐसे अन्य प्रसङ्ग जो तप संयम के घातक हैं, ब्रह्मचारी को उनका वर्णन करना, देखना और स्मरण करना योग्य नहीं है।

५–प्रणीत भोजन त्याग रूप पांचवीं भावना–संयमी सुसाधु सरस एवं स्निग्ध भोजन का त्यागी होता है। जो दूध दही घी आदि विकृति कारक पदार्थों का आहार नहीं करने वाला है। भोजन के विशेष नियम–काम वर्द्धक आहारनहीं करना १ एकदिन में वहुतवार नहीं खाना २ प्रतिदिन लगातार नहीं खाना ३, शाक व दाल की अधिकता वाला भोजन भी नहीं करना, ४ मर्यादा से जादा भी भोजन नहीं करना ५

सारांश–इस प्रकार खाना चाहिए जिससे व्रतीकी संयम यात्रा निर्बाध चलती रहे। ऐसा करने से मनकी अस्थिरता और व्रतका भङ्ग–नहीं होता। इस प्रकार प्रणीताहार विरति से युक्त अन्तःकरण वाला साधु ब्रह्मचर्य में लीन तथा मैथुन से निवृत्त होता है। अतएव जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य गुप्त रहता है। ५। इस प्रकार संवर का यह चतुर्थद्वार सम्यक संवरण किया हुआ सुरक्षित रहता है। मन, वाणी और कायसे सुरक्षित इन पांच कारणों से सदा मरण पर्यन्त यह योग धीर बुद्धिमान् को निभाना चाहिए। यह आस्रव रहित यावत् सवतीर्थङ्करों से अनुज्ञात है। इस प्रकार चौथा संवर द्वार स्पर्शन किया गया यावत् तीर्थङ्करों की आज्ञासे पालित होता है। इस प्रकार ज्ञात मुनि प्रभुमहावीर ने इसे कहा है। यह अर्हन्तों का शासन यावत् उत्तम है॥ चौथा संवर द्वार पूर्ण हुआ।

# पञ्चम संवरद्वारम्

सम्बन्ध-पूर्व अध्ययनमें मैथुन विरमण रूप चतुर्थव्रतका वर्णन किया। यह परिग्रह से निवृत्त होने पर ही सुलभ होता है। इसलिये अब सूत्र क्रमसे सम्बन्धित अपरिग्रह व्रतका इस अध्ययनमें वर्णन करते हैं। उसका पहला सूत्र निम्न लिखित है-,,

मूल-"जंबू! अपरिग्गह संवुडे य समणे आरंभ परिग्गहातो विरते, विरते कोहमाण माया लोभा। एगे असंजमे, दो चेव राग दोसा, तिन्नि य दंडगारवाय गुत्तीओ, तिन्नि, तिन्नि य विराहणाओ, चत्तारि कसाया, झाण-सन्ना-विकहा-तहा य हुंति चउरो,। पंच य किरियाओ, समिति-इंदिय-महव्वयाइंच। छजीव निकाया। छच्च लेसाओ, सत्त भया, अट्ठ य मया, नव चेव य बंभचेर य गुत्ती। दसप्पकारे य समण धम्मे। एकारस य उवासकाणं,। बारस य भिक्खु पडिमा। किरियठाणा १३, य भूयगामा, १४, परमा धम्मिया १५, गाहासोलस या असंजम १७, अबंभ-१८, णाय-१९, असमाहिठाणा, २०, सबला, २१, परिसहा, २२, सूयगड २३, उज्झयण-देव-२४, भावण २५, उद्देस-२६, गुण-२७, पकप्प-२८, पावसुत-२९, मोहणिज्जे, ३०, सिद्धातिगुणा ३१, य, जोगसंगहे, ३२, तित्तीसा ३३, आसातणा,। सुरिंदा आदि एक्कातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्ढिए (वुड्ढी) तीसाओ जाव उ भवे, तिकाहिका विरती पणिहीसु, अविरतीसु य एवमादिसु बहूसु ठाणेसु जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेसु अवट्ठि एसु संकं कंखं निराकरेत्ता सद्दहते, सासणं भगवतो अणियाणे अगारवे अलुद्धे अमूढ मण वयण काय गुत्ते॥ सूत्र १।२८॥

छाया-"हे जम्बूः ! अपरिग्रहसंवृतश्च श्रमण आरम्भपरिग्रहाद्विरतो, विरतः क्रोध मान माया लोभात् । एकोऽसंयमः, द्वौ च रागद्वेषौ, त्रीणि च दण्ड-गौरवाणि । तिस्रो गुप्तयः, तिस्रश्च विराधनाः । चत्वारः कषायाः, ध्यान-संज्ञा-विकथास्तथा भवन्ति चत्वारः । पञ्च च क्रियाः समितीन्द्रिय-महाव्रतानि च । षड् जीवनिकायाः षड् लेश्याः । सप्तभयानि, अष्टौ च मदाः नव चैव ब्रह्मगुप्तयः । दशप्रकाराश्च श्रमण धर्माः । एकादश चोपासकानाम् । द्वादश च भिक्षुप्रतिमाः । क्रियास्थानानि च । भूतग्रामाः, परमाधार्मिकाः, गाथा षोडशकानि । असंयमाऽब्रह्म-ज्ञाताऽसमाधि-स्थानानि । शबलाः परीषहाः सूत्रकृताऽध्ययनानि । देव-भावनो-द्देश-गुण-प्रकल्प-पापश्रुत-मोहनीयानि । सिद्धातिगुणाः च योग संग्रहाः । त्रयस्त्रिंशदाशातनाः । सुरेन्द्रादिकाः एकादिकां कृत्वा एकोत्तरिकया वृद्धया त्रिंशद्यावद् भवेत् त्रिकाऽधिका । विरति प्रणिधिषु अविरतिसु चैवमादिकेषु, बहुषु स्थानेषु जिनप्रशस्तेषु अवितथेषु शाश्वतभावेषु अवस्थितेषु शङ्कांकांक्षां निराकृत्य श्रद्धत्ते, शासनं भगवतोऽनिदानोऽगौरवोऽलुब्धोऽमूढो मनोवचन कायगुप्तः ॥ सू० १ ॥ २८ ॥

अन्व०-"( जंबू ) हे जम्बू ( अपरिग्गह संवुडे ) मूर्च्छा रहित और इन्द्रिय व कषाय के संवरण वाला, फिर ब्रह्मचर्य आदि गुण युक्त तथा ( आरंभ-परिग्गहातो ) आरम्भ-हिंसा व बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह से ( विरते ) अलग है ( समणे विरते कोह माण माया लोभा ) और जो साधु क्रोध मान माया एवं लोभ से निवृत्त है । ( एगे असंजमे ) अविरति रूप असंयम एक है ( दो चेव राग दोसा ) और राग द्वेष रूप दो ही बन्धन हैं ( तिन्नि य दंड गारवा ) और तीन दंड और तीन गारव हैं ( य ) और ( गुत्तीओ तिन्नि ) तीन गुप्तियाँ ( तिन्नि य विराहणाओ ) और तीन विराधनायें है ( चत्तारि कसाया ) चार कषाय-क्रोध आदि ( झाण-सन्ना ) ध्यान, संज्ञा ( विकहा तहा य हुंति चउरो ) और ऐसी ही विकथायें चार चार हैं ( पंच य किरियाओ ) कायिकी आदि पांच क्रियाएं ( समिति-इंदिय-महव्वयाइं ) और समितियां, इन्द्रियं व महाव्रत भी पांच ही हैं ( च ) और ( छज्जीवनिकाया ) पृथ्वी काय आदि जीव निकाय छः हैं ( छच्च लेस्साओ ) लेश्यायें भी छः हैं ( सत्त भया ) सात भय ( अट्ठ य मया ) और आठ मद स्थान ( नव चेव य बंभचेर य गुत्ती ) फिर नव ही ब्रह्मचर्यव्रत की गुप्तियां हैं ( दसप्पकारे य समणधम्मे ) और दश प्रकार का श्रमणधर्म ( एक्कारस य उवासकाणं ) फिर इग्यारह श्रावकों की पडिमा

और ( बारस य भिक्खुपडिमा ) बारह साधुकी पडिमा–अभिग्रह विशेष हैं ( किरियठाणा ) क्रिया स्थान तेरह हैं, फिर ( भूयगामा ) जीवों के १४ भेद ( परमाधम्मिया) परमाधार्मिक ( गाहासोलसया ) सूत्र कृताङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन ( असंजम–अबंभ–णाय–असमाहिठाणा, सबला ) १७ प्रकार के असंयम, अब्रह्म–१८ प्रकार का मैथुन, ज्ञात–ज्ञाताप्रथमश्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन, असमाधि–२० असमाधि स्थान, शबल दोष–२१ प्रकार के शबल दोष हैं ( परीसहा ) परीषह–क्षुधा आदि २२ परीषह ( सूयगडज्झयण–देव–भावण–उद्देस–गुण–पकप्प–पावसुत–मोहणिज्जे ) सूत्र कृताध्ययन सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययन, देव–२४ प्रकार के देव, भावना–पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनायें, उद्देश–२६ उद्देशन काल, गुण–मुनिवर के २७ गुण, प्रकल्प–२८ आचारप्रकल्प, पापश्रुत–२६ पापश्रुत और मोहनीय–३० मोहनीय स्थान ( सिद्धातिगुणा ) सिद्धाति गुण–सिद्धों के ३१ अतिशय गुण ( य ) और ( जोग संगहे ) योग संग्रह–बत्तीस योगसंग्रह ( तित्तीसा आसातणा ) और तेंतीस अशातनायें, ( सुरिंदा आदिं, एक्कातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्ढिए ) सुरेन्द्र आदि को एक आदि संख्या युक्त करके फिर उत्तरोत्तर एक एक की वृद्धि से ( तीसातो जाव उ भवेतिकाहिका ) यावत् तीन अधिक तीस याने तेंतीस–होते हैं, इन सब में तथा ( विरती पणिहीसु अविरती सु ) विरति–प्राणातिपातादि से विरति तथा चित्त की विशिष्ट–एकाग्रता में व अविरति और ( एव मादिसु बहूसु ठाणेसु ) इस प्रकार के बहुत से स्थानों में जो ( जिण–पसत्थेसु अवितहेसु सासय–भावेसु अवट्ठिए सु ) तीर्थङ्करों के शासित, सत्य और शाश्वत–नित्यभाव अवस्थित–सदा समान रहने वाले हैं, उनमें ( संकं कंखं निरा करेत्ता ) शङ्का–संशय और अन्यमत ग्रहण रूप कांक्षा को हटाकर ( भगवतो सासणं सद्दहते ) वह साधु भगवान के शासन की श्रद्धा करता है ( अणियाणे ) ऋद्धि प्रार्थनादि निदान रहित ( अगारवे ) ऋद्धि आदि तीन गारव रहित ( अलुद्धे ) लोभ रहित ( अमूढ–मण–वयण–काय–गुत्ते ) मूर्खता शून्य और मन वचन व शरीर से गुप्त है ॥ १ । २८ ॥

भावा०–अपरिग्रह के कारण और संवर युक्त साधु आरम्भ परिग्रह से निवृत्त तथा क्रोध, मान, माया, व लोभ से अलग रहता है, एक प्रकार का असंयम राग द्वेष रूप दो बन्धन और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, ऋद्धि,रस, एवं सातारूप तीन गारव और मनोगुप्ति वगैरह तीन गुप्ति तथा ज्ञान विराधना आदि तीन विराधना, क्रोध

आदि चार कषाय, चार ध्यान, चार संज्ञा तथा चार ही विकथा होती है, कायिकी आदि पांच क्रियायें, ईर्यादि पांच समिति और श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियां व अहिंसा आदि पांच महाव्रत हैं और पृथ्वी आदि छः जीव समूह और कृष्णनील आदि छः लेश्यायें यावत् तेंतीस अशातनाएं बत्तीस या चौंसठ देवेन्द्र हैं (विशेष परिचय टिप्पण में देखें ) एक आदि संख्या को प्रथम करके एक एक की आगे वृद्धि से यावत् तेंतीस होते हैं ऐसे अन्य भी चौंतीस आदि के बहुत से स्थान हैं, जिन प्रदर्शित सत्य शाश्वत और नित्य एक रूप रहने वाले उन भावों में तथा विरति आदि में गुरु सेवा आदि से शंका कंखा को दूर कर वह प्रभु के शासन पर पूर्ण श्रद्धा करता हैं, निदान, गारव और लोभादि रहित मुनि मन वचन शरीर से गुप्त होता है ॥ १ । २८ ॥

अपरिग्रह व्रती साधु का स्वरूप कहा अब प्रस्तुत अध्ययन के विषय भूत अपरिग्रह को कहते हैं—

मूल—" जो सो वीर वर–वयण–विरति–पवित्थर–बहु विहप्पकारो सम्मत्त–विसुद्ध मूलो धितिकंदो विणयवेतितो निग्गत–तिलोक्क–विपुल जस निविड़–पीण–पवर-सुजातखंधो, पंचमहव्वय-विसालसालो, भावणतयं तज्झाण–सुभजोग–नाण पल्लव–वरंकुरधरो, बहुगुणकुसुमसमिद्धो, सील–सुगंधो अणण्हव–फलो, पुणोय मोक्खवर बीजसारो, । मंदरगिरि सिहर चूलिका इव इमस्स मोक्खवर–मुत्तिमग्गस्स सिहरभूओ संवर वर पादपो चरिमं संवरदारं। जत्थ न कप्पइ गामागर–नगर–खेड—कब्बड–मडंब –दोण–मुह–पट्टणासमगयं च किंचि अप्पं व बहु व अणु व थूलं व तस थावर. काय–दव्वजायं मणसावि परिघेत्तुं । ण हिरण्ण–सुवण्ण–खेत वत्थु, न दासी–दास–भयक–पेस–हय–गय–गवेलगं वा (च, ) न जाण–जुग्ग सयणासणाइ, ण छत्तकं–न कुंडिया, न उवाणहा, न पेहुण–वीयण–तालियंटका, ण यावि. अय–तउय–तंब–सीसक–कंस–रयत–जातरूव–मणि–मुत्ता धार पुडक–संख–दंत–मणि–सिंग–सेल–कायवर–चेल पत्ताइं मह रिहाइं परस्स अज्झोववाय–लोभजणणाइं परियड्ढेउं, गुणवओ न

यावि पुप्फ-फल-कंद-मूलादियाइं सणसत्तरसाइं सव्वधनाइं तिहिवि जोगेहिं परिघेत्तु । ओसह-भेसज्जभोयणट्ठयाए संजए णं । किं कारणं ! अपरिमितणाणदंसणधरेहिं सील-गुण-विणय-तव-संजम नायकेहिं तित्थयरेहिं सव्वजगजीव-वच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरिंदेहिं एसजोणी जंगमाणं दिट्ठाल कप्पइ जोणिसमुच्छेदोत्ति, तेण वज्जंति समणसीहा । जंपिय ओदण-कुम्मासगंजं-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूप- सक्कुलि-वेढिम-वरसरक-चुन्न-कोसगपिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दहि-सप्पि-नवनीत तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिय-मधु-मज्ज-मंस- खज्जक- वंजण विधिमादिकं, पणीयं उवस्सए, परघरे व रन्ने न कप्पति तंपि सन्निहिं काउं सुविहियाणं जंपि य उद्दिट्ठ-ठविय रचियग-पज्जवजातं, पकिरण-पाउकरण-पामिच्चं, मीसकजायं, कीयकडपाहुडं च दाणट्ठ-पुन्नपगडं, समण-वणीमगट्ठयाए व कयं, पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, निच्च कम्मं, मक्खियं, अतिरित्तं, मोहरं चेव सयग्गहमाहडं, मट्टिउवलित्तं, अच्छेज्जं चेव अणीसट्ठं जंतं तिहीसु जन्नेसु ऊसवेसु य अंतो व बहिं व होज्ज-समणट्ठयाए ठवियं, हिंसा सा वज्ज-संपउत्तं न कप्पति तंपि य परिघेत्तुं ।

छाया-"योऽसौ वीरवर-वचन-विरति-प्रविस्तर-बहुविधप्रकारः सम्यक्त्व-विशुद्धमूलो धृतिकन्दो विनय-वेदिक स्त्रैलोक्य-निर्गत-विपुलयशो निबिड-पीन-प्रवर सुजातस्कन्धः पञ्चमहाव्रत-विशालशालो भावना- त्वगन्तर्ध्यान-शुभयोग- ज्ञान पल्लव-वराङ्कुरधरो बहुगुण-कुसुमसमृद्धः शीलसुगन्धिः-अनास्रव फलः पुनश्च मोक्षवर बीजसारो, मन्दरगिरि-शिखर चूलिक इवास्य मोक्षवर-मुक्तिमार्गस्य शिखरभूतः संवर वरपादपः चरमं संवरद्वारम् । यत्र न कल्पते ग्रामाकर-नगर-खेड-कर्बट-मडम्ब द्रोणमुख-पट्टनाऽऽश्रमगतञ्च किञ्चिदप्यल्पंवा बहुवा, अणुवा स्थूलंवा, त्रस स्थावर काय द्रव्यजातं मनसापि परिग्रहीतुम् । न हिरण्य सुवर्ण क्षेत्रवस्तु, न दासी-दास भृतक-प्रेष्य-हय-गज-गवेलकञ्च, न यान-युग्य-शयनादि, न छत्रकं, न कुण्डिका, नोपानहौ, न मयूरपिच्छ-व्यजन-तालवृन्तकं न चाप्ययस्त्रपुक-ताम्र-सीसक-कांस्य

रजत-जातरूप-मणि-मुक्ताऽऽधार पुटक-शङ्ख-दन्त-मणि-शृङ्ग-शैल-काचवर-चेल चर्म पात्राणि महार्हाणि परस्याध्युपपात-लोभजननानि परिकर्षयितुं गुणवतः। न चापि पुष्प-फल-कन्द-मूलादिकानि सन-सप्त-दशकानि सर्वधान्यानि, त्रिभिरपि योगैः परिग्रहीतुम्। औषध-भैषज्य-भोजनार्थं संयतेन ( यतस्य )। किं कारणम्? अपरिमित-ज्ञानदर्शन धरैः शील-गुण-विनय-तपः संयमनायकै स्तीर्थंकरैः सर्व जगज्जीववत्सलैस्त्रिलोकमहितैर्जिनवरेन्द्रैः। एपायोनिर्जङ्गमानांदृष्टा, न कल्पते योनिसमुच्छेद इति तेनवर्जयन्ति श्रमणसिंहाः। यदपि च ओदन कुल्माष-गंज-( भोज्य विशेषः )-तर्पण-( सक्तु )-मन्थु-( वदरादिचूर्ण )-भर्जित-तिल पुष्पपिष्ट सूप-शष्कुली-वेष्टिम-वर सरक-चूर्ण-कोशकपिण्ड शिखरिणी-वर्तक-( घनतीमन ) मोदक-क्षीर-दधि-सर्पिर्नवनीत-तैल-गुड-खण्ड- मत्स्यण्डिका- मधु- मद्य-मांस-खाद्यक-व्यञ्जन-विध्यादिक प्रणीतमुपाश्रये परगृहेऽरण्येवा न कल्पते तदपि सन्निधीकर्तुं सुविहितानाम्। यदपिचोद्दिष्ट-स्थापित-रचितक-पर्यवजातं प्रकीर्णप्रादुष्करणाऽपमित्यं, मिश्रकजातं, क्रीतकृत-प्राभृतञ्च, दानार्थ-पुण्यप्रकृतं, श्रमण-वनीपकार्थं वाकृतं, पश्चात्कर्म,पुरः कर्म, नित्यकर्म, म्रक्षितम्, अतिरिक्तं, मौखरं चैव, स्वयंग्राहम् आहृतम्, मृत्तिकोपलिप्तम्, आच्छेद्यं चैव, अनिसृष्टं यत्तत्, तिथिषु यज्ञेषु उत्सवेषु चान्तर्वा वहिर्वा भवेच्छ्रमणार्थं स्थापितं-हिंसा सावद्य-सम्प्रयुक्तं न कल्पते तदपि परिग्रहीतुम्।

अन्व०"( जो ) अपरिग्रह ( वीरवर-वयण-विरति-पवित्थर-बहुविहप्पकारो ) श्रीमहावीर के वचन से की हुई परिग्रह-निवृत्ति के विस्तार से जो वृत्त अनेक प्रकार का है ( सम्मत्त-विसुद्धमूलो ) सम्यक्त्व रूप निर्दोष मूल वाला ( धितिकंदो ) चित्त की स्वस्थता ही जिसका कन्द ( विणयवेतितो ) विनय रूप चारों ओर वेदिका वाला ( निग्गत-तिलोक्क-विपुल-जस-निविड-पीण-पवर-सुजात खंधो ) तीनों लोक में फैला हुआ विस्तीर्ण यश रूप सघन मोटा और लम्बाई युक्त बड़े स्कन्ध वाला ( पंच महव्वय-विसालसालो ) पांच महाव्रत रूपी विशाल शाखा-डाल वाला (भावण-तयंत-ज्झाण-सुभजोग-नाणपल्लव-वरंकुर धरो) अनित्यता आदि भावना रूप त्वचा और धर्म ध्यान व शुभ योग तथा ज्ञान रूप प्रधान पल्लव के अंकुरों को धारण करने वाला (बहुगुण-कुसुमसमिद्धो) बहुत से उत्तर गुण रूप फूलों से समृद्ध-भर पूर, (सील-सुगंधो) शील की सुगंध वाला[इस लोकके फलोंकी अपेक्षा रहित सत्प-

वृत्ति ही जहां सुगन्ध है । ] (अणण्हवफलो) अनास्रव रूप फल वाला (पुणो य) और फिर (मोक्खवर-बीजसारो) मोक्ष रूप उत्तम बीज के सार वाला (मंदर गिरि-सिहर चूलिका इव) मेरु पर्वत के शिखर पर चूलिका की तरह जो (इमस्स मोक्खवर मुत्तिमग्गस्स) इस कर्म क्षय रूप प्रधान मोक्ष के निर्लोभता रूप मार्ग का (सिहर भूओ) शिखर रूप है (संवर वर पाइपो) अपरिग्रह रूप उत्तम संवर वृक्ष (सो) वह (चरिमं संवरदारं) अन्तिम संवरद्वार है (जत्थ) जहां (गामा गर-नगर-खेड कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासमगयं) ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन और आश्रम में पड़ा हुआ, (किंचि) कोई पदार्थ (अप्पं व बहुं व) मूल्य से अल्प हो या बहुत (अणुं व थूलं व) प्रमाण से छोटा हो या बड़ा (तस थावर-काय-दव्व जायं) त्रस-शंख आदि, स्थावर-रत्न आदि काय के द्रव्य समूह को (न कप्पइ मणसावि परिघेत्तुं) मन से भी ग्रहण करना नहीं कल्पता (न हिरण्ण सुवण्ण-खेत-वत्थु) चांदी सोना क्षेत्र और वास्तु-गृह भी ग्रहण करना नहीं कल्पता (न दासी-दास-भयक-पेस-हय-गय-गवेलगंच) दासी, दास, भृत्य-नियत वृत्ति पाने वाला सेवक, प्रेष्य-संदेश ले जाने वाला दास, घोड़ा, हाथी और बैल आदि ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न जाण-जुग्ग-सयणाइ ण छत्तकं) यान-रथ आदि, युग्य-डोली, शयन आदि और छत्र का ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न कुंडिया न उवाणहा) न कमण्डलु, न जूता (न पेहुण-वीयण-तालियंटका) पेहुण-मोरपिच्छी, बांस आदि का बीजना और तालवृन्त-तालपत्र के पंखे इनका ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न यावि अय-तउअ-तंब-सीसक कंस-रयत-जात रूव-मणि-मुत्ताऽऽधारपुडक-संख-दंत-मणि-सिंग-सेल-कायवर चेल चम्म पत्ताइं महरिहाइं) और लोह, त्रपु-रांग, ताम्र, सीसा, कांस्य, चांदी, सोना, मणि और मोती का आधार-शुक्ति पुट, शंख, दन्तमणि-प्रधान दांत, शृङ्ग-सींग, पाषाण, उत्तम काच, वस्त्र और चर्मपात्र इन सबको भी नहीं ग्रहण करना (परस्स अज्झोव वाय-लोभजणणाइं परिग्रहुडेउं) ग्रहण करने में चित्त की एकाग्रता और लोभ को उत्पन्न करने वाले दूसरे के अधिक मूल्यवाले पदार्थों को बढाना या उनका बचाव करना (गुणवओ न) अपरिग्रहरूप गुण वाले को 'योग्य नहीं' (यावि पुप्फ-फल कंद-मूलादियाइं) और पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि तथा (सण-सत्तरसाइं) सन जिनमें सत्तरवां है ऐसे (सव्वधन्नाइं) सब धान्यों को भी (संजए) साधु (ओसह

भेसज्ज-भोयणट्ठयाए ) औषध, भैषज्य, और भोजन के लिये ( तिहिविजोगेहिं परि-घेत्तुं ) मन वचन और कायरूप तीनों योगोंसे ग्रहण नहीं करे।

( किं कारणं ) नहीं लेने में क्या कारण है ?

उत्तर-( अपरिमित-णाण-दंसण धरेहिं ) अपरिमित ज्ञान तथा दर्शन को धारण करने वाले ( सीलगुण-विणय-तव-संजम-नायकेहि ) शील-चित्त शान्ति, गुण अहिंसा आदि, विनय, और तप संयम की उन्नति करने वाले ( सव्वजगज्जीव वच्छलेहिं ) जगत् भरके जीवों के वत्सल-( तिलोय-महिएहिं ) त्रिलोकी से पूजित ( तित्थयरेहिं ) श्री तीर्थङ्कर ( जिणवरिंदेहिं ) जिनेन्द्र देवने ( जंगमाणं ) त्रस जीवों को ( एसजोणी ) यह पुष्प फलरूप-योनि-उत्पत्ति-स्थान ( दिट्ठा ) केवल ज्ञान से देखी है ( न कप्पइ जोणि-समुच्छेदोत्ति ) योनिओं का समुच्छेद-विनाश करना योग्य नहीं है। ( तेण वज्जंति समणसीहा ) इसलिये श्रेष्ठ मुनि पुष्प आदि का वर्जन करते हैं ( जंपिय ओदण-कुम्मास-गंज-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूप-सक्कुलि वेढिम-वर सरक-चुन्न-कोसग-पिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दहि-सप्पि-नवनीत-तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिय-मधु- मज्ज-मंस- खज्जक-वंजण विधिमादिकं पणीयं ) और जो भी ओदन-कूर, कुलमाष-उड़द या थोडे उबाले हुए हुए मूंग आदि, गंज-एक प्रकार का धान्य, तर्पण-सक्तु-सत्तू मंथू-बोर आदि का चूर्ण, भुज्जि,-भूंजे हुए धानी आदि, पलल-तिलके फूलों का पिष्ट, सूप-दाल, शष्कुली-तिल पापडी, वेढिम-जलेबी आदि, वरसरक और चूर्ण कोश-खाद्यपदार्थ विशेष पिण्ड-गुड आदि के पिण्ड, सिहरिणि दही में शक्कर आदि देकर बना हुआ शिखरण, वट्ट-वडा, मोदक-लड्डू, दूध, दही, घी, मक्खन, तैल, गुड, खांड, मच्छंडी-मिसरी, मधु, मद्य, मांस और अशोकवट्टी आदि खाद्य तथा अनेक प्रकार के शाक आदि प्रणीत-लाया हुआ ( उवस्सए ) उपाश्रय में ( परघरे व ) अथवा अन्य घरमें या ( रन्ने ) अटवी में हो ( तं ) उसका भी ( सुविहियाणं ) क्रियापात्र साधुओं को ( सन्निहिं काउं ) सञ्चय करना ( न कप्पती ) नहीं कल्पता ( जंपि य ) और जो भी ( उदिट्ठ-ठविय- रचियग-पज्जवजातं ) उद्दिष्ट-साधुमात्र के लिये बनाया हुआ, स्थापित-साधु के लिये रक्खा हुआ, और रचित-साधु के लिये तपाकर बनाये हुए मोदक आदि, पर्यवजात अवस्थान्तर को पाये हुए जैसे चावल और दही मिलकर बना हुआ करंबा आदि ( पकिरण-पाउकरण-पामिच्चं ) प्रकीर्ण-गिराते

हुआ दिया गया या बिखरा हुआ, प्रादुष्करण-प्रकाश करके दिया गया और अप-मित्य-साधु के लिये उधार लिया हुआ, ( मीसकजायं ) मिश्रजात-साधु व श्रावक दोनों के लिये सम्मिलित बनाया हुआ ( कीयकड-पाहुडं ) क्रीतकृत-साधु के लिये खरीदा हुआ और प्राभृत-अग्नि में प्रज्वलित करके डाला हुआ या अग्नि से निकाला हुआ ( च ) और ( दानट्ठ-पुन्नपगडं ) दान के लिये तथा पुण्य के लिये बनाया गया ( समण-वणीमगट्ठयाए कयं ) पांच प्रकारके श्रमण तथा वनीपक-भिखारी के प्रयोजन से किया गया ( पच्छाकम्मं ) दानके बाद जहां हाथ आदि धोये जांय या अन्य आरम्भ हो वह पश्चात्कर्म ( पुरे कम्मं ) हाथ धोने आदि आरम्भ करके जो दिया जाय वह पुरः कर्म ( नितिकम्मं ) सदाव्रत की तरह जहां सदा साधुओं को आहार आदि दिया जाय अथवा नियमितरूपसे सदा एक घर से आहार लिया जाय वैसा ( मक्खियं ) सचित्तपानी आदि से भरे हुए हाथ या पात्र से दिया गया ( अतिरित्तं ) प्रमाण से अधिक ( मोहरं चेव ) और वाचालता से-अधिक बोलकर मिलाया हुआ ( सयग्गहमाहडं ) स्वयं अपने आप ग्रहण किया हुआ, और अपने गांव या घर आदि से सामने लाया हुआ ( मट्टि उवलित्तं ) मिट्टी आदि से लिपा हुआ ( अच्छेज्जं चेव ) और ऐसे ही आच्छेद्य-निर्बल से छीनकर दिया गया ( अ-णीसट्ठं ) अनिसृष्ट-अनेकों के हिस्से की वस्तु सबकी अनुमति के बिना दी गई हो ( जं तं तिहिसु ) जो आहार मदन त्रयोदशी आदि तिथि विशेष में ( जन्ने सु ऊस-वेसु य ) यज्ञ और महोत्सवों में ( अंतो व बहिं व होज्ज समणट्ठयाए ठवियं ) उपा-श्रय के भीतर या बाहर साधुओं को देने के लिये रक्खा हो ( हिंसा-सावज्ज-संप-उत्तं ) हिंसारूप दोष से युक्त ( तं पिय परिघेत्तुं न कप्पती ) उस आहार को भी लेना नहीं कल्पता है।

मूल-" अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ? जंतं एकारस-पिंडवायसुद्धं, किणण-हणण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-नव कोडीहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम-उप्पायणेसणाए सुद्धं, ववगय-चुय-चविय-चत्तदेहंच फासुयं ववगय-संजोग मणिंगालं, विगय धूमं, छट्ठाण निमित्तं, छक्काय परिरक्खणट्ठा हणि हणि फासुकेण भिक्खेण वट्टियव्वं। जंपिय समणस्स सुविहियस्स उरोगायंके बहुप्पकारंमि समुप्पन्ने वाताहिक्क-

पित्त-सिंभ-अतिरित्त कुविय तह सन्निवातजाते व उदयपत्ते उज्जल-बल-विउल-तिउल-कक्खड-पगाढ-दुक्खे असुभ-कडुय फरुसे चंडफल-विवागे महब्भये जीवियंत करणे सव्वसरीर-परितावण करे न कप्पति तारिसे वि तह अप्पणो परस्स वा ओसह भेसज्जं, भत्त-पाणं च तंपि संनिहिकयं। जंपि य समणस्स सुविहियस्स तु पडिग्गह धारिस्स भवति भायण-भंडोवहि उवगरणं, पडिग्गहो, पादबंधणं, पादकेसरिया, पादठवणं च, पडलाइं तिन्नेव, रयत्ताणं च, गोच्छओ, तिन्नेव, य पच्छाका, रयोहरण-चोल पट्टक-मुहणंतकमादीयं एयं पि य संजमस्स उववूहणट्टयाए वाया-यव-दंस-मसग-सीय-परिरक्खणट्टयाए उवगरणं रागदोसरहियं परिहरियव्वं संणजएण णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए अहोय राओ य अप्पमत्ते ण होइ सततं निक्खिवदियव्वं च गिण्हियव्वं च भायण, भंडोवहि उवगरणं एवं से संजते विमुत्ते निस्संगे निप्परिग्गहरुई निम्ममे निन्नेह-बंधणे सव्व-पाव-विरते वासी चंदण-समाणकप्पे सम-तिण-मणि-मुत्ता-लेट्ठु-कंचणे समे य माणावमाण-णाए, समिय-रते, समित रागदोसे, समिए समितीसु, सम्मदिट्ठी समेयजे सव्वपाण-भूतेसु, सेहु समणे सुय धारते उज्जुत्ते संजते । ससाहू सरणं सव्व भूयाणं सव्व जगवच्छले सच्चभासके य संसारंतट्टिते य संसार-समुच्छिन्ने सततं मरणाणुपारते, पारगे य सव्वेसिं संसयाणं पवयण मायाहिं अट्ठहिं, अट्ठकम्म गंठी विमोयके, अट्ठमय महणे, ससमय कुसले य भवति सुख दुक्ख निव्विसेसे अब्भिंतर वाहिरंमि सया, तवोवहाणंमि य सुट्ठुज्जुते, खंते दंते य हियनिरते, ईरियासमिते भासासमिते एसणासमिते आयाण भंड-मत्त-निक्खेवणा समिते उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण जल्ल-परिट्ठावणिया समिते मणगुत्ते, वयगुत्ते, कायगुत्ते, गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी,

चाई, लज्जू, धन्ने, तवस्सी खंतिखमे, जितिंदिए, सोधिए, अणियाणे, अब-हिल्लेस्से, अममे, अकिंचणे, छिन्नगंथे, निरुवलेवे। सुविमल-वरकंस भा यणं १, व मुक्कतोए, संखेविव २, निरंजणे, विगय,-राग-दोसमोहे, कुम्मो ३, इव इंदिएसु गुत्ते, जच्च-४, कंचणगंव जायरूवे, पोक्खरप त्तं ५, व निरुवलेवे, चंदो ६, इव सोमताए (भावयाए,) सूरोव्व ७, दित्ततेए, अचले जह मंदरे ८, गिरिवरे, अक्खोभे सागरो व्व, थिमिए, पुढवीव सव्व १०, फास सहे, तवसा ११, चिय भासरासि छन्निव्व जाततेए, जलियहु १२ यासणो वि व तेयसा जलंते, गोसीस चंदणं पिव सीयले सुगंधे य, हरयो १३ विव समिय भावे, उग्घोसिय सुनिम्मलं व आयंस १४ मंडलतलं व पागड भावेण सुद्धभावे, सौंडीरे कुंजरोव्व १५, व सभेव्व १६ जाय थामे, सीहे १७ वाजहा मिगाहिवे होति दुप्पधरिसे, सारय १८ सलिलं व सुद्ध हियए, भारंडे १६ चेव अप्पमत्ते, खग्गि विसाणं २० व एगजाते, खाणुं चेव २१ उड्ढकाए, सुन्ना २२ गारेव्व अप्पडिकम्मे, सुन्नागारावण-स्संतो २३ निवाय-सरण-प्पदीप-ज्झाणमिव निप्पकंपे, जहा २४ खुरो चेव एग धारे, जहा अही चेव २५ एगदिट्ठी, आगासं २६ चेव निरालंबे, विहगे २७ विव सव्वओ विप्पमुक्के, कय पर निलये जहा चेव २८ उरए, अप्पडिबद्धे अनिलोव्व २६, जीवोव्व ३० अप्पडिहयगती। गामे गामे एगरायं, नगरे नगरे य पंचरायं दूइज्जंते य, जितिंदिए, जित परीसहे, निब्भओ, विऊ सचित्ताचित्त-मीसकेहिं दव्वेहिं विरायंगते, संचयातो विरए, मुत्ते, लहुके, निरव कंखे, जीविय-मरणासविप्पमुक्के, निस्संधि, निव्वणं चरित्तं धीरे काएण फासयंते सततं अज्झप्पज्झाणजुत्ते निहुए एगे चरेज्ज धम्मं ।२।२८

छाया०-"अथकीदृशं पुनः कल्पते? यत्तदेकादशपिण्डपातशुद्धं क्रयण-हनन-पचन-कृत-कारिताऽनुमोदन-नवकोटिभिः सुपरिशुद्धं, दशभिर्दोषैर्विप्रमुक्तम्, उद्गमो त्पादनैषणया शुद्धम्, व्यपगत-च्युत-च्यावित-त्यक्त देहं च प्राशुकम्; व्यपगत

संयोगमनङ्गारम्, विगत धूम्रञ्च, पट्स्थानक निमित्तम् षट्काय परिरक्षणार्थम्, अहन्यहनि प्राशुकेन भैक्ष्येण वर्तितव्यम् । यदपि च श्रमणस्य सुविहितस्य तु रोगातङ्के बहुप्रकारे समुत्पन्ने वाताधिकपित्तश्लेष्मणोरतिरिक्तकुपिते तथा सन्निपातजाते-थोदयप्राप्ते उज्ज्वल-बल-विपुल-कर्कश-प्रगाढदुःखे, अशुभकटुक परुषे, चण्ड फल विपाके महाभये जीवितान्तकरणे, सर्वशरीर-परितापनकरे, न कल्पते तादृशेऽपि तथाऽऽत्मनः परस्य वा औषधभैषज्यं भक्त पानञ्च तदपि सन्निधीकर्तुम् । यदपि च श्रमणस्य सुविहितस्यतु पतद्ग्रह-धारिणो भवति भाजन भण्डोपध्युपकरणं, पतद्ग्रहः पात्रबन्धनञ्च, पात्रकेसरिका, पात्रस्थापनं, पटलानि-त्रीण्येव, रजस्त्राणञ्च, गोच्छकः, त्रय एव च प्रच्छादाः, रजोहरण-चोलपट्टक-मुखानन्तकादिकम् । एतदपि च संयमस्योपबृंहणार्थाय वाताऽऽतपदंश-मशक-शीत-परिरक्षणार्थम् उपकरणं राग द्वेपरहितं परिहर्त्तव्यम् । संयतेन नित्यं प्रत्युपेक्षण-प्रस्फोटन-प्रमार्जनायामहनि च रात्रौचाऽप्रमत्तेन भवति सततं निक्षेप्तव्यम् ग्रहीतव्यञ्च, भाजनभण्डोपध्युपकरणम् । एवं स संयतो विमुक्तो निस्सङ्गो निष्प्रतिग्रहरुचिर्निर्ममो निःस्नेह बन्धनः सर्वपाप विरतो वासी-चन्दन-समानकल्पःसमतृण-मणि-मुक्ता-लेष्टु-काञ्चनः समश्च मानाऽपमानयोः शमितरजस्कः शमितरागद्वेषः,समितः समितिषु, सम्यग्दृष्टिः, समश्च यः सर्वप्राणिभूतेषु सहिश्रमणः,श्रुतधारक ऋजुकः संयतः सुसाधुः शरणं सर्वभूतानां, सर्वजगद्वत्सलः, सत्यभाषकश्च संसाराऽन्तस्थितश्च, समुच्छिन्नसंसारः सततं मरणपारगः, पारगश्च सर्वेषां संशयानां, प्रवचनमातृभिरष्टाभिरष्टकर्मग्रन्थिविमोचकोऽष्टमान मथनः, स्व समयकुशलश्च भवति, सुख दुःखनिर्विशेष, आभ्यन्तर बाह्ये सदा तप उपधाने च सुष्ठूद्युक्तः, क्षान्तोदान्तश्च, हितनिरत, ईर्यासमितो भाषासमित, एषणासमित, आदान भण्डाऽमत्र-निक्षेपणासमितः, उच्चार-प्रस्रवण-खेल्ल-शिघांण-जल्ल-परिष्ठापनिका समितो मनोगुप्तो वचनगुप्तः कायगुप्तो, गुप्तेन्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी, त्यागी लज्जुर्धन्यस्तपस्वी, क्षान्तिक्षमो, जितेन्द्रियः, शोधितोऽनिदानोऽवहिर्लेश्योऽममोऽकिञ्चनश्छिन्नग्रन्थो, निरुपलेपः । सुविमल-वरकांस्य भाजनमिव मुक्ततोयः १, शङ्ख इव निरञ्जनो विगतराग दोष मोहः २, कूर्मइवेन्द्रियेषु गुप्तो ३ जात्यकाञ्चन मिव जातरूपः ४, पुष्करपत्रमिव निरुपलेपः ५, चन्द्र इव सौम्यभावनया, ६, सूर्यइव दीप्ततेजाः ७, अचलो यथा मन्दरो गिरिवरो ८, ऽक्षोभ्यः सागर ९, इव स्तिमितः, पृथ्वी व सर्व स्पर्शसहः १०, तपसापि च भस्मराशिच्छन्न इव जात तेजाः ११, ज्वलितह

नागानिव तेजसा ज्वलन् १०, गोशीर्षचन्दन इव शीतलः सुगन्धश्च, ह्रद इव समितभाव उद्धृष्टसुनिर्मलमिव आदर्शमण्डलतलमिव प्रकटभावेन शुद्धभावः, शौण्डीरः कुञ्जर इव, वृषभ इव जातस्थामा, सिंहो वा यथा मृगाधिपो भवति दुष्प्रधर्षः, शारद सलिलमिव शुद्धहृदयः, भारण्ड इवाऽप्रमत्तः, खड्गिविषाणमिवैकजातः, स्थाणुरिवोर्ध्वकायः, शून्याऽऽगारमिवाऽप्रतिकर्मा, शून्यागाराऽऽपणनिवात-शरण-प्रदीपध्यानमिव निष्प्रकम्पः, यथा क्षुरस्यैकधारः, यथाऽहिरेवैकदृष्टिः, आकाशमिव निरवलम्बः, विहग इव सर्वतो विप्रमुक्तः, कृतपरनिलयो यथाचैवोरगः, अप्रतिबद्धोऽनिल इव, जीव इवाऽप्रतिहतगतिः । ग्रामे ग्रामे-एकरात्रम् , नगरे नगरे च पञ्चरात्रं दूयमानः-विहरंश्च, जितेन्द्रियो जितपरीषहो निर्भयः विद्वान् सचित्ताऽचित्तमिश्रकैर्द्रव्यैर्विरागं गतः, सञ्चयाद्विरतो, मुक्तो लघुको निरवकांक्षः, जीवितमरणाऽऽशाविप्रमुक्तः, निस्संधिर्निर्व्रणं चारित्रं धीरः कायेन स्पृशन्, सततमध्यात्मध्यानयुक्तो निभृत एकश्चरेद्धर्मम् ।

प्रश्न०"( अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ? ) अब फिर कैसा ओदन आदि पदार्थ लेना कल्पता है ?

सुविहियस्स ) सुविहित साधु के ( रोगायंके बहुप्पकारंमि ) अनेक प्रकार के रोग या आतङ्क ( समुप्पन्ने ) उत्पन्न होने पर ( वाताहिक-पित्त-सिंभ-अतिरित्त-कुविय ) वात की अधिकता व पित्त कफ का अतिशय प्रकोप ( तह ) तथा ( सन्निवात जाते वउदयपत्ते)सन्निपात-त्रिदोष उत्पन्न हुआ हो (उज्जलबल विउल कक्खड-पगाढ-दुक्खे) अथवा सुख रहित बलवान् कष्ट से भोगने योग्य विस्तीर्ण या मन वचन आदि तीनों योगों को तोलने वाले अत्यन्त कठोर दुःख के ( उदयपत्ते ) उदय प्राप्त होने पर ('असुभ कडुय-फरुसे ) अशुभ या कटु द्रव्य की तरह असुख अनिष्ट कठोर स्पर्श रूप तथा ( चंडफलविवागे ) दुःखरूप दारुण फल वाला ( महब्भये ) अत्यन्त भयङ्कर ( जीवियंत करणे ) जीवन के अन्त करने वाले और ( सव्वसरीर-परिता-वणकरे ) सब शरीर को परिताप करने वाले ( तारिसेवि ) वैसे रोगादि के प्रसङ्ग में भी ( अप्पणो परस्सवा ) अपने या पर केलिये ( तह ) तथा ( ओसह-भेसज्जं ) औषध भैषज्य ( भत्त पाणं च ) और आहार पानी ( तं पि संनिहिकयं ) वह सब भी संचय करके रखना ( न कप्पति ) नहीं कल्पता-योग्य नहीं है। ( जंपिय ) और जो भी ( पडिग्गह धारिस्स सुविहियस्स समणस्स ) पात्रधारी सुविहित-क्रियापात्र साधु के पास ( भायणभंडोवहिउवगरणं ) पात्र, मिट्टी के भांड और सामान्य उपधि तथा सकारण रखने के उपकरण ( भवति ) होते हैं, जैसे-( पडिग्गहो ) पात्र ( पाद वंधणं ) पात्र बंधन, ( पादकेसरिया ) पात्र केसरिका-पोंछने का वस्त्र ( पायठवणं च ) और पात्र स्थापन-जिस पर पात्र रक्खे जांय ( पडलाइं ) पटल-पात्र ढकने के तीन वस्त्र ( रयत्ताणंच ) और रजस्त्राण-पात्र लपेटने का वस्त्र (गोच्छओ गो छक पात्र वस्त्र आदि प्रमार्जन करने के लिये पूंजनी ( तिन्नेवय पच्छाका ) और तीन ही प्रच्छाद-ओढने के वस्त्र ( रयोहरण-चोलपट्टक-मुहणंतक मादीयं ) रजोहरण-ओघा, चोलपट्टक-पहनने का वस्त्र और मुखानन्तक-मुखवस्त्रिका आदि ( एयं-पिय ) यह सब भी ( संजमस्स उववूहणट्टयाए ) संयम के उपबृंहण-वृद्धि के लिये हैं ( वायायव-दंस-मसग-सीय-परिरक्खणट्टयाए ) वात-प्रतिकूल वायु सूर्य की ताप, डांस-मच्छर और शीत से संरक्षण करने के लिये ( उवगरणं ) रजो हरण आदि उप करण को ( राग-दोस रहियं ) राग द्वेष रहित होकर ( संजएणं ) साधु को ( णिच्चं ) सदा ( परिहरियव्वं ) धारण करना चाहिए ( पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए ) प्रतिलेखना-आंखों से देखना, प्रस्फोटन-झाडना और

प्रमार्जन रूप क्रिया में ( अहोयराओय ) दिन और रात ( अप्पमत्तेण सततं ) निरन्तर प्रमाद रहित ( भायण-भंडोवहि-उवगरणं ) भाजन भाण्ड और उपधिरूप उपकरण ( निक्खिविव्वं ) नीचे रखना ( च ) और ( गिण्हियव्वं ) ग्रहण करना योग्य ( होइ ) होता है ( एवं ) इस प्रकार ( सेसंजते ) वह संयमी ( विमुत्ते निसंगे ) धनादि रहित, निस्सङ्ग-मोह रहित ( निप्परिग्गहरुई ) परिग्रहरुचि से दूर (निम्ममे) ममता रहित ( निन्नेहबंधणे ) स्नेह और बंधन से रहित ( सव्व पाव विरते ) सब पापों से निवृत्त ( वासी-चंदण-समाण कप्पे ) वासी-कुल्हाड़ी मारने वाले और चन्दन का लेप करने वाले-दोनों पर समभाव रखने वाला ( सम-तिण-मणि मुत्ता-लेट्ठु-कंचणे ) तृण और मणि, मोती तथा पत्थर व सुवर्ण में समबुद्धि रखने वाला ( समे य माण यमाणणाए ) और मान अपमान की क्रिया में भी मन का विषाद रहित ( समियरते ) उपशान्त पापरजवाला अथवा विषय रति के उपशान्त वाला या शान्त वेग वाला ( समित राग दोसे समिए समितिसु ) उपशान्त राग द्वेष वाला व पांच समितियों में सम्यक् प्रवृत्ति वाला ( सम्मदिट्ठी ) सम्यग् दृष्टि ( समे य जे सव्व-पाण-भूतेसु ) और जो समस्त त्रस स्थावर जीवों में समान भाव रखता है ( से हु समणे ) वही श्रमण ( सुयधारते ) श्रुत धारक ( उज्जुत्ते ) निष्कपट या आलस्य रहित ( संजते ) व संयमी है ( ससाहू सरणं सव्व ) वह सुसाधु सर्वभूत-छकाय जीवोंका शरण-रक्षक है (सव्व जग-वच्छले) जग का वत्सल-हितैषी है ( सच्च भासके ) सत्यवक्ता है ( संसारंतट्ठिते ) के अन्त में स्थित ( य ) और ( संसारसमुच्छिन्ने ) भव परम्परा रूप संसार जिसने उच्छेद कर दिया है, ऐसा (सततं मरणाणुपारते सदा मरण के पार पाने ( पारगे य सव्वेसिं संसयाणं ) और सब संशयों का पारगामी ( पवयण- ) अट्ठहिं ) आठ प्रवचनमाता-पांच समिति तीन गुप्ति रूप से ( अट्ठ कम्म- मोयके) आठ कर्मों की ग्रन्थि-गांठ को छुड़ाने वाला ( अट्ठमय-महणे) आठ मद का नाश करने वाला ( ससमय कुसले ) अपने सिद्धान्त में निपुण ( भवति ) है ( सुख-दुक्ख-निव्विसेसे ) सुख दुःख में विशेषता रहित अर्थात् हर्ष शोक रहित ( अब्भिंतर-बाहिरंमि सया तवोवहाणं मिय सुट्ठुज्जुत्ते ) आभ्यन्तर और बाह्य तप रूप गुण की रक्षा करने वाले-उपधान में सदा अच्छी तरह से उद्यम

करने वाला ( खंते दंते य ) क्षमावान् और जितेन्द्रिय ( हियनिरते ) स्वपर का हित-कारी ( इरिया-समिते ) ईर्या समिति युक्त ( भासा समिते ) भाषा समिति-निर्दोष वचन-बोलने वाला, ( एसणासमिते ) एषणा समिति युक्त ( आयाण-भंडमत्त-निक्खेवणा समिते ) आदान भांड मात्र निक्षेपणा समिति वाला ( उच्चार पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणिया समिते ) मलमूत्र, श्लेष्म, संघान-नाक का मल, जल्ल-देह का मल आदि परिठने की समिति वाला ( मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते ) मनो गुप्त, वचन गुप्त और काय गुप्त-शरीर के संयम वाला ( गुत्तिंदिए ) गुप्त इन्द्रिय-विषयों से इन्द्रिय का रक्षण करने वाला ( गुत्त-बंभयारी ) ब्रह्मचर्य की गुप्ति से युक्त ( चाईलज्जू ) त्यागी-सर्वसंग का त्याग करने वाला वा दानी, रज्जु के समान सरल ( धन्ने तवस्सी ) धन्य, तपस्वी-प्रशान्त तपोयुक्त ( खंतिखमे ) क्षमा द्वारा सहने वाला ( जितिंदिए ) जितेन्द्रिय ( सोधिए ) गुणों से शोभित या शुद्ध हुआ ( अणियाणे ) निदान रहित ( अबहिल्लेस्से ) जिसकी चित्तवृत्ति संयम से बहिर्भूत नहीं है ( असमे अकिंचणे ) ममता से दूर व धन से रहित ( छिन्नगंथे ) स्नेह बंधन को काटने वाला ( निरुवलेवे ) कर्म के उपलेप रहित याने कर्म का बंध नहीं करने वाला। ( सुविमल-वर कंसभायणं व मुक्कतोये ) खूब निर्मल उत्तम कांस्य भाजन की तरह स्नेहरूप जलसे दूर ( संखेविव निरंजणे ) शङ्ख की तरह निर्मल-रागादि मल रहित ( विगय-राग-दोस मोहे ) राग द्वेष और मोह से दूर ( कुम्मो इव इंदिएसुगुत्ते ) कूर्म-कच्छप की तरह इन्द्रियों के विषय में गुप्त-संयम वाला ( जच्च-कंचणगं व जायरूवे ) जाति सम्पन्न सुवर्ण की तरह जातरूप-रागादि कुभाव रहित अपने स्वरूप को पाया हुआ ( पोक्खर पत्तं व निरुवलेवे ) पद्मपत्र की तरह भोग के लेप रहित ( चंदो इव सोमभावयाए ) सौम्य भाव से चन्द्रके समान ( सूरोव्व दित्ततेए ) सूर्य के जैसे तपस्या के तेज वाला ( अचले जह मंदरे गिरिवरे ) मन्दर-मेरु पर्वत के समान अचल ( अक्खोब्भे सागरोव्व थिमिए ) क्षोभ रहित सागर के जैसे स्तिमितभावों की तरङ्ग से दूर ( पुढवी व सव्व फाससहे ) पृथ्वी की तरह अनुकूल प्रतिकूल सब स्पर्शों को सहने वाला ( तवसा विय भासरासिछन्नि वजाततेए ) और तपस्या से भस्म की ढेर से ढकी हुई अग्नि के जैसा याने जैसे भस्म से ढकी हुई अग्नि भीतर जलती और बाहर से बुझीसी दिखती है, वैसे तपस्वी का शरीर बाहर से फीका किन्तु अन्तस्तेज से दीप्त रहता है ( जलिय-हुयासणो

विव तेयसा जलंते ) जलती हुई अग्नि के जैसे ज्ञानरूप तेजसे जलता हुआ ( गोसीस चंदणं पिव सीयले सुगंधे ) गोशीर्ष चन्दन की तरह शीतल-मानसिक तापरहित और शीलरूप सुगन्ध वाला ( हरयोविव समियभावे ) ह्रद की तरह समभाव वाला वायु के अभाव में जैसे तालाब का पानी समरूप में रहता है, वैसे निन्दा सत्कार में समभावयुक्त ( उच्चोसिय-सुनिम्मलं व आयंस-मंडल तलं व ) अच्छा घिसा हुआ होने से अत्यन्त निर्मल दर्पण के तल की तरह ( पागड भावेण सुद्धभावे ) प्रकट भाव-निष्कपट भावसे शुद्ध हृदयवाला ( सोंडीरे कुंजरोव्व ) कुञ्जर-हाथी की तरह परीषह सैन्य के लिये शूर ( वसभेव्व जायथामे ) वृषभ के समान जात स्थाम-स्वीकार किये हुए व्रतभार के निर्वाह में समर्थ ( सीहे वा जहा मिगाहिवे ) मृगपति सिंह के जैसे ( दुप्पधरिसे होति ) परीषहरूप मृगों के लिये जो दुर्द्धर्ष होता है ( सारय सलिलं व सुद्धहियए ) शरत्काल के पानी की तरह शुद्ध हृदय वाला ( भारंडे चेव अप्पमत्ते ) और भारंड पत्ती के समान प्रमाद रहित ( खग्गि-विसाणं व एगजाते ) खड्ग-गेंडा के सींग की तरह एकभूत-रागादि के सहाय रहित ( खाणुं चेव उड्ढकाए ) स्थाणु-ठूंठ की तरह कायोत्सर्ग में शरीर को स्थिर खड़ा रखने वाला ( सुन्नागारेव्व अप्पडिकम्मे ) शून्य घरकी तरह देह की सम्भाल नहीं करने वाला ( सुन्नागारावणस्संतो ) शून्य घर या सूनी दुकान में वर्तमान-रहा हुआ ( निवाय-सरण-प्पदीवज्झाणमिव निप्पकंपे ) वायु रहित घरमें दीप की वत्ती की तरह दिव्य आदि उपसर्ग में भी शुभ ध्यानरूप कोष्टकमें अकम्प-निश्चल चित्त वृत्ति वाला ( जहा खुरो चेव एगधारे ) छुर-छूरे के जैसे विधिमार्गरूप एक धार वाला ( जहा अही चेव एगदिट्ठी ) फिर सर्प के जैसे मोक्ष साधन रूप एक दृष्टि वाला ( आगासं चेव निरवलंबे ) आकाश की तरह बाह्य आलंबन रहित ( विहगे विव सव्वओ विप्पमुक्के ) विहग-पत्ती की तरह सबसे विप्रमुक्त ( कय-पर-निलये जहा चेव उरए ) जैसे सर्प दूसरे के बनाये घरमें रहता है वैसे साधु परगृह में रहने वाला ( अप्पडिबद्धे अनिलोव्व, जीवोव्व अप्पडिहयगति ) वायु की तरह प्रतिबन्ध रहित और जीव की तरह अप्रतिहतगति-रुकावट रहित गति-वाला ( गामे गामे एगरायं ) गांव गांव में एकरात ( य ) और ( नगरे नगरे पंचरायं ) नगर नगर में पांचरात[1] ( दूइ-

१—गांव में एक रात्रि और नगर में पंच रात्रि का परिमाण पडिमधारी साधु की अपेक्षा है ।—टीका०

ज्जंते य ) विचरता–भ्रमण करता–हुआ और ( जिइंदिए ) जितेन्द्रिय ( जित-परीसहे ) परीषहों को जीतने वाला ( निब्भओ ) निर्भय ( विऊ ) विद्वान् ( सचित्ताचित्त मीसकेहिं दव्वेहिं ) सचित अचित्त व मिश्र-द्रव्यों से ( विरायंगते ) विराग प्राप्त ( संचयाओ विरए ) अतएव संग्रह से दूर ( मुत्ते ) मुक्त की तरह बन्धन रहित ( लहुके ) गौरव रहित होने से लघु–हलका ( निरवकंखे ) आकांक्षा रहित ( जीविय मरणास–विप्पमुक्के ) जीवन मरण की आशा से दूर, तथा ( धीरे ) धीर ( निस्संधि निव्वणं चरित्तं ) सन्धि चारित्र परिणाम के विच्छेद रहित, निर्दोष चरित्र को ( काएण फासयंते ) शरीर से पालन करता हुआ ( अज्झप्प ज्झाणजुत्ते ) अध्यात्म ध्यान–शुभ विचार से युक्त तथा ( निहुए ) उपशान्त कषाय वाला साधु ( एगे ) एकाकी रागादि रहित होकर ( सततं ) सदा ( धम्मं चरेज्ज ) धर्म का आचरण करे।

भाव–"सूत्र में अपरिग्रह को वृक्ष की उपमा दी गई है जो तीर्थङ्कर की आज्ञानुसार की गई निवृत्ति के विस्तार से बहुत प्रकार का है। वृक्ष के साथ अपरिग्रह की समता करते हुए उसके अङ्गों का परिचय दिया है। जैसे—अपरिग्रह-वृक्ष का सम्यक्त्व ही निर्दोष मूल है और धैर्य रूप कन्द, विनय ही चतुरस्र वेदिका और त्रिलोकी में फैला हुआ विमल यश ही बड़ा स्कन्ध है, महाव्रत ही पांच शाखायें और भावना रूप छाल है। धर्म ध्यान शुभ योग तथा ज्ञान रूप पल्लवाङ्कुर और विविध गुण ही अपरिग्रह वृक्ष के फूल हैं। शील उसकी सुगन्धि और अनास्रव ही फल है। कर्म बन्ध से मुक्ति इसके बीजों का सार है। इस प्रकार मेरु की चूलिका के समान यह मोक्ष मार्ग का शिखर भूत अपरिग्रह अन्तिम संवरद्वार है। अपरिग्रहव्रत की यह मर्यादा है कि ग्राम आदि में रहा हुआ कोई भी पदार्थ थोड़ा या बहुत, छोटा या बड़ा द्रव्य मात्र मन से भी ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसे चांदी सोना व दासी दास आदि निर्जीव या सजीव द्रव्यों को, तथा लोह आदि धातु एवं विविध प्रकार के पात्र जो अधिक मूल्य वाले और दूसरे के चित्त की आसक्ति एवं लोभ को उत्पन्न करने वाले हैं। उनका सञ्चय करना योग्य नहीं है और पुष्प फल आदि वनस्पति तथा १७ प्रकार के धान्यों का भी औषध भैषज और भोजन के लिये साधु को संग्रह करना योग्य नहीं है। क्योंकि अनन्त ज्ञानी तीर्थंङ्कर देव ने ज्ञान बल से इस पुष्प आदिके समूहको त्रस जीवोंकी उत्पत्तिका स्थान कहा है और किसी योनिका विनाश

करना ठीक नहीं है। इसलिये प्रधान साधु इसका वर्जन करते हैं। फिर जो भी ओदन आदि निर्जीव द्रव्य उपाश्रय में लाये गये या गृहस्थ के घर या जंगल में रक्खे हैं, क्रिया पात्र साधु को उन द्रव्यों का भी सञ्चय नहीं करना चाहिए। फिर जो आहार आदि उद्दिष्ट, स्थापित तथा मोदकादि रूप से साधु के लिये बनाया गया है; नीचे गिरता हुआ या साधु के लिये अन्धेरे से बाहर लाया हुआ एवं श्रमण या भिखारी के लिये बनाया गया है। उधार लाया हुआ, मिश्र, क्रीतकृत, प्राभृत, और दान पुण्य के लिये निकाला हुआ, तथा जो पश्चात्कर्म आदि अन्य दोषों से युक्त है। वह आहार तिथि, यज्ञ तथा उत्सव के प्रसङ्गों में उपाश्रय के भीतर या बाहर साधु के लिए रक्खा हो तो हिंसा रूप दोष वाले उस आहारादि को व्रती साधु ग्रहण नहीं करे। तब फिर कैसे आहार आदि को ग्रहण करना योग्य है, इसको दिखाते हैं-'जो पिण्डैषणा के ११ उद्देशों से शुद्ध और खरीदना १, खरीदवाना २, एवं खरीदने वाले को अनुमोदन करना ३, ऐसे हिंसा करना ४, कराना ५, व करने वाले का अनुमोदन करना ६, पकाना ७, दूसरे से पकवाना ८, और पकाते को अच्छा जानना ९, इन नव कोटियों से शुद्ध हो। एषणा के दश दोषों से रहित तथा जो उद्गम आदि एषणा से शुद्ध है। चेतनता से रहित और प्रासुक तथा संयोग आदि मंडल दोष से जो रहित है, प्रतिदिन ऐसी प्रासुक भिक्षा का ग्रहण करना चाहिए। वह भी केवल वेदना आदि छः कारणों से जीव रक्षा के लिए ग्रहण करे। फिर क्रिया पात्र साधु को अनेक प्रकार के वात आदि से होने वाले रोगातङ्क उत्पन्न हो जाय तो भी अपने व परके लिये औषध भेषज तथा भक्त पान रात्रि में पास रखना नहीं कल्पता।

फिर पात्र धारी साधु को भाजन आदि उपकरण होते, वे भी सहेतुक होते हैं। उपकरण और उनके धारण करने की विधि बताते हैं। जैसे—पात्र १, पात्र बन्ध २, पात्र पोंछने का वस्त्र ३, पात्र स्थापन-मण्डल ४, पटल तीन ५, रजस्त्राण ६ और गोच्छक-पूंजनी ७, प्रच्छादन के वस्त्र ८, रजो हरण ९, चोल पट्टक १०, और मुख वस्त्रिका आदि उपकरण भी संयम की रक्षा के लिये तथा वातादि कष्ट से देह के संरक्षण के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए, और रात दिन सदा प्रति लेखन आदि क्रिया में अप्रमत्त होकर निरन्तर भाजनादि को रखना एवं ग्रहण करना योग्य है। इस प्रकार जो संयमी विमुक्त आदि १४ विशेषण युक्त हैं वही साधु श्रुत

वज्जंते य ) विचरता-भ्रमण करता-हुआ और ( जिंतिंदिए ) जितेन्द्रिय ( जित-परी सहे ) परीषहों को जीतने वाला ( निब्भओ ) निर्भय ( विऊ ) विद्वान् ( सचित्ता चित्त मीसकेहिंदव्वेहिं ) सचित अचित्त व मिश्र-द्रव्यों से ( विरायंगते ) विराग प्राप्त ( संचयाओ विरए ) अतएव संग्रह से दूर ( मुत्ते ) मुक्त की तरह बन्धन रहित ( लहुके ) गौरव रहित होने से लघु-हल्का ( निरवकंखे ) आकांक्षा रहित ( जीविय मरणास-विप्पमुक्के ) जीवन मरण की आशा से दूर, तथा ( धीरे ) धीर ( निस्संधि निव्वणं चरित्तं ) सन्धि चारित्र परिणाम के विच्छेद रहित, निर्दोष चरित्र को ( काएण फासयंते ) शरीर से पालन करता हुआ ( अज्झप्प ज्झाणजुत्ते ) अध्यात्म ध्यान-शुभ विचार से युक्त तथा ( निहुए ) उपशान्त कषाय वाला साधु ( एगे ) एकाकी रागादि रहित होकर ( सततं ) सदा ( धम्मं चरेज्ज ) धर्म का आचरण करे।

भाव-"सूत्र में अपरिग्रह को वृक्ष की उपमा दी गई है जो तीर्थङ्कर की आज्ञानुसार की गई निवृत्ति के विस्तार से बहुत प्रकार का है। वृक्ष के साथ अपरिग्रह की समता करते हुए उसके अङ्गों का परिचय दिया है। जैसे—अपरिग्रह-वृक्ष का सम्यक्त्व ही निर्दोष मूल है और धैर्य रूप कन्द, विनय ही चतुरस्र वेदिका और त्रिलोकी में फैला हुआ विमल यश ही बड़ा स्कन्ध है, महाव्रत ही पांच शाखायें और भावना रूप छाल है। धर्म ध्यान शुभ योग तथा ज्ञान रूप पल्लवाङ्कुर और विविध गुण ही अपरिग्रह वृक्ष के फूल हैं। शील उसकी सुगन्धि और अनास्रव ही फल है। कर्म बन्ध से मुक्ति इसके बीजों का सार है। इस प्रकार मेरु की चूलिका के समान यह मोक्ष मार्ग का शिखर भूत अपरिग्रह अन्तिम संवरद्वार है। अपरिग्रहव्रत की यह मर्यादा है कि ग्राम आदि में रहा हुआ कोई भी पदार्थ थोड़ा या बहुत, छोटा या बड़ा द्रव्य मात्र मन से भी ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसे चांदी सोना व दासी दास आदि निर्जीव या सजीव द्रव्यों को, तथा लोह आदि धातु एवं विविध प्रकार के पात्र जो अधिक मूल्य वाले और दूसरे के चित्त की आसक्ति एवं लोभ को उत्पन्न करने वाले हैं। उनका सञ्चय करना योग्य नहीं है और पुष्प फल आदि वनस्पति तथा १७ प्रकार के धान्यों का भी औषध भैषज और भोजन के लिये साधु को संग्रह करना योग्य नहीं है। क्योंकि अनन्त ज्ञानी तीर्थंङ्कर देव ने ज्ञान बल से इस पुष्प आदिके समूहको त्रस जीवोंकी उत्पत्तिका स्थान कहा है और किसी योनिका विनाश

करना ठीक नहीं है। इसलिये प्रधान साधु इसका वर्जन करते हैं। फिर जो भी ओदन आदि निर्जीव द्रव्य उपाश्रय में लाये गये या गृहस्थ के घर या जंगल में रक्खे हैं, क्रिया पात्र साधु को इन द्रव्यों का भी सञ्चय नहीं करना चाहिए। फिर जो आहार आदि उद्दिष्ट, स्थापित तथा मोदकादि रूप से साधु के लिये बनाया गया है, नीचे गिरता हुआ या साधु के लिये अन्धेरे से बाहर लाया हुआ एवं श्रमण या भिखारी के लिये बनाया गया है। उधार लाया हुआ, मिश्र, क्रीतकृत, प्राभृत, और दान पुण्य के लिये निकाला हुआ, तथा जो पश्चात्कर्म आदि अन्य दोषों से युक्त है। वह आहार तिथि, यज्ञ तथा उत्सव के प्रसङ्गों में उपाश्रय के भीतर या बाहर साधु के लिए रक्खा हो तो हिंसा रूप दोष वाले उस आहारादि को व्रती साधु ग्रहण नहीं करे। तब फिर कैसे आहार आदि को ग्रहण करना योग्य है, इसको दिखाते हैं-'जो पिण्डैषणा के ११ उद्देशों से शुद्ध और खरीदना १, खरीदवाना २, एवं खरीदने वाले को अनुमोदन करना ३, ऐसे हिंसा करना ४, कराना ५, व करने वाले का अनुमोदन करना ६, पकाना ७, दूसरे से पकवाना ८, और पकाते को अच्छा जानना ९, इन नव कोटिओं से शुद्ध हो। एषणा के दश दोषों से रहित तथा जो उद्गम आदि एषणा से शुद्ध है। चेतनता से रहित और प्रासुक तथा संयोग आदि मंडल दोष से जो रहित है, प्रतिदिन वैसी प्रासुक भिक्षा का ग्रहण करना चाहिए। वह भी केवल वेदना आदि छः कारणों से जीव रक्षा के लिए ग्रहण करे। फिर क्रिया पात्र साधु को अनेक प्रकार के वात आदि से होने वाले रोगातङ्क उत्पन्न हो जाय तो भी अपने व परके लिये औषध भेषज तथा भक्त पान रात्रि में पास रखना नहीं कल्पता।

फिर पात्र धारी साधु को भाजन आदि उपकरण होते, वे भी सहेतुक होते हैं। उपकरण और उनके धारण करने की विधि बताते हैं। जैसे—पात्र १, पात्र बन्ध २, पात्र पोंछने का वस्त्र ३, पात्र स्थापन-मण्डल ४, पटल तीन ५, रजस्त्राण ६ और गोच्छक-पूंजनी ७, प्रच्छादन के वस्त्र ८, रजो हरण ९, चोल पट्टक १०, और मुख वस्त्रिका आदि उपकरण भी संयम की रक्षा के लिये तथा वातादि कष्ट से देह के संरक्षण के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए, और रात दिन सदा प्रतिलेखन आदि क्रिया में अप्रमत्त होकर निरन्तर भाजनादि को रखना एवं ग्रहण करना योग्य है। इस प्रकार जो संयमी विमुक्त आदि १४ विशेषण युक्त है वही साधु श्रुत

धारक ऋजु व संयमी है। सुसाधु आदि अनेक विशेषण युक्त यावत् वह कर्म लेप से रहित होता है। साधु की ३१ उपमायें जैसे–१ निर्मल कांसी के भाजन की तरह स्नेह जल से अलिप्त, २ शङ्ख के जैसे उज्ज्वल याने राग द्वेष आदि रंग रहित, ३ कूर्म–कच्छप की तरह गुप्तेन्द्रिय, ४ उत्तम सोना जैसे शुद्ध स्वरूप वाला, ५ पद्म पत्र की तरह काम रूप मल के लेप रहित, ६ चन्द्र जैसे सौम्य, ७ सूर्य जैसे तेजस्वी, ८ मेरु पर्वत जैसे अचल, ९ अक्षोभ्य सागर के समान विचारों की चंचलता रहित, १० पृथ्वी के समान सबके स्पर्श को सहने वाला, ११ भस्म से ढकी हुई आग के समान बाहरी शरीर से फीका व भीतर से तेजस्वी, १२ जाज्वल्यमान वह्नि जैसे तेजस्वी १३ गोशीर्ष चन्दन के जैसे शीतल व शील की सुवास वाला, १४ जातिमान् गज के समान परीषह सहने में शूर, १५ ह्रद जैसे सम स्वभाव वाला, १६ स्वच्छ दर्पण जैसे प्रकट शुद्ध स्वभाव वाला, १७ धोरी बैल के जैसे उठाये हुए कार्य भार का निर्वाह करने वाला, १८ सिंह के जैसे दूसरे से पराभव नहीं पाने वाला, १९ शरत्काल के पानी के समान निर्मल, २० भारण्ड पक्षी जैसे सदा चकित रहता है वैसे प्रमाद रहित, २१ गैंडे के सींग की तरह एक-राग द्वेष रहित, २२ स्थाणु–खूंटे के जैसे ऊंचे–सीधे ध्यान में खड़े, २३ शून्य घर के जैसे शोभा संस्कार रहित, २४ निर्वात घर के दीपक के जैसे ध्यान में अकम्प, २५ छुरे के जैसे विधि रूप एक धार वाला २६ सर्प के जैसे मोक्ष मार्ग रूप एकलक्ष्यवाला, २७ आकाश के जैसे बाहरी आलम्बन रहित, २८ पक्षी के जैसे संग्रह रहित या सर्वत्र गति वाला, २९ सर्प के जैसे पर घर में रहने वाला, ३० वायु के जैसे प्रतिबन्ध रहित, ३१ जीव के जैसे निर्बाध सर्वत्र गति वाला, इन इकतीस उपमाओं से युक्त साधु प्रति ग्राम में एक रात और नगर में पांच रात के प्रमाण से वास करते हुए भ्रमण करता है। जितेन्द्रिय, जित परीषह, निर्भय यावत् जीवन की आशा व मरण भय से दूर मुनि निर्दोष चरित्र को शरीर से पालन करता हुआ निरन्तर आत्म ध्यान से युक्त स्थिरमति होकर राग द्वेष रहित धर्म का आचरण करे।

मूल–"इमं च परिग्गह-वेरमण–परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं, पेच्चाभाविकं, आगमेसिभद्दं, सुद्धं, नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाण विओसमणं, तस्सइमा पंचभावणाओ चरिमस्स

चयस्स होंति परिग्गह वेरमण–रक्खणट्ठयाए । पढमं–सोइंदिएण सोच्चा सद्दाइं मणुन्नभद्दगाइं, किंते !, वरमुरय–मुइंग–पणव–दद्दुर–कच्छभि–वीणा–विपंची–वल्लयि–वद्धीसक–सुघोसनंदि–सूसर–परिवादिणि–वंसतूणक पव्वक–तंती–तल–ताल–तुडिय–निग्घोसगीयवाइयाइं, नड–नट्टक–जल्ल–मल्ल मुट्ठिक–वेलंबक–कहक–पवक–लासग–आइक्खक–लंख–मंख–तूणइल्ल–तुंव वीणिय–तालायर–पकरणाणि य बहूणि, महुरसर–गीत–सुस्सराति, कंची मेहला–कलावपत्तरक–पहेरक–पायजालग–घंटिय– खिंखिणि–रयणोरुजालिय–छुद्दिय–नेउर–चलण–मालिय–कणग–नियल– जाल–भूसणसद्दाणि, लीलाचंकम्ममाणाणुदीरियाइं, तरुणीजणहसिय–भणिय–कलरिभित–मंजुलाइं, गुणवयणाणि व बहूणि महुरजणभासियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु मणुन्नभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं, न विनिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न तुसियव्वं, न हसियव्वं, न सइं च मइं च तत्थकुज्जा । पुणरवि सोइंदिएण सोच्चासद्दाइं अमणुन्न–पावकाइं, किंते ? अक्कोस–फरुस–खिसण–अवमाणण–तज्जण–निब्भंछण–दित्तवयण–तासण–उक्कूजिय–रुन्न–रडिय– कंदिय निग्घुट्ठरसिय–कलुणविलवियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु अमणुन्न पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं न दुगुंछावत्तियाएलब्भा उप्पाएउं । एवं सोतिंदिय–भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नाऽमणुन्न–सुब्भि–दुब्भिरागदोस–पणिहियप्पा साहू, मण–वयण–कायगुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरेज्ज धम्मं ॥ १ ॥

छाया–"इदञ्च परिग्रह विरमण–परिरक्षणार्थं प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभाविकम्, आगमिष्यद्भद्रं, शुद्धं, न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तरं सर्वदुःखपापानां व्युपशमनं, तस्येमाः पञ्चभावनाश्चरमस्य व्रतस्य भवन्ति परिग्रह-विरमण-रक्षणार्थम् ।

प्रथमं-श्रोत्रेन्द्रियेण श्रुत्वा शब्दान् मनोज्ञभद्रकान् । कांस्तान् ?-वर मुरज-मृदङ्ग-पणव-दर्दु रट-कच्छभी-वीणा-विपञ्ची-वल्लकी-बद्धीसक-सुघोष-नन्दी-सूसर परि-वादिनी-वंश-तूणक-पर्वक-तन्त्री-तल-ताल-तुर्य निर्घोष-गीतवाद्यम्, नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक- विडम्बक-कथक- प्लवक- लासकाऽऽचक्षक-( आख्यायक )-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बिवीणिक-तालाऽऽचर-प्रकरणानि च बहूनि, मधुरस्वरगीत सुस्वराणि, काञ्ची-मेखलाकलाप-प्रतरक-प्रहेरक- पादजालक-घण्टिका-किङ्किणी-रत्नोरुजालिका-क्षुद्रिका-नूपुर-चलनमालिका-कनक-निगड जालक-भूषणशब्दान्, लीलाचङ्क्रम्यमाणोदीरितान् तरुणीजन-हसित-भणित-कलरिभित-मञ्जुलान्, गुण वचनानि च बहूनि मधुरजन भाषितानि, अन्येषु चैवमादिकेषु शब्देषु मनोज्ञकेषु न तेषु श्रमणेन सञ्जितव्यम्, न रक्तव्यम्, न गर्द्धितव्यम, न मूर्च्छितव्यम, न विनि-घातमापत्तव्यम्, न लोभितव्यम्, न तोष्टव्यम्, न हसितव्यम्, न स्मृतिश्चमतिश्च तत्र कुर्यात्। पुनरपि श्रोत्रेन्द्रियेण श्रुत्वा शब्दान् अमनोज्ञपापकान्, कांस्तान् ?-आक्रोश-परुष-खिंसणाऽवमानन-तर्जन-निर्भर्त्सन-दीप्तवचन त्रासनोत्कूजित-रुदि-ताऽऽरटित-क्रन्दित-निर्घुष्ट-रसित-करुण-विलपितान्, अन्येषु चैवमादिकेषु शब्दे ष्वमनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, न हीलितव्यं, न निन्दितव्यं, न खिंसि-तव्यं, न छेत्तव्यं न भेत्तव्यं, न हन्तव्यं, न जुगुप्सा-वृत्तिका लभ्योत्पादयितुम्। एवं श्रोत्रेन्द्रियभावना-भावितो भवत्यन्तरात्मा मनोज्ञाऽमनोज्ञ-सुरभि-दुरभि-रागद्वेष प्रणिहितात्मा साधुर्मनो-वचन-कायगुप्तः संवृतः प्रणिहितेन्द्रियश्चरेद्धर्मम् ॥ १ ॥

अन्व०-"( च ) और ( परिग्गहवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ) परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये ( भगवया ) प्रभु महावीर ने ( इमं पावयणं ) यह प्रवचन ( सुकहियं ) अच्छी तरह कहा है ( अत्तहियं, पेच्चा भाविकं ) जो आत्महितकारी व परलोक में शुभ का कारण है ( आगमेसि भद्दं ) भविष्य में कल्याण कारक ( सुद्धं ) शुद्ध ( नेयाउयं ) न्याययुक्त ( अकुडिलं ) कुटिलता रहित ( अणुत्तरं ) सर्व श्रेष्ठ और ( सव्वदुक्ख-पावाण ) सब दुःख एवं पापों का ( विओसमणं ) उप-शमन करने वाला है ( तस्स चरिमस्स वयस्स ) उस अन्तिम अपरिग्रह व्रत की ( इमा पंच भावना ) ये पांच भावनायें ( परिग्गहवेरमण-रक्खणट्ठयाए ) परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये ( होंति ) हैं।

जैसे-( पढमं ) प्रथम भावना-( सो इंदिएण ) श्रोत्रेन्द्रिय से ( मणुन्नभद्दगाइं )

"मनोज्ञता के कारण सुन्दर (सद्दाइं) शब्दों को (सोच्चा) सुनकर, (किं ते ?) कौन से वे शब्द हैं ?

उत्तर-( वर मुरय- मुइंग- पणव- दद्दुर- कच्छभि- वीणा- विपंची-वल्लकि-वद्धीसक- सुघोसनंदि- सूसर- परिवादिणि-वंस-तूणक पव्वक-तंती-ताल-तुडिय-निग्घोस गीयवाइयाइं ) प्रधान मुरज-मर्दल मृदङ्ग, पणव-छोटा पडह, दर्दुर-चर्म से बंधे हुए मुख वाले कलस जैसा वाद्य विशेष, कच्छभि-वाद्य विशेष, वीणा, विपंची और वल्लकी-एक प्रकार की वीणा, वद्धीसक-एक प्रकार का वाद्य, सुघोषा-घण्टा, नन्दी-बारह प्रकार के तुर्य[1] का निर्घोष, सुसर परिवादिनी-वीणा वंश-बांसरी, तूणक और पर्वक-वाद्य का एक प्रकार, तन्त्री-वीणा विशेष, तल-हस्त तल, ताल-कांस्य ताल इन सब वाद्यों के निर्घोष तथा सामान्य गीत और वाद्य को (य) और (नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिक-वेलंबक-कहक पवक-लासग-आइक्खक-लंख-मंख-तूण इल्ल-तुंब वीणिय-तालायर पकरणाणि ) नट, नर्तक, जल्ल-बांस या डोरी पर खेलने वाले, मल्ल, मौष्टिक मल्ल, विडम्बक-विदूषक, कथा करने वाला, प्लवक-उछलने वाला, रास गाने वाले तथा पूर्वोक्त अर्थ वाले, लख, मंख, तूण इल्ल, तुंबवीणिक और तालचर इनसे किये नाटक आदि प्रकरणों को तथा ( बहुणि महुर-सर-गीत सुस्सराति ) बहुत से मधुर ध्वनि वाले गायकों के सुस्वर गीतों को 'सुनकर' फिर ( कंची-मेहला-कला वपत्तरक-पहेरक पाय जालक-घंटिय- खिंखिणि-रयणोरुजालिय-छुद्दिय-नेउर-चलण मालिय-कणग नियल-जाल भूसण-सद्दाणि ) कांची-कमर का भूषण कंदोरा, मेखला-उसी का एक भेद, कलापक-गरदन का आभरण, प्रतरक और प्रहेरक-आभरण विशेष, पाद जालक-पांव के नूपुर आदि आभरण, घण्टिका-घुघरू, खिंखिनी छोटी घुघुरी वाला भूषण, रत्नोरुजालक-रत्न सम्बन्धी जंघा के आभरण, क्षुद्रिका-एक प्रकार का आभरण नेउर-नेपुर, चरण मालिका तथा कनक निगड-पैर-के आभरण विशेष, और जाल भूषण इन सबके शब्दों को जो ( लील चंकम्म माणाणू-दीरियाइं ) लीला से चलती हुई स्त्रियों के गमन से उत्पन्न हुए हैं, (तरुणी

१. तूर्य के बारह प्रकार—(१) भंभा, (२) मृदंग, (३) मार्दल (४) हुडुक्क, (५) तिलिमा, (६) करड, (७) कंसाल (८) काहल, (९) वीणा, (१०) वंश, (११) शंख, (१२) पणवक।

जण- हसिय- भणिय- कलरिभित- मंजुलाइं ) तरुणी स्त्रियों के हास्य वचन, तथा स्वर के घोलना युक्त मधुर व सुन्दर शब्दों को ( गुणवयणाणि य बहूणि महुरजण-भासियाइं ) अथवा मधुर जन-प्रेमी जनों से बोले हुए बहुत से स्तुति वचनों को ( अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु मणुन्न-भद्दएसु ) और अन्य इस प्रकार के मनोहरता से शुभ रूप जो विशिष्ट शब्द हैं ( न तेसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शब्दों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए ( न रज्जियव्वं ) राग नहीं करना चाहिए ( न गिज्झियव्वं ) गृद्धि-नहीं मिलने वाले शुभ शब्दों को आकांक्षा नहीं करनी चाहिए ( न मुज्झियव्वं ) न बेभान होकर मोह करना चाहिए, ( न विनिग्घायं आवज्जियव्वं ) न उसके लिये अपना व परका नाश करना चाहिए ( न लुभियव्वं ) न लोभ करना चाहिए ( न तुसियव्वं ) प्राप्ति होने पर प्रसन्न भी नहीं होना चाहिए ( न हसियव्वं ) न विस्मय से हास्य करना चाहिए ( न सइंच मइंच तत्थकुज्जा ) और न वहां-उन शब्दों में-स्मृति या मति अर्थात् स्मरण या उनका विचार भी नहीं करना चाहिए ( पुणरवि ) फिर भी-शब्द गत विचार को कहते हैं ( सोइंदिएण अमणुन्न पावकाइं सद्दाइं सोच्चा ) श्रोत्र इन्द्रिय से अमनोज्ञ और बुरे शब्दों को सुनकर [ रोष आदि नहीं करना ] ( किंते ? ) कौन से वे अमनोज्ञ शब्द हैं ?,

उत्तर-( अक्कोस-फरुस-खिंसण-अवमाणण- तज्जण- निब्भंछण- दित्तवयण-तासण-उक्कूजिय-रुन्न-रडिय-कंदिय-निग्घुट्ठ रसिय-कलुण-विलवियाइं ) आक्रोश मरजा आदि प्रकार की गाली, परुष वचन-मूर्ख आदि कहना, खिंसन-निन्दा, अपमान और तर्जना-भय सूचक शब्द, निर्भर्त्सना-सामने से हट जा इत्यादि तिरस्कार वचन दीप्त-क्रोध युक्त, त्रासकारी, उत्कूजित-अव्यक्त जोर की ध्वनि, रोने के शब्द, रटित-रडने के शब्द, क्रन्दन-वियोग वगैरह का आक्रन्दन, निघुष्ट-निर्घोष रूप, रसित-जानवर के समान चीत्कार, करुणा उत्पन्न करने वाले और विलाप रूप, ( अन्नेसु य एवमदिएसु सद्देसु अमणुन्न पावएसु ) और इस प्रकार के अन्य अमनोज्ञ जो शब्द हैं ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए ( न हीलियव्वं) हीलना नहीं करनी चाहिए ( न निंदियव्वं ) निन्दा नहीं करनी चाहिए ( न खिंसियव्वं ) लोक समक्ष उनको बुरा नहीं कहना चाहिए ( न छिंदियव्वं ) अमनोज्ञ शब्द के कारण द्रव्य का छेदन नहीं करना चाहिए

(नभिंदियव्वं) न उसका भेदन-दो भाग करना चाहिए (न वहेयव्वं) न वध-हनन-करना चाहिए (न दुगुंछा वत्तियाए लब्भा उप्पाएउं) अपने या दूसरे के हृदय में जुगुप्सा उत्पन्न करनी भी योग्य नहीं है (एवं) इस प्रकार (सोइंदिय भावणा भावितो) श्रोत्र इन्द्रिय की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (मणुन्नाऽमणुन्नऽ सुब्भि-दुब्भि-राग-दोस-पणिहियप्पा) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप वाले शुभाऽशुभ शब्दों में राग द्वेष के प्रणिधान-संवर-वाला-साधु (मण-वयण-कायगुत्ते) मन वाणी और काय से गुप्त (संवुडे) संवरवान् (पणिहितिंदिए) गुप्त इन्द्रिय वाला होकर (चरेज्ज धम्मं) धर्म का आचरण करे ॥ १ ॥

मूल—"बितियं-चक्खिंदिएण पासिय रूवाणि मणुन्नाइं भद्दकाइं, सच्चित्ताऽचित्त-मीसकाइं, कट्ठे पोत्थे य, चित्तकम्मे, लेप्पकम्मे, सेले य, दंतकम्मे य, पंचहिं वण्णेहिं अणेग संठाण संठियाइं, गंथिम वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि य मल्लाइं बहुविहाणि य अहियं नयण-मणसुहकराइं, वण संडे पव्वते य गामागरनगराणि य खुद्दि यपुक्खरिणि-वावी-दीहियगुंजालिय- सरसर पंतिय-सागर-बिल पंतिय-खादिय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे, अणेग- सउणगण- मिहुणविचरिए, वर मंडव-विविह-भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्पवा वसह-सुकय सयणासण-सीय-रह-सयड-जाण-जुग्ग-संदण-नर नारिगणे य, सोम पडिरूवदरिसणिज्जे, अलंकितविभूसिते, पुव्वकयतवप्पभाव-सोहग्ग संपउत्ते, नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहक-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिय-तालायर पकरणाणि य बहूणि सुकरणाणि, अन्नेसु य एवमादिएसु रूवेसु मणुन्नभद्दएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, जाव न सइंच मइंच तत्थकुज्जा। पुणरवि चक्खिंदिएण पासिय रूवाइं अमणुन्नपावकाइं, किंते?—गंडि-कोढिक-कुणि-उदरि कच्छुल्ल-पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण-अंधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पि-

सल्लग–वाहिरोग-पीलियं, विगयाणि य मयक कलेवराणि, सकिमिण कुहियं च दव्वरासिं, अन्नेसु य एवमादिएसु अमणुन्न पावतेसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, जाव न दुगुंछावत्तियावि लब्भा उप्पातेउं । एवं चक्खिदिय भावणा-भावितो भवति अंतरप्पा जाव चरेज्ज धम्मं ॥ २ ॥

ततियं घाणिंदिएण अग्घाइय–गंधातिं मणुन्न भद्दगाइं, किंते ?–जलय थलय-सरस-पुप्फ–फल–पाण–भोयण–कुट्ठ-तगर-पत्त-चोय-दमणक –मरुय-एलारस–पिक्कमंसि–गोसीस–सरसचंदण–कप्पूर– लवंग– अगर–कुंकुम-कक्कोल उसीर–सेय चंदण–सुगंध–सारंग–जुत्ति–वर धूववासे, उउय पिंडिम णिहारिम–गंधिएसु अन्नेसु य एवमादिएसु गंधेसु मणुन्न–भद्दएसु–न तेसु समणेण सज्जियव्वं, जाव न सतिं च मइं च तत्थकुज्जा । पुणरवि घाणिंदिएण अग्घातिय गंधाणि अमणुन्न पावकाइं । किंते ! अहिमड·अस्समड-हत्थिमड–गोमड–विग-सुणग–सियाल–मणुय–मज्जार–सीह दीविय–मय-कुहिय-विणट्ठ-किविण-बहुदुरभि-गंधेसु अन्नेसु य एवमादिएसु गंधेसु अमणुन्न-पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, जाव पणि हिय-पंचिंदिए चरेज्ज धम्मं ॥ ३ ॥

चउत्थं-जिब्भिदिएण साइय रसाणि उ मणुन्नभद्दकाइं, किंते !–उग्गाहिम-विविह-पाण भोयण-गुलकय-खंड कय तेल्ल-घयकय-भक्खेसु बहुविहेसु लवणरस-संजुत्तेसु महु-मंस-बहुप्पगार-मज्जिय- निट्ठाणग- दालियंब- सेहंब दुद्ध-दहि-सरय-मज्ज-वर वारुणी-सीहु-काविसायण-सायट्ठारस- बहुप्पगारेसु भोयणेसु य मणुन्न-वन्न-गंध-रस-फास-बहु दव्व-संभितेसु अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु, मणुन्न-भद्दएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, जाव न सइं च मइं च तत्थ कुज्जा । पुणरवि जिब्भिदिएण साथिय रसातिं अमणुन्नपावगाइं, किंते !–अरस-विरस-सीय–लुक्ख-णिज्जप्प-पाण-भोयणाइं, दोसीण-वावन्न

कुहिय-पूइय-अमणुन्न-विणट्ठ-पसूय- बहुदुब्भिगंधियाइं, तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल रस-लिंडनीरसाइं, अन्नेसु य एवमाइएसु रसेसु अमणुन्न-पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, जावचरेज्जधम्मं ॥ ४ ॥

छाया-"द्वितीयं चक्षुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि मनोज्ञानि भद्रकाणि सचित्ताऽचित्त-मिश्रकाणि काष्ठे पुस्ते च चित्रकर्मणि, लेप्यकर्मणि, शैले च दन्तकर्मणि पञ्चभिर्वर्णैरनेक संस्थान-संस्थितानि, ग्रन्थिम-वेष्टिमपूरिम-संघातिमानि च माल्यानि बहुविधानि, चाधिकं नयनमनः सुखकराणि वनखण्डान् पर्वतांश्च ग्रामाऽऽकर-नगराणि च, क्षुद्रिका-पुष्करणी-वापी-दीर्घिका-गुञ्जालिका-सरः-सर पंक्तिका-सागर बिल पंक्तिका-खातिका-नदी-सरस्तटाक-वप्रिणी-फुल्लोत्पल- पद्मपरिमण्डिताऽभिरामाणि, अनेक-शकुनगण-मिथुन विरचितान्, वरमण्डप-विविध-भवन-तोरण चैत्य-देवकुल-सभा-प्रपाऽवसथ-शयनाऽऽसन शिबिका-रथ-शकट-यान-युग्य-स्यन्दन-नरनारीगणांश्च दर्शनीयान्, अलंकृत-विभूषितान्, पूर्वकृत-तपःप्रभाव-सौभाग्य-सम्प्राप्तान्, नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विडम्बक-कथक-प्लवक-लासकाऽऽख्यायक-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-तालाचर-प्रकरणानि च बहूनि सुकरणानि, अन्येषु चैवमादिकेषु रूपेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सज्जितव्यं; न रक्तव्यं, यावन्न स्मृतिञ्च मतिञ्च तत्र कुर्यात्। पुनरपि चक्षुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि-अमनोज्ञपापकानि, कानितानि ?-गण्डि-कुष्ठि-कुणिदरि-कच्छुल्ल-कण्डूतिमच्छ्लीपद-कुब्ज-पंगु वामनान्धकैकचक्षु-विनिहताक्ष-सर्पिशल्यक- व्याधिरोगपीडितानि, विकृतानि च मृतक कलेवराणि, सकृमि-कुथित-द्रव्यराशिम् अन्येषु चैवमादिकेष्व मनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावन्नजुगुप्सावृत्तिरपि लभ्योत्पादयितुम्। एवं चक्षुरिन्द्रिय भावना-भावितो भवत्यन्तरात्मा यावच्चरेद्धर्मम्।

तृतीयं-घ्राणेन्द्रियेणाघ्रायगन्धान् मनोज्ञभद्रकान्, कांस्तान् ?-जलज-स्थलज-सरस पुष्प-फल-पान-भोजन-कुष्ठ-तगर-पत्र- त्वक्-दमनक- मरुकैलारस-पक्वमांसी-गोशीर्ष-सरस चन्दन-कर्पूर-लवङ्गागरु-कुङ्कुम-कक्कोलोशीर-श्वेत चन्दन-सुगन्ध-सारङ्ग-युक्ति-वर धूपवासान् ऋतुज पिण्डिम-निर्हारिम-गान्धिकेषु अन्येषु चैवमादिकेषु गन्धेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सज्जितव्यं, यावन्न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात्। पुनरपि घ्राणेन्द्रियेण आघ्राय गन्धान् अमनोज्ञ पापकान्, कांस्तान् ? अहिमृताऽश्वमृत-हस्तिमृत-गोमृत-वृक-शुनक-शृगाल-मनुज-मार्जार-सिंह-द्वीपिक

मृत-कुथित-विनष्ट-कृमि-बहुदुरभिगन्धेषु अन्येषु चैवमादिकेषु गन्धेषु अमनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावत् प्रणिहित-पञ्चेन्द्रियश्चरेद्धर्मम् ।। ३ ।।

चतुर्थं-जिह्वेन्द्रियेण स्वादयित्वा रसांस्तु मनोज्ञभद्रकान्, कांस्तान् ?-अवगाहिम-विविध-पान भोजन-गुडकृत-खण्डकृत-तैलघृत-कृतभक्ष्येषु बहुविधेषु, लवण रससंयुक्तेषु, मधु-मांस-बहुप्रकार-मज्जिक-निष्ठानक-दालिकाम्ल, सैन्धाम्ल, दुग्ध दधि-सरक-मद्य-वर वारुणी-सीधु-कापिशायन-शाकाष्टादश-बहुप्रकारेषु-भोजनेषु च, मनोज्ञ वर्ण-गंध रस-स्पर्श बहुद्रव्य संभृतेषु, अन्येषु चैव मादिकेषु रसेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सज्जितव्यं, यावत् न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात्। पुनरपि जिह्वेन्द्रियेण स्वादयित्वा रसान् मनोज्ञपापकान्, कांस्तान् ? अरस विरस-शीत-रुक्ष-निर्याप्यपान-भोजनानि, दोषान्न-व्यापन्न-कुथित-पूतिकाऽमनोज्ञ विनष्टप्रसूत-बहुदुरभिगन्धान्, तिक्त-कटुक-कषायाम्ल-रस-लिन्द्रनीरसान्, अन्येषु चैवमादिकेषु रसेषु अमनोज्ञपापेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावच्चरेद्धर्मम् ।। ४ ।।

अन्व० ( बितियं ) दूसरी भावना-चक्षुरिन्द्रिय संवर रूप, जैसे-( चक्खिदिएण ) चक्षु इन्द्रिय से ( मणुन्नाइं ) मनोज्ञ ( भद्दकाइं ) सुन्दर-शुभ ( सचित्ताऽचित्त-मीसकाइं ) सचित्त, अचित्त तथा मिश्र द्रव्य-सम्बन्धी ( रूवाणि ) रूपों को ( पासिय ) देखकर, जो रूप-( कट्ठे, पोत्थे ) काष्ठ के पटिया पर, वस्त्र पर ( य ) और ( चित्तकम्मे ) चित्रकर्म में ( लेप्पकम्मे ) गोबर मिट्टी आदि के लेप से बनाये हुए लेप्यकर्म में ( सेले य ) पत्थर पर और ( दंतकम्मे ) दांत की कोरणी में ( पंचहिं वण्णेहिं अणेग संठाण संठियाइं ) पांचवर्ण से युक्त व अनेक प्रकार के आकार वाले ( गंथिम ) गूंथकर माला की तरह बनाए हुए ( वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि ) वेष्टिम-वेष्टन से बनाये हुए, पूरिम-चिपडी आदि भरकर बनाये गये, तथा संघातिम-फूल आदि को एक दूसरे से मिलाकर उनके समूह से बनाये हुए ( य ) और ( मल्लाणि बहुविहाणि य ) बहुत प्रकार के माल्य-माला सम्बन्धी रूप, और ( अहियं नयण-मण-सुहकराइं ) नेत्र व मनको अधिक सुखकारी ( वणसंडे ) वनखंड ( पव्वतं ) पर्वत और ( गामागर-नयराणि ) ग्राम, आकर तथा नगरों को ( य ) फिर ( खुद्दिय-पुक्खरिणि-वावी-दीहिय-गुंजालिय-सर- सरपंतिय-सागर-बिलपंतिय-खादिय-नदी-सर- तलाग- वप्पिणी- फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे ) क्षुद्रिका-तलाई, पुष्करणी-कमलयुक्त वापी, वापी-चौकोण बावड़ी, दीर्घिका-लम्बी,

नोज्ञ रूप हैं ? ( गडि-कोढिक-कुणि-उदरि-कच्छुल्ल- पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण अंधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पि-सल्लग-वाहिरोग-पीलियं ) वात पित्त कफ और सन्निपात से होने वाले गंडरोग वाला-गंडमालायुक्त, कुष्ठ-अठारह प्रकार के कुष्ठ रोग वाला, कुणि-गर्भ दोष से जिसका एक हाथ और एक पैर छोटा है, उदरी जलोदर युक्त,कच्छुल्ल-खुजली के रोग वाला, पइल्ल-श्लीपद रोग वाला, कुज्ज-कूबड पंगुल-पंगु-चलने में असमर्थ, वामन अत्यन्त छोटे शरीर वाला, अन्धक-जन्मान्ध, एक चक्षु-काणा, विनिहत चक्षु जन्म के बाद किसी प्रकार के आघात से अन्धा या काणा बना हो, सर्पि शल्यक-पीठ के बलपर ससर के या लकडी के सहारे चलने वाला, अथवा पिशाच की तरह दुष्ट ग्रह से धरा हुआ तथा शूलादि शल्यवाला और व्याधि एवं रोग से पीडित, इनमें से किसी को ( विगयाणि य मयकलेवराणि) और विकृत-विगडे हुए मृतक के कलेवरों को ( सकिमिण कुहियं च दव्वरासिं ) कीडों से युक्त और सड़े हुए द्रव्य राशि को देखकर ( अन्नेसु य एवमादिएसु अमणुन्न पावतावतेसु ) और इस प्रकार के अन्य अमनोज्ञ व पापकारी जो रूप हैं ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन सब अमनोज्ञ रूपों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ( जाव न दुगुंछावतिया वि लब्भा उप्पातेउं ) यावत् स्वपर की दुगुंछावृत्ति-घृणा भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है। ( एवं चक्खिदिय भावणा भावितो ) इस प्रकार चक्षु इन्द्रिय की भावना से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला मुनि ( भवति ) होता है ( जाव चरेज्ज धम्मं ) यावत् गुप्त होकर धर्म का आचरण करे ॥ २ ॥

( ततियं ) तीसरी भावना—घ्राणेन्द्रिय संवर रूप, जैसे-( घाणिदिएण अग्घाइय गंधाति मणुन्न-भद्दगाइं ) घ्राण इन्द्रिय से मनोज्ञ व शुभ गंधों को सूंघकर ( किते ? ) वे सुगन्ध कौनसे हैं ?

उत्तर-( जलय-थलय-सरस-पुप्फ फल-पाण भोयण कुट्ठ- तगर- पत्त-चोद-दमण-क-मरुय-एलारस-पिक्क मंसि गोसीस-सरस चंदण-कप्पूर-लवंग-अगर कुंकुम-कक्कोल-उसीर-सेय चंदण सुगंध-सारंग-जुत्तिवर-धूववासे ) जल एवं

[illegible] में उत्पन्न होने वाले सरस फूल, फल, पान तथा भोजन, कुष्ठ-उत्पलकुष्ठ, तगर, ( [illegible] लपत्र, चोय-सुगन्धी त्वचा, दमनक-पुष्प विशेष, मरुक-मरुआ, एलारस-फिर ( [illegible] रस, पिक्कमंसी-पका हुआ मांसी नामक गन्ध द्रव्य, गोशीर्ष नामक पंतिय-खा। [illegible] र, लवंग-लूंग, अगर, कुंकुम, कल्लोल-गोलाकार सुगन्धि फल चुद्रिका-दवाई,

कालौर-गिरणी वनस्पति के मूल, श्वेत चन्दन, श्री खण्ड, अथवा श्वेद-सुगन्धि रस और मलयागिरी, तथा सुगन्धि युक्त प्रधान अङ्गों के योग वाला उत्तम धूप वास (उउय- पिंडिम- णिहारिमि- गंधिएसु) जो ऋतु के अनुकूल-पिण्डमय और वायु से उड़ने वाले गन्ध से सुगन्धि युक्त है (अन्नेसु य एवमादिसु गंधेसु मणुन्नभद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य मनोज्ञ तथा भद्र गंधों में (न तेसु समणेण सज्जियव्वं) इनमें साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए (जाव सतिं च मइंच तत्थ कुज्जा) यावत् वहां-उन सुगन्धिओं में स्मृति या विचार भी नहीं करना चाहिये (पुणरवि) फिर भी घ्राणेन्द्रिय के विषय को कहते हैं-(घाणिंदिएण अग्घातिय गंधाणि अमणुन्न-पावकाइं) घ्राणेन्द्रिय से अमनोज्ञ और बुरे गन्धद्रव्यों को सूंघकर (किंते ?) कौन से वे दुर्गन्धिद्रव्य ?

उत्तर-(अहिमड- अस्समड- हत्थिमड- गोमड- विग-सुणग-सियाल-मणुय-मज्जार-सीह-दीविय-मय-कुहिय-विणट्ठ-किविण-बहुदुरभिगंधेसु) सर्प का कलेवर घोड़े का कलेवर, हाथी का मृतक, गौ का कलेवर, वृक, व्याघ्र, कुत्ता, शृगाल, मनुष्य, मार्जार-बिल्ली, सिंह और चित्ता, इन सबके कलेवर जो सड़े हुए, पूर्व आकार से नष्ट तथा कीड़े युक्त हैं और अत्यन्त दुर्गन्धि वाले हैं (अन्नेसु य एवमादिएसु गंधेसु अमणुन्न पावएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ गंधों में (न तेसु समणेण रूसियव्वं उन अशुभ गन्धों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए। (जाव पणिंदिय-पंचिंदिए चरेज्ज धम्मं) यावत् पांचों इन्द्रियों से संयम युक्त मुनि धर्म का आचरण करे ॥ ३ ॥

(चउत्थं) चौथी भावना-रसनेन्द्रिय संवर रूप, जैसे-जिब्भिदिएण साइय रसाणि उ मणुन्न-भद्दकाइं) जिह्वा इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर रसों का आस्वाद करके 'आसक्त नहीं होना' (किंते ?) वे मनोज्ञ रस कौन से हैं ?

उत्तर-(उग्गाहिम- विविह- पाण- भोयण- गुलकय- खंडकय- तेल्ल-घय-कय भक्खेसु) घी व तेल आदि में डुबा कर पकाये गये पक्वान्न-खाजे आदि, अनेक प्रकार के पानक-द्राक्षापान आदि और भोजन, गुड़ या सक्कर के बनाये हुए, तेल अथवा घी के बने हुए मालपूआ आदि पदार्थों में (बहुविहेसु लवण रस-संजुत्तेसु) जो अनेक प्रकार के लवण रस से संयुक्त हैं। (महु-मंस-बहुप्पगार-मज्जिय-निट्ठाणग-दालियंब-सेहंब-दुद्ध-दहि-सरय-मज्ज-वर वारुणी-सीहुका-विसायण-

सायट्ठारस बहुप्पगारेसु ) मधु, मांस अनेक प्रकार की मज्जिका, निष्ठानक-अधिक मूल्य से बना हुआ, दालिकाम्ल-खट्टी दाल, सैन्धाम्ल-पदार्थ संमिश्रण से खट्टे किये गये रायता आदि, दूध, दही, सरक, गुड़ और धातकी से बना हुआ मद्य, उत्तम वारुणी और सीधु का तथा पीशायन-एक प्रकार की मदिरा, तथा अठारह प्रकार के शाक वाले ऐसे अनेक प्रकार के ( मणुन्न-वन्न-गंध-रस-फास-बहुदव्व-संभितेसु भोयणेसु ) मनोज्ञ वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श युक्त अनेक द्रव्यों से बने हुए भोजनों में (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु मणुन्न भद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ-सुन्दर रसों में ( नतेसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शुभ रसों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए ( जाव न सइंच मइंच तत्थ कुज्जा ) यावत् स्मृति व बुद्धि भी वैसे भोजन में नहीं करना ( पुणरवि ) फिर भी जिह्वा इन्द्रिय के विषय को कहते हैं-( जिब्भिदिएण साथिय रसातिं अमणुन्न-पावगाइं ) जिह्वेन्द्रिय से अमनोज्ञ व बुरे रसों का आस्वाद करके ( किते ? ) वे अशुभ कौन से ?,

उत्तर-( अरस-विरस-सिय-लुक्ख-णिज्जप्प-पाण भोयणाइं ) रस से रहित-हिंग आदि से असंस्कृत-विरस पुराना होने से विरस, शीत ठंडे, लूखे और निर्वाह करने में असमर्थ पान भोजन को ( दोसीण-वावन्न कुहिय-पूइय अमणुन्न-विणट्ठ-पसूय-बहु दुब्भिगंधियाइं ) रात के बासी, व्यापन्न-रंग बदले हुए, सड़े हुए तथा अपवित्र होने से जो अमनोज्ञ व अत्यन्त विकृत दशा को प्राप्त हैं, अतएव उनसे उत्पन्न बहुत दुर्गन्ध वाले हैं ( तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल रस, लिंडनीरसाइं ) तीता, कटु-कडुआ, कषायला, खट्टा, लिन्द्र-शेवाल रहित पुराने जल की तरह और नीरस पदार्थों को (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु अमणुन्न-पावएसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अशुभ रसों में ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन अशुभ रसों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ( जाव चरेज्ज धम्मं ) यावत् इन्द्रियों से गुप्त होकर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

मूल-" पंचमगं-फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुन्नभद्दकाइं, किंते?-दग-मंडव-हार-सेय चंदण-सीयल-विमलजल-विविह कुसुम-सत्थर-ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट- वीयणग-जणियसुह-सीयले य पवणे, गिम्हकाले सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि

सायट्ठारस बहुप्पगारेसु ) मधु, मांस अनेक प्रकार की मज्जिका, निष्ठानक-अधिक मूल्य से बना हुआ, दालिकाम्ल-खट्टी दाल, सैन्धाम्ल-पदार्थ संमिश्रण से खट्टे किये गये रायता आदि, दूध, दही, सरक, गुड़ और धातकी से बना हुआ मद्य, उत्तम वारुणी और सीधु का तथा पीशायन-एक प्रकार की मदिरा, तथा अठारह प्रकार के शाक वाले ऐसे अनेक प्रकार के ( मणुन्न-वन्न-गंध-रस-फास-बहुदव्व-संभितेसु भोयणेसु ) मनोज्ञ वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श युक्त अनेक द्रव्यों से बने हुए भोजनों में (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु मणुन्न भद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ-सुन्दर रसों में ( नतेसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शुभ रसों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए ( जाव न सइंच मइंच तत्थ कुज्जा ) यावत् स्मृति व बुद्धि भी वैसे भोजन में नहीं करना ( पुणरवि ) फिर भी जिह्वा इन्द्रिय के विषय को कहते हैं-( जिब्भिदिएण सायिय रसातिं अमणुन्न-पावगाइं ) जिह्वेन्द्रिय से अमनोज्ञ व बुरे रसों का आस्वाद करके ( किते ? ) वे अशुभ कौन से ?,

उत्तर-( अरस-विरस-सिय-लुक्ख-णिज्जप्प-पाण भोयणाइं ) रस से रहित-हिंग आदि से असंस्कृत-विरस पुराना होने से विरस, शीत ठंडे, लूखे और निर्वाह करने में असमर्थ पान भोजन को ( दोसीण-वावन्न कुहिय-पूइय अमणुन्न-विणट्ठ-पसूय-बहु दुब्भिगंधियाइं ) रात के बासी, व्यापन्न-रंग बदले हुए, सड़े हुए तथा अपवित्र होने से जो अमनोज्ञ व अत्यन्त विकृत दशा को प्राप्त हैं, अतएव उनसे उत्पन्न बहुत दुर्गन्ध वाले हैं ( तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल रस, लिंडनीरसाइं ) तीता, कटु-कडुआ, कषायला, खट्टा, लिन्द्र-शेवाल रहित पुराने जल की तरह और नीरस पदार्थों को (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु अमणुन्न-पावएसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अशुभ रसों में ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन अशुभ रसों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ( जाव चरेज्ज धम्मं ) यावत् इन्द्रियों से गुप्त होकर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

मूल-" पंचमगं-फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुन्नभद्दकाइं, किंते?-दग-मंडव-हार-सेय चंदण-सीयल-विमलजल-विविह कुसुम-सत्थर-ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट- वीयणग-जणियसुह-सीयले य पवणे, गिम्हकाले सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि

साग्रट्ठारस बहुप्पगारेसु ) मधु, मांस अनेक प्रकार की मज्जिका, निष्ठानक-अधिक मूल्य से बना हुआ, दालिकाम्ल-खट्टी दाल, सैन्धाम्ल-पदार्थ संमिश्रण से खट्टे किये गये रायता आदि, दूध, दही, सरक, गुड़ और धातकी से बना हुआ मद्य, उत्तम वारुणी और सीधु का तथा पीशायन-एक प्रकार की मदिरा, तथा अठारह प्रकार के शाक वाले ऐसे अनेक प्रकार के ( मणुन्न-वन्न-गंध-रस-फास-बहुदव्व-संभितेसु भोयणेसु ) मनोज्ञ वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श युक्त अनेक द्रव्यों से बने हुए भोजनों में (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु मणुन्न भद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ-सुन्दर रसों में ( नतेसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शुभ रसों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए ( जाव न सइंच मइंच तत्थ कुज्जा ) यावत् स्मृति व बुद्धि भी वैसे भोजन में नहीं करना ( पुणरवि ) फिर भी जिह्वा इन्द्रिय के विषय को कहते हैं-( जिब्भिंदिएण साथिय रसाति अमणुन्न-पावगाइं ) जिह्वेन्द्रिय से अम-नोज्ञ व बुरे रसों का आस्वाद करके ( किंते ? ) वे अशुभ कौन से ?,

उत्तर-( अरस-विरस-सिय-लुक्ख-णिज्जप्प-पाण भोयणाइं ) रस से रहित-हिंग आदि से असंस्कृत-विरस पुराना होने से विरस, शीत ठंडे, लूखे और निर्वाह करने में असमर्थ पान भोजन को ( दोसीण-वावन्न कुहिय-पूइय अमणुन्न-विणट्ठ-पसूय-बहु दुब्भिगंधियाइं ) रात के बासी, व्यापन्न-रंग बदले हुए, सड़े हुए तथा अपवित्र होने से जो अमनोज्ञ व अत्यन्त विकृत दशा को प्राप्त हैं, अतएव उनसे उत्पन्न बहुत दुर्गन्ध वाले हैं ( तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल रस, लिंडनीरसाइं ) तीता, कटु-कडुआ, कषायला, खट्टा, लिन्द्र-शेवाल रहित पुराने जल की तरह और नीरस पदार्थों को (अन्नेसु य एवमातिएसु रसेसु अमणुन्न-पावएसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अशुभ रसों में ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन अशुभ रसों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ( जाव चरेज्ज धम्मं ) यावत् इन्द्रियों से गुप्त होकर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

मूल—" पंचमगं—फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुन्नभद्दकाइं, किंते?-दग—मंडव—हार—सेय चंदण—सीयल—विमलजल—विविह कुसुम—सत्थर-ओसीर—मुत्तिय—मुणाल—दोसिणा—पेहुण—उक्खेवग—तालियंट— वीयणग-जणियसुह—सीयले य पवणे, गिम्हकाले सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि

आसणाणि य पाउरणगुणेय सिसिर काले अंगार-पतावणा य आयव-निद्ध-मउय-सीय-उसिण-लहुया यजे उदु सुहफासा, अंगसुह निव्वुइकरा ते, अन्नेसु य एवमादितेसु फासेसु मणुन्न भद्दएसु न-तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं, न विणिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न, अज्झोववज्जियव्वं, न तूसियव्वं, न हसियव्वं, न सतिंच मतिंच तत्थकुज्जा। पुणरवि-फासिंदिएण फासिय फासातिं अमणुन्न पाव काइं, किंते?-अणेगवध-बंध-तालणंकण-अतिभारारोवणए, अंग भंजण-सूईनख-प्पवेस-गायपच्छणण- लक्खारस-खार-तेल्ल- कलकलंत-तउअ-सीसक-काललोह-सिंचण-हडिबंधण--रज्जुनिगल-संकल- हत्थंडुय- कुंभि पाक-दहण-सीहपुच्छण-उब्बंधण-सूलभेय-गयचलण-मलण- करचरण-कन्न-नासोट्ठ-सीसछेयण-जिब्भंच्छण-वसण-नयण-हियय- दंत- भंजण-जोत्त-लय-कसप्पहार-पाद-पण्हि--जाणु-पत्थरनिवाय- पीलण- कवि-कच्छु-अगणि-विच्छुयडक-वायातव-दंस-मसक निवाते, दुट्ठणिसेज्जदुनिसीहिय-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय-उसिण-लुक्खेसु, बहुविहेसु अन्नेसु य एवमाइएसु फासेसु अमणुन्न पावकेसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न गरहियव्वं, न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं, न दुंगुंछावत्तियं च लब्भा. उप्पाएउं। एवं फासिंदिय भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नामणुन्न-सुब्भि-दुब्भि-राग-दोस-पणिहियप्पा साहू, मण-वयण-कायगुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरिज्ज धम्मं॥ ५॥

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिं वि. कारणेहिं मण-वय-काय-परिरक्खिएहिं निच्चं आमरणंतं च एस. जोगो नेयव्वो, धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्व-जिणमणुन्नातो। एवं पंचमं संवरदारं फासियं

पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवति। एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं, परूवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं पंचमं संवरदारं समत्तं त्तिबेमि। एयाति वयाइं पंचवि. सुव्वय-महव्वयाइं, हेउसय-विचित्त-पुकलाइं, कहियाइं, अरिहंत सासणे पंच समासेण संवरा, वित्थरेणउ पणवीसति समिय-सहिय-संवुडे,सया जयण-घडण-सुविसुद्ध-दंसणे एए अणुचरिय संजते चरम सरीरधरे भविस्सती ति। १। २६।

छाया-"पञ्चमकं-स्पर्शेन्द्रियेण स्पृष्ट्वा स्पर्शान् मनोज्ञभद्रान्, कांस्तान्?-उदक मण्डप-हार-श्वेतचन्दन-शीतल-विमलजल-विविधकुसुम-संस्तरोशीर-मौक्तिक मृणाल-ज्योत्स्ना-पेहुणो-( मयूर पृच्छ )-उत्क्षेपक-तालवृन्त-व्यजनक-जनित-सुख शीतलांश्च,पवनान्, ग्रीष्मकाले सुखस्पर्शान् च, बहूनि शयनान्यासनानि च, प्रावरण गुणान् च, शिशिरकालेऽङ्गार-प्रतापना च, आतपस्निग्धमृदुक-शीतोष्ण-लघुकाश्च ये ऋतुसुख-स्पर्शाः, अङ्गसुख-निर्वृतिकराः तान्, अन्येषु चैवमादिकेषु स्पर्शेषु, मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सज्जितव्यं, न रक्तव्यं, न गर्द्धितव्यं, न मूर्च्छितव्यं, न विनिर्घातमापत्तव्यं, न लोभितव्यं, नाध्युपपत्तव्यं, न तोष्टव्यं न हसितव्यं, न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात्। पुनरपि स्पर्शेन्द्रियेण स्पृष्ट्वा स्पर्शान् अमनोज्ञ-पापकान्, कांस्तान्?-अनेक-वध-बन्ध-ताडनाङ्कनाऽतिभारारोपणान्, अङ्गभञ्जन-सूचीनख प्रवेश-गात्रप्रक्षणन-जीरण-लाक्षारस-क्षार-तैल-कलकलायमानत्रपुष-सीसक-काल लोह-सिञ्चन-खोटकच्छेद-रज्जुनिगड सङ्कल-हस्ताण्डुक-कुम्भीपाक-दहन सिंह पुच्छ नोद्बन्धन-शूलभेद गजचरण-मलन-कर-चरण-कर्ण-नासिकौष्ठ-शीर्ष-छेदन-जिह्वाछेदन-वृषण-नयन-हृदय-दन्त-भञ्जन-योक्त्र-लता-कप-प्रहार-पाद-पार्ष्णि-जानु-प्रस्तर निपात-पीडनकपि-कच्छू-वह्नि वृश्चिकदंश-मशक-निपातान्, ( स्पृष्ट्वा ) दुष्टनिषद्या[1] दुर्निषीधिकाः ( स्पृष्ट्वा, ) दुरभि-कर्कश-गुरु-शीतोष्ण-रूक्षेषु, बहुविधेषु अन्येषु चैवमादिकेषु स्पर्शेष्वमनोज्ञ-पापकेषु न तेषु श्रमणेनरोषितव्यं, न हीलितव्यं, न निन्दितव्यं, न गर्हितव्यं, न खिंसितव्यं, न छेत्तव्यं, न भेतव्यं, न हन्तव्यं, न जुगुप्सावृत्तिश्च लभ्योत्पादयितुम। एवं स्पर्शेन्द्रिय-भावना-भावितो-भवत्यन्तरा-

१ दुष्ट आसनं शय्या च।

त्मामनोज्ञाऽमनोज्ञ-सुरभि-दुरभि रागद्वेष-प्रणिहितात्मा साधुर्मनोवचन- कायगु
संवृतः प्रणिहितश्चरेद्धर्मम। एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यग् संवृतं भवति सुप्रणिहित
म्। एभिः पञ्चभिरपिकारणैर्मनो-वचन-काय परिरक्षितै र्नित्यमामरणान्तं च
योगो नेतव्यो, धृतिमता मतिमताऽनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी असंक्लि
शुद्धः सर्वजिनैरनुज्ञातः। एवं पञ्चमं संवरद्वारं स्पष्टं, पालितं, शोधितं, तीर्णं कीर्ति
मनुपालितमाज्ञयाऽऽराधितं भवति। एवं ज्ञात मुनिना भगवता प्रज्ञप्तं प्ररूपि
प्रसिद्धं सिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाज्ञप्तं, सुदेशितं, प्रशस्तं, पञ्चमं द्वारं समाप्तमित्य
ब्रवीमि। एतानि व्रतानि पञ्चापि सुव्रत-महाव्रतानि हेतुशत-विचित्र-पुष्कला
कथितानि अर्हच्छासने पञ्चसमासेन संवराः, विस्तरेण तु पञ्चविंशत् समित-सहित
संवृतः, सदा यतना-घटना-सुविशुद्ध-दर्शनः, एतेनाऽनुचर्यः संयतश्चरमशरीरध
भविष्यतीति। सू० १।२६

अन्व०-"( पंचमगं ) पांचवी भावना-स्पर्श-इन्द्रिय-संवररूप-( फासिंदिए
फासिय फासाइं मणुन्नभद्दकाइं ) स्पर्श इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर स्पर्शों को छूक
( किंते ? ) वे मनोज्ञ स्पर्श कौनसे हैं ?

उत्तर-( दगमंडव-हार-सेयचंदण-सीयल-विमलजल-विविह कुसुम-सत्थर-
सीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट- वियणग-जणियसुहसी
लेय पवणे ) उदक मंडप-जलमंडप, झरने वाले मण्डप, उदकहार, श्वेतचन्दन-
खण्ड, शीतल और निर्मल पानी, अनेक प्रकार के फूलों के विस्तर, ओशीर-खीर
का मूल, मोती, पद्मनाल, चन्द्र की चांदनी, मोर पिच्छी का उत्क्षेप, तालवृन्त-पं
और बीजना, इनसे की गई सुखकारी और शीतल हवा को ( गिम्हकाले , ग्री
कालमें ( सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि आसणाणिय ) तथा सुख दायक स्प
वाले बहुत से शयन-शय्या और आसनों को फिर ( पाउरण-गुणे य सिसिरकाले
प्रावरण गुण वाले वस्त्रादि को शीतकाल में ( अंगार-पतावणा य ) और अग्नि
देह को तपाना ( आयव-निद्ध-मउय-सीय-उसिण-लहुया य ) धूप, स्निग्ध-तै
आदि पदार्थ, कोमल और ठंडे, गर्म तथा हल्के ( जे उदुसुहफासा ) जो ऋतु
अनुकूल सुखस्पर्श ( अंगसुह-निव्वुइकरा ) शरीर सुख और मनको स्वस्थ क
वाले हैं ( ते ) वे स्पर्श ( अन्नेसु य एवमादितेसु फासेसु मणुन्न भद्दएसु ) और इ
प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ व शुभ स्पर्शों में ( न तेसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शु

स्पर्शों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए, ( न रज्जियव्वं ) राग नहीं करना चाहिए ( न गिज्झियव्वं ) गृद्धि-अप्राप्त की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए, ( न मुज्झियव्वं ) न वे भान होकर मोह करना चाहिए, ( न विणिग्घायं आवज्जियव्वं ) न स्व पर का नाश ही करना चाहिए ( न लुभियव्वं ) न लोभ करना चाहिए ( न अज्झोव वज्जियव्वं ) तल्लीन चित्त वाला नहीं होना चाहिए ( न तूसियव्वं ) न उसमें सन्तुष्ट होना चाहिए ( न हसियव्वं ) न हंसना चाहिए ( न सतिं च मतिं च तत्थकुज्जा ) स्मृति और वहाँ-उस विषयमें-विचार भी नहीं करना चाहिए ( पुणरवि ) फिर भी स्पर्शेन्द्रिय के विषय को कहते हैं-( फासिंदिएण फासिय फासाइं अमणुन्न-पावकाइं ) स्पर्श इन्द्रिय से अमनोज्ञ व अशुभ स्पर्शों को छूकर ( किंते ? ) वे अशुभ स्पर्श कौनसे ?

उत्तर-( अणेग-वध-बंध-तालणं कण-अतिभारारोवणए ) अनेक प्रकार का वध-नाश, डोरी आदि का बन्धन, ताडन-चपेटा आदि का प्रहार देना, अङ्कन-तपी हुई शलाका आदि से निशान करना, और अधिक भार लादना, ( अंगभंजन-सूई-नख-प्पवेस गाय पच्छणण-लक्खारस-खार-तेल-कलकलंत-तउय-सीसक-काल लोह-सिंचण-हडिबंधण-रज्जु निगल-संकल-हत्थुंडु य-कुंभिपाक-दहण-सीह पुच्छण-उब्बंधण-सूलभेय-गय चलण-मलण-कर-चरण-कन्न-नासोट्ठ-सीस छेयण-जिब्भंछण-वसण-नयण हियय-दंत भंजण-जोत्त-लय-कसप्पहार-पाद पण्हि-जाणु-पत्थर-निवाय-पीलण-कवि कच्छु-अगणि-विच्छुय डक्क-वायातव-दंस मसग-निवाते ) अंग तोड़ना शरीर में सुई या नख भोंकना, गात्र का पच्छणन याने हीन होना, लाख का रस, क्षार तैल तथा अत्यन्त तपने के कारण कल कल करते हुए सीसा या काले लोह से देह को सीचना याने तपे हुए लाक्षारस आदि शरीर पर डालना, काष्ठ के खोड़े में बांधना, डोरी के निगड़ बन्धनों से समेटना और हस्तान्दुक से बांधना, कुम्भि में पकाना, अग्नि से जलाना, पूंछ तोड़ना, बांधकर ऊपर से लटकाना, शूल से पिरोना, हाथी के पैर नीचे दबाना, अथवा मलना, हाथ, पैर, कान, नाक, ओष्ठ और शिर में छेद करना, जिह्वा को खींच कर निकालना, अण्ड-कोश, नेत्र, हृदय और दांत या आंत को मोड़ना, या तोड़ना, गाडीमें जूएसे जोड़ना, बेंत या चाबुक का प्रहार करना, पादपर्ष्णि-पैर की एडी, घुटना तथा पत्थर को अङ्ग पर गिराना, पीडन-यन्त्र में पीलना, कपिकच्छू-बन्दर जैसे अत्यन्त खुजली होना,

या खुजली करने वाले फल का छूना, और अग्नि आदि का स्पर्श, बिच्छू का डंक और वायु, धूप तथा डांस मच्छरों का अङ्ग पर गिरना ( दुट्ठ-णिसज्ज-दुन्निसीहिय-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय उसिण-लुक्खेसु ) दुष्ट निषद्या-बूरे आसन और अयोग्य स्वाध्यायभूमिमें तथा अशुभ गन्ध युक्त,कर्कश,गुरु भारी और ठंडे,उष्ण व रुक्ष ( बहु विहेसु ) बहुत प्रकार के स्पर्शों में ( अन्नेसुय एव माइएसु फासेसु अमणुन्न-पावकेसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ स्पर्शों में ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन अशुभ स्पर्शों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ( न हीलियव्वं न निंदियव्वं न गरहियव्वं ) न हीलना करनी चाहिए, न निन्दा करनी चाहिए, तथा न लोक समक्ष गर्हा करनी चाहिए, ( न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं ) खिसना नहीं करना चाहिए, अशुभ स्पर्श वाले द्रव्य का छेदन नहीं करना चाहिए, न उसका भेदन-दो भाग ही करना चाहिए, स्व पर का हनन नहीं करना चाहिए ( न दुगुंछावत्तियं च लब्भा उप्पाएउं ) और स्व पर की घृणा वृत्ति भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है ( एवं फासिंदिय भावणा भावितो ) इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय संवर की भावना से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला ( मणुन्नामणुन्न-सुब्भि-दुब्भि-राग दोस पणिहियप्पा ) मनोज्ञ व अमनोज्ञ-गन्धयुक्त, अच्छे या बुरे स्पर्शों से राग द्वेष का संवरण करने वाला ( साहू साधु मण-वयण-कायगुत्ते ) मन वचन एवं काय से गुप्त ( भवति ) होता है। ( संवुडे पणिहिंदिए ) संवर युक्त संयतेन्द्रिय मुनि ( चरिज्जधम्मं ) धर्म का आचरण करे ॥ ५ ॥

( एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं सुप्पणिहियं होइ ) इस प्रकार यह संवर का पंचमद्वार सम्यक् संवरण किया गया सुरक्षित होता है ( इमेहिं पंचहि विकारणेहिं मण-वय-काय-परिरक्खिएहिं ) मन वचन और काय के द्वारा सुरक्षित इन पांचों कारणों से ( निच्चं आमरणंतं ) सदा और मरण पर्यन्त ( एसजोगो ) यह प्रवृत्ति ( धितिमया मतिमया ) धृतिमान् और बुद्धिमान् को ( नेयव्वो ) ले चलना योग्य है याने पालने योग्य है ( अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुन्नातो ) आस्रव रहित,निर्मल, मिथ्यात्व आदि छिद्र रहित,अतएव अपरिस्रावी, संक्लेश रहित,शुद्ध तथा सर्व तीर्थङ्करोंसे अनुज्ञात है ( एवं पंचमं ) इस प्रकार पांचवां ( संवरदारं ) संवरद्वार ( फासियं,पालियं,सोहियं,तीरियं,किट्टियं, अणुपालियं, आणाए आराहियं भवति ) शरीर से स्पर्श किया हुआ, पालन किया

हुआ, अतिचार हटाकर शुद्ध किया हुआ, पूर्ण किया हुआ, वचन से कीर्तन किया हुआ, अनुपालित और तीर्थङ्करों की आज्ञा के अनुसार आराधित होता है (एवं नाय-मुणिना भगवया पन्नवियं) इस प्रकार-पूर्वोक्त रीति से ज्ञात मुनि भगवान् महावीर ने कहा है (परूवियं) प्ररूपण-युक्ति से समझाया है (पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवर सासणमिणं) प्रसिद्ध, सिद्ध और अर्हत रूप भवस्थ सिद्धों का उत्तम शासन यह (आघवियं) कहा गया है (सुदेसियं) तीर्थङ्करों से अच्छी तरह उपदिष्ट और (पसत्थं पंचम संवरदारं समत्तं, तिबेमि) प्रशस्त है सुधर्माचार्य-पंचम संवरद्वार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूँ ॥

उपसंहार—(एयाति वयाइं पंचवि) ये पांचों संवर रूप व्रत (सुव्वय ? महव्वयाइं) हे सुव्रत ? महा व्रत हैं (हेउ सय-विचित्त-पुक्कलाइं) निर्दोष या विचित्र सैकड़ों हेतुओं से विस्तीर्ण (अरिहंत सासणे) अर्हन्तों के शासन में (कहियाइं) कहे गये हैं (पंच समासेण संवरा) संक्षेप से पांच संवर हैं। (वित्थरेणउ) विस्तार से तो (पणवीसति) प्रत्येक व्रत की भावनाओं को मिलाकर पचीस होते हैं, (समिय-सहिय-संवुडे) समितियों से समित, पूर्वोक्त पचीस भावनाओं से सहित या ज्ञान दर्शन से युक्त और सुविहित कषाय आदि के संवर वाला, जो (सया जयण-घडण-सुविसुद्धदंसणे) सदा प्राप्त संयम योग में यत्न और अप्राप्त में प्रयत्न रूप घटना से अच्छी तरह निर्मल श्रद्धा वाला है (एए अणुचरिय-संजते चरम सरीर धरे भविस्सतीति इन पांच संवरों का आचरण करके वह साधु चरम शरीरी होगा अर्थात् संसार में फिर से शरीर धारण नहीं करेगा ॥ १ २६ ॥

भाव- परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये भगवान् महावीर ने यह उत्तम प्रवचन कहा है, जो आत्महितकारी यावत् सब दुःख और पापों का उपशमन करने वाला है। इस अपरिग्रहरूप अन्तिम व्रत की रक्षा के लिये ये पांच भावनायें होती हैं, जैसे-

प्रथम भावना श्रोत्रेन्द्रिय संवररूप, जिसमें कहा गया है कि प्रधान मुरज आदि वाद्य और मधुरगीत को तथा नट आदि के खेल प्रयोगों को एवं स्त्रियों के मञ्जीर मेखला आदि के मधुर ध्वनि को श्रवण से सुनकर इनमें व इस प्रकार के अन्य इष्ट शब्दों में साधुको आसक्त नहीं होना चाहिए। राग, गृद्धि, मूर्च्छा और इसके लिये स्वपर का नाश नहीं करना चाहिए। इनमें लोभ, मानसिक खुशी तथा हास्य भी

नहीं करना, और न मनसे उसका स्मरण और विचार ही करना चाहिये। ऐसे अप्रिय शब्दों को सुनकर द्वेष नहीं करे, जैसे गाली व रोने आदि के शब्द जो द्वेष व करुणाजनक हैं, ऐसे अन्य भी अमनोज्ञ-बुरे शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए, और न उन शब्दों की हीलना, निन्दा व खिसना करनी चाहिए। छेदन, भेदन व वधभी नहीं करे और उन शब्दों के ऊपर स्व पर की घृणा भी उत्पन्न नहीं करे। इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय संवरयुक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे शब्दों में राग द्वेष रहित तीनों गुप्तियों से गुप्त होता है। संवरवान्, जितेन्द्रिय मुनि इस प्रकार अपरिग्रह धर्मका आचरण करे।

दूसरी भावनामें-चक्षु-इन्द्रियसे सुन्दर सचित्त अचित्त और मिश्र इन तीनों रूपों को देखकर राग नहीं करना चाहिए। जो रूप काष्ठपर, वस्त्रपर तथा लेप्यकर्म या पत्थर व दांत की कोरणी में बनाये गए हैं, तथा पांच रंग से अनेक प्रकार के आकारमें बने हुए और गांठ देकर तथा चिपड़ी आदि भरकर बनाए गए, अनेक प्रकार के माल्य और नेत्र व मनको प्रसन्न करने वाले हैं। वनखण्ड, पर्वत और ग्राम आदि अनेक स्थानों को जो जल एवं वनस्पति के लता मण्डप आदि से सुशोभित तथा पक्षी समूह से सुसेवित हैं। ऐसे उत्तम प्रासाद आदि भव्य भवन और शयन, आसन और वाहन आदि को, तथा प्राक्तन संचित तपस्या से सौभाग्यशाली स्त्री पुरुषों को तथा नट आदि के विविध खेल व प्रयोगों को और इस प्रकार के अन्य सुन्दर रूपों को देखकर मुनि को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् मनमें भी उस विषय का विचार नहीं रखना चाहिए। शुभ रूपों की तरह अशुभ रूपों को देखकर द्वेष भी नहीं करना चाहिए। जैसे गलगण्ड आदि अनेक रोगग्रस्त को व मरे हुए कलेवरों को जो सड गया हो, जिसमें कीड़े पड़े हों ऐसे पदार्थों को देखकर मुनि को रोष नहीं करना चाहिए। यावत् दूसरी भावनासे युक्त होकर धर्मका आचरण करना चाहिए।

तीसरी भावनामें-नाकसे सुगन्धित पदार्थों को सूंघकर हर्ष नहीं करना चाहिए। जैसे-जल-एवं थलके अनेक प्रकार के फूल, जिनके परिमल हवासे दूर दूर तक फैल रहे हैं, ऐसे अन्य सुरभि वाले पदार्थों में भी मुनिको आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् उस विषय में विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसे सर्प आदि इग्यारह कले-वर जो सड़े हुए व अत्यन्त दुर्गन्ध वाले हैं। ऐसी दुर्गन्ध को सूंघकर मनमें मुनि को द्वेष भी नहीं करना चाहिए, यावत् धर्मका आचरण करना चाहिए।

चौथी भावनामें-रसनेन्द्रिय से अनेक रसों को चखकर राग द्वेष नहीं करना चाहिए। जैसे-घी आदि में डुबाकर बनाये गए विविध पान भोजन तथा मधुर अनेक भक्ष्य पदार्थ जो लवण आदि रसों से संयुक्त हैं, इस प्रकार अच्छे वर्णरस गन्ध व स्पर्श वाले द्रव्यों से बने हुए भोजन में एवं अन्य सुन्दर रसों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, और मनमें विचार भी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार नीरस, रूक्ष तथा विकृत दशा को प्राप्त ऐसे अन्य अशुभ पान भोजनों में साधु को रोप भी नहीं करना चाहिये, यावत् धर्म का आचरण करना चाहिये।

पांचवी भावना में-स्पर्श इन्द्रियों से विविध स्पर्शों को छूकर मुनि हर्ष नहीं करे। जैसे-ग्रीष्म काल में फुहारे के मण्डप आदि से शीतल व सुखदायी वायु को तथा सुखद स्पर्श वाले शयन आसन आदि को पाकर तथा शीत काल में दुशाले आदि प्रावरण, सीगड़ी का सेक, तथा सूर्य किरण के ताप आदि। ऐसे चिकने व कोमल ऋतु के अनुकूल सुख स्पर्श जो शरीर व मन को प्रसन्न करने वाले हैं, उन इष्ट स्पर्शों में साधु आसक्ति नहीं करे, यावत् उनका विचार भी नहीं करे। फिर विरोधी स्पर्शों को छूकर मुनि रोष भी नहीं करे, वे विरोधी स्पर्श इस प्रकार हैं-अनेक प्रकार के वध, बन्धन ताड़न व अतिभार और अङ्गों का भङ्ग, सुई भोकना आदि, तथा अयोग्य आसन वगैरह के स्पर्श होने वाले परीषहों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए, यावत् किसी के मन में उनके लिये घृणा भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय संवर की भावना से युक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे स्पर्शों में राग द्वेष रहित व गुप्त होता है। इस प्रकार संयतेन्द्रिय मुनि को अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श मात्र में समभाव रखते हुए धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ५ ॥

इस तरह संवर का यह पञ्चमद्वार सम्यक् संवरण किया हुआ सुरक्षित होगा। इन पांच भावनाओं के साथ तीनों योग से धीर मेधावी साधु को यह प्रवृत्ति सदा जीवन पर्यन्त रखनी चाहिए। क्योंकि यह संवर कर्म बन्धके कारणों को रोकने वाला एवं सब तीर्थङ्करों से अनुज्ञात है। विधि पूर्वक यह पञ्चम संवरद्वार देह से फरसा गया यावत् अनुकूल रूप से पालन किया गया तीर्थङ्करों की आज्ञा से आराधित होता है। ऐसा ज्ञात मुनि महावीर ने कहा व हेतु पूर्वक समझाया है। यह प्रसिद्ध, सिद्ध आदि विशेषण युक्त अपरिग्रह प्रशस्त उत्तम है। पञ्चम संवरद्वार पूर्ण हुआ।

निगमन-हे सुव्रत ? ये पांचों महाव्रत निर्दोष या विचित्र सैकड़ों हेतुओं से विस्तार वाले अर्हत्-शासन में कहे गये हैं। संक्षेप से संवर पांच और विस्तार से भावनाओं को मिलाकर पचीस होते हैं। भावना रूप समिति वाला और ज्ञान दर्शन सहित जो संवरवान् मुनि सदा प्राप्त संयम योग में यतना और अप्राप्त में घटना करने से विशुद्ध श्रद्धा वाला है, वह इन पांच संवरों का पालन करके इस देह से संसार बन्धन का छेदन कर मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ २६ ॥

**मूल-"पण्हावागरणे णं एगो सुयक्खंधो, दस अज्झयणा, एक्कसरगा, दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति, एगंतरेसु आयंबिलेसु निरुद्धेसु, आउत्तभत्त पाणएणं। अंगं जहा आयारस्स। सू० १ । ३० ॥**

**पण्हावागरणं दसमं अंगं सुत्तओ समत्तम्। ग्रन्थमानं १३००**

छाया-प्रश्नव्याकरणे एकः श्रुतस्कन्धो, दशाऽध्ययनानि,-एकसरकाणि, दशसुचैव दिवसेषु-उद्दिश्यन्ते,-एकान्तरेषु-आयंबिलेषु निरुद्धेषु आयुक्तपानभोजनेनाऽऽङ्गं यथाऽऽचारस्य। सू० १ । ३०।

॥ इति प्रश्नव्याकरणाऽऽख्यं दशमाङ्गं छायातः समाप्तम् ॥

## सूत्र परिचय और वाचना विधि-

अन्व०-(पण्हावागरणे) प्रश्न व्याकरण नामक सूत्रमें (एगे सुयक्खंधो) एक श्रुत स्कन्ध (दस अज्झयणा) दश अध्ययन (एक्क सरगा) समान शैली वाले हैं (दस सु चेव दिवसेसु-) और दश ही दिनों में (एगंतरेसु आयंबिलेसु निरुद्धेसु) एकान्तर आयंबिलयुक्त दिनों में (आउत्त-भत्त-पाणएणं) उपयुक्त आहार पानी वाले साधु से (उद्दिसिज्जंति) इसके उद्देश किये जाते हैं। (अंगं जहा आयारस्स) अङ्ग जैसे आचाराङ्ग का वर्णन है, विशेष वैसा समझना चाहिये ॥ सू० १ । ३० ॥

इति प्रश्न व्याकरणाख्यं दशमाङ्गं समाप्तम्। ग्रन्थाग्रं १३००।

भाव-अन्त में सूत्र का परिचय और वाचन की विधि कही गई है। प्रश्न व्याकरण सूत्रके एक ही श्रुतस्कन्ध तथा एकसरके दश अध्ययन हैं। इसकी वाचना लेने वाले साधु को एकान्तर आयम्बिल युक्त तपस्या से दश दिनों में वाचना को पूर्ण करना चाहिए। आचाराङ्ग जैसे शेष ऋङ्ग का वर्णन समझना चाहि ॥१॥३०॥

इति श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रस्य भाषा व्याख्या समाप्ता।

## ग्रन्थान्त मङ्गलरूपा टीकाकारोक्तिः—

प्रश्न व्याकरणाभिधानमनघं सूत्रं गभीरार्थकं
श्रद्धेयाऽऽर्हत-विज्ञपुङ्गवगवी हैयङ्गवीनोपमम्।
भक्त्याऽहं मति शक्ति युक्ति निवहाद्रिक्तोऽप्यधांयंश्रमं
सन्त्वस्मात्परमेष्ठिनो मयि सदा पश्चानुकम्पाश्रिताः।

❀ समाप्तं पंचम संवरद्वारम् ❀

❀ सत्यार्थं शान्त्यार्थं धर्मार्थम् ❀



श्री मुष्टिव्याकरणसूत्रस्य

# परिशिष्टम्

## विशिष्टपद टिप्पणानि

# प्रश्न व्याकरण सूत्रगत पारिभाषिक शब्दानां विशेषनाम्नां च सूची

अ

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| अकारको | – | – | अकर्ता |
| अकिरिया | – | – | अक्रिया |
| अकिच्चं | – | – | हिंसा का ५वां नाम |
| अगर | – | – | सुगन्धित द्रव्य विशेष |
| अगम्म गामी | – | – | लडकी बहन आदि में गमन करने वाला |
| अगार | – | – | घर |
| अगुत्ती | – | – | अगुप्ति-परिग्रह का २३वां भेद |
| अचक्खुसे | – | – | आंख से नहीं दिखने वाले |
| अच्छभल्ल | – | – | रिच्छ-भालू |
| अज्झप्पज्झाण | – | – | अध्यात्मध्यान |
| अंजणक सेल | – | – | अंजनक पर्वत |
| अट्टालग | – | – | अट्टालिका |
| अट्टं | – | – | आर्त |
| अट्ठ विह | – | – | आठ प्रकार |
| अट्टालग | – | – | अटारी |
| अट्ठि | – | – | हड्डी |
| अंडज | – | – | अण्डे से पैदा होने वाले |
| अणबल | – | – | कर्जदार |
| अणत्थको | – | – | अनर्थ करने वाला परिग्रह का २५वां भेद |
| अणत्थो | – | – | ,, ,, ,, ,, |
| अणज्जा | – | – | अनार्य |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| अणकरो | – | – | हिंसा का २४वां नाम |
| अणक्क | – | – | अणक्क देश |
| अण्हय | – | – | आस्रव |
| अणारिओ | – | – | अनार्य |
| अणासवो | – | – | अनास्रव, अहिंसा का ३५वां नाम |
| अणाहे | – | – | अनाथ |
| अणिट्ठकम्म | – | – | अनिष्टकर्म |
| अणिहुय | – | – | अस्थिर |
| अणुलेवणं | – | – | अनुलेपन |
| अत्थालियं | – | – | धन सम्बन्धी झूठ |
| अंत | – | – | आंत |
| अस्समड | – | – | घोडे का कलेवर |
| असातणा | – | – | आसातना |
| असि | – | – | तलवार |
| असंजम | – | – | असंयम |
| असंजओ | – | – | संयम रहित हिंसा का १४वां नाम |
| असंतोसो | – | – | असन्तोष परिग्रह का ३०वां नाम |
| अहिमड | – | – | सांप का कलेवर |

आ

| | | | |
|---|---|---|---|
| आगर | – | – | खान |
| आडा | – | – | आडपक्षी |
| आतोज्ज | – | – | बाजे |
| आधार | – | – | शुक्तिपुट |
| आभासिया | – | – | आभाषिक देश |
| आभिओग | – | – | वशीकरण आदि प्रयोग |
| आया | – | – | आत्मा |
| आयरो | – | | वस्तुओं में आदर बुद्धि रखना, परिग्रहों का २१वां भेद |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| आयतणं | – | – | आयतन-अहिंसा के ४७वां नाम |
| आयासो | – | – | खेद का कारण, परिग्रह का २४वां नाम |

आयाण भंड निक्खेवणा समिते–आदान भांड मात्र निक्षेपना समिति वाला

| | | | |
|---|---|---|---|
| आउय कम्मस्सुवद्दवो | | | हिंसा का १२वां नाम |
| आरब | – | – | अरब देश |
| आराम | – | – | बगीचा |
| आवण | – | – | दुकान |
| आवत्त | – | – | एक खुर वाला जीव- |
| आवसह | – | – | परिव्राजकों का आश्रम |
| आसम | – | – | आश्रम |
| आसत्ती | – | – | आसक्ति |
| आसालिया | | – | जीव विशेष |

इ

| | | | |
|---|---|---|---|
| इक्कडं | – | – | इक्कड जाति का घास |
| इक्खुगार | – | – | इषुकार पर्वत |
| इट्टकाउ | – | – | ईंटे |
| इड्ढि | – | – | ऋद्धि |
| इंद केतु | – | – | इन्द्र केतु |
| इंदिय | – | – | इन्द्रियां |

ई

| | | | |
|---|---|---|---|
| ईरियासमिते | – | – | ईर्या समिति से युक्त |

उ

| | | | |
|---|---|---|---|
| उखल | – | – | ऊखल |
| उच्छू | – | – | इक्षु-सांठा |
| उट्ट | – | – | ऊंट |
| उडुपती | – | – | चन्द्रमा |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| उप्पाय | – | – | उत्पात पर्वत |
| उद्द | – | – | उद्देश |
| उदरि | – | – | जलोदर |
| उद्दवणा | – | – | हिंसा का ६वां नाम |
| उद्देस | – | – | उद्देश |
| उब्भिय | – | – | भूमि को फोड़कर उत्पन्न होने वाला जीव |
| उम्माण | – | – | उन्मान–मापने का एक प्रकार |
| उम्मूलणा | – | – | उन्मूलना–हिंसा का २ रा नाम |
| उरग | – | – | पेट के बल से चलने वाला सर्प विशेष |
| उवहिया | – | – | ठगाई करने वाला ठग |
| उवणयणं | – | – | उपनयनसंस्कार |
| उवचयो | – | – | उपचय, परिग्रह का चतुर्थ नाम |
| उववादिए | – | – | एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने वाले जीव |
| उवासक | – | – | उपासक |
| उवाणहा | – | – | जूता |
| उस्सओ | – | – | उच्छ्रय–भाव की उन्नति अहिंसा का ४५वां नाम |
| उसीर | – | – | उशीर–सुगन्धित द्रव्य |
| उंदर | – | – | चूहा |

ए

| | | | |
|---|---|---|---|
| एगचक्खु | – | – | काणा |
| एगेंदिए | – | – | एक इन्द्रिय वाला जीव |
| एणीमारा | – | – | मृग पकड़ने के लिये हिरणी लेकर फिरने वाला |
| एलारस | – | – | इलायची का रस |
| एसणा समिते | – | – | एषणा समिति युक्त |

ओ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ओयण | – | – | चावल–भात, |
| ओसह | – | – | औषध, |

क

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| कक्कोल | — | — | फल विशेष, |
| क्खुर | — | — | उस्तरा–केश काटने का अस्त्र |
| क्रकच | — | — | करवत–लकडी चीरने का अस्त्र |
| कच्छभ | — | — | कछुआ |
| कच्छभि | — | — | वाद्य–बाजा विशेष |
| कच्छुल्ल | — | — | खुजली के रोग वाला |
| कढिणगं | — | — | कठिण तृण विशेष |
| कडुय | — | — | कडुआ |
| कडग मद्दणं | — | — | कटक मर्दन–हिंसा का १५वां नाम |
| कणग | — | — | सोना |
| कणग नियल | — | — | सोने का बना गहना विशेष |
| कणक | — | — | एक प्रकार का वाण |
| कण्ण | — | — | कान |
| कन्दु | — | — | लोही भुंजने का एक पात्र |
| कन्नालियं | — | — | कन्या के सम्बन्धी झूठ |
| कप्पणि | — | — | कैंची |
| कपिंजलक | — | — | कपिंजल पक्षी |
| कप्पूर | — | — | कपूर |
| कमल | — | — | कमल |
| कमंडलु | — | — | कुण्डी, कमण्डलु |
| कम्म | — | — | रसायन शाला |
| करक | — | — | करक पक्षी |
| करणाणि | — | — | इन्द्रियां |
| करभ | — | — | ऊंट |
| करयल | — | — | करतल |
| करवय | — | — | करवत |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| कलाय | – | – | सुनार |
| कलिकरंडो | – | – | कलह की पेटी, परिग्रह का १६वां नाम |
| कल्लाण | – | – | कल्याणकारी–अहिंसा का २६वां नाम |
| कलाव | – | – | गरदन का आभरण |
| कवड | – | – | कपट |
| कर्वड | – | – | खराब नगर |
| कवाड | – | – | कपाट-केवाड |
| कविल | – | – | कपिल पक्षी |
| कवोय | – | – | कबूतर |
| कस | – | – | चमड़े का चाबुक |
| कसाय | – | – | कषायला |
| कहक | – | – | कथा करने वाला |
| काउदर | – | – | काकोदर–एक प्रकार का सांप |
| काक | – | – | कौआ |
| काणा | – | – | काणे |
| कादम्बक | – | – | हंस विशेष |
| कायवर | – | – | उत्तम काच |
| कायगुत्ते | – | – | कायगुप्त |
| कारंडग | – | – | कारंडक पक्षी |
| कारुइज्जा | – | – | छीपें–शिलूरी |
| कालोदधि | – | – | कालोदधि समुद्र |
| कित्ती | – | – | कीर्ति अहिंसा का ५ वां नाम |
| किन्नर | – | – | किन्नर देव, वाद्य विशेष |
| किन्नरी | – | – | किन्नर देव की देवियां |
| किमिय | – | – | कृमि–कीड़े |
| किरिया | – | – | प्रशस्त कार्य |
| किरियाठाण | – | – | क्रिया स्थान |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| कीव | – | – | कीव पक्षी |
| कुक्कुड | – | – | मुर्गा |
| कुकूलाऽनल | – | – | कोयले की आग |
| कुज्ज | – | – | कूबड़ |
| कुडिल | – | – | कुटिल–टेढ़ा |
| कुणी | – | – | कर से हीन |
| कुद्धा | – | – | क्रोधी |
| कुम्मास | – | – | उड़द |
| कुरर | – | – | कुरर पक्षी |
| कुरंग | – | – | हिरण |
| कुलल | – | – | कुलल पक्षी |
| कुलक्ख | – | – | कुलक्ष पक्षी की एक जाति |
| कुलिंगी | – | – | कुतीर्थी |
| कुलिय | – | – | खुला |
| कुली कोस | – | – | कुटी क्रोश पक्षी |
| कुवित साला | – | – | तृण आदि रखने का घर |
| कुस | – | – | कुश–तृण विशेष |
| कुसंघयण | – | – | कमजोर अस्थिर |
| कुसंठिया | – | – | खराब आकार वाले |
| कुहण | – | – | कुहण देश |
| कूर्च | – | – | कूंची बनाने का तृण |
| कूडमाणी | – | – | झूठा माप करने वाले |
| कूरकम्मा | – | – | क्रूर कर्म करने वाले |
| कूव | – | – | कूआं |
| केकय | – | – | केकय देश |
| केवल नाणी | – | – | केवल ज्ञानी |
| केवलीण ठाणं | – | – | केवलियों का स्थान अहिंसा का ३६ वां नाम |
| केसरिमुहविप्फारगा | | – | सिंह का मुंह फाड़ने वाले |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| | | **ख** | |
| खग | – | – | पक्षी |
| खग्ग | – | – | खड्ग-गेंडा |
| खग्ग | – | – | खड्ग-तलवार |
| खचर | – | – | आकाश में चलने वाले जीव |
| खर | – | – | गधा |
| खस | – | – | खस देश |
| खाडहिल | – | – | गिलहरी-टिलोडी |
| खातिय | – | – | खाई |
| खासिय | – | – | खासिक देश |
| खिल भूमि | – | – | बिना जोती हुई भूमि |
| खील | – | – | खीलें |
| खुज्जा | – | – | कूबड़ा |
| खुड्डिय | – | – | तलाई |
| खुद्दो | – | – | क्षुद्र |
| खुरो | – | – | छुरा |
| खुल्लए | – | – | क्षुल्लक कौडी का जीव |
| खेड | – | – | खेडा-छोटा गांव |
| खंडरक्ख | – | – | चूंगी लेने वाला अथवा कोतवाल |
| खंड | – | – | खांड-शक्कर |
| खंती | – | – | क्षान्ति अहिंसा का १३ वां नाम |
| खिंखिणी | – | – | पायल आभूषण विशेष |
| | | **ग** | |
| गंडि | – | – | गंड माला |
| गय | – | – | हाथी |
| गयकुल | – | – | गज कुल |
| गय | – | – | गदा अस्त्र विशेष |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| छविच्छेओ | – | – | हिंसा का २१वां नाम |
| छीरल | – | – | बाहुओं से चलने वाला जीव |
| छुट्टिय | – | – | आभरण विशेष |

ज

| | | | |
|---|---|---|---|
| जग | – | – | यकृत–पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली मांस ग्रन्थि |
| जणवय | – | – | देश |
| जतनं | – | – | यजन अभयदान अहिंसा का ४८ वां नाम |
| जन्नो | – | – | यज्ञ, अहिंसा का ४६ वां नाम |
| जम पुरिस | – | – | यम पुरुष |
| जमकवर | – | – | यमकुवर पर्वत |
| जराउय | – | – | जरायुज-जड़ के साथ उत्पन्न होने वाला |
| जरासिंध माण महणा | | – | जरासन्ध राजा के मान को मथने वाला |
| जलयर | – | – | जलचर |
| जलगए | – | – | जल में रहने वाले कीड़े आदि |
| जलमए | – | – | जल के जीव |
| जल्ल | – | – | जल्लदेश या डोडी पर खेलने वाला |
| जलूय | – | – | जलूका |
| जवण | – | – | यवन लोग |
| जवा | – | – | जौ-जव |
| जाण | – | – | यान |
| जाण साला | – | – | यान शाला, वाहन आदि रखने का घर |
| जातरूव | – | – | सोना |
| जाल | – | – | ज्वाला |
| जालक | – | – | जालियां |
| जाहक | – | – | कांटे से ढका हुआ शरीर वाला जन्तु |
| जिणेहिं | – | – | जिनेन्द्र देव |
| जीव निकाया | – | – | जीव निकाय |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| छविच्छेओ | – | – | हिंसा का २१वां नाम |
| छीरल | – | – | बाहुओं से चलने वाला जीव |
| छुट्टिय | – | – | आभरण विशेष |

## ज

| | | | |
|---|---|---|---|
| जग | – | – | यकृत–पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली मांस ग्रन्थि |
| जणवय | – | – | देश |
| जतनं | – | – | यजन अभयदान अहिंसा का ४८ वां नाम |
| जन्नो | – | – | यज्ञ, अहिंसा का ४६ वां नाम |
| जम पुरिस | – | – | यम पुरुष |
| जमकवर | – | – | यमकवर पर्वत |
| जराउय | – | – | जरायुज-जड़ के साथ उत्पन्न होने वाला |
| जरासिंध माण महणा | – | | जरासन्ध राजा के मान को मथने वाला |
| जलयर | – | – | जलचर |
| जलगए | – | – | जल में रहने वाले कीड़े आदि |
| जलमए | – | – | जल के जीव |
| जल्ल | – | – | जल्लदेश या डोडी पर खेलने वाला |
| जलूय | – | – | जलूका |
| जवण | – | – | यवन लोग |
| जवा | – | – | जौ-जव |
| जाण | – | – | यान |
| जाण साला | – | – | यान शाला, वाहन आदि रखने का घर |
| जातरूव | – | – | सोना |
| जाल | – | – | ज्वाला |
| जालक | – | – | जालियां |
| जाहक | – | – | कांटे से ढका हुआ शरीर वाला जन्तु |
| जिणेहिं | – | – | जिनेन्द्र देव |
| जीव निकाया | – | – | जीव निकाय |

| शब्द | | | अर्थ |
| --- | --- | --- | --- |
| चारक | – | – | वन्दी खाना |
| चार | – | – | गुप्त दूत |
| चारित्तमोह | – | – | चारित्र को रोकने वाली मोह कर्म की प्रकृति |
| चाव | – | – | धनुष |
| चास | – | – | चाश पक्षी |
| चिडिग | – | – | चिड़ी |
| चित्त | – | – | चित्रकूट पर्वत |
| चित्तसभा | – | – | चित्र सभा |
| चिति | – | – | भित्ति आदि का बनाना |
| चिल्लग | – | – | लीन |
| चिल्लल | – | – | चीता या दो खुर वाला पशु विशेष |
| चीण | – | – | चीन देश |
| चिलाय | – | – | चिलात देशवासी |
| चुन्नकोसग | – | – | चूर्ण कोश– धान्य विशेष |
| चूलिया | – | – | चूलिका |
| चेतिय | – | – | चैत्य |
| चेल | – | – | वस्त्र |
| चोक्ख | – | – | चोक्ष अहिंसा का ५४वां भेद |
| चोरिक्ककरणं | – | – | चोरी करना |
| चोलग | – | – | बच्चे का प्रथम मुण्डन |
| चोल पट्टक | – | – | चोल पट्टा-साधु के पहनने का वस्त्र |
| चंगेरी | – | – | फूल की डाली या वाद्य विशेष |
| चंडो | – | – | उद्धत |
| चंदनक | – | – | कौड़ी |
| चुंचुया | – | – | चुंचुक |

छ

| | | | |
| --- | --- | --- | --- |
| छगल | – | – | बकरे की एक जाति |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| छविच्छेओ | – | – | हिंसा का २१वां नाम |
| छीरल | – | – | बाहुओं से चलने वाला जीव |
| छुट्टिय | – | – | आभरण विशेष |

ज

| | | | |
|---|---|---|---|
| जग | – | – | यकृत–पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली मांस ग्रन्थि |
| जणवय | – | – | देश |
| जतनं | – | – | यजन अभयदान अहिंसा का ४८ वां नाम |
| जन्नो | – | – | यज्ञ, अहिंसा का ४६ वां नाम |
| जम पुरिस | – | – | यम पुरुष |
| जमकवर | – | – | यमकवर पर्वत |
| जराउय | – | – | जरायुज-जड़ के साथ उत्पन्न होने वाला |
| जरासिंध माण महणा | | – | जरासन्ध राजा के मान को मथने वाला |
| जलयर | – | – | जलचर |
| जलगए | – | – | जल में रहने वाले कीड़े आदि |
| जलमए | – | – | जल के जीव |
| जल्ल | – | – | जल्लदेश या डोडी पर खेलने वाला |
| जलूय | – | – | जलूका |
| जवण | – | – | यवन लोग |
| जवा | – | – | जौ-जव |
| जाण | – | – | यान |
| जाण साला | – | – | यान शाला, वाहन आदि रखने का घर |
| जातरूव | – | – | सोना |
| जाल | – | – | ज्वाला |
| जालक | – | – | जालियां |
| जाहक | – | – | कांटे से ढका हुआ शरीर वाला जन्तु |
| जिणेहिं | – | – | जिनेन्द्र देव |
| जीव निकाया | – | – | जीव निकाय |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| जुय | – | – | युग |
| जीवियंत करणो | – | – | हिंसा का २२ वां नाम |
| जीवंजीवक | – | – | चकोर पक्षी |
| जूईकरा | – | – | जुआरी |
| जोग संगहे | – | – | योग संग्रह |
| जोणी | – | – | योनि-जन्म स्थान |
| जंत | – | – | यन्त्र |
| जंतुगं | – | – | पानी में पैदा होने वाला तृण विशेष |

झ

| | | | |
|---|---|---|---|
| झस | – | – | जल जन्तु |
| झाण | – | – | ध्यान |

ठ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ठिति | – | – | स्थिति, अहिंसा का २२वां भेद |

ड

| | | | |
|---|---|---|---|
| डब्भ | – | – | डाभ-तृण विशेष |
| डोंब | – | – | डोंब जाति |
| डोंबिलग | – | – | डोंबिलक देश |

ढ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ढेणियालग | – | – | ढेणिकालग पक्षी |
| ढिंक | – | – | ढंक पक्षी |

ण

| | | | |
|---|---|---|---|
| णउल | – | – | नकुल |
| णक्क | – | – | नक्र (नकार) |
| णग | – | – | पर्वत |
| णगर | – | – | नगर |
| णह | – | – | नख |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| ण्हाणं | – | – | सौभाग्य स्नान |
| ण्हारूणि | – | – | स्नायु |
| णिग्घिणो | – | – | घृणा रहित |
| णिस्सेणि | – | – | निस्सरणी |
| णिस्संसो | – | – | नृशंस क्रूर |
| णेउर | – | – | नूपुर |
| णंबर | – | – | अम्बर कपड़े |

त

| | | | |
|---|---|---|---|
| तउय | – | – | त्रपु |
| तक्करा | – | – | चोर |
| तण्हा | – | – | तृष्णा परिग्रह का २७वां भेद |
| तत | – | – | वीणा |
| तप्पण | – | – | सत्तू |
| तय | – | – | त्वचा |
| तय ताल | – | – | वाद्य विशेष |
| तरच्छ | – | – | जंगली पशु |
| तलाग | – | – | तालाब |
| तव | – | – | तप |
| तस | – | – | त्रस जीव |
| तारा | – | – | तारा |
| तालयंट | – | – | ताल पत्र के पंखे |
| तित्त | – | – | तीतारस |
| तित्ती | – | – | तृप्ति अहिंसा का १०वां नाम |
| तित्तिय | – | – | तित्तिक देश |
| तित्तिर | – | – | तीतर पक्षी |
| तिमि | – | – | बड़े मत्स्य |
| तिमिंगिल | – | – | बहुत बड़े मत्स्य |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| तिरिय | – | – | तिर्यञ्च |
| तिल | – | – | तिल धान्य |
| तिवायणा | – | – | हिंसा का १०वां नाम |
| तिहि | – | – | तिथि |
| तूणक | – | – | वाद्य विशेष |
| तेन्दिय | – | – | तीन इन्द्रिय वाले जीव |
| तेल्ल | – | – | तेल |
| तोमर | – | – | बाण |
| तोरण | – | – | तोरण |
| तंती | – | – | तन्त्री वीणा |
| तंब | – | – | ताम्र |

थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| थलयर | – | – | स्थलचर |
| थावरकाए | – | – | स्थावर काय |
| थूभ | – | – | स्तूप |

द

| | | | |
|---|---|---|---|
| दईवतप्पभावओ | – | – | भाग्य के प्रभाव से |
| दगतुंड | – | – | दग तुंड पक्षी |
| दद्दुर | – | – | वाद्य विशेष |
| दब्भ पुप्फ | – | – | एक प्रकार का सर्प |
| दया | – | – | दया अहिंसा का ११वां भेद |
| दरदड्ढ | – | – | कुछ जला हुआ |
| दव्वसारो | – | – | द्रव्यसार वाला परिग्रह का १०वां भेद |
| दविल | – | – | द्रविड़ |
| दह | – | – | ह्रद |
| दहपति | – | – | ह्रदपति-पद्म-ह्रद आदि |
| दहि | – | – | दही |

| शब्द | | अर्थ |
|---|---|---|
| दहिमुह | – – | दधिमुख पर्वत |
| दसविहं | – – | दश प्रकार का |
| दाढि | – – | दाढ |
| दाण | – – | दान |
| दामिणी | – – | डोडी |
| दार | – – | दरवाजा, |
| दालियंब. | – – | खट्टीदाल, |
| दीविया | – – | चीता, |
| दीविय | – – | दीमक पक्षी |
| दीहिया | – – | बावडी, |
| दुकयं | – – | दुष्कृत. |
| दुद्ध | – – | दुग्ध |
| दुरप्पा | – – | दुष्ट आत्मा |
| दुरित नाग दप्प महणा | – | पाप रूप गज के दर्प को मथने वाले |
| दुवालस विहा | – – | बारह प्रकार के |
| दुस्सील | – – | दुश्शील |
| दुहण | – – | दुयन-वृक्षों को गिराने वाला मुद्गर दुहना |
| देवकुल | – – | देव मन्दिर |
| देवई | – – | देवकी रानी |
| दोण मुह | – – | जल मार्ग और स्थल मार्ग दोनों से जाने योग्य नगर |
| दोणि | – – | छोटी नौका |
| दंतट्ठा | – – | दांत के लिए |
| दंतमणि | – – | प्रधान दांत |
| दंसण | – – | सामान्य बोध श्रद्धागुण |

**ध**

| | | |
|---|---|---|
| धणित | – – | अत्यर्थ |
| धत्तरिट्ठग | – – | धार्तराष्ट्र-हंस विशेष |

| शब्द | | अर्थ |
|---|---|---|
| घमणि | – – | नाडी |
| घमण | – – | भैंस आदि के देह में हवा भरना |
| धिती | – – | धृति-अहिंसा का [illegible]८वां नाम |

न

| शब्द | | अर्थ |
|---|---|---|
| नक्क | – – | नाक |
| नक्खत्त | – – | नक्षत्र |
| नगर गोत्तिय | – – | नगर रक्षक |
| नट्टक | – – | नर्तक |
| नड | – – | नट |
| नयण | – – | नेत्र |
| नवनीत | – – | मक्खन |
| नह | – – | नख |
| नाराय | – – | लोहे का बाण |
| निक्खिओ | – – | नि[illegible]क्रा |
| निगम | – – | वणिकों का निवास स्थान |
| निगड | – – | लोहे की बेडी |
| निग्गुणो | – – | निर्गुण |
| निच्चो | – – | नित्य |
| निज्जवणा | – – | हिंसा का २८वां नाम |
| नत्थिकवादिणो | – – | नास्तिक वादी |
| निम्मलतर | – – | खूब स्वच्छ, अहिंसा का ६[illegible]वां नाम |
| निल्लंछण | – – | खसी करना, नपुंसक बनाना |
| निव्वाणं | – – | निर्वाण-मोक्ष, अहिंसा का [illegible]म नाम |
| निव्वुइ | – – | निवृत्ति, अहिंसा का २रा नाम |
| निहाणं | – – | निधान, परिग्रह का ४वां भेद |
| नूमं | – – | नूम-ढकना |
| नेउर | – – | नूपुर |

| शब्द | | | अर्थ |
| --- | --- | --- | --- |
| नेरइय | – | – | नरक के जीव |
| नेट्ठुर | – | – | नेहर देश |
| नेह | – | – | स्नेह |
| नंगल | – | – | हल |
| नंदमाणग | – | – | नन्दमानक पक्षी |
| नंदा | – | – | समृद्धि दायक अहिंसा का २४वां नाम |
| नंदि | – | – | वाद्य विशेष |
| नंदिमुह | – | – | नन्दि मुख पक्षी |

प

| | | | |
| --- | --- | --- | --- |
| पइल्ल | – | – | श्लीपद-फीलपांव |
| पउमावई | – | – | पद्मावती रानी |
| पएणीमारा | – | – | विशेष रूपसे जीवों को मारनेके लिये फिरने वाले |
| पकप्प | – | – | प्रकल्प-अध्ययन विशेष |
| पकान्न | – | – | सरस भोजन |
| पक्कणिय | – | – | पक्कणिक देश |
| पच्चक्खाणं | – | – | प्रत्याख्यान |
| पच्छाया | – | – | ढकने का वस्त्र |
| पज्जत्त | – | – | पर्याप्त |
| पट्टिस | – | – | प्रहरण विशेष |
| पडगार | – | – | जुलाहा |
| पउम | – | – | पद्म व्यूह |
| पेहुण | – | – | मोर पिच्छी |
| पोक्कण | – | – | पोक्कण देश |
| पोक्करणी | – | – | पुष्करिणी चौकोनी बावडी |
| पोत घाया | – | – | पक्षियों के बच्चे को मारने वाला |
| पोतज | – | – | पोतज-हाथी वगैरह |
| पोय सत्था | – | – | नौका के व्यापारी |

| शब्द | कोश |
|---|---|
| पोसहाणं | पौषधों का |
| पंगुला | पंगु |
| पिंगलक्खग | पिंगलाक्ष पक्षी |
| पिंगुल | पिंगुल पक्षी |
| पिंडो | पिंड परिग्रह का ६वां भेद |
| पोंडरीक | पुंडरीक पक्षी |
| पडिग्गहो | पात्र |
| पडिलेहण | प्रति लेखना |
| पडिबंधो | प्रतिबन्ध-वाह्य पदार्थों में स्नेहबन्ध होना परिग्रह का १२वां भेद |
| पणव | वाद्य विशेष |
| पल्हव | पह्लव देश |
| पत्तरक | भूषण विशेष |
| पत्तेय सरीर | प्रत्येक शरीर |
| पभासा | प्रभासा-अतिशय दीप्ति वाली-अहिंसा का ५७वां भाग |
| पमोओ | प्रमोद अहिंसा का २३वां नाम |
| परदार सेवणं | पर स्त्री गमन |
| पयावइ | प्रजापति |
| परभव संकामकारओ | हिंसा का १८वां नाम |
| परम किण्हलेस सहियं | परम कृष्ण लेश्या वाला |
| परमा धम्मिया | परमा धार्मिक देव |
| परसु | परशु-कुल्हाड़ा |
| परा | तृण विशेष |
| परिग्गहो | परिग्रह का १ला भेद |
| परिचारगा | व्यभिचार में सहायक |
| परितावण अण्हओ | हिंसा का २६वां नाम |
| परिजण | परिजन |
| परिट्ठावणिया समिति | मल मूत्र आदि परठने की समिति |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| परिप्पव | – | – | पारिप्लव |
| परीसहा | – | – | परिषह-कष्ट |
| परियार | – | – | तलवार की म्यान |
| पल्लल | – | – | पल्वल-छोटा तालाब |
| पलाल | – | – | पलाल-पोआल |
| पलित्त | – | – | प्रदीप्त |
| पवक | – | – | उछलने कूदने वाला |
| पवयण माया | – | – | प्रवचन माता |
| पव्वक | – | – | वाद्य विशेष |
| पवा | – | – | प्याऊ |
| पवित्ता | – | – | पवित्रा अहिंसा का ५५वां नाम |
| पवित्थरो | – | – | धन का विस्तार परिग्रह का २०वां भेद |
| पव्वीसग | – | – | वाद्य विशेष |
| पसय | – | – | दो खुर वाला जानवर |
| पहेरक | – | – | भूषण विशेष |
| पाइक्क | – | – | पैदल |
| पागार | – | – | कोट |
| पाठीण | – | – | एक जाति का मत्स्य |
| पाणवहो | – | – | प्राणवध हिंसा का १ला नाम |
| पादकेसरिया | – | – | पोंछने का वस्त्र |
| पादजालक | – | – | पांव नूपुर |
| पाद बंधणं | – | – | पात्र बन्धन |
| पायट्ठवणं | – | – | पात्र ठवणी जिस पर पात्र रक्खा जाय |
| पारस | – | – | फारस देश |
| पारिप्पव | – | – | पारिप्लव जन्तु |
| पारेवय | – | – | कबूतर |
| पाव कोवो | – | – | हिंसा का १८वां नाम |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| पावसुत | - | - | पाप श्रुत |
| पावलोभो | - | - | हिंसा का २०वां नाम |
| पासाय | - | - | प्रासाद |
| पिक्कमंसी | - | - | पका हुआ मंसी नाम का द्रव्य |
| पिच्छ | - | - | पूंछ |
| पित्त | - | - | शरीर का एक दोष |
| पिट्टण | - | - | पीटना |
| पियरो | - | - | पिता आदि |
| पिसुणं | - | - | चुगल खोर |
| पिपीलिय | - | - | पपीहा पी पी करने वाला पक्षी |
| पीसण | - | - | पीसना |
| पुक्खरिणी | - | - | कमल वाली बावडी |
| पुरवर | - | - | प्रधान नगर |
| पुट्ठी | - | - | पुष्टि अहिंसा का २३वां नाम |
| पुरिसकारो | - | - | पुरुषार्थ |
| पुलय | - | - | पुलक एक प्रकार का ग्राह |
| पुलिंद | - | - | पुलिंद देश |
| पूया | - | - | अहिंसा का ४४वां नाम |

फ

| | | | |
|---|---|---|---|
| फलक | - | - | बिस्तर-कुर्सी आदि |
| फलिहा | - | - | परिघा-आगल |
| फासुयं | - | - | प्रासुक निर्जीव |
| फिप्फिस | - | - | फुप्फस देह का भीतरी भाग |

ब

| | | | |
|---|---|---|---|
| बक | - | - | बगुला |
| बलाका | - | - | बगुली |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| वलदेवा | – | – | वलदेव |
| वहलीय | – | – | वाह्लीक देशवासी |
| वहिरा | – | – | वहरे |
| वादर | – | – | वादर नामक-कर्म |
| बिल्लल | – | – | विल्वल देश |
| बुद्धी | – | – | बुद्धि अहिंसा का १६वां नाम |
| बेंदिए | – | – | दो इन्द्रिय वाला |
| बेलंबक | – | – | विडम्बक |
| बोही | – | – | वोधि अहिंसा का १६वां नाम |
| बंजुल | – | – | बंजुल पक्षी |
| बंभचेर | – | – | ब्रह्मचर्य |

भ

| | | | |
|---|---|---|---|
| भट्ठ भज्जणाणि | – | – | भाड में चना के जैसे भूंजना |
| भडग | – | – | भडक जाति |
| भडा | – | – | सैनिक |
| भत्तपाणं | – | – | आहार पानी |
| भद्दा | – | – | भद्रा कल्याणकारी, अहिंसा का २५वां नाम |
| भमर | – | – | भंवरा |
| भयक | – | – | नोकर |
| भयंकरो | – | – | हिंसा का २३वां नाम |
| भरई | – | – | भरत क्षेत्र |
| भल्ल | – | – | भाला |
| भवण | – | – | भवन |
| भाइल्लगा | – | – | सेवक |
| भायण | – | – | पात्र |
| भारो | – | – | भार आत्मा विशेष भारी करने वाला, परिग्रह का १७वां भेद |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| भावण | – | – | भावना |
| भाविओ | – | – | भावित-सुसंस्कार-वाला |
| भास | – | – | भाष पक्षी |
| भासा समिते | – | – | भाषा समिति वाला |
| भिक्खु पडिमा | – | – | साधु की पडिमा |
| भिंगारग | – | – | भिंगारक पक्षी |
| भिंगार | – | – | झारी |
| भुज्जि | – | – | भूंजे हुए धानी |
| भूमि घर | – | – | तल घर |
| भूय गामा | – | – | जीवों के समूह |
| भेयणिट्ठवग | – | – | हिंसा का एक नाम |
| भेसज्ज | – | – | भेषज्य |
| भोमालियं | – | – | भूमि सम्बन्धी झूठ |
| भंडोवगरण | – | – | मिट्टी के भांड |
| भिंढियाल | – | – | भिंडिपाल |

**म**

| | | | |
|---|---|---|---|
| मइय | – | – | मतिक खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने का मोटा काष्ठ |
| मउलि | – | – | फण वाले सर्प |
| मगर | – | – | मगर मच्छ |
| मच्छबंधा | – | – | मछली पकड़ने वाला |
| मच्छरि | – | – | मत्सरी लोग |
| मच्छि | – | – | मच्छर हिंसा का १३वां नाम |
| मच्छंडी | – | – | मिश्री |
| मज्ज | – | – | मद्य |
| मज्जण | – | – | मज्जन |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| मज्जार | – | – | बिल्ली |
| मज्जिय | – | – | मज्जिका |
| मणगुत्ते | – | – | मनो गुप्त |
| मणपज्जवनाणी | – | – | मनःपर्यव ज्ञानी |
| मणि | – | – | चन्द्र कान्त आदि |
| मणुय | – | – | मनुष्य |
| मत्थुलिंग | – | – | मस्तुलिंग |
| मधुकरी | – | – | भ्रमरी |
| मयणसाल | – | – | मैना |
| मधु | – | – | शहद |
| मया | – | – | मद |
| मयूर | – | – | मोर |
| मरहट्ठ | – | – | महाराष्ट्र देश |
| मरुय | – | – | मरुआ |
| मरूगा | – | – | मरुक देश |
| मलय | – | – | मलय देश |
| मल्ल | – | – | पहलवान |
| मसग | – | – | मशक |
| महव्वया | – | – | महाव्रत |
| महाकुंभि | – | – | वड़ी कुंभी |
| महा सउणि पूतना रिपु | | – | महा शुकनि और पूतना के शत्रु |
| महार्दि | – | – | अपरिमित याचना वाला, परिग्रह का १४वां भेद |
| महिच्छा | – | – | तीव्र इच्छा वाला |
| महिंस | – | – | भैंसा |
| महुकोसए | – | – | मधु के छत्ते |
| महुघाय | – | – | मधु लेने वाल |

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| महुर | महुर देश |
| महोरग | बड़ा सर्प |
| माइ | मक्खि |
| माण | मान |
| माणुसोत्तर | मनुषोत्तर पर्वत |
| माया | माया-कपट |
| माया मोसो | माया मृषा |
| मारण | हिंसा का ७वां नाम |
| मारुय | मारुत-वायु |
| मालव | मालव देश |
| मास | माष देश |
| मिच्छदिट्ठी | मिथ्या दृष्टि वाला |
| मिय | मृग |
| मुइंग | मृदङ्ग |
| मुगुंस | मंगूस-भुज परिसर्प जन्तु |
| मुट्ठिअ | मौष्टिक देश |
| मुट्ठिय | मौष्टिक मल्ल |
| मुत्त | मोती |
| मुद्धा | मोह |
| मुम्मुर | अग्नि के कण |
| मुरय | मर्दल |
| मुरुंड | मुसंड देश |
| मुसल | मूसल |
| मुसावादी | झूठ बोलने वाला |
| मुसुंढि | प्रहरण विशेष-मुशुंडी |
| मुहणंतक | मुख वस्त्रिका |
| महंती | महती-महिता-सम्पन्न, अहिंसा का १५वां भेद |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| मूका | – | – | गूंगा |
| मूढा | – | – | मूर्ख |
| मूयक | – | – | एक प्रकार का तृण |
| मूलकम्मं | – | – | गर्भ पात आदि मूल कर्म |
| मेय | – | – | मेद-धातु |
| मेत | – | – | मेद देश |
| मेर | – | – | मंज के तन्तु |
| मेहला | – | – | मेखला |
| मोक्खो | – | – | मोक्ष |
| मेहुण | – | – | मैथुन |
| मोग्गर | – | – | मुद्गर |
| मोयग | – | – | मोदक |
| मोसं | – | – | मिथ्या |
| मोहणिज्जो | – | – | मोहनीय |
| मोलि | – | – | मुकली सर्प |
| मौस्टिक | – | – | मुष्टि प्रमाण पत्थर |
| मंगल | – | – | मङ्गलकारी, अहिंसा का ३०वां नाम |
| मंडवाण | – | – | मण्डपों के |
| मंडव | – | – | मंडप |
| मंथु | – | – | बोर आदि का चूर्ण |
| मंदर | – | – | मेरु पर्वत |
| मंदुक्क | – | – | मेंढक |
| मंदुय | – | – | मन्दुक-जल |
| मंमणा | – | – | तुतली बोलने वाला |
| मंस | – | – | मांस |
| मिंजा | – | – | मज्जा |
| मुगुंस | – | – | मंगुस |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| **र** | | | |
| रक्खा | – | – | रक्षा, अहिंसा का ३३वां नाम |
| रत्त सुभद्रा | – | – | रक्त सुभद्रा |
| रतिकर | – | – | रतिकर पर्वत |
| रती | – | – | रति-प्रेम |
| रत्तीय | – | – | सन्तोष, अहिंसा का ७वां नाम |
| रयण | – | – | रत्न |
| रयय | – | – | चांदी |
| रयत्ताणं | – | – | रत्नों से रक्षक |
| रयणोरुजालिय | – | – | जंघों का भूषण |
| रयोहरण | – | – | रजोहरण |
| रवि | – | – | सूर्य |
| रह | – | – | रथ |
| रायहंस | – | – | राजहंस |
| राया | – | – | राजा |
| रिट्ठवसभ | – | – | अरिष्ट नामक बैल |
| रिद्धि | – | – | ऋद्धि, अहिंसा का २०वां नाम |
| रिसओ | – | – | ऋषि |
| रुक्खमूल | – | – | वृक्ष मूल |
| रुचकवर | – | – | मण्डलाकार रुचक गिरि |
| रुप्पिणी | – | – | रुक्मिणी |
| रुद्दो | – | – | रौद्र |
| रुहिर महिमा | – | – | रुधिरेच्छु |
| रूव | – | – | रूप |
| रुरु | – | – | रुरु देश |
| रोम | – | – | रोम देश, बाल |
| रोहिय | – | – | रोहित पशुविशेष |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| रोहिणी | – | – | रोहिणी |
| | ल | | |
| लउड | – | – | लकुट-छोटा डंडा |
| लद्धी | – | – | लब्धि अहिंसा का २७वां नाम |
| लवण | – | – | लवण समुद्र |
| लवंग | – | – | लौंग |
| लावक | – | – | लवे |
| लासग | – | – | रास गाने वाले |
| ल्हासिय | – | – | ल्हासिक देश |
| लुद्धा | – | – | लोभ |
| लेट्ठु | – | – | पत्थर |
| लेण | – | – | पहाड में बना घर |
| लेसाओ | – | – | लेश्या |
| लोह संकल | – | – | लोह की बेडी |
| लोह पंजर | – | – | लोह के पंजे |
| लोहप्पा | – | – | लोभात्मा, परिग्रह का १३वां भेद |
| लंछण | – | – | लांछन चिह्न बनाना |
| लुंपणा | – | – | हिंसा का २६वां नाम |
| | व | | |
| वइ जोगस्स | – | – | वचन का व्यापार, |
| वइर | – | – | वज्र |
| वउस | – | – | बकुशदेश, |
| वक्कय | – | – | वल्कल |
| वग्गुली | – | – | वागुल |
| वज्ज रिसह नाराय संघयण | | – | वज्र ऋषभनाराच संहनन, |
| वज्जो | – | – | हिंसाका २५ वां नाम. |
| वट्टक | – | – | वृत्तक |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| वट्ट पव्वय | – | – | गोलाकार पर्वत |
| वण चरगा | – | – | जंगल में घूमने वाले |
| वच्छ | – | – | बछडा |
| वणस्सइ | – | – | वनस्पति |
| वद्धीसक | – | – | वाद्यविशेष |
| वप्पणि | – | – | पानी की नाली |
| वप्पिणि | – | – | बावडी |
| वय | – | – | व्रत |
| वयगुत्तो | – | – | वचनगुप्त |
| व्यजन | – | – | वींजना |
| वरत्त | – | – | चमडे की डोड़ी |
| वर पोत | – | – | जहाज |
| वरहिण | – | – | मयूर |
| वराहि | – | – | दृष्टिविष-सर्प |
| वल्लकी | – | – | वीणा |
| वल्लर | – | – | खेत विशेष |
| ववसाओ | – | – | व्यवसाय, अहिंसाका ४४ वां नाम |
| बब्बर | – | – | बर्बर देश |
| वसा | – | – | – चरबी |
| वहण | – | – | नौका |
| वहणा | – | – | हिंसाका ८ वां नाम |
| वाउप्पिय | – | – | भुजपरिसर्प |
| वाउरिय | – | – | जाल लेकर घूमने वाले |
| वाणियगा | – | – | वणिक लोग |
| वानर कुल | – | – | वन्दर जाति |
| वानर | – | – | वन्दर |
| वामलो कवादी | – | – | विपरीत बोलने वाला |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| वामण | – | – | छोटेशरीर वाला |
| वायर | – | – | वादर-स्थूल |
| वायस | – | – | कौवा |
| वालरज्जुय | – | – | वालकी रस्सी |
| वावि | – | – | कमल रहित या गोल वावडी |
| वासहर | – | – | वर्षधर हिमवान आदि |
| वासि | – | – | वसूला |
| वासुदेवा | – | – | वासुदेव |
| वाहण | – | – | गाडी आदि |
| वाहा | – | – | व्याध |
| विकप्प | – | – | एक तरह का महल |
| विकहा | – | – | विकथा |
| विग | – | – | भेडिया-व्याघ्र |
| विग्घ | – | – | व्याघ्र |
| विचित्त | – | – | विचित्र कूट पर्वत |
| विच्छुय | – | – | विच्छू |
| विडंग | – | – | कबूतरों का घर |
| विणासु | – | – | हिंसा का २७वां नाम |
| विण्हुमयं | – | – | विष्णुमय |
| वितत | – | – | ढोल |
| विततपक्खि | – | – | वितत पक्षी |
| विद्धि | – | – | वृद्धि, अहिंसा का २१वां नाम |
| विपंची | – | – | वीणा |
| विभूती | – | – | विभूति, अहिंसा का ३२वां नाम |
| विमुत्ती | – | – | विमुक्ति, अहिंसा का १२वां नाम |
| विमल | – | – | विमल, अहिंसा का ५८वां नाम |
| वियल | – | – | वींजना |

| शब्द | | अर्थ |
|---|---|---|
| वियग्ग | – – | व्याघ्र के बच्चे |
| विरतीय | – – | हिंसा रूप पाप से विरत |
| विरल्ल | – – | विरल्ल-मकडी |
| विराहणाओ | – – | विराधना |
| विलउलि कारकाणं | – | दूसरे को व्यामोह में डालने के लिये विस्वर बोलने वाला |
| विस्संभ वाइओ | – – | विश्वासघाती |
| विसिट्ठ दिट्ठो | – – | विशिष्ट दृष्टि, अहिंसा का २८वां नाम |
| विसुद्धी | – – | विशुद्धि, अहिंसा का २६वां नाम |
| विसाण | – – | हाथी का दांत |
| विहार | – – | मठ |
| विहंग | – – | पक्षी |
| विदंसग पास हत्था | – – | संडास और जाल हाथ में रखने वाला |
| वीसासो | – – | विश्वास, अहिंसा का ५१वां भेद |
| वीही | – – | व्रीही-चावल |
| वेढिम | – – | वेष्टिम-जलेबी |
| वेतिय | – – | वेदिका चबूतरा |
| वेदको | – – | भोक्ता |
| वेसर | – – | पक्षी विशेष |
| वोरमणं | – – | हिंसा का १६वां नाम |
| वंजुल | – – | एक प्रकार का पक्षी |
| वंस | – – | बांसुरी |

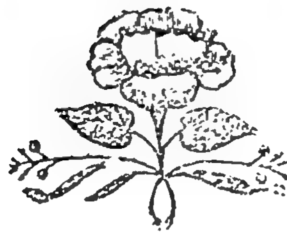
स

| | | |
|---|---|---|
| सउण | – – | शकुन पक्षी |
| सक | – – | शकदेश या जाति |
| सक्करा | – – | धूलि |
| सक्कुलि | – – | तिल पापड़ी |
| सढं | – – | मायावी |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| सगड | – | – | शकट-गाडी |
| सण | – | – | आसन |
| सणप्फ | – | – | नखयुक्त पैर वाले |
| सतग्घि | – | – | तोप |
| सत्ति | – | – | शक्ति त्रिशूल |
| सत्ती | – | – | शक्ति, अस्त्र भेद अहिंसा का ४र्थ नाम |
| सद्दूल | – | – | शार्दूल-सिंह |
| सब्बल | – | – | भाला |
| सन्नी | – | – | संज्ञी |
| सपरिग्गह | – | – | परिग्रह के साथ |
| सप्पि | – | – | घी |
| सवर | – | – | शवर भिल्ल जाति |
| सभा | – | – | सभा |
| समणधम्मे | – | – | श्रमण धर्म |
| सम चउरंससंठाण | | – | सम चतुरस्र चारों कोण बराबर |
| समय | – | – | सिद्धान्त |
| सम्मत्त विसुद्ध मूलो | | – | सम्यक्त्व रूप विशुद्ध मूल वाला |
| सम्मदिट्ठी | – | – | सम्यग्दृष्टि |
| सम्मत्ताराहणा | – | – | सम्यक्त्व की आराधना, अहिंसा का १४वां नाम |
| समाहि | – | – | समाधि-समता, अहिंसा का ३रा नाम |
| समिई | – | – | समिति, अहिंसा का ३८वां नाम |
| समिद्धि | – | – | समृद्धि, अहिंसा का १६वां नाम |
| सागपत्त | – | – | शाकपत्र |
| साण | – | – | श्वान-कुत्ता |
| सामलिपोंड | – | – | शाल्मली वृक्ष के फल |
| सामली | – | – | नरक का शाल्मली वृक्ष |
| सारस | – | – | सारस पक्षी |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| सुयंग | – | – | श्रुतज्ञान, अहिंसा का ६वां नाम |
| सुरूव विज्जुमतीए | – | – | सुरूपविद्युन्मंती |
| सुवण्ण गुलिया | – | – | सुवर्ण गुलिका |
| सुसाण | – | – | श्मशान |
| सुहुम | – | – | सूक्ष्म |
| सुई | – | – | सूची-सूई |
| सूकरे | – | – | सूअर |
| सूती | – | – | शुचि-अहिंसा का ५६वां नाम |
| सूर | – | – | दाल |
| सूप्प | – | – | सूपडा |
| सूलक | – | – | चुगलखोर |
| सूयगड | – | – | सूत्र कृताङ्ग |
| सूलिय | – | – | शूली |
| सूसर परिवादिणी | – | – | वीणा |
| सेण | – | – | श्येन-बाजपक्षी |
| सेणावत्ती | – | – | सेनापति |
| सेतु | – | – | पुल |
| सेल | – | – | पाषाण |
| सेल्लक | – | – | शल्यक जन्तु |
| सेह | – | – | शरीर पर कांटे वाला जन्तु |
| सेहंब | – | – | रायता आदि |
| सोणिय | – | – | रक्त |
| सोय | – | – | शोक |
| सोयरिया | – | – | सूअरों के द्वारा शिकार करने वाला |
| सोलहविहं | – | – | सोलह प्रकार का |
| संकम | – | – | उतरने का मार्ग |
| संकरो | – | – | वस्तुओं का परस्पर मिलाना, परिग्रह का ७वां भेद |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| हत्थंदुय | – | – | हस्तान्दुक एक प्रकार का बन्धन |
| हय | – | – | घोड़ा |
| हय पुंडरिय | – | – | हद पुण्डरीक पक्षी |
| हरिएसा | – | – | चाण्डाल |
| हल | – | – | हल |
| हस्स | – | – | हास्य |
| हितयंत | – | – | हृदय और आंत |
| हिरण्ण | – | – | चांदी |
| हुरब्भ | – | – | भेड आदि ऊन वाले जीव |
| हुलियं | – | – | शीघ्र |
| हूण | – | – | हूण जाति |
| हंस | – | – | हंस |
| हिंसविहंसा | – | – | हिंसा का ४था नाम |
| हुंड | – | – | बेडोल शरीर–कुरूप |



| शब्द | अर्थ |
| --- | --- |
| संख | शङ्ख |
| संचयो | वस्तुओं की अधिकता परिग्रह का २२रा भेद |
| संजमो | संयम, अहिंसा का ४ वां नाम |
| संडास तोंड | संडास की आकृति की तरह मुह वाला जीव |
| संथवो | बाह्य पदार्थों का अधिक परिचय, परिग्रह का २२वां भेद |
| संधि छेदक | खात खोदने वाला |
| संपाउप्पायको | झूठ आदि पाप को करने वाला, परिग्रह का १८ वां भेद |
| संपुड | सम्पुट |
| संदण | युद्ध तथा देव रथ |
| संवर | सांभर |
| संभारो | संभार जो अच्छी तरह से धारण किया जाय परिग्रह का ६ठा भेद |
| संमुच्छिम | सम्मूर्च्छिम बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाला जीव |
| संवरो | संवर, अहिंसा का ४२ नाम |
| संवट्टगसंखेवो | हिंसा का एक नाम |
| संसेइम | पसीने से पैदा होने वाला |
| संरक्खणा | संरक्षणा-मोहवश शरीर आदि की रक्षा करना परिग्रह का १६वां भेद |
| सिंग | सींग |
| संसुमार | जलचर जन्तु विशेष |
| **ह** | |
| हडि | काष्ठ का घोड़ा |
| हत्थि | हाथी |
| हत्थिमड | हाथी का कलेवर |

को कर्मबन्ध का हेतु बनाते हैं। ज्ञानी के लिये वे ही पदार्थ कर्म निर्जरा के हेतु हैं। अतएव पदार्थों को आस्रव नहीं कहा गया।

सब आस्रवों का आधार योग है। इस योग प्रवृत्ति से होने वाला आस्रव शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का है। पुण्य बन्ध के कारण पुण्यास्रव और पाप बन्ध के हेतु पापास्रव कहाते हैं। अशुभयोग के निरोध की अपेक्षा शुभयोग को संवर भी कहा है, किन्तु परमार्थ दृष्टिसे योगमात्र ही आस्रव है। अतः शुभ प्रवृत्ति भी शुभास्रव कहाती है। कर्मबन्ध का हेतु होने से आस्रव त्याज्य है। फिर भी शुभास्रव एकान्तरूप से हेय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म के बन्ध हेतु २० बोल अपेक्षासे शुभास्रव होकर भी उपादेय हैं, क्योंकि तीर्थङ्कर पद संवर निर्जरा का प्रचार करने वाला पद है। अतः जिस पुण्य प्रकृति से उसका लाभ हो वह भी उपादेय है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो मुनिओं की देशना, उपासकों की उपासना और सेवाव्रत आदि सारी प्रवृत्तियां त्यागने योग्य हो जायगीं किन्तु ऐसा नहीं है।

समुद्र पार जाने वाले यात्री को जैसे गाडी छोडकर समुद्र में जहाज ग्राह्य होती है और पार पहुँच जाने पर जहाज भी छोड दी जाती है। वैसे संसार सागर पार होने वाले साधक के लिये साधनावस्था में पाप छोडकर पुण्य उपादेय हो जाता है, क्योंकि शुभानुबन्धी पुण्य उनको साधना के अभिमुख करता और उसमें सहायक होता है। हां, जब साधना पूर्ण हो जाती है तब सिद्धावस्था के लिये पाप की तरह पुण्यास्रव भी त्यागने योग्य हो जाता है, किन्तु प्रथम से ही उसको त्याज्य समझ लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शास्त्र में केवल सांपरायिक आस्रव का ही वर्णण किया है। ऐर्यापथिक या शुभास्रव का नहीं, क्योंकि शुभास्रव न वैसा आत्मा के लिये अहितकर है और न इसका छूटना ही कठिन है, जैसाकि साम्परायिक आस्रव का। अतएव हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूपसे पांच आस्रवों का यहां वर्णन किया गया है। ये आस्रव दुर्गति के कारण होने से सर्वथा हेय हैं।

## २. संवर—

जीव रूप तालाब में कर्म प्रवाह को जिन कारणों से रोका जाय वह संवर है। आस्रव की तरह इसके भी द्रव्य भाव रूप से दो भेद हैं। नौका या तालाब के जल मार्ग को रोकना द्रव्य संवर और समिति गुप्तियों के द्वारा कर्मास्रव को रोकना भाव संवर है।

कर्म निरोध के उपाय तरीके संवर के ५७ भेद होते हैं—"जैसे-५ समिति, ३ गुप्ति, १० यतिधर्म, १२ भावना, २२ परीषह और ५ चारित्र कुल ५७। शुभाशुभ कर्मास्रव को रोकने के कारण संयम या चारित्र को भी संवर कहते हैं। आस्रव की विपरीत सारी प्रवृत्ति संवर का कारण है। इसके मुख्य भेद सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय और अयोग रूप से पांच हैं। मिथ्यात्व आदि पांच हेतुओं से होने वाला कर्मास्रव थोड़ी देर के लिये कल्पना कीजिए कि ११११? का है। जब मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर दिया जाय, तब ११११ बांकी रहते हैं। दश हजार का कर्ज कमहो गया। ऐसे अव्रत का दूसरा द्वार बन्द कर देने पर एक हजार कम हो गया, और प्रमाद एवं कषाय के संवरण कर लेने पर तो योग निमित्तक एक रुपया जितना ही कर्ज बाकी रहता है। अतएव जो प्राणी मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर चुके हैं, उनके लिये यहां हिंसा असत्य आदि त्याग रूप पांच संवर कहे गये हैं।

इन पांच संवरों के द्वारा अव्रत रूप दूसरा द्वार बन्द हो जाता है, और प्रमाद कषाय एवं योग के संकुचित हो जाने से उनके द्वारा होने वाला आस्रव भी अल्प हो जाता है। आस्रव घटने से आत्मा कर्मभार से हल्की रहती है। अतएव ये पांच संवर उपादेय हैं।

## ३. प्राणवध—

हिंसा का एक प्रसिद्ध नाम प्राणवध है, जिसको प्रकारान्तर से प्राणातिपात भी कहते हैं। प्राणवध का अर्थ है-प्राणों का नाश-अर्थात् अपने २ कायाधिष्ठान में सुघटित दश प्राणों को विघटित करना। लोक व्यवहार में जिसे जीव हिंसा कहते हैं उसको यहां प्राणवध के नाम से कहा गया है। कारण यह है कि आत्मा अरूप होने से किसी से मारी नहीं जा सकती केवल उसके प्राणों का नाश किया जा सकता है।

पाठक सोचेंगे कि हिंसा ऐसा सरल नाम न देकर प्राणवध ऐसा क्यों लिखा ? यदि स्पष्टता के लिये लिखना था तब भी जीव हिंसा लिखते ? क्योंकि प्राण तो मारे जाते नहीं फिर प्राणवध कैसा ?

उत्तर यह है कि वास्तव में आत्मा अमर है। यदि वही मर जाय तब तो भूत-वादियों के कथनानुसार पुण्य पाप और परलोक का भी अभाव हो जायगा। दृष्टान्त के रूप में सोचिए कि आपने किसी गृहस्थ को घर से बाहर कर दिया है,

उसके शरीर को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बदला लेना चाहेगा। उसका हृदय वैर को नहीं भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुडाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ वैर नहीं भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर में जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नहीं भूलता। दूर बसे हुए भी शरणार्थिओं की तरह उसका हृदय वैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते हैं। इस लिये कहा है कि--"पञ्चेन्द्रियाणित्रिविधं बलञ्च, उच्छ्वास निश्वासमथान्यदायुः प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता--स्तेषां वियोगी करणं तु हिंसा॥ पांच इन्द्रियां, ३ बल श्वास और आयु रूप दश प्राणों का जीव से वियोग करना ही हिंसा है। इसलिये हिंसा को प्राणवध कहा गया।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरों को कष्ट पहुंचाना हिंसा नहीं है। प्राण नाश का कारण होने से दुःख या क्लेश पहुँचाना भी वध कहा गया है। जैसे कि--'तप्पज्जाय विणासो, दुक्खुप्पातो य संकिलेसो य। एस वहो जिण भणिओ वज्जेयव्वो पयत्तेणं॥ शरीर पर्याय का नाश और दुःख एवं संक्लेश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करों ने वध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणिवध भी व्यवहार दृष्टया प्राणवध को कहते हैं।

## ४. हिंसा के कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिंसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमें अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति. अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण—

चमडा १ चरबी २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत् ६ फिप्फस-फेफडा ७ मस्तुलुंग-कपाल का भेजा ८, हृदय ९, आंत १० पित्त ११ फोफस १२ दांत १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसें १९, नाक २० धमनी-नाडी २१ सींग २२, दाढ २३, पिच्छ या पूंछ २४, विप २५. विषाण-हाथी दांत २६ और

तेइन्द्रिय जीवों की और चर वस्त्र की सफाई रंगाई तथा रेशम. आदि के लिये चेइन्द्रिय जीवो की हिंसा होती है।

इसके उपरान्त स्थावर जीवों की हिंसा के सैकडों कारण पृथक् हैं खेती, देवल, चैत्य आदि पृथ्वीकाय की हिंसाके कारण बताए गये हैं। इस प्रकार धर्म आदि अर्थ या अनर्थ से अबुध लोग हिंसा करते हैं। यज्ञ याग एवं देवोपासना में की जाने वाली हिंसा को भी कर्मबन्ध का कारण कहा है। जैसे कि परतैर्थिक ने भी कहा-हिंसाजन्यञ्च पापञ्च लभते नात्र संशयः अर्थात् धर्म के नाम पर भी की गई हिंसा पाप पैदा करती है। वधकर्ता हिंसा के बदले पापको पाता है, इसमें कोई सन्देह नही है। इस आशय को तत्त्वज्ञ विद्वानों ने जोर तोर से समर्थन किया है। जैसेकि,-' देवोपहार व्याजेन यज्ञ व्याजेन येऽथवा। घ्नन्ति जन्तून् गतघृणाः, घोरां ते यान्ति दुर्गतिम्॥ वेदान्ती भी कहते हैं -" अन्धे तमसि मज्जामः पशुभिर्ये यजामहे। हिंसा नाम भवेद्धर्मो-न भूतो न भविष्यति।

व्यासने भी कहा है -" प्राणिघातात्तु यो धर्म-मीहते मूढ मानसः। स वाञ्छति सुधावृष्टिं, कृष्णाऽहिमुख कोटरात्॥ .

इत्यादि सहस्रों प्रमाण मनु स्मृति आदि ग्रन्थों के दिये जा सकते हैं, जो विस्तार भय से नहीं दिये गये हैं।

## ५. प्रमाद—

जिसके कारण लोक कर्तव्य का भान भूले, उसे प्रमाद कहते हैं। कोषकार अमरसिंह ने प्रमाद के लिये अनवधानता पद का प्रयोग किया है। जैसे कि-- प्रमादोऽनवधानता-इत्यमरः, द्रव्य और भाव भेद से प्रमाद दो प्रकार का है। बोध की सुलभता के लिये आचार्यों ने प्रमाद के ५ एवं ८ भेद भी किये हैं। जैसे मद्य १ विषय-शब्दादि २, कषाय ३, निद्रा और विकथा ४। ५ ये प्रमाद के पांच प्रकार हैं। आठ भेद में प्रथम अज्ञान, दूसरा संशय, ३ रा मिथ्या ज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ मति भ्रंश, ७ धर्म में अनादार और ८ मन वचन एवं काय की अशुभ प्रवृत्ति, यह आठवां प्रमाद है। कहा भी है--

अन्नाण १ संसओ २ चेव, मिच्छानाणं तहेव य। रागो दोसो ५ मइब्भंसो ६, धम्मम्मिय अणायरो। अप्पसत्थाण जोगाणं, पमाओ होइ अट्ठहा॥

कुलकोडि—

जीवों की जाति विशेष को कुल कोटि कहते हैं। एकेन्द्रिय की ५७ लाख कुल कोटि हैं।

जैसे कि— पृथ्वी काय की १२ लाख कुल कोटि,
अप्काय की ७ लाख,
तेउ काय की ३ लाख,
वायु काय की ७ लाख,
वनस्पति काय की २८ लाख,
बेइन्द्रिय की ७ लाख कुल कोटि,
तेइन्द्रिय की ८ लाख,
चौरिन्द्रिय जीवों की ९ लाख कुल कोटि है।

पञ्चेन्द्रिय जीवों में जलचर की १२॥ साढे बारह लाख कुलकोटि खेचरों-पक्षियों-की १२ लाख कुलकोटि। चतुष्पाद-हाथी घोड़ों आदि की १० लाख कुलकोटि। उरःपरिसर्प-छाती के बल से ससरने वाले सर्प आदि की १० लाख कुलकोटि। मनुष्य पञ्चेन्द्रिय की १२ लाख कुलकोटि भुजा से चलने वाले चूहा आदि की ९ लाख कुल कोटि॥ देवों की २६ लाख कुलकोटि। नारक जीवों की २५ लाख कुलकोटि है। इन सब संख्याओं को मिलाकर एक करोड़ सतानवे लाख पचास हजार कुल कोटियाँ होती हैं।

जैसे कि कहा गया है -" एगिंदिएसु पंचसु, बारस सत्त तिगसत्त अट्ठवीसा य। विगलेसु सत्त अडनव जल खह चउप्पय उरग भूयगे॥ १॥ अट्ठ-तेरस बारस दस दस नवगं नरामरे नरए। बारस छव्वीस. पणवीस हुँति कुल कोडी लक्खाइं॥ २॥

## ६. मृषावादी—

हिंसा की तरह मृषावाद भी पाप वन्ध का एक बड़ा कारण है। इसके बोलने वालों की कोई स्वतन्त्र जाति नहीं होती। उच्च से उच्च कुल में जन्मा हुआ भी यदि झूठ बोलता है तो वह मृषावादी है। सूत्र में असत्य पूर्ण व्यवहार और झूठे सिद्धान्तों की अपेक्षा मृषावादियों के दो वर्ग किये गये हैं। एक लोक व्यवहार

आजीविका निमित्त या मोह वश झूठ बोलने वाले और दूसरे सैद्धान्तिक जगत में तत्वों का मिथ्या स्वरूप बताने वाले।

प्रथम प्रकार के मिथ्यावादी इस प्रकार हैं--क्रोध, लोभ, भय, और हास्य ये झूठ के मूलकारण हैं। क्रोध द्वेष का और लोभ राग का अंश है, और राग द्वेष मोह के प्रधान अङ्ग हैं। अतएव मोह अज्ञानादि सारे हेतु इनमें समाविष्ट हो जाते हैं। अर्थ, धर्म और काम को इन्हीं क्रोध लोभ रूप दो भागों में अन्तर्हित समझना चाहिए।

क्रोध लोभादि वृत्ति वाले लोगों को गिनाते हैं--१ असंयमी, २ अविरती, ३ कपट से कुटिल और चञ्चल भाव वाले, ४ साक्षी, ५ चोर, ६ चारभट, ६ खंडरक्षक, ८ चुंगी लेने वाले, ६ जीतने वाला जुआरी, १० धरोहर दबाने की इच्छा वाले, ११ वञ्चना के लिये मीठे बोलने वाले, १२ कुतीर्थिक--वेष मात्र धारी, १३ वणिक्-वाणिज्य करने वाले, १४ कूटतुल कूटमानी-खोटा तोल माप करने वाले, १५ नकली सिक्के से जीने वाले या कूट धर्म से जीविका करने वाले, १६ पटकार-बुनकर, १७ सुवर्णकार-सुनार, १८ कारुक-कारीगर, १६ वञ्चक-ठग, २० चारिक-चोर की खोज निकालने वाले, २१ चाटुकार-खुशामद करने वाले, २२ नगर गुप्तक-कोतवाल, २३ परिचारक-मैथुन कर्म में दलाली करने वाले, २४ दुष्टवादी-असत्य पक्ष लेने वाले, २५ सूचक-चुगलखोर २६ ऋणबल भणिता-बल से ऋण लेने वाले-कर्जदार, २७ पूर्व कालिक वचन दक्ष-बोलने वाले के पहले ही अनुमान करके कहने वाले, २८ साहसिक-बिना सोचे बोलने वाले, २६ लघु-तुच्छ हृदय वाले, ३० दुर्जन, ३१ गौरविक-ऋद्धि आदि के गारव वाले, ३२ असत्य की स्थापना में चित्त वाले, ३३ उच्च छन्द-बड़प्पन में ऊंचे अभिप्राय वाले, ३४ निरङ्कुश वचन वाले, ३५ नियम रहित या स्वजन रहित, ३६ इच्छानुसार बोलने वाले, अथवा स्वेच्छा से अपने को सिद्ध कहने वाले, निन्दक मत्सरी आदि ये लौकिक मृषावादी हैं।

लोकोत्तर मृषावादियों का परिचय दिया जाता है--

## ७. नास्तिक वादी--

नास्तिकवाद में असत्यांश की अधिकता है, अतः प्रथम नास्तिकवादी को कहा गया है। दृष्ट जगत से भिन्न जो आत्मा परमात्मा और धर्म अधर्म आदि तत्वों का नहीं मानते उनको नास्तिक कहते हैं, जैसे कि--"नास्तिर्जीवः परलोको वा इत्येवं

मतिर्यस्य स नास्तिकः ।" जो जीव और परलोक को नहीं मानता है वह नास्तिक है। लोकायतिक या सद् भूत भी जीवादि पदार्थों को नहीं मानने से वामलोक वादी कहाते हैं। दिखने वाले भौतिक जगत के अतिरिक्त ये परलोक को नहीं मानते। न पञ्च भूतों से पृथक् आत्मा नाम का पदार्थ ही मानते हैं। जैसा कि, उन्होने कहा है-

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रिय गोचरः ।
भद्रे ! वृक पदं पश्य, यद्वदन्त्यविपश्चितः ॥ १ ॥
पिब, खाद च चारु लोचने ! यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।
नहि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ।२।

भाव यह है कि जितना प्रत्यक्ष दिखता है, उतना ही यहलोक है इससे भिन्न जो स्वर्ग नरक आदि कहे जाते हैं वे सब मात्र प्रलोभन या भय के लिये ही है। उनमें कुछभी तत्त्व नहीं है। इसलिये ये लोग खाना, पीना और मौज मनाना ही जीवन का सार समझते हैं। इन नास्तिकों का -यह सिद्धान्त है-" यावज्जीवेत्सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतंपिबेत् । भस्मीभूतस्य-भूतस्य पुनरागमनं कुतः॥ अर्थात्-जबतक जीओ, सुखसे जीओ ऋण लेकर भो घी पीओ, देह भस्मीभूत होने पर फिर मिलने का कहां है ? । और भी इन का कहना है-" स्वागमार्थेऽपि मास्थाऽस्मिन्, तीर्थिका विचिकित्सवः । तंतमाचरताऽऽनन्दं स्वच्छन्दं यं यमिच्छथ ॥. अपने आगम रूप अर्थ में संशयात्मा वनकर स्थिर न रहो। उसी आचरण को करो जो कि तुम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वच्छन्द आचरण को करो, आगम के विधि निषेध में न पडो।

ये नास्तिक वादी अपने पक्ष की सिद्धि में कहते हैं कि प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से आत्मा की सिद्धि नहीं होती और न परलोक की सत्ता ही सावित होती है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी नहीं होता । अतः पञ्चभूत का वना यह जगत ही सत्य है। पञ्चभूत-पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश-से पृथक् आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है

उनका कहना है कि पञ्चभूतों में प्रत्यक्ष नहीं दिखने वाली भी चेतना शक्ति-' किण्वादिभ्यो मदशक्ति वत् जैसे गुड महुआ आदि के मिलने पर मादकता आती

आजीविका निमित्त या मोह वश झूठ बोलने वाले और दूसरे सैद्धान्तिक जगत में तत्वों का मिथ्या स्वरूप बताने वाले।

प्रथम प्रकार के मिथ्यावादी इस प्रकार हैं--क्रोध, लोभ, भय, और हास्य ये झूठ के मूलकारण हैं। क्रोध द्वेष का और लोभ राग का अंश है, और राग द्वेष मोह के प्रधान अङ्ग हैं। अतएव मोह अज्ञानादि सारे हेतु इनमें समाविष्ट हो जाते हैं। अर्थ, धर्म और काम को इन्हीं क्रोध लोभ रूप दो भागों में अन्तर्हित समझना चाहिए।

क्रोध लोभादि वृत्ति वाले लोगों को गिनाते हैं--१ असंयमी, २ अविरती, ३ कपट से कुटिल और चञ्चल भाव वाले, ४ साक्षी, ५ चोर, ६ चारभट, ६ खंडरक्षक, ८ चूंगी लेने वाले, ९ जीतने वाला जुआरी, १० धरोहर दबाने की इच्छा वाले, ११ वञ्चना के लिये मीठे बोलने वाले, १२ कुतीर्थिक--वेष मात्र धारी, १३ वणिक्-वाणिज्य करने वाले, १४ कूटतुल कूटमानी-खोटा तोल माप करने वाले, १५ नकली सिक्के से जीने वाले या कूट धर्म से जीविका करने वाले, १६ पटकार-बुनकर, १७ सुवर्णकार-सुनार, १८ कारुक-कारीगर, १९ वञ्चक-ठग, २० चारिक-चोर की खोज निकालने वाले, २१ चाटुकार-खुशामद करने वाले, २२ नगर गुप्तक-कोतवाल, २३ परिचारक-मैथुन कर्म में दलाली करने वाले, २४ दुष्टवादी-असत्य पक्ष लेने वाले, २५ सूचक-चुगलखोर २६ ऋणवल भणिता-बल से ऋण लेने वाले-कर्जदार, २७ पूर्व कालिक वचन दक्ष-बोलने वाले के पहले ही अनुमान करके कहने वाले, २८ साहसिक-बिना सोचे बोलने वाले, २९ लघु-तुच्छ हृदय वाले, ३० दुर्जन, ३१ गौरविक-ऋद्धि आदि के गारव वाले, ३२ असत्य की स्थापना में चित्त वाले, ३३ उच्च छन्द-बड़प्पन में ऊंचे अभिप्राय वाले, ३४ निरङ्कुश वचन वाले, ३५ नियम रहित या स्वजन रहित, ३६ इच्छानुसार बोलने वाले, अथवा स्वेच्छा से अपने को सिद्ध कहने वाले, निन्दक मत्सरी आदि ये लौकिक मृषावादी हैं।

लोकोत्तर मृषावादियों का परिचय दिया जाता है--

## ७. नास्तिक वादी--

नास्तिकवाद में असत्यांश की अधिकता है, अतः प्रथम नास्तिकवादी को कहा गया है। दृष्ट जगत से भिन्न जो आत्मा परमात्मा और धर्म अधर्म आदि तत्वों को नहीं मानते उनको नास्तिक कहते हैं, जैसे कि--"नास्तिजीवः परलोको वा इत्येवं

मतिर्यस्य स नास्तिकः।" जो जीव और परलोक को नहीं मानता है वह नास्तिक है। लोकायतिक या सद् भूत भी जीवादि पदार्थों को नहीं मानने से वामलोक धादी कहाते हैं। दिखने वाले भौतिक जगत के अतिरिक्त ये परलोक को नहीं मानते। न पञ्च भूतों से पृथक् आत्मा नाम का पदार्थ ही मानते हैं। जैसा कि, उन्होने कहा है-

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रिय गोचरः।

भद्रे ! वृक पदं पश्य, यद्वदन्त्यविपश्चितः ॥ १ ॥

पिव, खाद च चारु लोचने ! यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते।

नहि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ।२।

भाव यह है कि जितना प्रत्यक्ष दिखता है, उतना ही यहलोक है इससे भिन्न जो स्वर्ग नरक आदि कहे जाते हैं वे सब मात्र प्रलोभन या भय के लिये ही है। उनमें कुछभी तत्त्व नहीं है। इसलिये ये लोग खाना, पीना और मौज मनाना ही जीवन का सार समझते हैं। इन नास्तिकों का -यह सिद्धान्त है-" यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतंपिवेत्। भस्मीभूतस्य-भूतस्य पुनरागमनं कुतः॥ अर्थात्- जबतक जीओ, सुखसे जीओ ऋण लेकर भो घी पीओ, देह भस्मीभूत होने पर फिर मिलने का कहां है ?। और भी इन का कहना है-" स्वागमार्थेऽपि मास्थाऽस्मिन्, तीर्थिका विचिकित्सवः। तंतमाचरताऽऽनन्दं स्वच्छन्दं यं यमिच्छथ ॥. अपने आगम रूप अर्थ में संशयात्मा वनकर स्थिर न रहो। उसी आचरण को करो जो कि तुम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वच्छन्द आचरण को करो, आगम के विधि निषेध में न पडो।

ये नास्तिक वादी अपने पक्ष की सिद्धि में कहते हैं कि प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से आत्मा की सिद्धि नहीं होती और न परलोक की सत्ता ही सावित होती है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी नहीं होता। अतः पञ्चभूत का वना यह जगत ही सत्य है। पञ्चभूत-पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश-से पृथक् आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है

उनका कहना है कि पञ्चभूतों में प्रत्यक्ष नहीं दिखने वाली भी चेतना शक्ति-' किण्वादिभ्यो मदशक्ति वत् जैसे गुड महुआ आदि के मिलने पर मादकता आती

है, वैसे-ही पञ्चभूतों के सम्मिलित होने पर प्रकट होजाती है। शरीर ही प्राण वायु से युक्त सभी क्रियाओं को करते दिखाई देता है। हिंसा, झूठ, चोरी और पर दार गमन में कोई पाप नहीं है।

कहा जाता है कि बृहस्पति ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये जब मृत्युञ्जय मन्त्र और संजीवनी का साधन कर के भी सफलता प्राप्त नहीं की। तब पुत्र वियोग से विकल उनके हृदयने पुण्य पाप और जप तप आदि को झूठा घोषित किया। जैसे कि उसने कहा है-

अग्नि होत्रं त्रयीदण्डं, त्रिदण्डं भस्म पुण्ड्रकम्।
प्रज्ञा पौरुषहीनानां, जीवो जल्पति जीविकाम्॥

भाव यह है कि-

अग्नि होत्र-नियमपूर्वक हवन करना, त्रयी ऋक् यजुः, साम-इन तीनों वेदोंका साङ्ग अध्ययन करना, दण्डी या त्रिदण्डी बनना, भस्म लगाना, और मुद्रा अङ्कित करना ये सब बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन लोकों की जीविका-जीवन यापन की योजना मात्र है और कुछ इन में सार नहीं है, ऐसा बृहस्पति कहता है। बृहस्पति से प्रचारित होने के कारण-इस मत को बार्हस्पत्य मत भी कहते हैं। व्यक्तिगत रूप से तो आज नास्तिक वाद का प्रचार हजारों मनुष्यों में मिलेगा। पश्चिमी-साम्यवाद की वायुने सर्वत्र यह प्रचार कर रक्खा है कि भूतवाद और दृष्टजगत्से भिन्न आत्मा परमात्मा तथा परलोक वास्तव में नहीं है। नैतिक नियमों का पालन भी ये लोग समाज व्यवस्था के लिये ही करते हैं।

आज के प्रचलित कुंडा पंथ और वाम मार्ग इसी नास्तिक मत के रूपान्तर हैं अथवा इसी के भयङ्कर परिणाम हैं। आस्तिक दर्शनों से इसकी चाल सर्वथा भिन्न है। इन नास्तिकों की दुश्चर्या जानकर "साक्षरा विपरीताश्चेद् राक्षसा एव केवलम्" यह संस्कृतोक्ति याद आती है। ये लोग अधिकता से साक्षर हैं। ये शिव को देव मानते। इनकी चक्रपूजा ही उपासना है। इस चक्र पूजा में नर-नारी उपस्थित होते हैं। इनका कहना है अन्य मत से निर्वाण कीटिका-गति से कदाचित् होता है किन्तु वाम मार्ग से वह निर्वाण गरुड़ गति से अवश्य प्राप्त होता है। इनके पांच मकार मोक्षप्रद माने गये हैं।

जैसे--"मद्यं मांसं च मीनञ्च, मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकारा: स्युर्मोक्षदाहि युगे युगे ॥ १ ॥ ( काली तन्त्र )

इनके अनेकों तन्त्र ग्रन्थ हैं। वाम मार्ग की साधना--इसके साधक गण किस रीति से करते थे? ऐसा परिचय जिन्हें प्राप्त करना हो, वे बाणभट्टकृत कादम्बरी में चन्द्रा पीड़ के कैलास गमन प्रकरण को पढ़ें।

स्वानुभूति से सिद्ध योग शक्ति निष्णातों के वचनों से प्रमाणित विश्व प्रसिद्ध ऐसे आत्म तत्त्व एवं धर्माधर्म का निषेध करने से ये मृषावादी कहे गये हैं।

## ८. पञ्चस्कन्ध–

कुछ लोग पञ्चस्कन्ध को ही सब कुछ मानते हैं, उनके विचारानुसार पञ्चस्कन्ध से भिन्न आत्मा कोई स्वतन्त्र वस्तु है ही नहीं। पञ्चस्कन्ध—"विज्ञान १, वेदना २, संज्ञा ३, संस्कार ४, और रूप ५ ये पांचस्कन्ध ही सब कुछ हैं। जैसेकि रूप स्कन्ध में पृथ्वी आदि सभी धातु सारे रस आदि आजाते हैं, वेदना स्कन्ध में सुख दुःख आदि वेदनायें तथा विज्ञान स्कन्ध में रूपरसादि विज्ञानों का समावेश हो जाता है, संज्ञास्कन्ध में–ग्रहणात्मक बोध आता है और संस्कार स्कन्धमें पुण्य पाप आदि अच्छे बुरे विचार आते हैं, इस प्रकार जगत् के पदार्थ मात्र इनमें अन्तर्निहित होते हैं, इनसे भिन्न आत्मा नामका कोई छट्ठा तत्त्व नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष या अनुमान में से किसी भी प्रमाण द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती। पञ्च स्कन्ध भी क्षण योगी है अर्थात् क्षणमात्र स्थायी–क्षणिक–हैं, इस मत को मानने वाले बौद्ध हैं।

कुछ बौद्धाचार्य शरीर को चतुर्धातुक मानते हैं। उनके सिद्धान्तानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार धातुओं से यह शरीर बना है, और कायरूप से इनकी परिणति को ही जीव नाम से कहा जाता है। जैसे कि कहा है–"चतुर्धातुकमिदं शरीरं नतद्व्यतिरिक्त आत्मास्तीति–चतुर्धातुक इस शरीर के अतिरिक्त आत्मा कोई तत्त्व नहीं है।

समय पाकर इन बौद्धों के चार भेद होगये–वैभाषिक १, सौत्रान्तिक २, योगाचार ३, और माध्यमिक ४। त्रिपिटक के मतानुसार वैभाषिक सभी तत्त्वों को प्रमाण मानते पदार्थ मात्र को क्षणिक तथा आत्मसन्तान परम्परा का छेद अर्थात्–आत्मा

का मिट जाना ही उनके यहाँ मक्ष माना गया है। प्रत्यक्ष और अनुमान को प्रमाण मानते हैं। सौत्रान्तिक-केवल अनुमान को ही प्रमाण मानते हैं। योगाचार सम्प्रदाय में अद्वैत की तरह संसार की सभी वस्तुएं मिथ्या मानकर केवल आत्मज्ञान को ही सत्य माना है। वह ज्ञान क्षणिक अवश्य है। माध्यमिक-मध्यम सम्प्रदाय के बौद्ध जगत् के पदार्थ मात्र को शून्य मानते हैं। शून्य न सत् है न असत्, न सदसत् है, न अनिर्वचनीय है। शून्य इन सभी विकल्पों से पृथक् तत्त्व है। आत्मा आदि सभी पदार्थ कल्पित अतएव भ्रमपूर्ण है। कुछ बौद्धाचार्यों ने आत्मा और कर्म आदि को माना है फिर भी अधिकांश बौद्ध अनात्मवादी हैं। बौद्ध भिक्षु राहुल ने तो अपने अनात्मवादी विचारों का स्पष्ट उल्लेख किया है। यद्यपि सत्य, संयम और अहिंसा का बौद्धाचार्यों ने भी उपदेश किया है, फिर भी क्षणिक वाद इनका सर्व मान्य है। बौद्ध की दृष्टि से संसार के सभी पदार्थ क्षणिक हैं। प्रथमक्षण का कार्य दूसरे क्षण में नहीं रहता। जैसे कि वे कहते हैं—"यत् सत् तत् क्षणिकम्" 'क्षणिकाः सर्व संस्काराः' आदि। आत्मा आदि मूल भूत तत्त्वों को नहीं मानने एवं सबको क्षणिक मानने से ये मृषावादी हैं। सबको क्षणिक मानने से संसार का कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा, कार्य कारण व्यवस्था तो रहेगी ही नहीं, क्योंकि पूर्वक्षण का मृत्पिण्ड जब घडे बनने के उत्तर क्षणमें रहेगा ही नहीं तब वह मृत्पिण्ड उस घडे का कारण कैसे होगा? सिवाय इसके सबको क्षण स्थायी मान लेने पर देखे और सुने हुए का समयान्तर में स्मरण न होना चाहिए, किन्तु देखा जाता है कि मनुष्य को बाल्यकाल की बात वृद्धावस्था में भी याद रहती है। श्रोता का सुनना और वक्ता गुरु का उपदेश कथन भी ज्ञान लाभ का कारण नहीं होगा। क्षणिकवाद में लौकिक आदान प्रदान और न्यायकर्ता का दण्ड विधान भी नहीं हो सकेगा। क्योंकि लेने व देने के क्षण तथा अपराध करने व दण्ड भोगने के क्षण भिन्न हैं। जब पूर्व क्षण का कार्य उत्तर क्षण में रहता ही नहीं तब ऋण लेने वाला देने के क्षणमें और अपराधी दण्ड विधान की क्षणमें नहीं रहा। कृतकर्मों का भोग भी क्षण वाद में नहीं रहेगा, क्योंकि बन्धक्षण भोगक्षण से पहले ही नष्ट हो चुकी, फिर जप ध्यान और भिक्षुचर्या सारी व्यर्थ ठहरती है। अतः मूल द्रव्य परिणामी होकर नित्य है। केवल उसके परिणाम रूपान्तर ही क्षणस्थायी हैं वहाँ सब पदार्थों को क्षणिक मानना मृषा है।

# अंडकाओ संभूओलोको—

कर्तृत्व वादी कहा करते हैं कि यह संसार एक अंडे से उत्पन्न हुआ है और भगवान् स्वयम्भूने इस का निर्माण किया है। अंड सृष्टि के मुख्य दो प्रकार हैं। एक बहुत प्राचीन है, जो छान्दोग्योपनिषत् में बताया गया है। दूसरा प्रकार मनुस्मृतिमें दिखलाया है। दोनों की प्रक्रिया भिन्न २ है और दोनों में बडा अन्तर है। उपनिषत् में अंड के साथ स्वयम्भू का कोई सम्पर्क नहीं है जबकि मनुस्मृति की सृष्टिमें स्वयम्भू अंडे में प्रवेश करके सृष्टि का निर्माण करते हैं। "संभूओ अंडकाओ लोगो" प्रश्न व्याकरण के इस वचनानुसार प्रथम छान्दोग्योपनिषत् की प्रक्रिया ही उपयुक्त ज्ञात होती है। अतः उपनिषद् के अनुसार प्रथम स्वयम्भूत अंडसृष्टि का उल्लेख करके फिर मनुस्मृति की अंडसृष्टि बतायी जायगी। छान्दोग्योपनिषत् ३, १६ में लिखा है-

## असदेवेदमग्र आसीत्—

अर्थ-"सृष्टि से पहले प्रलय कालमें यह जगत असत् अर्थात् अव्यक्त नाम रूप वाला था। तत्सदासीत् वह असत् जगत् सत् यानी नाम रूप कार्य की ओर अभिमुख हुआ।

तत्समभवत्-अङ्कुरी भूत वीज के समान कमसे कुछ थोडासा स्थूल बना। तदाण्डं निरवर्तत-आगे चल कर वह जगत् अंडे के रूपमें बना। तत्संवत्सरस्य मात्रामाशयत-" वह एक वर्ष पर्यन्त अण्डरूपमें रहा। तन्निरभिद्यत-वह अण्डा एक वर्ष के पश्चात् फूटा। ते अण्ड कपाले रजतं च सुवर्णञ्चाऽभवताम्-अंडे के दोनों कपालों में से एक चांदी का और दूसरा सोने का बना। तद्यद् रजतं सेयं पृथिवी -उनमें जो चांदी का था उसकी पृथ्वी बनी। यत्सुवर्णं सा द्यौः-जो कपाल सोनेका था उसका ऊर्ध्वलोक स्वर्ग बना। यज्जरायु ते पर्वताः-जो गर्भका वेष्टन था उसके पर्वत बने यदुल्वं स मेघो नीहारः-जो सूक्ष्म गर्भ परिवेष्टन था वह मेघ और तुषार बना। या धमनयः, तानद्यः-जोधमनियां थीं वे नदियां बन गईं। यद् वास्तेयमुदकं स समुद्रः जो मुत्राशय का जल था उसका समुद्र बना। अथ यत्तद् जायत सोऽसावादित्यः-अन्तर अंडे में से जो गर्भ रूप में पैदा हुआ वह आदित्य बना।

यह अंडे की आमूल चूल स्वतन्त्र सृष्टि है। इसमें स्वयम्भू-ईश्वर या विष्णु आदि का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जहांतक वैदिक साहित्य से हमारा परिचय हुआ है यह इस रंग ढंग का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में उपलब्ध है।

सयंभुणा सयंच निम्मिओ—

## महर्षि मनु की अंड सृष्टि

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्कमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः । ५ ।
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः । ६ ।
योऽसावतीन्द्रिय ग्राह्यः, सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः, स एव स्वयमुद्बभौ । ७ ।
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ, तासु बीजमवासृजत् । ८ ।
तदण्डमभवद्धैमं, सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा, सर्वलोक पितामहः । ९ ।
आपो नारा इति प्रोक्ता, आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः । १० ।
यत्तत्कारणमव्यक्तं, नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते । ११ ।
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा । १२ ।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च, दिवं भूमिं च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् । १३ ।

मनु० प्र० अ० ।

अर्थात्--पहले यह संसार अंधकार रूप था, न किसी से जाना जाता और न कोई इसका लक्षण था, तर्क से परे और चारों ओर से गाढ़ निद्रावान् की तरह अज्ञेय था ॥ ५ ॥

तब अव्यक्त रहे हुए भगवान स्वयंभू पंच महाभूतों को प्रकट करते हुए स्वयं प्रकट हुए ॥ ६ ॥

जो यह अतीन्द्रिय, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन और सर्वान्तर्यामी अचिन्त्य परमात्मा है, वही स्वयं ( इस प्रकार ) प्रकट हुआ ॥ ७

उसने ध्यान करके अपने शरीर से अनेक प्रकार के जीवों को बनाने की इच्छा से सर्व प्रथम जल का निर्माण किया और उसमें बीज डाल दिया ॥ ८ ॥

वह बीज सूर्य के समान प्रभावाला सुवर्णमय अंड बन गया। उससे सब लोक के पितामह ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए ॥ ९ ॥

नर-परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण जलको नार कहते हैं, वह नार इसका पूर्व घर ( आयन ) है इसलिये इसको नारायण कहते हैं ॥ १० ॥

जो सबका कारण है, अव्यक्त और नित्य है तथा सत् व असत् रूप वाला है, उससे उत्पन्न वह पुरुष लोक में ब्रह्मा कहाता है ॥ ११ ॥

एक वर्ष तक उस अंड में रहकर उस भगवान ने स्वयं ही अपने ध्यान से उस अंड के दो टुकड़े कर दिये ॥ १२ ॥

उन दो टुकड़ों से उसने स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण किया। मध्य भाग में आकाश, आठ दिशाएं और जल का शाश्वत स्थान निर्माण किया ॥ १३ ॥

इसमें बताया गया है कि पहले भगवान स्वयंभू प्रकट हुए और जगत बनाने की इच्छा से अपने शरीर से जल पैदा किया, उसमें बीज डालने से वह अंडाकार बन गया।

ब्रह्मा या नारायण ने अंडे में प्रकट होकर उसको फोड़ दिया, जिससे यह सारा संसार प्रकट हुआ।

**पयावइणा इस्सरेण य कयंति—**

प्रजापति-ब्रह्मा ने स्वयं तपस्या करके मनु के द्वारा संसार का निर्माण किया। जैसा कि मनुस्मृति में कहा है—

—"द्विधा कृत्वात्मनो देह—मर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।

अर्द्धेन नारी तस्यां स, विराजमसृजत्प्रभुः । ३२ ।

ब्रह्मा ने अपने देह के दो टुकड़े किए। एक टुकड़े का पुरुष बनाया और दूसरे आधे टुकड़े की स्त्री बनाई। फिर स्त्री में विराट् पुरुष का निर्माण किया।

मनु अ० १ श्लो० ३२

तपस्तप्त्वाऽसृजद् यं तु, स स्वयं पुरुषो विराट् ।

तं मां वित्ताऽस्य सर्वस्य, स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥

उस विराट पुरुष ने तप करके जिसका निर्माण किया वह मैं हूँ अर्थात् वही मैं मनु हूँ हे श्रेष्ठ द्विजों ? निम्नोक्त समग्र सृष्टि का निर्माता मुझे समझो।

मनु अ० १ श्लो० ३३

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु, तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।

पतीन् प्रजानामसृजं महर्षी—नादितो दश । म० अ० १ श्लोक ३४ ।

मनु कहते हैं कि दुष्कर तप करके प्रजा सर्जन करने की इच्छा से मैंने प्रारम्भ में दश महर्षि प्रजापतिओं को उत्पन्न किया।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।

प्रचेतसं वशिष्ठं च, भृगुं नारदमेव च । म० अ० १ । ३५ ।

दश प्रजापतिओं के नाम ये हैं--( १ ) मरीचि ( २ ) अत्रि ( ३ ) अङ्गिरस् ( ४ ) पुलस्त्य ( ५ ) पुलह ( ६ ) क्रतु ( ७ ) प्रचेतस् ( ८ ) वशिष्ठ ( ८ ) भृगु और ( १० ) नारद ॥

एते मनूंस्तु सप्तान्यान्—असृजद्भूरितेजसः ।

देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः । १ । ३५ ।

अर्थ--इन प्रजापतिओं ने बहुत तेजस्वी दूसरे सात मनुओं को, देवों को, देवों के स्थान स्वर्गादिकों को तथा अपरिमित तेज वाले महर्षिओं को उत्पन्न किया।

## १०. ईश्वर सृष्टि

सूर्या चन्द्रमसौ धाता, यथा पूर्वमकल्पयत्—

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः । ऋग् १० । १९० । ३ ॥

अर्थ--यथा पूर्व-पूर्व के समान विधाता ने सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी इन दोनों के मध्यवर्ती भुवन और बाद में सब से ऊपर स्वर्लोक को बनाया।

न्याय दर्शन में निम्न प्रकार से कहा है--

--"ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्यदर्शनात्--न्या० सू० ४ । १ । १६ ॥

अर्थ--मनुष्य का प्रयत्न न जावे इसलिये कर्म फल प्रदाता के रूप में ईश्वर को कारण मानना आवश्यक है।

--' न पुरुष कर्माभावे फलाऽनिष्पत्तेः। न्या० सू० । ४ । १ । २० ॥

अर्थ--वादी कहता है--यह बात अर्थात् कर्म फलदाता के रूप में ईश्वर की सत्ता की बात नहीं है। क्योंकि पुरुष कर्तृक कर्म के अभाव में फल प्राप्ति नहीं होती है इसलिये फल प्राप्ति में कर्म कारण है किन्तु ईश्वर नहीं।

ईश्वर वादी का कथन--

--"तत्कारितत्वादहेतुः--न्या० सू० ४ । १ । २१ ।

वह कर्म भी तो ईश्वर प्रेरित ही होता है। इसलिये कर्ताधीन कर्म और कर्माधीन फल मानना हेत्वाभास है, सद्धेतु नहीं।

पुनश्च--

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म । ५ ।
तै० उप० भृगुवल्ली अनु० १ ।

अर्थ- जिससे ये प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिसी से जीवित रहते हैं। अन्त में सदा के लिये जाते हुए, जिसमें सम्यक् प्रवेश करते हैं, उसी को जानो वही ब्रह्म है।

इस उपरोक्त अल्प उद्धरणों से उपनिषद् श्रुति, स्मृति एवं न्याय सूत्रों से सृष्टि के विषय में विचार प्रस्तुत किये गये। इनसे भिन्न भी वेद और पुराणों की प्रतिपाद्य विविध प्रकार की सृष्टियां हैं।

जैसे प्रजापति सृष्टि, आत्म सृष्टि, प्रस्वेद सृष्टि, परस्पर सृष्टि और ॐकारसृष्टि, आदि इसका परिचय अणु भाष्य में है। इन विषयों को विशेषतया जानने के लिये भारत भूषण शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज कृत सृष्टिवाद और ईश्वर पढें।

कर्तृत्व वादिओं की विचारणा भ्रान्त और रुचि के अनुसार कल्पित हैं। युक्ति शून्य हो जाने से ये सारी धारणायें झूठी हैं।

इनकी असत्यता के लिये देखिए श्रीकृष्ण के उद्गार--

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव, विद्ध्यनादी उभावपि,
विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृति सम्भवान्।
कार्य कारण कर्तृत्वे, हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते। गी० १३। १६। २०।

अर्थात्--प्रकृति और पुरुष ये दोनों अनादि हैं। विकार १६ और गुण २५ अथवा ३ इसी प्रकृति से उत्पन्न समझो। कार्य एवं कारण के कर्तृत्व में प्रकृति ही कारण कही जाती है। सुख और दुःखों को भोगने के लिये पुरुष हेतु है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष की अनादिता से सारा संसार अनादि सिद्ध होता है।

## ११. "विष्णुमय जगत"—

ईश्वर को सर्वव्यापक माननेवाले कहते हैं कि--

जले विष्णुः स्थले विष्णु र्विष्णुः पर्वत मस्तके।
ज्वाला मालाकुले विष्णुः, सर्वं विष्णुमयं जगत्॥१
अहंच पृथिवी पार्थ! वाय्वग्नि जलमप्यहम्।
वनस्पतिगतश्चाऽहं, सर्वभूतगतोऽप्यहम्।

अर्थात् जल में स्थल में पर्वत के मस्तक पर और ज्वालायुक्त अग्नि में विष्णु है। सब जगत् विष्णुमय है। हे अर्जुन! मैं पृथ्वी हूँ और वायु अग्नि जल भी मैं ही हूँ। वनस्पति में और सब भूतों में भी मैं रहा हुआ हूँ। इस प्रकार ईश्वर को सब में व्याप्त मानना बाधित है। यदि 'व्याप्नोतीति विष्णुः' इस व्युत्पत्ति से आत्मा को विष्णु मान कर कहा जाय तो सत्य हो सकता है, किन्तु दुःखमय जगत् को सच्चिदानन्द रूप विष्णुमय मानना अनुभव विरुद्ध है। इसलिये जड़ चेतन-जगत् को एकान्त विष्णुमय कहनेवाले मृषावादी हैं।

## "एक आत्मा अकारकः—

अद्वैतवादी कहते हैं कि--"एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव; दृश्यते जल चन्द्रवत्॥ अर्थात्--प्रत्येक प्राणी में एक ही आत्मा

रही हुई है, वह जल में चन्द्रबिम्ब की तरह एक और अनेक रूप से दिखाई देती है वास्तव में वह एक और अकारक है। आत्मा में शुभाशुभ कर्म का कर्तृत्व नहीं है। वह मात्र भोक्ता है।

उनकी दृष्टि से आत्मा का स्वरूप निम्न प्रकार है—

अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कापिल दर्शने ॥षड्दर्शन

अर्थात् कपिल दर्शन में आत्मा अमूर्त, चेतन, भोक्ता, नित्य सर्वव्यापी और अक्रिय है। अकर्ता सत्व, रजः, तम गुणों से रहित और अति सूक्ष्म है।

उपरोक्त कथन प्रमाण से बाधित है। संसार में कोई सुखी तो कोई दुखी देखा जाता है। सब में एक ही आत्मा हो तो सब की एक ही स्थिति होनी चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं है। इस तरह आत्मा को कर्म का कर्ता न मान कर मात्र भोक्ता ही मानना विरुद्ध है। क्योंकि कर्तृत्व के विना भोक्तृत्व नहीं होता। बिना किये भोग मानने पर कृत नाश और अकृताभ्यागम रूप दोषापत्ति हो जायगी जिससे चोरी न करने पर भी साहूकार को दण्ड पाना होगा जोकि अनुभव विरुद्ध है। दूसरी बात भोग भी तो एक क्रिया है। भोगते समय भी भोग क्रिया का कर्ता तो कहा ही जायगा। अतः आत्मा को एकान्त रूप से एक अकारक और भोक्ता कहनेवाले मृषावादी हैं।

सांख्य आचार्य भी इसी विचार सरणि के हैं। जैसे कि—"प्रकृतिः कर्त्री, पुरुषस्तु पुष्कर पलाशवन्निर्लेपः।

संग्रह नय की दृष्टि से समानता को लक्षित कर के जैनागम में भी 'एगे आया, आत्मा को एक माना है। किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से उनकी पृथक् सत्ता का निषेध नहीं किया गया है। अतएव वह सत्य है। ऐसे निश्चय नय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा कर्मों का कर्ता और भोक्ता भी नहीं है, किन्तु अशुद्ध दशावाली यानी माया युक्त आत्मा कर्म का कर्ता और भोक्ता है। एकान्त कथन में अपेक्षा नहीं रहती। अतः वह मिथ्या है।

संसार्यात्मनो मूर्तत्वेन परिणामित्वेन च कर्तृत्वोपपत्तेः। अकर्तृत्वे चाऽकृताभ्यागम प्रसंगात्। तथा वेदकश्च-प्रकृतिजनितस्य सुकृत दुष्कृतस्य च प्रतिबिम्बोदय न्यायेन भोक्ता। अमूर्तत्वेहि कदाचिदपि वेदकता न युक्ता आकाशस्येवेति कुदर्शनता चास्य। तथा सुकृत दुष्कृतस्य च कर्मणः करणानीन्द्रियाणि कारणानि हेतवः सर्वथा सर्वप्रकारैः सर्वत्र च देशे काले च न वस्त्वन्तरं कारणमिति भावः करणान्येकादश, तत्र वाक् पाणि पाद पायूपस्थ लक्षणानि पंच कर्मेन्द्रियाणि, स्पर्शनादीनि तु पंच बुद्धीन्द्रियाणि एकादशं च मन इति। एषां चाऽचेतनावस्थायामकारकत्वात्पुरुषस्यैव कारकत्वेन कुदर्शनत्वमस्य।

यदाह—"नैनं छिदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥१॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवच।
नित्यःसर्वगतःस्थाणु-रचलोऽयं सनातनः ॥२॥

असच्चैतत्—'एकान्त नित्यत्वे हि सुख दुःख बन्ध मोक्षाद्यभावप्रसंगात्। तथा निष्क्रियः-सर्व व्यापित्वेनाऽऽकाशाऽभावात्—गमनाऽऽगमनादि क्रियावर्जितः। असच्चैतत्—देहमात्रोपलभ्यमान तद् गुणत्वेन तन्नियतत्वात्। तथा निर्गुणश्च-सत्त्वरजस्तमोलक्षण गुणत्रय व्यतिरिक्तत्वात्। प्रकृतेरेव ह्येते गुणा इति। यदाह—'अकर्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा कापिलदर्शने। इति। असिद्धता चास्य सर्वथा निर्गुणत्वे, चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्यभ्युपगमात्। तथा अनुपलेपकः कर्मबन्धन रहितः। आहच—'यस्मान्न बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरन्। संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः। इति। एतदप्यसत्—मुक्ताऽमुक्तयोरेवम [illegible]प्रसंगात्॥ टी०

## १२. अट्ठारस कम्मकारणा—

### चोर और चोर के १८ प्रसूति स्थान—

चौरः १ चौरापको २ मन्त्री ३ भेदज्ञः ४ काणकक्रयी ॥
अन्नदः ६ स्थानदश्चैव ७ चौरःसप्त विधःस्मृतः ॥ टीका ॥

अर्थात् १ स्वयं चोरी करनेवाला, २ चोरी करानेवाला, ३ चोर को गुप्त सलाह देनेवाला, ४ चोरी के लिये भेद बतानेवाला या चोर के भेद को छिपाने वाला, ५ चोरी का माल खरीदनेवाला, ६ चोर को अन्न देनेवाला, ७ चोर को स्थान देकर रखनेवाला सात प्रकार के ये सब चोर कहे गये हैं।

### १८ चोर के प्रसूति स्थान

भलनं१कुशलं२तर्जा३राजभागो४ऽवलोकनम्५ ।
अमार्गदर्शनं६शय्या७पदभङ्गस्तथैव च ॥ १ ॥
विश्रामः८पादपतनम्९आसनं१०गोपनं११तथा ।
खण्डस्य खादनं१२चैव तथाऽन्यन्माहराजिकम् ।
पद्याऽ१५ग्न्यु१६दक१७रज्जूनां१८प्रदानं ज्ञानपूर्वकम् ।
एता. प्रसूतयो ज्ञेया अष्टादश मनीषिभिः ॥ २ ॥

१ तुम क्यों डरते हो ? सब कुछ निपट लूंगा इत्यादि वचन से चोर को प्रोत्साहित करने को भलन कहते हैं। २ मिलने पर कुशल वार्ता पूछना। ३ हाथ आदि से चोरी के लिये चोर को संकेत करना, ४ राज्य के महसूल को छिपाना-नहीं देना। ५ चोरी के लिये सन्धि आदि देखना या चोरी करते देखकर चुप रह जाना, ६ खोजनेवालों को चोरों के गलत मार्ग बताना, ७ चोरों को सोने के लिये शय्या आदि देना, ८ चोर के पद-चिह्नों को मिटाना, ९ चोर को घर में विश्राम देना, १० चोर को प्रणाम करना-सत्कार देना, ११ चोर को बैठने को आसन देना। १२ चोर को छिपा कर रखना, १३ चोर को पक्वान्न खिलाना, १४ माहराजिक-चोर को आवश्यक पदार्थ गुप्त रूप से पहुँचाना, १५ थकावट मिटाने के लिये चोर को गर्म पानी व तैल आदि देना, १६ अन्न सिझाने के लिये चोर को अग्नि देना, १७ पीने के लिये चोर को ठंडा पानी देना, १८ चुरा कर लाये हुए पशुओं को बांधने

के लिये डोरी देना। ये अठारह कर्म करनेवाले भी चोर गिने जाते हैं। इसलिये इन कर्मों को चोरी के प्रसूति-स्थान कहते हैं।

## १३. अरिहंता—

राग द्वेष आदि विकारों को जीतकर जिन्होंने वीतरागता प्राप्त की है, केवल ज्ञान विशिष्ट उन निर्ग्रन्थों को अरिहन्त कहते हैं। शब्दार्थ के अनुसार सामान्य केवली भी अरिहन्त होते हैं। किन्तु यहां उनसे अभिप्राय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म को भोगने वाले धर्मोत्तम-पुरुषों से यहां प्रयोजन है। वे सुरेन्द्र व नरेन्द्र के पूजनीय एवं अष्ट महाप्रातिहार्य के धारक होते हैं। उनका जन्म माता-पिताओं को ही नहीं किंतु त्रिलोकी के संज्ञी मात्र को प्रमोद उत्पन्न करता है। ये जन्म काल से ही तीन ज्ञान को लेकर आते हैं। दीक्षा ग्रहण करने पर चौथा मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है। फिर भी जब तक कैवल्य प्राप्त नहीं होता। तब तक उपदेश नहीं देते। तपस्या के द्वारा अज्ञान और मोह को जब सर्वथा क्षय कर लेते तब वीतराग दशा पाकर ही कल्याण मार्ग का उपदेश देते हैं। और चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं।

जगत के चराचर पदार्थ मात्र के ज्ञाता और द्रष्टा होने से ये सर्वज्ञ कहाते हैं। इनके ज्ञान पर किसी प्रकार का आवरण नहीं रहता। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अव-

वर्ती होते हैं। महाविदेह की तरह यहां सर्वदा इनकी सत्ता नहीं रहती। नव निधान, १४ रत्न और करोड़ों ग्रामों के ये अधिपति हैं। चक्रवर्ती की दो ही गति है। राज्य और कामभोगों को त्याग कर ये दीक्षा ग्रहण करलें तो मोक्ष या देवलोक में जाते हैं। जो दीक्षा ग्रहण नहीं करे तो नरक में जाते हैं, किन्तु कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल के बाद तो वे भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। अभी गत काल में यहां १२ चक्रवर्ती हो गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं--

१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्तिनाथ, ६ कुंथुनाथ, ७ अरनाथ, ८ सुभूम, ९ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जय, १२ ब्रह्मदत्त। (समवायांग)

## १५. चौदह रत्न

अपनी जाति के सर्व श्रेष्ठ पदार्थ को रत्न कहने की रीति है। पार्थिव रत्न की तरह ये भी चौदह हैं। इनमें ७ पञ्चेन्द्रिय रत्न हैं और सात एकेन्द्रिय रत्न हैं।

जैसे--(१) सेनापति रूपरत्न, (२) गाथापति रत्न, (३) पुरोहित रत्न, (४) अश्व रत्न, (५) वर्द्धकि रत्न, (६) गज रत्न, (७) स्त्री रत्न, (८) चक्र रत्न, (९) छत्र रत्न, (१०) चर्म रत्न, (११) मणि रत्न, (१२) कागणि रत्न, (१३) खड्ग रत्न, (१४) दण्ड रत्न। प्रत्येक रत्न की हजार २ देव सेवा करते हैं। अतुल-पुण्य से ये चक्रवर्ती को प्राप्त होते हैं।

## १६. नवनिहि--नवनिधि

विशाल एवं अक्षय खजाने को निधि कहते हैं। जो संख्या में नौ प्रकार की है, और (ये निधियां) तपस्या के द्वारा चक्रवर्ती को सिद्ध होती हैं। देवाधिष्ठित होने के कारण पुण्य हीन को सुलभ नहीं होती।

गंगा नदी का आरम्भ इनका मूल स्थान है। इनके नाम इस प्रकार है--

**नेसप्पे पंडुयए, पिंगलते सव्वरयण महापउमे।**
**कालेय महाकाले, माणवय महानिही संखे॥**

जैसे--(१) नैसर्प निधि, (२) पाण्डु निधि, (३) पिङ्गल निधि, (४) सर्व रत्न, (५) महापद्म, (६) काल, (७) महा काल, (८) माणवक, (९) शंख निधि। विशेष परिचय के लिए स्थानाङ्ग सूत्र के नवमस्थान को देखें।

## १७. बलदेवा—

ये त्रिखण्ड के भोक्ता वासुदेव के बड़े भाई होते हैं इनके गर्भ में आने पर माता को चार उत्तम स्वप्न दिखाई देते हैं। चक्रवर्ती की तरह ये भी प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में नौ होते हैं। बलदेव वासुदेव का भ्रातृ प्रेम आदर्श होता है। ये सब स्वर्ग या मोक्ष के ही अधिकारी होते हैं। इस अवसर्पिणी काल में नौ बलदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न प्रकार है--

(१) अचल बलदेव, (२) विजय, (३) भद्र, (४) सुप्रभ, (५) सुदर्शन, (६) आनन्द, (७) नन्दन, (८) पद्म बलदेव (६) बलराम-बलदेव।

## १८. वासुदेव--

अपने बलवीर्य से तीन खण्ड का साम्राज्य भोगने वाले धर्म-उत्तम पुरुष को वासुदेव कहते हैं। इनके जन्मकाल में माताजी सात स्वप्न देखती हैं। इनकी ऋद्धि चक्रवर्ती से आधी होती है। १६ हजार राजा इनके अधीन होते हैं। बलदेव की तरह ये भी नौ होते हैं। १६ हजार देव इनकी सेवा करते हैं। प्रति वासुदेव को मार-कर ये राजा बनते हैं। पूर्व जन्म में नियाण करके ये वासुदेव होते हैं। इसलिये व्रत ग्रहण नहीं कर पाते हैं भारतवर्ष में इस काल ६ वासुदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न लिखित हैं--

(१) त्रिपृष्ठ (२) द्विपृष्ठ (३) स्वयम्भू (४) पुरुषोत्तम (५) पुरुष सिंह (६) पुरुष पुण्डरीक (७) दत्त (८) लक्ष्मण और (६) श्रीकृष्ण।

## १६. लक्खण वंजण—

लक्षण व्यञ्जन और गुणों से उत्तम होने पर ही उत्तम पुरुष कहाते हैं। वक्षस्थल आदि शरीर के अंगों पर स्वस्तिक आदि जो शुभ चिन्ह होते उनको लक्षण कहते हैं। तिल और मष व्यञ्जन कहलाते हैं धैर्य। औदार्य गाम्भीर्य आदि गुण हैं। प्रकारान्तर से मान, उन्मान और प्रमाण से युक्त होना लक्षण कहा गया है।

जैसे कि—"माणुम्माणप्पमाणादि लक्खणं वंजणं तु मसमाई।
सहजं च लक्खणं, वंजणं तु पच्छा समुप्पण्णं॥

अर्थात्--मान, उन्मान और प्रमाण आदि लक्षण तथा मष, तिल व्यञ्जन

कहाते हैं। अथवा सहज जन्म से होने वाले को लक्षण और पीछे होने वाले को व्यञ्जन कहते हैं।

### माणुम्माण प्पमाण—

मनुष्य की श्रेष्ठता समझने के लिये तीन बातें बताई गई हैं। मान, उन्मान और प्रमाण। इन तीनों से जो परिपूर्ण हो वह श्रेष्ठ समझा जाता है। इनका स्वरूप निम्न प्रकार है—जिस पुरुष की परीक्षा करनी हो उसको जलसे भरे हुए कुण्ड में बिठाया जाय। जब उस कुण्ड में से एक द्रोण प्रमाण पानी बाहर निकल जाय, तब उस पुरुष को मानोपेत समझना चाहिए। दूसरी बात उन्मान—पुरुषों को तुला में बैठा कर तोला जाय यदि वह तुलने में अर्द्धभार प्रमाण हो तो उन्मान युक्त समझना चाहिए। तीसरी परीक्षा प्रमाण से है डोरी से नापने पर जो मनुष्य अपनी अङ्गुल से १०८ अङ्गुल ऊंचा हो तो उसे प्रमाणोपेत कहा गया है।

जैसे कि—"जलदोण १ अद्धभारं २, समुहाइं समूसिओवजो णवउ।
माणुम्माणप्पमाणं, तिविहं खलुलक्खणं एयं॥

इसी मानोन्मान प्रमाण- सम्पन्नता को लक्षण भी कहा गया है।

## दसार

१ समुद्र विजय २ अक्षोभ ३ स्तिमित ४ सागर ५ हिमवन्त ६ अचल ७ धरण ८ पूरण ६ अभिचन्द और १० वसुदेव। ये दश दशार कहलाते हैं*।

## २०. बहत्तर कलायें

कल्यते-संख्यायते वैशिष्ट्य मनया सा कला—जिसके द्वारा क्रिया में विशिष्टता—सुन्दरता—समझी जावे उसको कला कहते हैं। पुरुष की बहत्तर कलायें कही गयी हैं। विभिन्न शास्त्रों में उसके विभिन्न नाम मिलते हैं। इसके समाधान में समवायाङ्ग के वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते हैं कि—बहुतराणि च सूत्रे तन्नामान्युपलभयन्ते, तत्र च कासांचित् कासुचिदन्तर्भावोऽवगन्तव्य इति।"

१ लेखन कला २ गणितकला ३ रूप निर्माणकला ४ नाट्यकला ५ गीत-गान कला ६ वाद्यकला ७ स्वर तान ८ पुष्कर-मृदंग आदि संगीत ज्ञान ९ समताल ज्ञान १० श्रुतज्ञान ११ जनवाद १२ पूरः काव्य-आशु कवित्वकला १३ अष्ट पद ज्ञान

* मैथुन मूलक कथा ६ था परिशिष्ट में देखें।

१४ दक मृतिका १५ पाक ज्ञान १६ पान विधि १७ वस्त्र विधि १८ शयन विधि १९ आर्या २० प्रहेलिका २१ मागधिका २ गाथा २३ श्लोक निर्माण २४ गन्ध युक्ति २५ मधुसिक्त २६ आभरणविधि २७ तरुणी परिकर्म २८ स्त्री लक्षण २९ पुरुषलक्षण ३० हय ( अश्व ) लक्षण ३१ गज लक्षण ३२ गोण ( गोजातीय ) लक्षण ३३ कुक्कुट लक्षण ३४ मेंढा लक्षण ३५ चक्र लक्षण ३६ छत्र लक्षण ३७ दण्ड लक्षण ३८ असि लक्षण ३९ मणि लक्षण ४० काकणी लक्षण ४१ चर्म लक्षण ४२ चन्द्र लक्षण ४३ रवि-चर्या ४४ राहुचर्या ४५ ग्रहचर्या ४६ सौभाग्यकर ४७ दुर्भाग्यकर ४८ विद्यागत ४९ मन्त्र गत ५० रहस्यगत ५१ सभा संचार ५२ व्यूह ५३ प्रतिव्यूह ५४ स्कंधावार निवेश ५५ नगरमान ५६ वस्तुमान ५७ वास्तु निवेश ५८ नगर निवेश ५९ इपु शास्त्र ६० च्छरु प्रवाद ६१ अश्व शिक्षा ६२ हस्ती शिक्षा ६३ धनुर्वेद ६४ हिरण्यपाक ६५ सुवर्णपाक ६६ मणिपाक ६७ धातुपाक ६८ युद्ध ( बाहुयुद्ध, लतायुद्ध, मुष्टियुद्ध, मल्ल युद्ध, महायुद्ध ) ६९ सूत्र खेल, वट्ट खेल, नालों का खेल, चर्म खेल ७० पत्र छेदन, कट छेदन, ७१ संजीवन, निर्जीवकरण ७२ शकुनरुत।

( पंचम आस्रव, समवायांग ७२ पृ० ८८ )

समिति के समवायांग में टीकाकार लिखते हैं कि कला विभाग लौकिक शास्त्रों से जानना चाहिये। यद्यपि निर्दिष्ट कलाओं से जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के दूसरे वक्षस्कार में ७२ कलाओं का उल्लेख कुछ भिन्न प्रकार से मिलता है, तथापि अर्थ की दृष्टि से दोनों का एक दूसरे में अन्तर्भाव हो जाता है।

## २१. महिला–गुण

१ नृत्य कला २ औचित्य कला ३ चित्रकला ४ वादित्र ५ मन्त्र ६ तन्त्र ७ ज्ञान ८ विज्ञान ९ दण्ड १० जलस्तम्भन ११ गीतगान १२ तालमान १३ मेघवृष्टि १४ फला कृष्टि १५ आराम रोपण-बगीचा लगाना १६ आकार गोपन १७ धर्म विचार १८ शकुन विचार १९ क्रिया कल्पन २० संस्कृत भाषण २२ प्रसाद नीति २२ धर्म नीति २३ वाणी वृद्धि २४ सुवर्ण सिद्धि २५ सुरभि तैल २६ लीला सञ्चारण २७ गज तुरंग परीक्षण २८ स्त्री पुरुष लक्षण २९ सुवर्ण-रत्न भेद ३० अष्ट दश लिपि ज्ञान ३१ तत्काल बुद्धि ३२ वस्तु सिद्धि ३३ वैद्यक क्रिया ३४ कामक्रिया ३५ घटभ्रम ३६ सार परिश्रम ३७ अंजन योग ३८ चूर्णयोग ३९ हस्तलाघव ४० वचन पाटव ४१ भोज्य विधि ४२ वाणिज्य विधि ४३ मुखमण्डन ४४ शालि खण्डन ४५ कथा कथन ४६ पुष्प

मथन ४७ वक्रोक्ति जल्पन ४८ काव्य शक्ति ४९ स्फार वेश ५० सकल भाषा विशेष ५१ अभिधान ज्ञान ५२ आभरण परिधान ५३ नृत्योपचार ५४ गृहाचार ५५ शाठ्य करण ५६ परनिराकरण ५७ धान्यरन्धन ५८ केश बन्धन ५९ वीणादिनाद ६० वितण्डावाद ६१ अङ्कविचार ६२ लोकव्यवहार ६३ अन्ताक्षरिका ६४ प्रश्नप्रहेलिका।

( कल्पसूत्र ६ चतुर्थसूत्रगत २१० )

## २२. नवकोटि

अहिंसा व्रत की शुद्धि के लिये साधु साध्वी नवकोटि विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हैं। जैसे–१ हिंसा करना नहीं, २ कराना नहीं, ३ करते हुए का अनुमोदन करना नहीं, ४ स्वयं भोजन पकाना नहीं, ५ पकवाना नहीं, ६ पकानेवाले का अनुमोदन भी करना नहीं, ७ खरीदना नहीं, ८ खरीदवाना नहीं, ९ और खरीदनेवाले का अनुमोदन करना नहीं।

उपरोक्त नवकोटियां मन, वचन और काय रूप तीनों योग से समझनी चाहिए।

## २३. एषणा के दश दोष––

आहार आदि ग्रहण करने को ग्रहणैषणा अथवा एषणा कहते हैं इसके दश दोष हैं। जैसे कि––'संकिय मक्खिय–निक्खित्त,–पिहिय साहरिय–दायगुम्मी से। अपरिणय लित्त–छड्डिय, एसण दोसा दस हवंति ॥१॥

(१) संकिय–आधा कर्म आदि दोपों की शङ्कावाले आहार आदि को लेना शङ्कित दोप है। (२) मक्खिय–सचित्त वस्तु से स्पर्शयुक्त भरे हुए हाथ या चम्मच आदि से दिये गये आहार आदि को लेना म्रक्षित दोष है-म्रक्षित के दो भेद हैं; सचित्त म्रक्षित और अचित्त म्रक्षित। पृथ्वी, जल और वनस्पति की अपेक्षा सचित्त म्रक्षित के तीन प्रकार हैं। सचित्त मट्टी से हाथ आदि भर जाना पृथ्वीकाय म्रक्षित है। अप काय में पुरःकर्म है––दान के पहले साधु के निमित्त हाथ आदि सचित्त पानी से धोना पुरःकर्म है। दान देकर यदि धोया जाय तो पश्चात्कर्म है। देते समय हाथ आदि थोड़े से गीले हों तो स्निग्ध दोष है। जल का सम्बन्ध हाथ आदि पर स्पष्ट दिखे तो वह उदकार्द्र दोष है। हाथ आदि में यदि कुछ समय पहले काटे हुए फल या पत्ती आदि का अंश लगा हो तो वनस्पतिकाय म्रक्षित है। अचित्त म्रक्षित दो तरह का है। गर्हित और अगर्हित। हाथ आदि में कोई घृणित वस्तु लगी हो तो

वह गर्हित है। घृत, दुग्ध आदि लगा हो तो वह अगर्हित है। सचित्त म्रक्षित साधु के लिये सर्वथा अकल्पनीय है। अचित्त म्रक्षित में केवल घृणित वस्तुवाला गर्हित अकल्पनीय है, किन्तु घृतादि से स्पृष्ट अगर्हित नहीं।

(३) निक्खित्त--सचित्त पर रक्खी हुई वस्तु लेना निक्षिप्त दोष है, सचित्त के पृथ्वी आदि छः प्रकार हैं।

(४) पिहिय--देने योग्य वस्तु सचित्त के द्वारा ढकी हो तो उसे लेना पिहित दोष है।

(५) साहरिय--असूजती-संघट्टेवाली-वस्तु निकालकर उस बरतन से दिया हुआ आहार लेना साहरिय दोष है।

(६) दायक--बालक आदि अयोग्य दाता से आहार आदि लेना दायक दोष है। घर के मालिक स्वयं बालक से दिलावें तो दोष नहीं।

(७) उम्मीसे--सचित्त या मिश्र के साथ मिला हुआ आहार लेना उन्मिश्र दोष है।

(८) अपरिणत--जिसमें पूरा शस्त्र परिणत नहीं हुआ हो ऐसी वस्तु लेना अपरिणत दोष है।

(९) लित्त--तत्काल की लिपि हुई भूमि से लेना लिप्त दोष है। प्रवचन सारोद्धार में दूध-दही आदि लेपवाली वस्तु लेने में लिप्त दोष माना है। किन्तु यह ठीक नहीं लगता। प्राचीन उदाहरण और परम्परा से वह बाधित ठहरता है, अतः प्रथम अर्थ ही ठीक है।

(१०) छड्डिय--जो अंश रूप से नीचे गिर रहा हो, ऐसा आहार लेना छर्दित दोष है। इसमें जीव हिंसा का भय है।

ये दस दोष साधु और गृहस्थ दोनों के निमित्त से लगते हैं।

दायक दोष ४० प्रकार के कहे गये हैं जिसमें बाल, वृद्ध, उन्मत्त, अन्ध गुर्विणी बालवत्सा आदि प्रमुख हैं।

## २४. उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं

उद्गम, उत्पादन और एषणा दोषों से रहित शुद्ध भिक्षा ही मुनि को ग्रहण करनी चाहिए। यहां तीन प्रकार के दोष कहे गये हैं जो उद्गम, उत्पादना एषणा के नाम से समझे जाते हैं। इनको गवेषणा और ग्रहणैषणा के दोष भी

कहते हैं। उत्पत्ति स्थान में गृहस्थों के द्वारा लगने वाले दोष उद्गम कहाते हैं। जो १६ प्रकार के हैं, जैसे कि--

आहाकम्मुद्देसिय पूईकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा पाहुडियाए, पाओयर कीय पामिच्चे ॥ १ ॥
परियट्टिए अभिहडे, उब्भिन्न मालोहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ॥ २ ॥

( १ ) आधाकर्म--किसी एक खास साधु के निमित्त से षट्काय का आरम्भ करके सचित्त या अचित्त वस्तु को सिझाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है। प्रति सेवन -आधा कर्मी आहार का सेवन करना। प्रति-श्रवण--आधाकर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन-आधाकर्मी भोगने वालों के साथ बसना। अनुमोदन-आधाकर्मी भोगने वालों की प्रशंसा करना, यह आधाकर्म दोष है।

( २ ) औद्देशिक--समस्त याचकों के लिये तैयार किये गये आहार को औद्देशिक कहते हैं। इसके दो भेद हैं। ओघ और विभाग। इनमें अपने लिये होती हुई रसोई में भिक्षुओं के लिये भी और अधिक मिलाना ओघ है। विवाह आदि उत्सव में याचकों के लिये अलग निकाल कर रखना विभाग है। ( यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश, आदेश और समादेश इस तरह चार २ भेद हैं। ) किसी साधुके लिये बनाया गया। आहार अगर वही साधु ले तो आधा कर्म। दूसरा ले तो आद्देशिक है। आधा कर्म पहले से ही किसी खास निमित्त से बनाया जाता है किन्तु औद्देशिक पहले या बाद में साधारण दान के लिये कल्पित किया जाता है।

( ३ ) पूतिकर्म--शुद्ध आहार में आधाकर्मादि अशुद्ध-आहार का अंश मिलना पूतिकर्म है। पूतिकर्म दोष से दूषित आहार ही नहीं किन्तु वह पात्र भी संयमी के लिये अकल्पनीय है।

( ४ ) मिश्र जात--अपने और साधु उभय के लिये पकाया हुआ आहार मिश्र जात है। यावदर्थिक, पाखंडि मिश्र और साधु मिश्र ये मिश्रजात के तीन भेद हैं। अपने और सभी याचकों के लिए बना हुआ आहार यावदर्थिक है। स्व के निमित्त

और साधु सन्यासिओं के निमित्त बना हुआ पाखंडि मिश्र है तथा केवल अपने लिये और साधु के लिये बनाया हुआ आहार साधु मिश्र है।

( ५ ) स्थापन--साधु को देने के लिये आहार को अलग रख देना स्थापना दोष है।

( ६ ) प्राभृतिका--साधु को सरस आहार वहराने के लिये जीमनवार के समय को आगे पीछे करना प्राभृति का दोष है।

( ७ ) प्रादुष्करण--अन्धेरे में रक्खी हुई आहार की वस्तु लाने के लिये उजाला करना। अथवा अन्धेरे में से प्रकाश में लाना प्रादुष्करण दोष है।

( ८ ) क्रीत--साधुओं के लिये आहार खरीद कर लाना क्रीत दोष है।

( ९ ) प्रामित्य ( पामिच्चे )--साधु के लिये उधार लिया हुआ आहार लेना प्रामित्य दोष है।

( १० ) परिवर्तित--साधु के लिये अदल बदल करके लिये हुए आहार में परिवर्तित दोष होता है।

( ११ ) अभिहृत--साधु लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में लाए हुए आहार में अभिहृत दोष है।

(१२) उद्भिन्न--साधु को घी आदि देने के लिये कुप्पी आदि का मुख खोल देना उद्भिन्न दोष है।

(१३) मालापहृत--सुविधा से हाथ नहीं जा सके ऐसे ऊँचे नीचे स्थान से निसरणी आदि साधनों के द्वारा उतारकर देना मालापहृत दोष है। इसमें ऊपर-नीचे, वाम, दक्षिण इन चार स्थानों के होने से मालापहृत चार प्रकार का है। इन चारों में प्रत्येक के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप तीन २ भेद हैं। एडी उठाकर छींके आदि से उतारके देना जघन्य और निःसरणी पर से लाकर देना उत्कृष्ट है। शेष मध्यम मालापहृत समझें।

(१४) आच्छेद्य- दुर्बलों से या आश्रितों से बल प्रयोग पूर्वक लेकर साधुजी को देना आच्छेद्य-दोष है। इसके तीन भेद हैं। स्वामिविषयक, प्रभुविषयक, और स्तेनविषयक। समस्त ग्राम का मालिक-स्वामी तथा अपने घर का मालिक प्रभु कहा जाता है। चोर और लुटेरों को स्तेन कहते हैं। इनमें कोई किसी से कुछ छीन कर साधुजी को दे तो क्रमशः तीन दोष लगते हैं।

(१५) अनिसृष्ट--किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा विना देना अनिसृष्ट दोष है।

(१६) अध्यवपूरक--साधुओं का आगमन सुन कर अपने लिये होती रसोई में अधिक सामग्री मिला देना अध्यवपूरक दोष है।

उपरोक्त उद्गम के १६ दोषों का निमित्त दाता होता है।

## २५. गवेषणा उत्पादना के १६ दोष—

धाई दूई निमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छाय।
कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए॥ १ ॥
पुव्विं पच्छा संथव, विज्जा मंते य चुएण जोगेय।
उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य॥ २ ॥

(१) धात्री--धाई माता के जैसे कार्यों को स्वयं करके अथवा धाई माता को नौकरी दिला कर आहार लाभ करना धात्री दोष है।

(२) दूती--दूती कर्म--गुप्त या प्रकट सन्देश पहुंचाकर आहार पाना दूती दोष है।

(३) निमित्त--शास्त्र से या कल्पना से शुभ अशुभ निमित्त बता कर आहार लाभ करना निमित्त दोष है।

(४) आजीव--प्रकट या अप्रकट रीति से अपनी जाति एवं कुल का परिचय देकर आहार लाभ करना आजीव दोष है।

(५) वनीपक--जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि में जहां जिसका आदर हो, वहां वैसा वचन कर अथवा अपनी दीनता दिखाकर आहार लाभ करना वनीपक दोष है।

(६) चिकित्सा--वैद्यवृत्ति से आहार पाना चिकित्सा दोष है।

(७) क्रोध--क्रोध करके अथवा गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखाकर आहार लाभ करना क्रोध दोष है।

(८) मान--अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी, बहुश्रुत बताते हुए प्रभाव जमाकर आहार लाभ करना मान दोष है।

(९) माया--वञ्चना या छल आदि से आहार लाभ करना माया है।

(१०) लोभ--आहार में लोभ करना, आहार के लिये जाते समय लालच से

निश्चय कर के जाना कि आज तो अमुक वस्तु ही खायेंगे उस वस्तु के न मिलने पर उसके लिये भटकना यह लोभ दोष है।

(११) प्राक पश्चात् संस्तव--आहार देने के पहले या पीछे देनेवाले के गुण को गाना अर्थात् प्रशंसा करना यह प्राक्पश्चात्संस्तव दोष है।

(१२) विद्या--देवी जिसकी अधिष्ठात्री हो और जप या हवन से जो सिद्ध हो, वह विद्या कही जाती है, उस विद्या के प्रयोग से आहार लाभ करना विद्यापिण्ड-दोष है।

(१३) मन्त्र--पुरुष प्रधान अक्षर रचना, जिसके जप मात्र से सिद्धि सुलभ हो, उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्र के प्रयोग से आहार लेना मन्त्रपिण्ड रूप दोष है।

(१४) चूर्ण--अदृश्य करनेवाले सुरमे आदि के प्रयोग से जो आहार लाभ किया जाय, उसे चूर्णपिण्ड दोष कहते हैं।

(१५) योग--पैर में लेप आदि सिद्धियां दिखाकर जो आहार लाभ किया जाय, उसे योग पिण्डदोष कहते हैं।

(१६) मूल कर्म--गर्भस्तम्भ, गर्भाधान, गर्भपात आदि भव भ्रमण के हेतु भूत सावद्य कर्म मूल कर्म कहे जाते। इसके द्वारा आहार लाभ करना मूल कर्म दोष है।

उत्पादना के १६ दोष साधु को लगते हैं इनका निमित्त साधु ही होता है।

## २६. दश विध सत्य-

—"जणवय १ समय २ ठवणा ३ नामे ४ रूवे ५ पडुच्च सच्चेय ६। ववहार भाव ७, ८, जोगी ९ य दसमे ओवम्मसच्चे १०॥ १॥

—जनपद समय स्थापना नामरूपं प्रतीतसत्यञ्च
व्यवहार भाव योगाश्च दशम मौपम्य सत्यञ्च ॥ १ ॥

जो वस्तु जिस रूप में हो उसी रूप से उसे कहना यह सत्य का स्वरूप है। वक्ता की इच्छा के भेद से यह सत्य दश प्रकार का होता है।

जैसे कि (१) जन पद सत्य किसी देश में जल को पिच्छ, माता को आई और पिता को भाई कहते हैं यह उस देश के लिये सत्य है। इसे जनपद सत्य कहते हैं। (२) समय सत्य या सम्मत सत्य- जैसे पङ्कज-कीचड़ से पैदा होनेवाली वस्तु, जैसे कि मेंढक, शीप, शैवाल आदि है किन्तु पङ्कज से केवल कमल लिया जाता है, यह

सम्मत सत्य है। (३) स्थापना सत्य--रूप से मिले या न मिले किन्तु किसी भी पदार्थ में किसी जीव अजीव का संकेत करना जैसे शतरञ्ज की मोहरों में हाथी घोड़ा आदि कहना यह स्थापना से सत्य है। (४) नाम सत्य--जैसे किसी निर्धन को लक्ष्मीधर कहना कमजोर को भी महावीर कहना नाम सत्य है। (५) रूप सत्य--गुण न होने पर भी वेषमात्र से असाधु को साधु कहना यह रूप सत्य है। (६) प्रतीत-सत्य-अर्थात् अपेक्षा से सत्य जैसे हाथ की अंगुलि को एक की अपेक्षा बड़ी दूसरी की अपेक्षा छोटी कहना यह प्रतीत सत्य है। (७) व्यवहार सत्य--जैसे चल कर पहुँची है गाड़ी, किन्तु लोक कहते हैं कि गांव आ गया यह व्यवहार सत्य है। (८) भाव सत्य--गुणों की विविधता में भी एक को प्रधान मान कर कहना जैसे शुक में लाल वर्ण होने पर भी उसे हरा कहना भाव सत्य है। (९) योग सत्य--व्यक्ति कोई और है, किन्तु दण्ड छत्र पगड़ी आदि में किसी के संयोग होने से उसे दण्डी, छत्री आदि नाम से पुकारना योग सत्य है। (१०) उपमा सत्य--जैसे तुलनात्मक दृष्टि से किसी का कोई अवयव जिससे मिलता हो उसे उसी नाम से पुकारना जैसे नाक ऊंची हो तो गरुड़, गरदन लम्बा हो तो ऊंट, आंख बड़ी २ हो तो कमल-नयन आदि कहना यह उपमा सत्य है।

## २७. द्वादश भाषा—

बोलकर या लिखकर जिसके द्वारा अपने भाव समझाये जांय, उसको बोली या भाषा कहते हैं। इनमें कोई २ विद्वान् भेद कहते हैं जैसे कि साहित्यादि से अपुष्ट बोली है और साहित्य से परिपूर्ण भाषा है। जो कुछ हो, किन्तु यहां भारत की प्रसिद्ध भाषाओं से मतलब है। यों शास्त्रों में १ सत्य भाषा, २ मृषाभाषा, ३ मिश्र और ४ व्यवहार भाषा, ऐसे चार प्रकार करके इनमें तीन को दश दश प्रकार की बताई है और व्यवहार भाषा को १२ प्रकार की कही है। लेकिन यहां प्राचीन समय की आर्य भाषा की गणना है, जो संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश, ये छः भाषायें गद्य तथा पद्य भेद से बारह प्रकार की गिनी गई है। १८ देशों की भाषा इनसे भिन्न प्रकार की हैं।

## २८. सोलह वचन

उच्यतेऽनेन इति वचनम्--वाणी के प्रयोग को वचन कहते हैं। जै

वचन --जैसे—जिणे, जिनः, द्रव्यम् आदि। इसके द्वारा एक ही पदार्थ का कथन होता है। (२ द्विवचन--यह द्विवचन दो संख्याओं में वस्तु का कथन करता है। जैसे--पुरुषौ।

(३) बहुवचन--बहुत के लिये कहा गया वचन बहुवचन है जैसे-नमो जिणाणं, सिद्धाः, इत्यादि।

(४) स्त्री वचन- यह स्त्रीलिंगवाची पद को कहता है। जैसे नदी, वाणी आदि।

(५) पुरुष वचन--पुल्लिङ्ग को कहनेवाला पद पुरुष वचनहै जैसे--अयं जिनोऽयं यंत्रकः।

६) नपुंसक वचन --गगनं मण्डलम् आदि नपुंसकलिंगवाली वस्तु जिस वचन से कहा जाय।

(७) अध्यात्मवचन--विना इच्छा के सहसा मन की बात निकल जाना अध्यात्म वचन है।

(८ उपनीत वचन--प्रशंसा वचन जैसे यह साधु क्रिया पात्र है।

(९) अपनीत वचन--जिसके द्वारा वस्तु के दोष प्रकट किये जांय जैसे--यह शिष्य अवनीत है।

(१०) उपनीतापनीत वचन--प्रशंसा के साथ निन्दा करना जैसे--मुनिराज व्याख्यानी अच्छे हैं किन्तु क्रिया में शिथिल हैं।

(११) अपनीतोपनीत वचन--बुराई बता कर भलाई कहना। जैसे यह मुनि विद्वान् तो नहीं किन्तु क्रियापात्र हैं।

( १२ ) अतीत वचन--जिसके द्वारा भूतकाल की बात कही जाय। जैसे भगवान महावीर दीपावली को मोक्ष पधारे थे।

( १३ ) प्रत्युत्पन्न वचन--इसके द्वारा वर्तमान काल की बात कही जाती है जैसे--वन्दामि-वन्दन करता हूँ।

( १४ ) अनागत वचन--यह भविष्य काल की बात कहता है। जैसे कृष्ण १२वें तीर्थङ्कर होंगे।

( १५ ) प्रत्यक्ष वचन--जिसके द्वारा समक्ष की बात कही जाय। जैसे एप लोगो, अयं पुरुषः।

( १६ ) परोक्ष वचन--परोक्ष की बात कहना परोक्ष वचन है जैसे वह विदेह में जन्म लेगा।

उपरोक्त सोलह वचनों से वस्तु का यथार्थ कथन किया जाता है। उपयोग पूर्वक इन वचनों का प्रयोग करने वाले मुनि उपदेश देने में अधिकारी माने गये हैं।

देखिए आचाराङ्ग सूत्र।

## २६. उपधि उवगरणं—

उप-सामीप्येन संयमं दधाति-पोषयति वेत्युपधिः--अर्थात् संयम की साधना में सहायक होनेवाले पदार्थों को उपधि या उपकरण कहते हैं। कर्म-शरीर और बाह्य भाण्डोपकरण तथा सचित्त अचित्त और मिश्र रूप तीन प्रकार की उपधि में से यहां बाह्य भाण्ड उपकरण रूप अचित्त उपधि से ही प्रयोजन है। अचित्त उपकरण भी औधिक और औपग्रहिक दो प्रकार के होते हैं। सामान्य रूप से सब के उपयोगी उपकरणों को औधिक और समय विशेष व व्यक्ति विशेष के लिये काम आनेवाले को औपग्रहिक कहते हैं। यहां स्थविर कल्पी की दृष्टि से औधिक उपकरण गिनाये हैं। जैसे –१ पात्र, २ पात्र बन्धन झोली, ३ पात्र केसरिका–कम्बल का टुकड़ा, ४ पात्र स्थापन-पात्र रखने का कपड़ा, ५-६-७ तीन पटल–पात्र ढकने के वस्त्र, ८ रजस्त्राण-पात्र में लपेटने का वस्त्र जिसको आज रस्तान कहते हैं, ९ गोच्छक-पूञ्जनी, १०-११-१२ प्रच्छादक-ओढ़ने के तीन वस्त्र जिनमें दो सूती और एक ऊनी, १३ रजोहरण, १४ चोलपट्टग धोती के स्थान पर बांधने का वस्त्र, १५ मुखानन्तक–मुखवस्त्रिका आदि।

जिन कल्पी के लिये औधिक-उपकरणों का ही विधान मिलता है अधिक से अधिक उनके लिये १२ उपकरण बताये गये हैं। जैसे कि--१ पत्त २ पत्ता बंधो ३ पायट्ठवणंच ४ केसरिया। ५ पडलाइ ६ रयत्ताणं ७ गोच्छओ ८-९-१० पायनिज्जोगे तिन्नेवय पच्छागा ११ रयहरणं चेवहोई १२ मुहपोत्ति। एसो दुवालसविहो, उवहो जिणकप्पियाणंतु ॥२॥

कम से कम भी रजोहरण मुंहपत्ती तो विशेष प्रकार के जिन कल्पी को भी रखना ही चाहिए। कहा भी है--

जिण कप्पिया उदुविधा, पाणीपाता पडिग्गहधराय।
पाउरण मपाउरणा, एक्केक्का ते भवे दुविधा ॥

दुगतिग चतुक्ककं, पणगं णव दस एगदसगं।
एते अट्ठ विगप्पा, जिण कप्पे होंति उवहिस्स ॥

जिन कल्पी मुनि दो प्रकार के हैं, करपात्री और पात्रधारी। सवस्त्र एवं अवस्त्र ऐसे प्रत्येक के दो दो प्रकार होते हैं। जो करपात्री हैं उनके रजोहरण मुखवस्त्रिका रूप जघन्य दो उपधि हैं। पात्र नहीं रख कर भी जो वस्त्रधारी हैं उनके ३, ४ या ५ उपधि होती हैं। पात्रधारी जिन कल्पी के वस्त्र रहित ६ प्रकार की उपधि होती हैं। वस्त्रधारी जिन कल्पी के उत्कृष्ट १२ प्रकार की उपधि होती हैं।

स्थविरकल्पी साधुओं के लिये उपरोक्त १२ के अतिरिक्त एक प्रतिग्रह और चोल-पट्ट ऐसे चौदह उपकरण बताए हैं। आर्यिकाओं के लिये ११ उपकरण विशेष हैं जैसे--अवग्रहानन्तक १ पट्ट २ अर्द्धोरुक ३ वलनिका ४ अभ्यन्तर निवसनी ५ बहि-र्निवसनी ६ कम्बुक ७ औपकक्षिकी ८ एक कक्षिकी ६ संघाटी और स्कंधकरणी १०-११ सब मिल कर पच्चीस कहे गये हैं।

औपग्रहिक ग्रहिक उपकरण यष्टि आदि जो वृद्धावस्था आदि कारण से लिये जाते हैं, ये अनेक प्रकार के हैं। नखशोधनी. दन्तशोधनी आदि। जैसे कि कहा है--

डंडए लट्ठिया चेव, चम्मए चम्मकोसए।
चम्मच्छेयणपट्टे चिलिमिली धारएगुरु ॥

- अर्थात्-दण्ड, लाठी, चर्म, चर्मकोश, चर्मच्छेदन, चिलमिली गुरु धारण करते हैं।

फिर--'थेराणं थेरभूमि पत्ताणं कप्पति दंडएवा १ भंडएवा २ छत्तगंवा ३ मत्त-गंवा ४ लट्ठियाएवा ५ भिसिवा ६ चेलंवा ७ चेलचिलि मिलियावा ८ चम्मएवा ६ चम्म कोसंवा १० चम्मपलिच्छेयणाएवा ११ अविराहिए उवासि उवेत्ता गाहावति-कुलं भत्ताएवा पाणाएवा प विसित्तएवा निक्खिमित्तएवा।

वर्तमान में जो पुस्तक पट्टी लेखनी आदि रक्खे जाते हैं वे भी ज्ञानदर्शन की रक्षा में साधन होने से औपग्रहिक उपकरण हैं।

## ३०. वेयावच्च—

सेवा भाव को वैयावृत्य कहते हैं। अर्थात् धर्म साधना के लिये विधि पूर्वक अन्नपान व वस्त्रादि प्रदान करना यह वैयावच का भाव है। जैसे कि--

'वेयावच्चं वावडभाओ इहधम्म साहणनिमित्तं ।
अन्नाइमाण विहिणा सम्पायण मेस भावाओ ।'

सेवनीय की अपेक्षा सेवा-वैयावच्च के भी दस प्रकार हैं। जैसे कि-आयरिय १, उवज्झाए २, थेर ३, तवस्सी ४, गिलाण ५, सेहाण ६, साहम्मिय ७, कुल ८, गण ९, संघ १० संगवं तमिह कायव्वं।

अर्थात्--१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी, ५ ग्लान-रोगी, ६ शिष्य, ७ स्वधर्मी, ८ कुल, ९ गण-अनेक कुल, १० संघ-गण समूह। इनकी योग्य सेवा करनी चाहिये।

शास्त्र में सामान्य और विशेषरूप से अत्यन्त बाल आदि वैयावृत्य के क्षेत्र बताये हैं। आगे लिखा है कि बिना किसी मतलब के निर्जरार्थी मुनि दस प्रकार की वैयावच्च को बहुत तरह से करे। यहां 'गण संघ चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी' पद दिया गया है। टीकाकार अर्थ करते हुए लिखते हैं कि 'गण-कुल समुदायः कोटिकादिकः संघ स्तत्समुदाय रूप चैत्यानि-जिन प्रतिमाः एतासां योऽर्थः प्रयोजनं स तथा। तत्र च निर्जरार्थ कर्मक्षयकामः'। अर्थात् गण, संघ और जिन प्रतिमा के प्रयोजन पर निर्जरार्थी सेवा करे। ऐसा अर्थ किया है। लेकिन 'चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी' इसमें चेइयट्ठे य और निज्जरट्ठी ऐसे तीन पद हैं, परन्तु उपरोक्त अर्थ से केवल दो पदों का ही बोध होता है, तीसरे का नहीं। अन्न पानादि से उपष्टंभ करने रूप वैयावच्च का अर्थ भी प्रतिमा के साथ घटित नहीं होता। इसलिये इसके वास्तविक अर्थ की गवेषणा करनी आवश्यक है। चित् संज्ञाने धातु से ण्यन्त में चेतितं रूप बनता है और जिसका प्राकृतिक रूप 'चेइयं' होता है। जिसका अर्थ है ज्ञान। हरिभद्रसूरि ने चित्त से भी 'चित्तस्य भावः कर्म वा' इस अर्थ में ष्यन् करके चैत्य बनाया है। जैसे कि वे लिखते हैं--'चित्तम्-अन्तःकरणं तस्य भावे कर्मणि वाष्य-ञिकृते चैत्यं भवति, तत्रार्हतां प्रतिमा-प्रशस्त समाधि चित्तोत्पादनादर्हच्चैत्यानि भण्यन्ते'। ( आव० हरीभद्री वृ० पृ० प० ७८७ )

अन्य टीकाकारों ने भी 'चित्ताल्हादकत्वाच्चैत्यम्' माना है। इस प्रकार प्रमोदभाव या चित्त में हर्ष उत्पन्न करनेवाले साधु, ज्ञान और प्रतिमा आदि में चैत्य शब्द का अर्थ घटित हो सकता है। यहां पर भी बहुतसे आचार्य 'चेइयट्ठे' आदि पदों का अर्थ ज्ञान के लिये निर्जरार्थी ऐसा करते हैं, किन्तु प्रीति भी चित्त का भाव

है इसलिये कुल गण और संघ के प्रीत्यर्थ निर्जरार्थी ऐसा अर्थ करना अधिक संगत होगा। इसलिये यहां प्रसन्नता के लिये ऐसा अर्थ किया है। क्योंकि चैत्य की वैयावृत्ति अन्य किसी भी मूल शास्त्र में उपलब्ध नहीं होती। दशविध वैयावच्च में भी चैत्य का स्थान नहीं है। अतः प्रमाणित होता है कि चैत्य-मूर्ति की वैयावृत्ति मानना मौलिकता से बाहर है। (६५ तृ० का०)

## ३१. उग्गह

रहने के लिये गृहपति से स्थान आदि की अनुमति लेने को अवग्रह कहते हैं। वैसे वसति स्थान भी अवग्रह कहाता है। अनुमति लेने रूप अवग्रह पांच प्रकार का है। जैसे—१ इन्द्रावग्रह २ राजावग्रह ३ गाथापति-अवग्रह ४ सागारिक अवग्रह ५ स्वधर्मी अवग्रह।

प्रतिदिन मुनि इसीलिये अनुज्ञा लेते हैं कि उनका अचौर्यव्रत विशुद्ध बना रहे। इनमें ऊपर ऊपर का अवग्रह नीचे वाले से बाधित होता है। जैसे—किसी देश में वहाँ के राजा की अनुमति के अभाव में इन्द्र का अवग्रह काम नहीं देगा, वैसे ही राजा की अनुमति के स्थान में गाथापति, और गाथापति की अनुमति जहाँ आवश्यक है वहाँ शय्यातर, तथा शय्यातर के अधीन वस्तु के लिये स्वधर्मी साधु की अनुमति कार्य साधक नहीं होगी।

## ३२. उपाश्रय

उपाश्रीयते-सेव्यते संयमाऽऽत्मपालनाय, शीतादित्राणार्थंव्रजनैर्यः स उपाश्रयः अर्थात् जहाँ आत्मा और संयम की रक्षा हो वैसे स्थान को उपाश्रय कहते हैं। साधु के लिये निम्नोक्त उपाश्रय प्रशस्त कहे गये हैं। १ देवकुल-देहरा, २ सभा, ३ प्रपा-प्याऊ, ४ आवसथ मठ, ५ वृक्षमूल, ६ आराम-बगीचा, ७ कन्दरा ८ आकर-खान ९ पहाडी गुफा, १० कर्म-कमशाला, ११ उद्यान-फूलबाडी, १२ यानशाला-रथशाला १३ कुप्यशाला-किराणा रखने का घर, १४ मण्डप, १५ शून्य घर, १६ श्मशान १७ लयन-पर्वत में कोरा हुआ घर और १८ दुकान, इस प्रकार अन्य भी त्रसस्थावर जीव रहित सहज बने हुए निर्दोष स्थान मुनियों के लिये ग्रहण करने योग्य है।

## ३३. विगई—

विकृति पैदा करने वाले पदार्थों को विगई कहते हैं। वे सब नौ हैं, किन्तु यहाँ गिनाये हुए पदार्थ दश हैं।

जैसे कि–१ क्षीर, २ दही, ३ सर्पि-घृत, ४ नवनीत, ५ तेल, ६ गुड-खाँड, ७ मत्स्यण्डी–मिश्री, ८ मधु, ९ मद्य और १० मांस, इनमें नवनीत, मधु मद्य और मांस सर्वथा वर्जनीय है।

नोट—तीन दंड से लेकर ३३ आशातना तक के बोलों का परिचय श्रमणावश्यक सूत्र की टिप्पणी में दिया है। अत जिज्ञासु पाठक उनको सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल ( जोधपुर ) से प्रकाशित श्रमणावश्यक सूत्र में देखें।

## ३४. प्रवचन माता

द्वादशांग रूप प्रवचन को माता के समान रक्षण करने वाली प्रवृत्तियाँ प्रवचन मात कहती हैं जो आठ हैं। जैसे—१ ईर्यासमिति २ भाषा समिति ३ एषणा समिति ४ आदान निक्षेपणा समिति ५ परिष्ठापनिका समिति ६ मनोगुप्ति ७ वाग्गुप्ति ८ कायगुप्ति। कल्याणमार्ग की साधना में इनकी जानकारी अत्यावश्यक मानी गई है। क्षयोपशम की विचित्रता से किसी साधक को विशिष्ट श्रुत का ज्ञान नहीं हो तो भी इतना–अष्ट प्रवचन माता का–ज्ञान तो होना ही चाहिये।

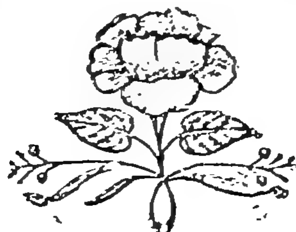
विशेष परिचय के लिये उत्तराध्ययन का २४वाँ अध्याय देखें।

## ३५. अष्ट कर्मग्रन्थि–

१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय।

इन आठ कर्मों की आत्मा से सम्बन्धित वर्गणा ही ग्रन्थि कहलाती है। इनमें ४ घाती कर्म हैं, जिनमें मोह प्रधान है। मोह कर्म के मन्द होने पर ही यह ग्रन्थि शिथिल पड़ती है। जैसेकि कहा है—

गंठिति सुदुब्भेओ, कक्खड-घण–रूढगूढ गंठिव्व।
जीवस्स कम्मजणिओ, घणरागदोस परिणामो॥



# कथा-विभाग

## सीता निमित्तक संग्राम कथा—

मिथिला नगरी के राजा जनक को विदेहा नामक भार्या और भामण्डल नामक पुत्र तथा जानकी सीता नाम की कन्या थी। विद्याधरों ने देवाधिष्ठित एक धनुष को स्वयंवर मण्डप में लाकर रक्खा था। तथा सीता ने भी प्रतिज्ञा की कि जो इस धनुष को तोड़ेगा, मैं उसी को वरण करूंगी। अनेक आकाश विहारी और स्वर्गीय देव समूह भी इस प्रसंग में कुतूहल देखने को आये हुए थे। विविध भूपतियों के बल-प्रदर्शन के पश्चात् अयोध्यापति महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ने सब के मनोरथ भग्न कर दिये और देखते ही देखते राम ने धनुष को गुण सहित तोड़ दिया, फिर क्या था, उसी समय साधुवाद के संग सीता राम के साथ ब्याही गई।

महाराजा दशरथ वृद्ध हो चुके थे, अतएव वृद्धावस्था के कारण राम को राज्य देकर उन्होंने सन्यास ग्रहण करना चाहा। किन्तु भरत की मां कैकेयी ने छल पूर्वक राजा को पूर्व प्रतिज्ञात दो वरदानों की याद दिला कर उन्हें अपने वश में कर लिये। पितृवचन को पालन करने के लिये श्रीराम ने सहर्ष वनवास स्वीकार किया और राज्य भरत के लिये छोड़ दिया। लक्ष्मण और सीता भी राम के वनविहार में साथ थे। दण्डकारण्य में विहार करते हुए लक्ष्मण ने एक आकाशस्थ खड्गरत्न देखा, क्षत्रियोचित स्वभाव से उन्होंने खड्ग लेकर कुतूहल से वंश जाल पर मारा। सहसा उसके बीच में चन्द्रनखा का वेटा और रावण का भागिनेय शम्बुक नाम का विद्याधर जो विद्या साधन कर रहा था कट गया। पश्चाताप करते हुए लक्ष्मण ने इस दुर्घटना का वर्णन राम को सुनाया। इधर चन्द्रनखा को पुत्र की मृत्यु से बड़ा क्रोध हुआ। वह खोज करते राम की कुटिया के पास आई। राम लक्ष्मण के रूप को देख कर मोहित हो गई। उसने राम और लक्ष्मण के सम्मुख अपनी मांग प्रस्तुत की। किन्तु उन दोनों ने चन्द्रनखा की याचना स्वीकार नहीं की। फलतः खरदूषण को उसने अपने रंग में रंग कर सारी घटना निवेदन कर दी। खरदूषण बदला लेने को लक्ष्मण से युद्ध करने चला आया। इधर परम्परा से रावण को भी अपने भानजे की मृत्यु की खबर प्राप्त हुई। आकाश मार्ग से आते हुए वन में अनिन्द्य

सुन्दरी सीता के रूप को देख कर वह सारा हाल भूल गया। काम की विकलता से उसने कुल की मर्यादा और सहज विवेक को छोड़ कर सीता के हरण का निश्चय किया। विद्या के प्रभाव से वह इच्छानुसार रूप बना सकता था। इसलिये दण्डक के संग्राम स्थल में राम को छलने के लिये उसने सिंहनाद किया। आवाज सुन कर जब राम उधर दौड़े, तब रावण मायामृग के छल से अकेली सीता को हरण कर अपनी नगरी ले चला। मार्ग में राम के सौन्दर्य उससे जटायु ने युद्ध किया। उसको पक्षहीन कर दिया गया। रावण के द्वारा सीता को वश में करने का हर प्रकार से प्रयत्न किया गया। लेकिन वह अनुकूल न हुई। पीछे राम ने सीता की गवेषणा करनी आरम्भ की। रत्नजटी के मुख से हनुमान ने सीता का कुशल समाचार राम को निवेदन किया। राम भी भाई लक्ष्मण और हनुमान, सुग्रीव, भामण्डल आदि विद्याधरों के साथ समुद्र बांध लंका गये। वहां रावण के साथ सीता के लिए युद्ध किया। रावण को सकुल नाश कर अपने पक्ष में स्थित उसके भाई विभीषण को लंका का राज्य देकर सीता के साथ अपनी नगरी लौट आये। यह सीता निमित्तक युद्ध का संक्षिप्त परिचय है।

## २—"द्रौपदी के लिये संग्राम"

कंपिलपुर में द्रुपद नाम का राजा था। उसकी राणी का नाम चुलनी था। उसके पुत्र का नाम धृष्टार्जुन और पुत्री का नाम द्रौपदी था।

समय पाकर स्वयंवर विधि से युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ।

पूर्वकृत निदान कर्मके कारण पांच पाण्डवोंकी पत्नी होने परभी वह सती कहलायी। पाण्डु महाराज अपने अन्तःपुरमें बैठहुए एकदिन महारानी कुन्तीऔर पाण्डवों के साथ गोष्ठी कर रहे थे। इस बीच में वहां नारद ऋषि आकाश मार्ग से उतर आए। सपरिवार पाण्डु राज ने उनका उचित सत्कार किया। किन्तु द्रौपदी ने मिथ्यादृष्टि तथा वेषमात्र का ऋषि समझ कर उनका सम्मान नहीं किया। इस पर नारद बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपना चमत्कार दिखाना चाहा। किसी समय वे धातकी खंड के पूर्व भरत में अमरकंका नामक राजधानी के राजा पद्मनाभ की सभा में जा पहुँचे। राजा ने ऋषि का अभ्युत्थान आदि सत्कार किया और बोला कि ऋषिवर? आप विविध स्थानों में घूमते हो। क्या मेरे अन्तःपुर जैसा

किसी के यहां स्त्री वर्ग का सौन्दर्य सार देखा है ? ऋषि ने उत्तर दिया-राजन् ? आप कूपमण्डूक सी बात कर रहे हो। हस्तिनापुर के राजा पाण्डु की पुत्र वधू के सामने तुम्हारी रानियां सौन्दर्य आदि प्रमदोचित गुणों में नगण्य हैं। उसके चरणाङ्गुष्ठ के बराबर भी तुम्हारी रानियां नहीं हो सकती हैं।

यह सुनकर द्रौपदी के प्रति पद्मनाभ का अनुराग बढ़ गया और पूर्वसाङ्गतिक देव की सहायता से वह सोती हुई द्रौपदी को ला अपने बगीचे में रखवा लिया। जागृत होने पर द्रौपदी ने देखा कि एक राजा कामुक बनकर सामने खड़ा है, और कुछ कह रहा है। उसकी प्रबल काम वृत्ति देखकर वह बोली कि राजन् ? मैं अपने घर से पृथक् होकर दुखी हूँ। मुझे कम से कम छः मास का अवकाश मिलना चाहिए। राजा ने स्वीकार किया। इधर द्रौपदी ने बेले की तपस्या और पारणे में आयंबिल की प्रतिज्ञा कर ली।

उधर हस्तिनापुर में द्रौपदी के नहीं मिलने से सन्नाटा छा गया। कुन्तीजी ने द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण को सब निवेदन किया। कृष्ण ने गवेषणा आरम्भ की। एक दिन नारद से मालूम हुआ कि पद्मनाभ के महल में द्रौपदी के समान आकृति देख पड़ी थी। कृष्ण ने उनकी सारी बात समझली। वे पाण्डवों को साथ लेकर द्रौपदी को लाने के लिये चल पड़े और समुद्रतट पर जाकर समुद्र के अधिपति-सुस्थितदेव का आराधन किया। देवके द्वारा मार्ग मिलनेपर श्रीकृष्ण पांचों पाण्डवों को लेकर रथ सहित अमरकंका के बाग में जा पहुँचे। पद्मनाभ को जतलाने के लिये कृष्ण ने पहले दारुक सारथि को भेजा। पद्मनाभ ने दूत का तिरस्कार कर युद्ध के लिये भेरी बजवा दी। विशाल सैन्य और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो उसने पाण्डवों के साथ भयङ्कर युद्ध किया, पाण्डव लोग घबरा कर श्रीकृष्ण के चरण में उपस्थित हुए। तब स्वयं श्री कृष्ण युद्ध के लिये चल पड़े। उन्होंने शंख फूंका। जिससे सैन्य का तृतीयांश भाग छूटा। गाण्डीव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाकर टङ्कार करते ही दूसरा भाग भी मैदान छोड़ दिया। जब मात्र एक तिहाई बल शेष बचा तो पद्मनाभ प्राण भय से नगर में प्रवेश कर गया। जब श्रीकृष्ण ने नरसिंह का रूप धारण कर भूमि पर पैर मारा तब नगर कोट कंगुरे और राजमहल तक थर थरा कर भूमि पर गिर पड़े। राजा भयभीत होकर द्रौपदी के चरण में शरण रूप से आ गिरा। द्रौपदी के दिखाये हुए उपाय से जब पद्मनाभ ने कृष्ण के पास क्षमा मांगी और द्रौपदी को

लौटा दी। तब कृष्ण ने भी उसे जीवन दान देकर मुक्त कर दिया। द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव अपनी नगरी चले आये।

यह द्रौपदी के लिये युद्ध की संक्षिप्त कथा है।

## ३ "रुक्मिणी के लिए संग्राम"

कुण्डनपुर नगरी के नृपति भीष्मक को रुक्मिण नाम का पुत्र था, तथा रुक्मिणी नाम की कन्या थी। प्रसंगवश किसी समय नारदजी कृष्ण की महाराणी सत्यभामा के घर द्वारिका आये। कार्यान्तर में व्यग्र (लगी) रहने के कारण सत्यभामा ने ऋषि का समुचित सत्कार नहीं किया। इस पर सहज क्रोधी नारद अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और कुण्डनपुर आकर रुक्मिणी को कहने लगे कि तुम कृष्ण की प्रियतमा बनो तभी तुम्हारे जीवन की सार्थकता है। नारद ने कृष्ण का वर्णन इस प्रकार से किया कि रुक्मिणी का अनुराग कृष्ण के प्रति सहज ही जग गया। साथ ही रुक्मिणी का चित्र द्वारिका लाकर कृष्ण को दिखाया। जिससे कृष्ण का अनुराग भी रुक्मिणी के प्रति जग गया।

कृष्ण ने रुक्मिणी के लिये याचना की, किन्तु उसके भाई रुक्मिण ने स्वीकार नहीं किया। उलटे महाबली शिशुपाल को आमन्त्रित कर उसके साथ अपनी बहन के ब्याह की तैयारी करने लगा। रुक्मिणी ने किसी तरह यह संवाद कृष्ण को भिजवाया। खबर पाकर बलदेव के संग कृष्ण भी उस नगर में पहुँच गये। इधर रुक्मिणी भी देवपूजन के बहाने सखिओं के संग बाहर आई। दोनों के दिल मिले थे ही, फिर क्या था, कृष्ण रुक्मिणी को रथपर बैठाकर द्वारिका के लिए चल पडे। दूतिओं के द्वारा समाचार पाकर अभिमानी रुक्मिण ने कृष्ण से युद्ध करना चाहा, शिशुपाल ने भी विशाल सैन्य को लेकर साथ दिया। युद्ध में बलदेव के हलमुसल रूप दिव्यास्त्र से दोनों के सैन्य भाग छूटे। रुक्मिण और शिशुपाल ने दीन भाव से अपने प्राण बचाये।

'यह रुक्मिणी के लिये युद्ध हुआ।"

## ४ पद्मावती के लिये संग्राम—

अरिष्ट नगर में महाराज हिरण्यनाभ नामक राजा राज्य करते थे ये बलराम के मामा थे। उनकी पुत्री का नाम पद्मावती था। बडी होने पर राजाने उसके लिये

स्वयंवर का आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर बड़े २ राजा और राम केशव के साथ कई राजकुमार भी उस स्वयम्वर में उपस्थित हुए। हिरण्यनाभ की भ्रातृ सुता ( भतीजी ) का सम्बन्ध बलराम के साथ पहले ही कर दिया था। पद्मावती के लिये स्वयम्वर.में उपस्थित सभी राजा अभिलाषी थे, किन्तु उसने कृष्ण के गले में वरमाला डाल दी। रुष्ट होकर सभी राजाओं ने युद्ध में कृष्ण को जीतकर पद्मावती लेना चाहा। परिणाम स्वरूप कृष्ण के साथ राजाओं का भयङ्कर संग्राम हुआ। कृष्णने मुहूर्त भरमें सभी को हरा दिया। पद्मावती को लेकर अपनी राजधानी गए।

यह पद्मावती के लिये संग्राम का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

## ५ तारा निमित्तक युद्ध—

किष्किन्धापुर में आदित्यरथ नामक विद्याधर के दो लडके थे, एक का नाम बालि और दूसरे का नाम सुग्रीव था। आदित्यरथ के पुत्र बालिने अपना राज्य सुग्रीव को देकर स्वयं दीक्षा धारण करली। राज्य का स्वामी सुग्रीव बना। उसकी स्त्री का नाम तारा था। वह बडी सुन्दरी थी। किसी समय तारा की ख्याति से खींचा हुआ साहसगति नामक विद्याधर ने सुग्रीव का रूप बनाकर उसके अन्तःपुर में प्रवेश किया। तारा ने चिन्हों से जानकर मन्त्रि मण्डल को अवगत कराया। उसने अपनी काम सिद्धि के लिये आने वाले सुग्रीव को नकली कहकर रुकवा दिया। वे सब दोनों सुग्रीव के रूप को देखकर आश्चर्य मे पड गए। ठीक निर्णय नहीं होने से दोनों को घर से बाहर निकाल दिये। वे ईर्ष्यावश लडने लगे, लडने में दोनों बराबर रहे। तब कृत्रिमरूपधारी असत्य सुग्रीव और सत्य सुग्रीव दोनों ने हनुमान नामक विद्याधर राजा के पास जाकर निवेदन किया, वह आया और दोनों को बराबर नहीं समझ सकने के कारण विना कुछ उपकार किये ही अपने घर लौट गया।

जब लक्ष्मण के द्वारा पाताल लंका जीत लेने पर श्रीराम वहां पर राज्य सम्भालने लगे तब इस बात को जानकर श्रीराम के चरणों में प्रार्थना की गई। तत्काल लक्ष्मण सहित राम-किष्किन्धापुर आये। उधर सुग्रीव ने भुजा पर ताल मारा जिसको सुनकर वह झूठा सुग्रीव रथारूढ़ हो रण रसिक बना हुआ चला आया। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं देखने से रामचन्द्र तटस्थ भावसे खड़े रहे। सत्य सुग्रीव को सहायता नहीं दे सके। जब सत्य सुग्रीव दूसरे से दुखी किया गया।

तब राम के पास आकर उसने निवेदन किया कि देव! आपके देखते भी मुझको कष्ट मिल रहा है तो मुझे कौन बचाएगा? रामने कहा कि तुम अपना चिन्ह बता कर फिर युद्ध करो। वैसा करने पर झूठे सुग्रीव को रामने शर प्रहार से मार दिया। सत्य सुग्रीव बहुत दिनों तक तारा के साथ साँसारिक सुख का अनुभव करता रहा। रामचन्द्र के द्वारा युद्ध में कृत्रिम सुग्रीव के मारे जाने पर तारा और सुग्रीव का संकट टल गया। वे रामका उपकार मानने लगे।

( यह तारा निमित्तक युद्ध का संक्षिप्त वर्णन है )

## ६ रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम–

सुभद्रा कृष्ण वासुदेव की बहन थी। वह पाण्डुपुत्र अर्जुन पर कामानुरक्त थी इसलिये उसका नाम रक्त सुभद्रा पडा। वह एक दिन अर्जुन के समीप आई। कृष्ण ने उसको लौटाने के लिये बलराम को भेजा। किन्तु सुभद्रा पर अनुरक्त हुए अर्जुन ने रण रसिकता से बलराम को हराकर सुभद्रा के साथ शादी करली। पीछे अभिमन्यु नामका बालक पैदा हुआ।

यह रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

## ७ सुवर्ण–गुलिका के लिये संग्राम

सिन्धु सौवीर देश के नृपति उदायन की राजमहिषी का नाम प्रभावती था। देवदत्ता नामकी उसको एक दासी थी। किसी समय देवदत्ता को दिव्य प्रभाव वाली गुटिकायें प्राप्त हुई, जो अद्भुत चमत्कार से भरी थीं। उसके खाने से कुरूप सुन्दर तथा मूक वाचाल बन जाते थे। कल्पतरु के समान वह अभिलषित फल देने वाली थी। गोली में से एक खाकर देवदत्ता स्वर्णवर्ण देह वाली हो गई। इससे लोग उसको स्वर्ण-गुलिका कहने लगे। देह की सुन्दरता पाकर वह चिन्ता करने लगी कि अब मैं किससे व्याह करूंगी, क्योंकि उदायन मेरे पिता तुल्य हैं और शेष लोग गुण की कमीके कारण मेरे योग्य हैं ही नहीं। इस तरह केवल उज्जयिनीपति राजा चण्डप्रद्योतन ही उसके मनमुताबिक जंचे। उनको ध्यानमें रख उसने फिर दूसरी गोली खाई। इधर गोली के चमत्कार से चण्डप्रद्योतन को भी सुवर्णगुलिका की कार्यवाही ज्ञात हुई। वे हाथी पर चढ़ रात में सुवर्णगुलिका के द्वार पर चले आये। बुलाकर उसको अपने साथ चलने को कहा। ( कुछ शर्तों पर ) वह भी राजी हो गई और चण्ड

लड़कर रोहणी को अधीन करना चाहा। वसुदेव भी रोहणी की सहायता से जोरों से लड़ा और सबको परास्त कर रोहणी को ले चला।

नोट--काञ्चना, अहिन्निका, किन्नरी, सुरूपा और विद्युन्मती की कथाएं अज्ञात हैं। ऐसा टीकाकार का कहना है। फिर भी विद्वानों को गवेषणा करनी चाहिए।

(अनुवादक)

## म्लेच्छ जाति और अनार्य देश

१ आन्ध्र देश २ अरोष ३ अणक्क ४ आभाषिक ५ अरब ६ उद्द ७ कुहण ८ कुलाक्ष ९ केकय १० कोंकणक-कोंकण ११ क्रौंच १२ खस १३ खासिक १४ गाय १५ गौड-(बङ्गाल) १६ गंधहारक-गांधार १७ चिलात-किरात १८ चीन १९ चुंचुक २० चूलेक २१ जल्ल २२ डोविलक २३ डोब २४ तित्तिक २५ द्राविड-द्रविड २६ नेहर २७ पक्कणि २८ पन्हव २९ पारस ३० पुलिन्द्र-पुलिंद भोपाल से उत्तर ३१ पोक्कण ३२ बकुश ३३ बर्बर ३४ बह्लीक ३५ बिल्वल ३६ भडक ३७ मलय ३८ महुर ३९ महाराष्ट्र ४० मरुक ४१ मालव ४२ माष ४३ मुंड ४४ मूढ-मौष्टिक ४५ मेद ४६ यवन-(यूनान) ४७ रुरु ४८ रोम ४९ रोमन ५० ल्हासिक ५१ शक जाति ५२ शबर जाति ५३ सिंहल-लंका ५४ हूण जाति (चतुर्थ सूत्र)

इस प्रकार म्लेच्छ जाति और देशों को मिला कर ५४ संख्या गिनाए गए हैं।

## महापुरुषों के उत्तम लक्षण

१ सूर्य २ चन्द्र ३ शंखवर ४ चक्र ५ स्वस्तिक ६ पताका ७ यव ८ मत्स्य ९ कूर्म १० रथ ११ योनि १२ भवन १३ विमान १४ तुरग १५ तोरण १६ गोपुर-पुरद्वार १७ मणि १८ रत्न १९ नन्दावर्त नवकोण का स्वस्तिक २० मूसल २१ हल २२ कल्प-वृक्ष २३ सिंह २४ भद्रासन २५ सुरूपि-आभरण २६ स्तूप २७ मुकुट २८ मुक्तावली २९ कुण्डल ३० गज ३१ वृषभ ३२ द्वीप ३३ मन्दिर अथवा मेरु ३४ गरुड ३५ ध्वजा ३६ इन्द्रकेतु ३७ दर्पण ३८ अष्टापद-पाशा ३९ धनुष ४० बाण ४१ नक्षत्र ४२ मेघ ४३ मेखला-कन्दोरा ४४ वीणा ४५ जुआ ४६ छत्र ४७ माला ४८ दामिनी ४९ कमंडलु ५० कमल ५१ घंटा ५२ जहाज ५३ सूची ५४ सागर ५५ कुमुद ५६ मगर ५७ हार ५८ पृथ्वी ५९ अंकुश ६० भृंगार ६१ धावर ६२ नूपुर ६३ नग ६४ नगर ६[illegible] ६६ किन्नर ६७ मयूर ६८ राजहंस ६९ सारस ७० चकोर ७१ चक्रवा[illegible]

प्रद्योतन के साथ उज्जयिनी चली गई। प्रातःकाल उदायन को पता चला कि सुवर्ण गुलिका का किसी ने अपहरण कर लिया और विशेष खोज से यह भी ज्ञात हुआ कि यह कार्य चण्डप्रद्योतन राजा का है। इससे उदायन बड़ा क्रुद्ध हुआ, और अन्य दसों शूर राजाओं के संग वह उज्जयिनी पर चढ़ आया। चण्डप्रद्योतन के उस दासी को नहीं लौटाने पर दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ। धनुर्वेद के प्रभाव से चण्डप्रद्योतन के हाथी पर चोट कर उदायन राजा ने चण्डप्रद्योतन को अपने वश कर लिया। अब उदायन विजय मिलाकर अपने देश की ओर पीछे जाने लगा तब पर्युषण पर्व के दिन निकट आ गये थे। अतः दशार्णपुर-मन्दसौर के पास उसने सैन्य सहित अपना पड़ाव किया। संवत्सरी के पहले दिन सैन्य को बुलाकर आदेश दिया कि कल महापर्व है। अतएव किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना। फिर रसोइये से कहने लगे--कल संवत्सरी महापर्व होने से मैं तो दिन भर पौषध और आराधना करने वाला हूँ किन्तु यह चण्डप्रद्योतन जो अभी मेरे बंधन में है, फिर भी राजा होने से इसको भोजन में कोई कष्ट नहीं होने देना। इसकी इच्छा के अनुसार भोजन बना देना। कितनी धर्म की निष्ठा? सुवर्णगुलिका के लिये लड़ने वाला उदायन नृपति पर्वाराधन में शत्रु को भी मित्र समझता है। क्षमापना करते समय उसने चण्डप्रद्योतन की प्रीति के लिये दासी सहित उसे बन्धन मुक्त करके सत्कार किया और दूसरे दिन चण्डप्रद्योतन के मस्तक पर मयूरपिच्छ से दासीपति यह नाम अङ्कित कर (विदा किया) छोड़ दिया।

उदायन की क्षमापना आदर्श है।

## ८ रोहिणी के निमित्त संग्राम

लड़कर रोहणी को अधीन करना चाहा। वसुदेव भी रोहणी की सहायता से जोरों से लड़ा और सबको परास्त कर रोहणी को ले चला।

नोट--काञ्चना, अहिन्निका, किन्नरी, सुरूपा और विद्युन्मती की कथाएं अज्ञात हैं। ऐसा टीकाकार का कहना है। फिर भी विद्वानों को गवेषणा करनी चाहिए।

( अनुवादक )

## म्लेच्छ जाति और अनार्य देश

१ आन्ध्र देश २ अरोष ३ अणक्क ४ आभाषिक ५ अरव ६ उद् ७ कुहण ८ कुलाक्ष ९ केकय १० कोंकणक-कोंकण ११ क्रौंच १२ खस १३ खासिक १४ गाय १५ गौड-बङ्गाल) १६ गंधहारक-गांधार १७ चिलात-किरात १८ चीन १९ चुंचुक २० चूलेक २१ जल्ल २२ डोविलक २३ डोव २४ तित्तिक २५ द्राविड-द्रविड २६ नेहर २७ पक्कणि २८ पन्हव २९ पारस ३० पुलिन्द्र-पुलिंद भोपाल से उत्तर ३१ पोक्कण ३२ वकुश ३३ बर्बर ३४ बहलीक ३५ विल्वल ३६ भडक ३७ मलय ३८ महुर ३९ महाराष्ट्र ४० मरुक ४१ मालव ४२ माप ४३ मुंड ४४ मूढ-मौष्टिक ४५ मेद ४६ यवन-(यूनान) ४७ रुरु ४८ रोम ४९ रोमन ५० ल्हासिक ५१ शक जाति ५२ शबर जाति ५३ सिंहल-लंका ५४ हूण जाति (चतुर्थ सूत्र)

इस प्रकार म्लेच्छ जाति और देशों को मिला कर ५४ संख्या गिनाए गए हैं।

## महापुरुषों के उत्तम लक्षण

१ सूर्य २ चन्द्र ३ शंखवर ४ चक्र ५ स्वस्तिक ६ पताका ७ यव ८ मत्स्य ९ कूर्म १० रथ ११ योनि १२ भवन १३ विमान १४ तुरग १५ तोरण १६ गोपुर-पुरद्वार १७ मणि १८ रत्न १९ नन्दावर्त नवकोण का स्वस्तिक २० मूसल २१ हल २२ कल्प-वृक्ष २३ सिंह २४ भद्रासन २५ सुरूपि-आभरण २६ स्तूप २७ मुकुट २८ मुक्तावली २९ कुण्डल ३० गज ३१ वृषभ ३२ द्वीप ३३ मन्दिर अथवा मेरु ३४ गरुड ३५ ध्वजा ३६ इन्द्रकेतु ३७ दर्पण ३८ अष्टापद-पाशा ३९ धनुष ४० वाण ४१ नक्षत्र ४२ मेघ ४३ मेखला-कन्दोरा ४४ वीणा ४५ जुआ ४६ छत्र ४७ माला ४८ दामिनी ४९ कमं-डलु ५० कमल ५१ घंटा ५२ जहाज ५३ सूची ५४ सागर ५५ कुमुद ५६ मगर ५७ हार ५८ पृथ्वी ५९ अंकुश ६० भृंगार ६१ घावर ६२ नूपुर ६३ नग ६४ नगर ६५ वज्र ६६ किन्नर ६७ मयूर ६८ राजहंस ६९ सारस ७० चकोर ७१ चक्रवाक ७२ चामर

प्रद्योतन के साथ उज्जयिनी चली गई। प्रातःकाल उदायन को पता चला कि सुवर्ण गुलिका का किसी ने अपहरण कर लिया और विशेष खोज से यह भी ज्ञात हुआ कि सारा खेल चण्ड प्रद्योतन राजा का है। इससे उदायन बड़ा क्रुद्ध हुआ, और अन्य बली दश राजाओं के संग वह उज्जयिनी पर चढ़ आया। चण्डप्रद्योतन के द्वारा दासी को नहीं लौटाने पर दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ। धनुर्वेद के प्रभाव से चण्डप्रद्योतन के हाथी पर चोटकर उदायन राजा ने चण्डप्रद्योतन को अपने वश कर लिया। जब उदायन विजय मिलाकर अपने देश की ओर पीछे जाने लगा तब पर्यूषण पर्व के दिन निकट आ गये थे। अतः दशार्णपुर-मन्दसौर के पास उसने सैन्य सहित अपना पडाव किया। संवत्सरी के पहले दिन सैन्य को बुलाकर आदेश दिया कि देखो कल महापर्व है। अतएव किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना। फिर रसोइये से कहने लगे--कल संवत्सरी महापर्व होने से मैं तो दिन भर पौषधव्रत की आराधना करने वाला हूँ किन्तु यह चण्डप्रद्योतन जो अभी मेरे बंधन में है, फिर भी राजा होने से इसको भोजन में कोई कष्ट नहीं होने देना। इसकी इच्छा के अनुसार भोजन बना देना। कितनी धर्म की निष्ठा ? सुवर्णगुलिका के लिये लड़ने वाला उदायन भूपति पर्वाराधन में शत्रु को भी मित्र समझता है। क्षमापना करते समय उसने चण्डप्रद्योतन की प्रीति के लिये दासी सहित उसे बन्धन मुक्त करना स्वीकार किया और दूसरे दिन चण्डप्रद्योतन के मस्तक पर मयूरपिच्छ से दासीपति यह नाम अङ्कित कर ( विदा किया।) छोड़ दिया।

उदायन की क्षमापना आदर्श है।

## ८ रोहिणी के निमित्त संग्राम

अरिष्टपुर नगर में रुधिर नामका राजा राज्य करता था। उसकी सुमित्रा नाम की राणी तथा हिरण्यनाभ नाम का पुत्र और रोहणी नामकी एककन्या थी। राजाने पुत्रीके विवाह करनेको स्वयंवर करनेकी घोषणाकी। जरासंध और समुद्रविजय आदि विविध राजा स्वयंवर में उपस्थित हुए। उचित आसन पर बैठकर रोहणी की प्रतीक्षा करने लगे। समय पर रोहिणी स्वयंवर मंडप में आई और प्रतिविम्ब में धाई मा के द्वारा राजाओं का परिचय लेती हुई आगे बढ़ी। गुप्त रूप से वसुदेव ने वाद्यध्वनि द्वारा उसको अपना परिचय दिया। जिससे उसने भी प्रेम भावसे वसुदेवके गलेमें वर मला डाल दी। इससे उपस्थित सभी राजा क्रुद्ध हुए। उन्होंने उस बाजे वाले से

लड़कर रोहणी को अधीन करना चाहा। वसुदेव भी रोहणी की सहायता से जेठों से लड़ा और सबको परास्त कर रोहणी को ले चला।

नोट--काञ्चना, अहिन्निका, किन्नरी, सुरूपा और विद्युन्मती की कथाएं अज्ञात हैं। ऐसा टीकाकार का कहना है। फिर भी विद्वानों को गवेषणा करनी चाहिए।

( अनुवादक )

## म्लेच्छ जाति और अनार्य देश

१ आन्ध्र देश २ अरोष ३ अगाक्ष ४ आभाषिक ५ अरब ६ उद ७ कुहण ८ कुलाक्ष ९ केकय १० कोंकणक–कोंकण ११ क्रौंच १२ खस १३ खासिक १४ गाय १५ गौड–बङ्गाल) १६ गंधहारक–गांधार १७ चिलात–किरात १८ चीन १९ चुंचुक २० चूलेक २१ जल्ल २२ डोविलक २३ डोव २४ तित्तिक २५ द्राविड–द्रविड २६ नेहर २७ पक्कणि २८ पन्हव २९ पारस ३० पुलिन्द्र–पुलिंद भोपाल से उत्तर ३१ पोक्कण ३२ वकुश ३३ वर्बर ३४ बहलीक ३५ बिल्वल ३६ भडक ३७ मलय ३८ महुर ३९ महाराष्ट्र ४० मरुक ४१ मालव ४२ माष ४३ मुरंड ४४ मूढ–मौष्टिक ४५ मेद ४६ यवन–(यूनान) ४७ रुरु ४८ रोम ४९ रोमन ५० ल्हासिक ५१ शक जाति ५२ शबर जाति ५३ सिंहल–लंका ५४ हूण जाति (चतुर्थ सूत्र)

इस प्रकार म्लेच्छ जाति और देशों को मिला कर ५४ संख्या गिनाए गए हैं।

## महापुरुषों के उत्तम लक्षण

१ सूर्य २ चन्द्र ३ शंखवर ४ चक्र ५ स्वस्तिक ६ पताका ७ यव ८ मत्स्य ९ कूर्म १० रथ ११ योनि १२ भवन १३ विमान १४ तुरग १५ तोरण १६ गोपुर–पुरद्वार १७ मणि १८ रत्न १९ नन्दावर्त नवकोण का स्वस्तिक २० मूसल २१ हल २२ कल्प-वृक्ष २३ सिंह २४ भद्रासन २५ सुरूपि–आभरण २६ स्तूप २७ मुकुट २८ मुक्तावली २९ कुण्डल ३० गज ३१ वृषभ ३२ द्वीप ३३ मन्दिर अथवा मेरु ३४ गरुड ३५ ध्वजा ३६ इन्द्रकेतु ३७ दर्पण ३८ अष्टापद–पाशा ३९ धनुष ४० बाण ४१ नक्षत्र ४२ मेघ ४३ मेखला–कन्दोरा ४४ वीणा ४५ जुआ ४६ छत्र ४७ माला ४८ दामिनी ४९ कमं-डलु ५० कमल ५१ घंटा ५२ जहाज ५३ सूची ५४ सागर ५५ कुमुद ५६ मगर ५७ हार ५८ पृथ्वी ५९ अंकुश ६० भृंगार ६१ घाघर ६२ नूपुर ६३ नग ६४ नगर ६५ वज्र ६६ किन्नर ६७ मयूर ६८ राजहंस ६९ सारस ७० चकोर ७१ चक्रवाक ७२ चामर

७३ खेट ७४ पव्विसक-वाद्य ७५ वीणा ७६ तालवृन्त-पंखा ७७ अभिषेक ७८ खड्ग ७९ कलश ८० वर्द्धमान-शरावा (तृतीय सूत्र)

(च० आ० द्वा०)

## स्त्रियों के बत्तीस लक्षण

१ छत्र २ ध्वजा ३ यूप ४ स्तूप ५ दामिनी-डोरी ६ कमण्डल ७ कलस ८ वापी ९ स्वस्तिक १० पताका ११ यव १२ मत्स्य १३ कूर्म १४ प्रधान रथ १५ कामदेव १६ अंक १७ थाल १८ अंकुश १९ अष्टापद २० सुप्रतिष्ठक २१ देव या मयूर २२ लक्ष्मी का अभिषेक २३ तोरण २४ पृथ्वी २५ समुद्र २६ प्रधान भवन २७ प्रधान गिरि २८ दर्पण २९ गज ३० वृषभ ३१ सिंह ३२ चामर। (च० आ० द्वा०)

## देवों के नाम

### भवनपति जाति के देव

१ असुर कुमार २ नाग कुमार ३ गरुड़ कुमार ४ विद्युत् कुमार ५ अग्नि कुमार ६ द्वीप कुमार ७ उदधि कुमार ८ दिक्कुमार ९ पवन कुमार १० स्तनित कुमार।

### व्यन्तर जाति के देव

१ अणपन्निक २ पणपन्निक ३ ऋषिवादिक ४ भूतवादिक ५ क्रंदित ६ महा क्रंदित ७ कूष्मांड ८ पतंगदेव ९ पिशाच १० भूत ११ यक्ष १२ राक्षस १३ किन्नर १४ किंपुरुष १५ महोरग १६ गन्धर्व। ४, ५, अधर्म द्वार

### ज्योतिष्क देव

१ बृहस्पति २ चन्द्र ३ सूर्य ४ शुक्र ५ शनिश्चर ६ राहु ७ धूमकेतु ८ बुध ९ मंगल

### कल्पों के नाम

१ सौधर्म २ ईशान ३ सनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्मलोक ६ लान्तक ७ महाशुक्र ८ सहस्रार ९ आणत १० प्राणत ११ आरण १२ अच्युत। (प० अ० द्वा०)

### आहार के दोष

१ उद्दिष्ट २ स्थापित ३ रचित ४ पर्यवजात ५ प्रकीर्ण ६ प्रादुष्करण ७ अपमित्य ८ मिश्रजात ९ क्रीतकृत १० प्राभृत ११ दानार्थकृत १२ पुण्यार्थ कृत १३ श्रमणार्थ कृत १४ वनीपकार्थ कृत १५ पश्चात् कर्म १६ पुरः कर्म १७ नीति कर्म १८ मृक्षित १९

अतिरिक्त २० वाचालता युक्त २१ आह्रित २२ स्वयंगृह (स्वगृहीत) २३ मृत्तिकोपलिप्त २४ अच्छेद्य २५ अनिसृष्ट २६ अन्तर्बहिर्वा स्थापित २७ हिंसा सावद्य युक्त कृत कारित।

## ब्रह्मचर्य की ३२ उपमायें—

१ नक्षत्र मण्डल में जैसे चन्द्रमा प्रधान है वैसे व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत बड़ा और प्रधान है। २ मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान। ३ मणियों में वैडूर्य मणि के समान। ४ आभूषणों में मुकुट के समान। ५ वस्त्रों में कपास के वस्त्र के समान। ६ पुष्पों में कमल के समान। ७ चन्दनों में गोशीर्ष चन्दन के समान। ८ औषधि स्थानों में हिमवान के समान ९ नदियों में शीतोदा नदी के समान। १० समुद्रों में स्वयंभूरमण के समान। ११ माण्डलिक पर्वतों में रुचक पर्वत के समान। १२ हाथियों में ऐरावत हाथी के समान। १३ जंगली पशुओं में सिंह के समान। १४ सुपर्णकुमारों में वेणुदेव के समान। १५ नागकुमारों में धरणेन्द्र के समान। १६ बारह देवलोकों में ब्रह्मदेव लोक के समान। १७ सभाओं में सुधर्म सभा से समान। १८ स्थितियों में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थिति के समान। १९ दानों में अभयदान के समान। २० कम्बलों में रत्न कम्बल के समान। २१ शरीर के संहननों में वज्र ऋषभनाराच संहनन के समान। २२ संस्थानों में समचतुरस्र संस्थान के समान। २३ चार ध्यानों में शुक्ल ध्यान के समान। २४ पांच ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २५ छह लेश्याओं में शुक्ल लेश्या के समान। २६ मुनियों में तीर्थंकर के समान। २७ क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र के समान। २८ पर्वतों में सुमेरु पर्वत के समान २९ वनों में नन्दन वन के समान। ३० वृक्षों में जम्बू वृक्ष के समान। ३१ तुरगपतिओं में राजा के समान। ३२ रथिकों में महारथी के समान ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में बड़ा और प्रधान है।

## ऐतिहासिक पुरुष

राम, केशव, वासुदेव, देवई–देवकी, रुक्मिणी, रक्त सुभद्रा, रोहिणी, पद्मावती द्रौपदी, सीता, समुद्रविजय, प्रद्युम्नकुमार, प्रदीपकुमार, संभकुमार, अनिरुद्ध कुमार निसर्ग कुमार, उल्मुक कुमार, गज कुमार, सारंगकुमार, सुमुखकुमार, दुर्मुख कुमार, चाणूरमल्ल, महाशकुनि, पूतना, कंस, जरासंध, केशरीसिंह दृप्त नाग–काली नाग, अरिष्टवृषभ, स्वयंभू, प्रजापति, महावीर, जम्बू कुमार, वसुदेव।

## वाद्य

१ मुरज २ मृदंग ३ पणव-पडहा ४ दर्दुर ५ कच्छभि ६ वीणा ७ विपंचि ८ कल्लकी वीणा विशेष ६ वतीसक १० सुघोप-घंटा ११ नंदी-बारह प्रकार का तुर्य-घोष १२ सुस्वरा १३ परिवादिनी १४ वंश-बांसुरी १५ तूणक १६ पर्वक १७ तंत्री १८ तलताल-हस्तताल १९ त्रुटित।

किसी वाद्य-कला के आचार्य से इनका परिचय प्राप्त करना चाहिये।

## सुगन्धित द्रव्य—

१ पुष्प २ कोष्ट ३ तगर ४ पत्र-तमाल पत्रादि ५ त्वचा-छाल ६ दमनक ७ मरुआ ८ एलारस ६ पिकमंस-पका हुआ गंध १० गोशीर्ष-सरस चन्दन ११ कपूर १२ लवंग १३ अगर १४ कुंकुम १५ कंकोल १६ उशीर १७ श्वेत चन्दन १८ सारंग इत्यादि।

(पंचम संवर द्वार)

## जलाशय

१ क्षुल्लिका २ पुष्करणी ३ वापि-चतुष्कोण बावडी ५ दीर्घिका ६ गंजालिका ७ सर ८ सरपंक्ति ६ सागर १० बिल कुआ ११ खाई १२ नदी १३ तालाव-खोद के बनाया हुआ १४ वप्रिण-नहर, क्यारा।



# प्रश्न व्याकरण सूत्र की पाठान्तर सूची !

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| पाणवह | पाणिवह | अ |
| पाणवहो | पाणिवहो | " |
| मरणावेमणस्सो | मरणवेमणस्सो | " |
| कोलसुणक | कोलसुणका | " |
| दीविया | दीविय | " |
| सरंब | सरंग | ग० |
| गोधुदर | गोधूंदुर | अ |
| मुगुस | मुंगुसी | " |
| खाडहिल | खडहिला | " |
| वाउप्पइय | वाउप्पिय | ग० |
| सेताय | सेतीय | अ |
| चकीव | कीव | " |
| सउण पिपीलिय | सउण पीलिय | ग० |
| जीवजीवक | जीवंजीवग | अ |
| कवोयक | कवोयकाग | " |
| वेसर | भेसर | " |
| सालग (करक) | कर करक | " |
| दंतद्वा | दंतद्वी | " |
| चितिवेतिय खातिय | वेदिखातिय | ग० |
| जलावण | जलण जलावण | अ |
| केते | किते | " |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| मुरंडो दभडग | मुरंडो ड्डु भडग | ग० |
| चिल्लल | चिल्लल | अ |
| महुर | मग्गर | ” |
| मुट्ठिय आरब | मुट्ठिय मरहाटा मट्ठा आरफ | ब |
| मसगा | मसग | ” |
| रुहिरकिरण | रुहिरा किन्न | ” |
| उस्सासेत | उस्ससितं | ” |
| मुयह मेमरामि | मुच्चमे मरामि | ” |
| गंडूलय | तहेन्द्र बेंदियेसु गंडूयल | अ |
| भञ्जणगालण | भञ्जण तालण गालण | ब |
| अंधयगा | अंधल्लगा | अ |
| हीणाहीणसत्ता | हीण हीणसत्ता | ब |
| भणंति नत्थि अहियाहि | भणंति सुणंति नत्थि | अ |
| आइद्धा | आइट्ठा | ” |
| विरयणं अलिय | विरयणं माया अलिय | ब |
| पुणब्भवकरं | भव पुणब्भवकरं | अ |
| चउरंग विभत्तबल | चउरंग समत्तबल | ” |
| गाढदट्ठे सप्पहारणुज्जयकरे | गाढदढप्पहार कर णुज्जयकरे | ब |
| दरिय | दप्पिय | ” |
| अवइट्ठ | बाणइद्ध | ” |
| वुच्छतरकेहिं | हत्थतरकेहि | ” |
| कह कहितपहसित | कहकहकरंतपहसिय | ” |
| कास | कस्स | अ |
| संकोड मोडणाहिं | संकोडण मोडणाहिं | ग |
| नेत्तप्पहारसय | वेतप्पहारसत | अ |
| कोप्परपहार संभग्ग | कोप्परपहार घायकिचा संभग्ग | ब |
| वज्भयाण भीता | वज्भपाणम्पीया | अ |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| खरफरुसएहिं | खरकर सएहिं | |
| समभिद्दुत्ते | समभिभूए | अ |
| पुणोविपवज्जंति | पुणोविपडिवज्जंति | ब |
| सायगारवो वहार गहिय कम्मपडि० | सायगारवो असुहज्झवसायहि अपहार कम्म पडिबद्ध० | य |
| रुद्दं | रुंदं | अ |
| अफलवंतकाय | अपचतकाय | ,, |
| मणसंखेवो | मणसंखोभो | ,, |
| चाणूर मूरगा | चूरगा | ,, |
| सद्दूलसिह | सद्दूलरिसह | ,, |
| सुपइट्ठ अमरसिरिया० | सुपइट्ठमयूर'सिरिया | ब |
| लोभकलिकसाय | लोभकलिसंगागकसाय | ,, |
| भवनवर विमाण | भवन वाणव्वंतर विमाण | |
| चउत्थभत्तिएहिं एवं जावछम्मास भत्तिएहिं– | चउलयभत्तिएहिं छट्ठ भत्तिएहिं अट्ठभत्तिएहिं दसम भतिएहिं एवं दुवालस चोद्दस सोलस अद्धमास दोमास तिमास चउमास पंच मास छम्मास भत्तिएहिं। | य |
| पावियाते पावगं न किंचिवि | पावियाते पावक अहम्मिय दारुणं निसंसं वहवंध परिकिलेस बहुलं जरामरण परिकिलेस संकिलिट्ठ' न कयाति वइए पावियाएउ पावगं किंचिवि | अ |
| अक्खोवंजणानु लेवणभूयं | अक्खो वंजणवणाणु लेवण भूयं | ग |
| महासमुद्दमज्झेविमूढा | महासमुद्दमज्झेचिठंति न य निमज्जंति मूढा | अ |
| असिपंज्जरगया | असिपंजर सत्तिपंजरगया | ,, |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| सुपणिहियं एवं जाव आघवियं | सुपणिहियं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मणवयण काय परिक्खिएहिं णिच्चं आमरणं तं च जोगो णेयव्वो धिईमयामईमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्साई असंकिलिट्ठो सव्वजिणमणुण्णाओ एवं तइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहिअं भवइ एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवर सासणमिणं आघमियं | ब |
| सुभासियं | सुसाहियं | ग |
| धीर सूर | वीर सूर | ,, |
| सुकयमज्झप्प | सुकयरक्खणं अज्झप्प | अ |
| संनद्धोच्छइय | संनद्धबद्धच्छगिय, सन्नद्धबद्धोच्छगिय | अ–ब |
| मथिय चुन्निय | मद्दियमहिय चुन्निय १–मद्दिय चुन्निय | ग |
| वाउसिक (य) हसिय | वाउसिक न वत्थ केस समारवणा इय हसिय | ब |
| अविरतिसुय एव | अविरतीसुय अणेसुय एव | ,, |
| विसुद्ध मूलो | विसुद्धबद्ध मूलो | अ |
| जस निविड पीण पवर | जसनिचिय पीण पीवर | ,, |
| तव संजम | तवसंवर संजम० | ब |
| जंगमाणं दिट्ठा | जगाणं दिट्ठा | अ |
| दंसमसगसीय परिरक्खणट्ठयाए | दंसमसग सीउसिणपरिरक्खणट्ठयाए | ब |
| सोमभावयाए | सोमभावणाए | ,, |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| कयपर निलये | कयपर घर निलये | व |
| निस्संधि | निसन्निहिं | म |
| छुद्दिय | मुद्दिय | व |
| नरज्झियव्वं जाव न सइं | नरज्जियव्वं न गिज्झियव्वं न मुज्झियव्वं न विणिघायमावज्जियव्वं न लुभियव्वं न तुसियव्वं न हसियव्वं न सइं | व |
| अंतरप्पा जाव चरेज्ज | अंतरप्पा मणुण्णा मणुन्न सुब्भि दुब्भि राग दोस पणिहियप्पा साहु मण वयण कायगुत्ते संवुडे पणिहिन्दिए चरेज्ज | व |
| रूसियव्वं जाव | रूसियव्वं न हिलियव्वं जाव | अ |
| नमुज्झियव्वं न विणिग्घायं | न मुज्झियव्वं न हसियव्वं न लुभियव्वं न तुसियव्वं न विणिग्घाय | " |
| हिययदंत भंजण | हिय यंत दंत भंजण | " |
| एक्कसरगा | एका रसगा | " |
| दससुचेवदिवसेसु | चउदससुचेवदिवसेसु | " |



# पाठान्तर-सूची

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| ३ | १६ | उट्ठेइ २ त्ता | उट्ठेइत्ता |
| ३ | १९ | उवागच्छइ २ | उवागच्छइत्ता |
| ३ | २० | करेइ २ | करेइत्ता |
| ३ | २० | नमंसइ | नमंसइत्ता |
| ३ | २२ | अंगस्स | भंते अंगस्स |
| ३ | २७ | अज्ज सुहम्मे थेरे | अज्ज सुहुम्मंथेरं |
| ८ | २७ | विणासो | विसाणो |
| ११ | २० | विहाणक कए | विहाणकए |
| ११ | १६ | का उदर | का ओदर |
| ११ | २३ | आडासेतीय | आडासेती |
| ११ | २३ | सउण पिपीलिय दीविय | सउण दीविय (पीलिय) |
| ११ | १८ | एवमादी | एवमायी |
| १२ | १६ | पुढविमये | पुढवीमये |
| १२ | १६ | पुढविसंसिए | पुढवीसंसिये |
| १२ | १ | सुईमुह | सूयीमुह |
| १२ | ५ | पोंडरीय सालग करकं | पोडरीय सालगं (करक) |
| १२ | १४ | वत्थोहर | वत्थोहार |
| २५ | १५ | छेलिहत्था | छेलिहत्था (दीविया) |
| २६ | ११ | तिमिस्सेसु | तमिस्सेसु |
| २६ | १९ | असुभदुक्खविसहं | असुभगंध दुक्खविसहं |
| ३५ | ५ | सामिभाय | सामिमाम |
| ३५ | १६ | हसंता | पासंता |
| ३६ | १ | सुचए | सुव्वए |
| ३६ | १६ | विसूणियंगमंगा | विसू णियंगमंगा (निग्गयंगजीवा पा.) |
| ३७ | १४-१५ | दोहणाणिय कुदंडगल | दोहणाणि य डगल |
| ३७ | १५-१६ | निमजणाणि | निमज्जणाणि य |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| ४६ | २४ | संपउत्ता (तहेव वेइंदिएसु | निमज्जणाणिय संपउत्ता |
| ४७ | ४ | पुणो २ तहिं २ | पुणो तहिं |
| ४७ | ६ | भज्जण | भज्जण |
| ४७ | १५ | मूकाय | मूकाय (अवियजल मूया पा. |
| ४७ | १६ | विणिहय सचिल्लया | विणिहय रुप्पे (भिस पा.) |
| ४७ | १६ | णारगाओ उव्वट्टिया | णारगाओ उव्वट्टंति |
| ४७ | २२ | पारलोइओ | परलोइओ |
| ४८ | २ | मरणवेमणस्सो | मरणवेमणसो |
| ५६ | २० | कूड कवड मवत्थुगं | कूड कवड मत्थुगंच |
| ५६ | २५ | नियमी (डी) | नियमी |
| ५६ | २६ | अवहीयं | अवहीयं (अवायिअं पा.) |
| ५६ | २७ | अणुवलेवओत्ति | अणुव (अन्नोअपा) लेवओत्ति |
| ६० | १-२ | एयं जदिच्छाएवा | एयं वा जदिच्छाएवा |
| ६० | ३ | किंचि कयकं तत्तं | किंचि कयकतत्तं |
| ६० | ६ | इमो विविस्संभवाइओ | इमोवि विसंधायओ |
| ६० | १७ | अहरगति गमणं अन्नं पि | अहरगति गमणं कारणं अन्नं पि |
| ६० | १८ | परमट्ठ भेदकमसकं (असत्कं) | परमट्ठ भेदकमसंकं |
| ६० | २१ | अलियाहि संधि संनि० | अलिया हिंसंति संनि० |
| ६१ | ५ | साहिंति मगराणं | साहिंति मगराणं (मग्गिणं) |
| ६१ | ६ | वालवीणं | वालवीणं (वायलियाणं पा.) |
| ६१ | ६ | वध वंध जायणंच | वधबंध जावणंच |
| ६२ | २ | दुज्जंतु | दुज्झंतु |
| ६१ | २ | साहिंति य | साहंति |
| ६१ | १६ | आहेवण आविं | आहेव (हिव्व पा.) ण आविं |
| ६१ | १८ | पावकम्म करणं | पावकम्म कराणं |
| ६१ | १८ | गामघातियाओ | गामघातवाओ |
| ६१ | २५ | पियय दासि | पियय (खादत, पिबतदत्तच पा.) दासि |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| ६१ | ७ | करित्तु कम्मं | करित्तु (करिंतु पा.) कम्मं |
| ६१ | २८ | वल्लराइं उत्तण | वल्लराइं (छिद्यत्तामखिल भूमिवल्लराणि पा.) उत्तण |
| ६२ | ६ | उप्पणिज्जंतु | उप्फणिज्जंतु |
| ६२ | १० | मुहुत्तेसु नक्खत्तेसुतिहिसु | मुहुत्तेसु तिहिसु |
| ६२ | १५ | धूयावंकार | धूयावकर |
| | | अलियाणा | अलियप्पाणो |
| ६२ | २०–२२ | होंति | होंति |
| ७७ | २१ | बहिरन्धयाय | बहिरन्धमूयाय |
| ७७ | २२ | अकंत विकय करणा | अकं (कपा.) त विकयकरणा |
| ७७ | २८ | अणिट्ठखर | अणिट्ठसर |
| ८२ | १३ | पत्थोइ मइयं | पत्थाइ मइयं |
| ८४ | १० | कूरिकडं | कूरिकडं (कुसदुयकयं पा.) |
| ८४ | ११ | तक्करत्तणंतिय | तक्करत्तणंति |
| ८४ | ११–१२ | हत्थललहु, त्तणं | हत्थलत्तणं (लहुत्त पा.) |
| ८४ | १३ | ओवीलो | अ (प्र. ओ) वीलो |
| ८६ | १७ | लोकवज्झा | लोलवज्झा |
| ८७ | १ | दप्पिएहिं सेन्नेहिं संपरिवुडा | दप्पिएहिं (सेन्नेहिं पा.) संपरिवुडा |
| ८६ | १२ | पड्हा हय | पहडा हय |
| ८६ | २–३ | माढिवरवम्म गुंडिया | माढिवर (गूढ पा.) वम्मगुंडिया |
| ८६ | ५ | मुयंत घण | मुयंत मंते पा.) घण |
| ८६ | २३ | समरभडा, आवडिय | समर भडावडिय |
| ८६ | २५ | फुरफलगावरणं | पुरफलगावरणं |
| ६० | १ | कुच्छिदालिय | कुच्छि विदालिय |
| ६० | २० | कल्लोल संकुलं | कल्लोल संकुलजलं |
| ६० | २६ | दूरंसुच्चंत गंभीर | दूर सुव्वंत गंभीर |
| ६० | २६ | धुग धुगंत सद्दं | धुगु धुगंत सद्दं |

| पृ० | प० | मूलपाठ हस्त० | पाठ भेद श्रा० मंदिर |
|---|---|---|---|
| ९१ | ५ | हत्थदच्छ तरकेहिं | हत्थ तरकेहिं |
| १०२ | २३ | भेसणगभयाभिभूया | भेसणगा ( गभया पा० ) भिभूया |
| १०३ | १ | मंद पुराणा | मद पुन्ना |
| १०३ | ७–८ | उरक्खोडी दिन्नगाढ | उरक्खडो दिन्न गाढ़ |
| १०३ | २३ | तुरियं उग्घाडिया पुरवरे | तुरिय उग्घाडिया पुरव रे |
| १०४ | ८–९ | वज्झयाण भीता | वज्झयाण पीया (या॒ भीता पा०) |
| | | तिलं तिलंचेव– | तिलं तिलं चेव |
| १०४ | २४ | निरिक्खया | निरिक्खि ( रक्कि ) या |
| १०४ | २५ | ( अलज्जाविया ) अलज्जा–अलज्जा | |
| १०४ | २६ | वेयण दुग्घट्ट घट्टिया | वेयण दुग्घ ट्टिया |
| १०५ | ७ | सयणस्स वि | सयण रस विय |
| ११३ | २२ | कहिंपि | कहिंचि |
| ११४ | १३–१४ | पधावित वसण | पधावित (वाहिय पा० वसण |
| ११४ | १८ | अत्ताणा सरण | ऽत्ताणऽसरण |
| ११४ | २४ | गमण कुडिल | गमण कडित्त |
| ११५ | २६–२७ | उम्मग्ग निमग्ग | उम्मुग्ग निमुग्ग |
| ११५ | २८ | उब्बुड्ढ निबुड्ढ्यं | उब्बुड्ड निबुडड्यं |
| ११६ | १–२ | अदिण्णा दाणं हरदह | अदिन्नादाणं हरदह |
| ११६ | ४ | समत्तं त्तिवेमि | समत्त तिवेमि |
| ११५ | १३ | छोभा सिप्प | शाभा सिप्प |
| ११३ | २६ | संसारावत्त | संसार ( रा ) वत्त |
| १२५ | ११ | चिर परिगय मणुगयं | चिर परिचित मणुगयं |
| १२६ | १६ | सेवणाधिकारो | सेवणाधिक्कारो |
| १२८ | ९–१० | उस्सवणा तामसेण | उस्सण तामसेण |
| १२९ | ५ | कोसेज्ज संणी सुत्तक | को० सो० सु० ( कुंडलंपा०) |
| | | त्रिभूसिमंगा | गय |
| १२९ | ७ | रइत मालकउगं गय | र०मा०क० ( कुंडलपा ) गय |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| १०६ | १९-२० | अणु भवेत्ता ते वि | अणुभवेत्ता (न्ता) तेवि |
| १३४ | २५ | भायरो सपरिसा | भा० सुपरिसा |
| १३५ | ५ | णिव्वुय मुदितजण | णिव्वुय पमुदित जण |
| १३५ | १२ | महुर भणिया अब्भुवग | महुर भणिया (महुर परिपुण्ण-सच्च वयण पा० ) अब्भुवग। |
| १३५ | १८-१६ | जरासिंध माण महणातेहिय अविरल | ज०मा०म०ते(अब्भ पडल पिंग लुज्ज तेहिपा० ) अविरळ |
| १३६ | ४-५ | विसरगंधुद्धूयाभिरामाहिं | वि०गं०धयाभि रामाहिं |
| १३६ | ६-७ | हल मुसल कणग पाणी | ह० मु० (कणग पा०) पाणी |
| १३६ | ७ | पत्र रुज्जल सुकन्त विमल | प० सुकंत वि० |
| १३६ | १६ | अणेगवास सयमायुवंतो | अणग वास सयमातुवंतो |
| १३६ | १८ | अणु भवेत्ता | अणु भवेत्ता (न्ता) |
| १४२ | २४ | मणुभवित्ता | अणुभवित्ता (न्ता) |
| १४२ | २७ | पायचारिणो | पाद चारिणो |
| १४३ | २ | अणु पुव्व सुसंहयंगुलीया | अणु सुसं (जायपवरं पा.) गु. |
| १४३ | ४ | समुग्ग निसग्ग | स० निमग्ग |
| १४३ | २० | रुइल निद्धनखा | रुइल निद्ध णक्खा |
| १४३ | २३-२४ | सद्दूल सीह | सद्दूल सिंह |
| १४४ | ४ | तवणिज्जरत्त तलातालु जीहा | तवणिज्जरत्त तलतालु जीहा |
| १४४ | १४ | पयाहिणावतमुद्धसिरया सुजात सुविभत्त संग यंगा | पयाहिणावत्त मुद्धया सु० सु० संगयंग मंगा |
| १४४ | १६-१७ | सीहस्सरा (ओघ)सरामेघसरा | सीहस्सरावग्घ (ओघ) सरा मेघसरा |
| १४४ | २३ | तिपलिओवमट्ठितिका | तिपलिओवमट्ठितीका |
| १४४ | २४-२५ | अवितत्ता कामाणं | अवितित्ता कामाणं |
| १४५ | १५ | सम सहिय लट्ठ चूचुय आमेलग | सम सहिय लट्ठ चुचुय आमेलग |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद श्रा० मंदिर |
|---|---|---|---|
| १०६ | ४ | मच्छ कुम्म रहवर मकर | म. कु. रथवर मकर |
| १५९ | २८ | हम्मंति, विसुणिया | हम्मंति विसुणिया |
| १६० | २ | मारेंति एक्केक्क | मारेंति एक्कमेक्कं |
| १६० | ५ | पावेंति अयसकित्ति | पावेंति अ (जस पा.) कित्ति |
| १६० | ७ | परस्स दाराओ | परस्स दारओ |
| १६५ | ५ | णाणामणिरयणकणग | णाणामणि कणग रयण |
| १६७ | २७ | लोहप्पा, महद्धी | लोहप्पा महइ (द्धी पा.) |
| १६६ | १२ | असुर भुयग गरुल विज्जु-जलण | असुर भु० ग० सुवण्ण विज्जु-जलण |
| १७५ | १७ | परिग्गहस्स य अट्ठाए | परिग्गहस्सेव य अट्ठाए |
| १७५ | १८ | सउणरुयावसाणाओ, चउसट्ठि | स० रु० गणियप्प हाणाओ चउ० |
| १७५ | २० | अत्थ सत्थ इसत्थच्छ रुप्पगयं | अत्थइसत्थच्छ रुप्पवायं |
| १७५ | २७ | कामगुण अण्हगाय | कामगुण अण्हवगा |
| १७८ | २५ | न य अवेतिऽत्ता | न अवेतति त्ता |
| १७८ | २५ | अत्थिहु मोक्खोत्ति | अत्थिहु मोक्खेत्ति |
| २८० | ११ | पंचहिं असंवरेहिं | पंचहिं असंवरहिं |
| १८० | ११ | रयमादिणत्तु अणु समयं | रयमादिणित्तु मणुसमयं |
| १८० | १२ | चउव्विहगति पेरंतं | चउविहगइ पज्जतं |
| १८० | १५ | काहेंति अणंत ए | काहिंति अणंतए |
| १८० | १६ | सोऊणयजे पमायंति | सुणिऊण यजे पमायंति |
| १८० | १६ | मिच्छादिट्ठीणरा (यजेणरा अवुद्धीया | मिच्छादिट्ठीय जे नरा अहमा |
| १८१ | १ | पंचेवय उज्झिऊणं | पंचेवउज्झिऊणं |
| १८४ | २५ | महव्वयाइं लोकहिय-सव्वयाइं | महव्वयाइं (लोकहिसवयाइं) |
| १८५ | ३ | कापुरिस दुरुत्तराइं सप्पु-रिस निसेवियाइं | कापुरिस दुरुत्तराइं ( सुपरि-सतीरियाइं पा० ) वियाइं |
| १८५ | ४ | मग्ग सग्ग पणाय गाइंम, संवरदाराइं | मग्ग सग्गप्पणायकाइं ( याण गाइं पा० ) संवरदाराइं |
| १८६ | ८ | अस्सासो | असासो |
| १८६ | १२ | अडवीं मज्झेविसत्थगमणं | अ० म० सत्थगमणं |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| १८६ | १६ | सुद्दु दिट्ठा | सुद्दु दिट्ठा ( उवलद्धा ) |
| १९० | ३ ४ | अन्तजीविहिं विवित्त जीविहिं | अंतजीवीहिं विवित्त जीवीहिं |
| १९० | ५ | पडिमं ठाईहिं | पडिम ठाईहि |
| १९० | ६ | निच्छयववसाय पज्जत्तकयमतीया | नि० व० ( वणीय पा० ) पज्जतकय मतीया |
| १९५ | ७ | न निसज्ज | ननिसिज्ज |
| १९५ | ८ | निमित्त कह कप्पउत्तं | निमित्त कहप्पउत्तं |
| १९५ | २१ | थिउसमणं | विउवसमणं |
| २०१ | १६ | पावएणं पावगं | अपावएणं पावकं |
| २०१ | २१ | पावियाते पावगं | अपावियाते पावकं |
| २०२ | १० | अणाइले अलुद्धे | अणाइले अकुद्धे |
| २०७ | ६ | आदान निक्खेवण समिई | आदाण निक्खेवणा समिई |
| २०७ | १६ | एव नाय मुणिणा | एयं नाय मुणिणा |
| २१२ | १४ | महासमुद्दमज्झेविमूढाणियावि | महासमुद्दमज्झेविचिट्ठंतिननिमज्जंतिमूढाणियावि |
| २१३ | २-३ | परिग्गहिया असि पंजरगया | परिग्गहीया असि पंजरगया |
| २१३ | ४ | निइंति अणहा | नियंति अणहा |
| २१५ | १० | समयप्पदिन्नं देविन्द नरिन्द | समयप्पदिन्नं (महरिसि समयपइन्न चिन्तं पा.) देविन्द-नरिन्द |
| २१५ | ११-१२ | चारणगण समणसिद्ध विज्जं | चारणगमण समणसिद्ध विज्जं |
| २१५ | २० | अणज्जं | अणत्थं वज्जं |
| २२५ | ६ | अन्नस्स वा एवमादियस्स | अन्नस्स वा एगस्सवा (एवमादियस्सवा पा.) |
| २२५ | २४ | सुदेसितं | सुदेसियं |
| २३० | १६ | रन्नमंतरगतं वा किंची | रन्न (जल थलगयं खेत्त पा.) मंतरगतं वा किंचि |
| २३१ | १ | नासेइ जं च सुकयं | ना. (सो) जं च सु. |
| २३१ | २ | मच्छरित्तं च | मच्छरितं च |
| २३८ | १ | विओव समणं | विओ समणं |
| २३८ | १-२ | ततियस्स होंति | ततियस्स वयस्स होंति |
| २३८ | ८ | जत्थ वद्धती | जत्थवट्टती |
| २३८ | १४ | सेज्जोवहिस्स अट्ठा | से० ब० अट्ठे |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २३८ | १५ | गेण्हिउं जे, हणि | गिण्हेउं जेहणि |
| २४२ | १६ | संजएण समियं | संजमेणं स० |
| २४२ | २१ | साहारण पिंडपातलाभे | सा० पिंडवाय लाभे |
| २४२ | २२ | अदिन्नादाणवयनियमवेर-मणं (विरमणवय नियमणं) | अदिन्नादाण (विरमणवय नियमणं वय नियमवेरमणं पा.) एवं |
| २४३ | १ | गुरुसु साहूसु | गुरुसु साहूसु विणओ |
| २४७ | ५ | जंबू ! एत्तो | जंबु एत्तो |
| २४७ | ८ | पसत्थ गंभीर थिमित मज्झं | पसत्थ गंभीर अतुच्छथि-मित मज्झं |
| २४७ | २१ | तारगाणं वा | तारगाणं व |
| २४७ | २४ | हिमवंतो चेव ओसहीणं | हिमवंतोचेव नगाणं ओस-हीणं |
| २४८ | २ | पव्वकाणं चेव | पवकाणं चेव |
| २४८ | ५ | किमिराउच्चेव | किमिराओचेव |
| २४८ | १२ | एक्कंमि बंभचेरे | एकमि बंभचरे गुणे |
| २४८ | १२-१३ | आराहियं वयमिणं सव्वं | आ० व० सच्चं |
| २५४ | १३ | वे लंवक जाणिय | वे० जाणिय |
| २५४ | १७ | मूणवयकेसलोएय | मूणवयकेसलोय |
| २५७ | २५ | चउत्थयस्स होंति | चउत्थवयस्स होंति |
| २५८ | ६-७ | जितेन्दिए बंभचेर गुत्ते | जितिंदिए बंभचेर गुत्ते |
| २५८ | १२ | कहाओ सिंगार कलुणाओ | (अ) सिंगार कहाओ कलु-णाओ |
| २५८ | १६ | हसित भणितं चेट्ठिय विप्पेक्खितइ | हसित भणित चे० वि० गइ |
| २६६ | ६ | छज्जीव निकाया, छच्चलेसाओ | छजीव नि० छच्च० ले० |
| २६६ | ११ | भिक्खु पडिमा | भिक्खूणं पीडमा |
| २६६ | २२ | गय गवेलंगवा (च)न जाणजुग्ग | गय गवेलग कंबल जाणजुग्ग |
| २६६ | २५ | मणिसिंग सेल | मणिसिंग सेल (लेस पा०) |
| २७३ | ६ | आदेण कुम्मासगंजं | ओ० कु० गंज |
| २७३ | ६-७ | वेढिम वर सरक चुन्न | वेढ़िम वसरक चुन्न |
| २७३ | १३ | मट्टि उवलित्तं | मट्टि ओवलित्तं |
| | | खंते दंते य हि निरते | खं० दं० य हिय (धितिपा) निरते |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २७६ | २ | छिन्न गंथे निरुवलेवे | छि० गंथे (सोए पा०) नि० |
| २७६ | ६ | हरयो विव समिय भावे | हरएविव समिय तावे |
| २७६ | १७-१८ | गामे गामे एगरायं नगरे २ य पंचरायं | गामे एक रायं नगरेय पंच-रायं |
| २७६ | १८-१६ | निब्भओ, विऊ सच्चित्ता | नि० वि० (सुद्धो पा०) सच्चित्ता |
| २७६ | २० | जीविय मरणास विप्पमुक्के | जी० मरणास भय वि० |
| २७६ | २० | निस्संधि, निव्वणं | निस्संधि नि० |
| २९३ | १२ | गथिम वेढिम | गंठिम वेढ़िम |
| २६३ | १६ | पउम-परिमंडियाभिरामे | पउमसंड परिमंडियाभिरामे |

# अभिधान राजेन्द्र में मुद्रित प्रश्न० के पाठान्तर

| | |
|---|---|
| छीरलसरंब | छीरल सरंग (अभि. को. ५ भा. पृ. ८३४) |
| सुगुंस | सुगुंसा ,, ,, |
| घीरोलिय | घरोलिय ,, ,, |
| कादंबक वक बलाका | कादंब कंक वबलाका ,, ,, |
| चिडिग | चडग |
| विहंगभिणासि | विहंग भेयणासिय |
| कुलिय संदण | कुसिय संदण |
| विच्छुयडंकनिवातो | विच्छुय दंडक निवातो ,, (३८) |
| पायालसहस्स सू० ११ | पातालकलससहस्स (अभि. को १ भा. पृ. ५२८) |
| माइयतवर | पाइय (पासिय) वर— ,, २६ |

## दूसरा आस्रव का टिप्पण—

मणं च मणजीविया—

(१ कुछ बौद्धाचार्य पञ्चस्कन्धोंके अतिरिक्त मनको ही जीव तरीके मानते हैं। ये
ा रूपादिज्ञान लक्षणों का उपादान मनको मानकर परलोक का स्वीकार करते हैं।
था साथ नहीं जाने वाले मनको जीव मान लेने से परलोक की सिद्धि नहीं होती,
ोंकि वह मन क्षणान्तर के समान क्षणिक है। मनोमात्र को जीव मानना परलोक
असिद्धि से मृपा है।

हां परलोक में साथ जाने वाले मनमें यदि जीवत्व मान लिया जाय तो किसी
ह यह सत्य हो सकता है।

१) वायु जीवी—

कुछ आचार्य उच्छ्वास आदि लक्षण वायु को ही जीव मानते हैं, परन्तु वायु
जड़ होने से चैतन्यरूप जीवका उसमें योग नहीं हो सकता। अतः यह कथन भी
ा है।

) नास्तिक का प्रकार—

शरीर सादि और सान्त है, केवल यह भव ही एक भव है, अन्य नहीं। इसमें
था जन्मान्तर का अभाव मानने से मृषावादिता है।

(४) स्वभाव, काल, या पुरुषार्थ आदि को एकान्त कार्य कर मानना भी इसी
र मृषा समझना चाहिए।

य श्री हस्तिमल्लमुनि निर्मितच्छायाऽनुवादोपेतं पंचमगणधर श्री सुधर्माचार्य
विरचितं सिरि पण्हावागरणसुत्तं समाप्तिमगात्।

—०—